इकाई 1 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन क्यों ? विषय क्षेत्र एवं दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अर्थ
  1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय संबंध एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति
1.3 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का बदलता स्वरूप
1.4 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन क्यों जरूरी है ?
1.5 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विषय क्षेत्र
1.6 दृष्टिकोण
  1.6.1 पारंपरिक दृष्टिकोण: यथार्थवाद, आदर्शवाद एवं नव–यथार्थवाद
  1.6.2 वैज्ञानिक दृष्टिकोण
  1.6.3 व्यवस्था सिद्धांत
  1.6.4 खेल सिद्धांत
  1.6.5 समन्वयन सिद्धांत
  1.6.6 पर–निर्भरता दृष्टिकोण
  1.6.7 महिलावादी दृष्टिकोण
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अर्थ और उनके बदलते स्वरूप को समझ सकेंगे,
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन की उपयोगिता जान सकेंगे,
- इसके विषय क्षेत्र को जान सकेंगे,
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के पारंपरिक दृष्टिकोण की पहचान और उनकी व्याख्या कर सकेंगे, तथा
- प्रणाली सिद्धांत एवं खेल सिद्धांत जैसे प्रमुख वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को स्पष्ट कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

सदियों से राष्ट्रों के बीच के संबंध का अध्ययन विद्वानों को लुभाता रहा है। फिर भी "अंतर्राष्ट्रीय शब्द" का पहला प्रयोग 18वीं सदी में जेरेमी बेंथम द्वारा किया गया। हालांकि इस शब्द का लैटिन समतुल्य **इंटरजेन्टेस** एक शताब्दी पूर्व रिजशार जूश द्वारा प्रचलन में लाया गया था। इन दोनों ने ही इसका प्रथम प्रयोग विधि की उस शाखा के लिए किया था जिसे "राष्ट्रों की विधि", (Law of nations) कहा जाता है। यही बाद में अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूप में स्थापित हुआ। 19वीं एवं 20वीं सदी में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का काफी तेजी से विकास हुआ है। आज राष्ट्र–राज्य एक दूसरे पर काफी निर्भर हो चुके हैं और इसीलिए उनके बीच के संबंध–राजनीतिक या फिर व्यापार और व्यवसाय से संबद्ध–अध्ययन और ज्ञान का अनिवार्य क्षेत्र बन गये है। इस इकाई में हमारा मुख्य

सरोकार संप्रभुतासंपन्न समाजों, जिन्हें राष्ट्र या राष्ट्र–राज्य कहा जा सकता है, के बीच राजनीतिक संबंधों से है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, संप्रभुतासंपन्न राज्यों के बीच परस्पर निर्भरता काफी बढ़ी है। इस बीच दुनिया भी काफी बदली है। आज के जेट के समय में आवागमन इतनी तेजी से हो गया है कि दूरियां काफी हद तक सिमट गई हैं। क्षेत्र उपग्रहों के इस्तेमाल से दुनिया के देश एक दूसरे के इतने करीब आ गए हैं कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का महत्व अभूतपूर्व ढंग से बढ़ गया है। यह न केवल हमारे आधुनिक जीवन की एक शर्त है, बल्कि एक विद्या के रूप में भी इसका अध्ययन जरूरी है।

1.2 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अर्थ

अंतर्राष्ट्रीय संबंध शब्द का प्रयोग हम "स्थिति" एवं "विषय" दोनों ही रूपों में कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, क्विन्सी राइट उपर्युक्त भेद के पक्षधर हैं। हालांकि संप्रभुतासंपन्न देशों के बीच अधिकारिकीय संबंधों के अध्ययन को अंतर्राष्ट्रीय संबंध का नाम दिया जाता है, किन्तु उसके क्विन्सी के . . . ." इस संदर्भ में अंतर्राज्यीय शब्द ज्यादा उपयुक्त होता क्योंकि राजनीति विज्ञान में राज्य शब्द का प्रयोग ऐसे ही समाजों के लिए किया जाता है।" इस तरह विचार करने पर अंतर्राष्ट्रीय संबंध एक "स्थिति" के रूप में अंतर्राष्ट्रीय जीवन के तथ्यों का द्योतक है यानि राजनय एवं विदेश नीति के आधार पर राष्ट्रों के बीच संबंधों का वास्तविक व्यवहार। इसमें सहयोग, संघर्ष और युद्ध जैसे विषय क्षेत्र शामिल हैं। राइट के अनुसार, "अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में विषय के बारे में सत्यवादी होना जरूरी है, यानी राज्यों के बीच संबंधों का चालन कैसे हो और एक विद्या के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संबंध को राज्यों के मध्य संबंधों को एक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करना चाहिये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरे शब्दों में अंतर्राष्ट्रीय संबंध को संप्रभु राज्यों के बीच उन तमाम संबंधों–राजनीतिक, राजनयिक, व्यापारिक एवं अकादमिक–का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि वे सभी अंतर्राष्ट्रीय संबंध की विषय वस्तु हैं। अंतर्राष्ट्रीय संबंध की परिधि में "तरह–तरह के वे समूह जैसे राष्ट्र, राज्य, सरकारें, जातियाँ, क्षेत्र, गठबंधन, परिसंघ, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, औद्योगिक संगठन भी, सांस्कृतिक संगठन, धार्मिक संगठन आदि भी शामिल हैं।" यानि कि वे सब जो किसी न किसी तरह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रक्रिया में लिप्त हैं।

जहाँ क्विन्सी राइट अंतर्राष्ट्रीय संबंध की दो परिभाषाओं–एक स्थिति के रूप में, और दूसरी विषय के रूप में – भेद करते हैं, वहीं दूसरी तरफ *पाल्मर* एवं *पार्किन्स* जैसे विद्वान अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को विद्या के रूप में मान्यता देने में आशंका प्रकट करते हैं। इन दोनों का मानना है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध इतिहास और राजनीति विज्ञान की विधाओं से जन्मा है। करीब चालीस साल पहले, पाल्मर एवं पार्किन्स ने कहा था, "यद्यपि अब अंतर्राष्ट्रीय संबंध उस स्थिति से बाहर आ गया है जब इसे इतिहास एवं राजनीति विज्ञान की खिचड़ी कहा जाता है, किन्तु आज भी यह पूर्णसंगठित विषय की हैसियत से कोसों दूर है।"

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के प्रथम अध्येताओं में से एक प्रो. अल्फ्रेड जिमरमैन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले लिखा था कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्पष्ट ही सामान्य अर्थ में एक विषय नहीं है। इसके पास पठन सामग्री का एक भी सूत्रबद्ध संकलन नहीं है। यह कोई एक विषय नहीं है बल्कि विषयों का गठ्ठर मात्र है–विधि, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, भूगोल आदि–आदि।" पाल्मर और पार्किन्स के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय संबंध अपने चरित्र और विषय क्षेत्र में बहुत अधिक व्यक्तिपरक है। शुरूआती दौर में ई. एच. कार जैसे विद्वानों ने इसे "स्पष्ट और निश्चित रूप से अति आदर्शवादी" कहा था। किन्तु, राष्ट्रकुल एवं उसकी सामुहिक सुरक्षा व्यवस्था की विफलता को देखकर उन्हें कहना पड़ा कि अब "अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में विश्लेषणात्मक विचार करना संभव हो गया है"। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनेक विद्वानों ने ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं। आज यह संभव नहीं है कि हम अंतर्राष्ट्रीय संबंध को यूटोपियन कह कर खारिज कर दें या फिर उसे ज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा न मानें। राष्ट्रीय हित से प्रत्येक राष्ट्र का विशेष सरोकार होता है। विदेश नीति के नियोजनकर्ता एवं निर्माता अपने देश के राष्ट्रीय हित के बारे में सही समझ की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि उसकी रक्षा तो हालत में जरूरी है। हार्टमैन अंतर्राष्ट्रीय संबंध को अध्ययन को ऐसे विषय के रूप में परिभाषित करते हैं जो उन प्रक्रियाओं जिनसे राज्य अपने राष्ट्रीय हितों का समंजस्य दूसरे राज्यों के साथ

करते हैं, पर ध्यान देता है"। चूंकि विभिन्न राज्यों के राष्ट्रीय हित अक्सर एक दूसरे के साथ संघर्ष की स्थिति में रहते हैं अतः मौर्गेन्थु का निष्कर्ष है कि अन्य राजनीति की तरह अंतर्राष्ट्रीय राजनीति भी सत्ता का संघर्ष है। सत्ता राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देने का साधन है।

1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय संबंध एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति

1919 में वेल्स विश्वविद्यालय (यू. के.) में अंतर्राष्ट्रीय संबंध की पहली पीठ की स्थापना हुई थी। इस पीठ के पहले दो पदासीन ख्याति प्राप्त इतिहासकार अल्फ्रेड जिमरमैन एवं सी. के. वेबस्टर थे। तब अंतर्राष्ट्रीय संबंध एक विषय के रूप में ऐतिहासिक राजनय से ज्यादा कुछ नहीं था। अगले सात दशकों में इस विषय की प्रकृति एवं अन्तर्वस्तु में परिवर्तन आया है। आज वर्णनात्मक राजनयिक इतिहास की जगह राजनीति का विश्लेषणात्मक अध्ययन मान्यता पा चुका है। अब अंतर्राष्ट्रीय राजनीति शब्द का प्रयोग उस नए विषय के लिए किया जाता है जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के दिनों में विकसित होता रहा है। अंतर्राष्ट्रीय संबंध की तुलना में आज यह अधिक वैज्ञानिक है, किन्तु उसकी तुलना में अधिक संकुचित भी।

आज भी इन दोनों पदों का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में किया जाता है। किन्तु दोनों के अध्ययन के विषय क्षेत्र एवं अंतर्वस्तु अलग–अलग हैं। हैन्स मौर्गेन्थु का मानना है कि "अंतर्राष्ट्रीय राजनीति अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की आत्मा है, फिर भी दोनों के बीच स्पष्ट विभेद किया जाना चाहिए। उनके मतानुसार अंतर्राष्ट्रीय संबंध अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से अधिक व्यापक है। मौर्गेन्थु के अनुसार राज्यों के बीच राजनीति जहाँ सत्ता मात्र का संघर्ष है, वहीं अंतर्राष्ट्रीय संबंध राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक संबंधों का भी अध्ययन करता है। हैरोल्ड एवं मार्गरेड स्प्राउट का विचार है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध किसी देश के उन तमाम मानवीय व्यवहारों का अध्ययन करता है जो सीमापार देश के मानवीय व्यवहारों को प्रभावित करता है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति दूसरी तरफ केवल राज्यों के बीच विद्यमान संघर्षों व सहयोगों का अध्ययन करती है, वह भी राजनीतिक स्तर पर ही। पैडेलफोर्ड व लिंकन के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति बदलते सत्ता समीकरणों के संदर्भ में राज्य की नीतियों की अंतर्क्रियाओं का अध्ययन करती है। पाल्मर एवं पार्किन्स का भी कुछ ऐसा ही ख्याल है। वे कहते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति मूल रूप से राज्य व्यवस्थाओं का अध्ययन करती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चूंकि अंतर्राष्ट्रीय संबंध संप्रभु राज्यों के बीच मौजूद तमाम संबंधों का अध्ययन करते हैं, अतः यह व्यापक हैं, जबकि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति सीमित है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विद्यार्थी की हैसियत से हमें राज्यों के बीच होने वाले संघर्ष एवं सहयोग का अध्ययन तो करना ही होगा। किंतु इसके साथ– साथ हम राज्यों के संबंधों के दूसरे पहलुओं, यानि उनके बीच आर्थिक अंतः क्रियाओं एवं गैर–राज्यीय तत्वों की भूमिका का भी अध्ययन करेंगे।

1.3 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का बदलता स्वरूप

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के स्वरूप एवं संदर्भ में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। पारंपरिक रूप से, विश्व राजनीति के केन्द्र में यूरोप था और देशों के बीच संबंधों का संचालन विदेश विभाग के अधिकारियों द्वारा गुपचुप तरीके से किया जाता था। आज न केवल इतना ही हुआ है कि परमाणु हथियारों की वजह से युद्ध का स्वरूप बदल जाता है और पुराने सत्ता संतुलन की जगह खौफ का संतुलन स्थापित हो गया है, बल्कि राजनय का भी स्वरूप बदल गया है। आज हम जेट युग में रह रहे हैं। अब राज्य एवं सरकार के मुखिया तथा विदेश मंत्री पूरी दुनिया की यात्रा करते हुए अपना निजी संपर्क कायम करते हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंध के कार्य–व्यापार का संचालन करते है। प्रथम विश्वयुद्ध से पहले इंग्लैंड से भारत आने वाले यात्री को 20 दिनों की समुद्री यात्रा करनी पड़ती थी। आज दिल्ली से लंदन की दूरी तय करने में एक जेट विमान को 9 घंटे से भी कम समय लगता है। टेलीफोन, फैक्स मशीनों, टेलीप्रिंटर तथा अन्य इलेक्ट्रोनिक उपकरणों की बदौलत सरकारों के मुखिया एक दूसरे के निजी संपर्क में आ गए हैं। हॉटलाइन–संचार, वाशिंगटन एवं मास्को के बीच दुनिया के शीर्ष नेतृत्व को एक दूसरे के संपर्क में रखता है। नतीजतन वर्तमान में राजदूतों की स्वतंत्रता कम हुई है क्योंकि अब उन्हें रोज ब रोज अपनी सरकारों से निर्देश प्राप्त होते रहते हैं।

औपनिवेशीकरण के खात्मे की वजह से अनेक स्वतंत्र और संप्रभु राज्यों का उदय हुआ है। यूरोपीय

सत्ता के अधीन जो पुराने उपनिवेश थे जिनमें भारत भी शामिल है, आज अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे हैं। आज वे विश्व राजनीति में अपनी दखल रखते हैं। सोवियत संघ के बिखराव से संयुक्त राष्ट्र की संख्या में 3 के बजाय 15 की बढ़ोतरी हुई है। अत्यंत छोटे देशों के पास ताकत भले ही न हो किन्तु उन्हें भी आज आम सभा में अपनी बात रखने का बराबर अधिकार है। 1990-93 के दौरान चार अत्यंत छोटे देशों–लीशटैनंस्टीन, सान मैरिनों, मोनैको और एण्डोरा–को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्रदान की गई है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों की संख्या जहां 1945 में 51 थीं, वहीं आज 1995 में ये बढ़कर 185 हो गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का संचालन अनेक नए राष्ट्र–राज्यों द्वारा होता है। इसके अलावा ढेर से गैर राज्यीय ताकतें जैसे बहुराष्ट्रीय निगम तथा बहुद्देशीय निकाय, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रही हैं। महाशक्ति के रूप में सोवियत संघ के पतन होने से संयुक्त राज्य अमेरिका का एक एकल महाशक्ति के रूप में उभर कर सामने आया है और अब वह बिना किसी चुनौती के विश्व राजनीति पर अपना दबदबा कायम कर सकता है। हालांकि गुट निरपेक्ष आंदोलन अब भी कायम है, किंतु युगोस्लाविया जैसे संस्थापक देश के पतन तथा प्रतिस्पर्द्धी गुटों के खत्म हो जाने से, गुट निरपेक्ष आंदोलन के साथ–साथ तीसरी दुनिया की भूमिका भी बदल गई है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर का मिलान किजिए।

1) अंतर्राष्ट्रीय संबंध एक विषय भी है और एक स्थिति भी। भेद स्पष्ट करें।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

3) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में क्या अंतर है ?

....

....

....

....

4) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के बदलते स्वरूप के बारे में संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

1.4 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन क्यों जरूरी है ?

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अन्य कई विषयों से निकट का जुड़ाव है। इन विषयों में इतिहास, राजनीति विज्ञान, विधि, अर्थशास्त्र और भूगोल शामिल हैं। ऐसे में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अलग से अध्ययन किस तरह उपयोगी है ? आप जानते हैं कि दुनिया में कोई राष्ट्र अलग–थलग नहीं रह सकता। उस जमाने में भी जब यातायात के साधन बहुत पुराने अथवा आज की तुलना में बहुत कम विकसित थे, संप्रभु राज्य एक दूसरे के संपर्क में रहते थे। वे कभी–कभी सहयोग भी करते थे किन्तु अधिकांशतः उनके बीच संघर्ष की ही स्थिति अधिक बनी रहती थी। नतीजतन उनके बीच युद्ध होता रहता था। उनके संबंधों के बारे में आम तौर पर इतिहासकार और राजनीतिविज्ञान के अध्येता ही अध्ययन करते थे। राजनयिक इतिहास मुख्य रूप से संप्रभु राज्यों के संबंधों का अध्ययन करता था।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में यातायात व संचार के क्षेत्र में हुई क्रांतियों ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का न केवल स्वरूप बदल दिया है, बल्कि आज इसका अध्ययन प्रत्येक जागरूक व्यक्ति के लिए अनिवार्य हो गया है।

आज हम एक परस्पर निर्भर राज्य व्यवस्था के युग में जी रहे हैं। हम सबके लिए यह जानना जरूरी हो गया है कि दुनिया में क्या–क्या हो रहा है। राजनीतिक घटनाएँ तो महत्वपूर्ण हैं ही, किंतु साथ ही आर्थिक विकास, व्यापार, व्यवसाय तथा बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आज हम बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के युग में पदार्पण कर चुके हैं इसीलिए आज राष्ट्रों व उनके लोगों को न केवल संयुक्त राष्ट्र एवं उसके अनगिनत अभिकरण प्रभावित करते हैं अपितु यूरोपीय संघ, दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (दक्षेस), दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (असियन) तथा अफ्रीकी एकता संघ (ओ ए यू) जैसे क्षेत्रीय संगठन भी हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पूरी मानवता के लिए अहम सवाल बनकर खड़ा हो गया है। विश्वबैंक और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को प्रभावित करने लगे हैं। यही करण है अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन छात्रों एवं अन्य लोगों की सजगता के लिए बहुत आवश्यक हो गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.5 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विषय क्षेत्र

विधि व राजनयिक इतिहास के अध्ययन के साथ शुरू हुए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विषय क्षेत्र अब काफी विस्तृत हो चुका है। राष्ट्रों के बीच पारस्परिक संपर्क जटिल हुए हैं। नतीजन विद्वानों का ध्यान अंतर्राष्ट्रीय संगठनों एवं संस्थाओं से क्षेत्र विशेष तथा विदेश नीति के रणनीतिक पहलुओं के अध्ययन की ओर गया है। इससे राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष और उपनिवेश विरोधी आंदोलन को गत्यात्मकता की बेहतर समझ पैदा करने की कोशिशों में तेजी आई है। युद्ध के दौरान संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हो जाने से राष्ट्रों के बीच संबंधों के पुनर्निर्माण की दिशा में सोच बेहतर हुई है। हालांकि संघर्ष आज भी अंतर्राष्ट्रीय संबंध का केन्द्रीय विषय है, तथापि सहयोगपरक मामलों का अध्ययन महत्वपूर्ण हो उठा है। युद्ध का तात्कालिक प्रभाव इसी रचनात्मक दृष्टिकोण के रूप में सामने आया। यह इनि क्लैभद् की पुस्तक तलवार एवं हल (स्वोर्ड एंड प्लाउशेयर्स) जैसे शीर्षक वाली किताबों के शीर्षकों से भी जाहिर होता है। शीतयुद्ध के दौरान विचारधारा एवं निशस्त्रीकरण जैसे विचारों को अभूतपूर्व महत्ता हासिल हुई। इसी तरह गठबंधन और क्षेत्रीयतावाद भी अंतर्राष्ट्रीय संबंध के महत्वपूर्ण अंग बन गए हैं।

समसामयिक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के तहत राजनयिक इतिहास, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, अंतर्राष्ट्रीय विधि एवं क्षेत्रवार अध्ययन के तमाम आयामों का अध्ययन शामिल है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की अंतर्वस्तु के बारे में लिखते हुए कुछ दशक पहले पाल्मर और पार्किन्स ने कहा था कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध "संक्रमण कालीन विश्व समुदाय का अध्ययन है। यह निष्कर्ष आज भी बहुत हद तक सच है। संक्रमण काल अभी भी उत्कर्ष बिंदु तक नहीं पहुँचा है। हालांकि अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अंतर्निहित कारक नहीं बदले हैं, फिर भी विश्व परिदृश्य बदल गया है और वह आज भी बदल रहा है। राज्य व्यवस्था संशोधनों के दौर से गुजर रही है, बडे पैमाने पर प्रौद्योगिकी का विकास हुआ है तथा अफ्रीकी और एशिया के नए देशों की भूमिका लगातार बढ़ती जा रही है। भारत आज [illegible] निर्णय लेने की स्थिति में है। जैसा कि उसने 1996 में व्यापक परीक्षण प्रतिबंध (सी टी बी टी) पर

हस्ताक्षर करने के मामले में दिखाया भी गया। साथ ही आज सर्वत्र बढ़ती आकांक्षाओं की भी क्रांति हो रही है। इसलिए पाल्मर और पार्किन्स ने लिखा था सम–सामयिक अंतर्राष्ट्रीय संबंध में नए और पुराने तत्वों का आपस में गूंथा होना अनिवार्य है। यों तो आज भी राष्ट्र राज्य व्यवस्था व अंतरराज्यीय संबंध ही इसके केन्द्र बिंदु हैं, किन्तु अनेक संगठनों व समूहों के क्रियाक्लापों व अंतक्रियाओं का ध्यान रखना भी जरूरी हो गया है।

वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय संबंध का विषय क्षेत्र बीसवीं सदी के अंत में बहुत व्यापक हो गया है। राज्यों के बीच पारस्परिक निर्भरता में इतनी बढ़ोतरी हुई है कि पूरी दुनिया वास्तव में एक विश्व ग्राम (globle village) में बदल गई है। राज्यों के आर्थिक संबंध, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की भूमिका आज पूरी दुनिया की आर्थिक गतिविधि को प्रभावित करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उसके अन्य अभिकरण अनेक सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक गतिविधियों में लिप्त हैं। मानवीय अस्तित्व के लिए अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का खतरा विश्व की सामान्य चिंता का विषय है। बहुराष्ट्रीय निगम जो, वास्तव में दुनिया भर में कारोबार करने वाली बड़ी कंपनियां हैं, अंतर्राष्ट्रीय संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले गैर राज्यीय तत्व के रूप में उभरे हैं। कहने का मतलब यह है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध की परिधि काफी व्यापक हो गई है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अलावा, इसमें अन्य दूसरी अन्तर्राज्यीय गतिविधियाँ भी शामिल हैं।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए

1) संक्षेप में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन की उपयोगिता का वर्णन कीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

2) समसामयिक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विषय क्षेत्र क्या है ?

....

....

....

....

....

....

1.6 दृष्टिकोण

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के कई दृष्टिकोण हैं। पारंपरिक एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण इतिहास को एक ऐसा प्रयोगशाला मानता हैं जिससे सार्थक प्रतिपादित किए जा सकते हैं। पारंपरिक दृष्टिकोण के तहत दो प्रमुख धारायें यथार्थवाद और आदर्शवाद हैं। यथार्थवादी प्रणाली जहाँ सत्ता संघर्ष को तमाम अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का केन्द्रीय बिंदु मानता है, वहीं आदर्शवादी प्रणाली व्यक्ति की अंतर्निहित अच्छाई में विश्वास करती है। मॉर्गेन्थु जैसे यथार्थवादी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में साधन और चरित्र को

विशेष तरजीह नहीं देते। इनके अनुसार राष्ट्रीय हित ही अंतर्राष्ट्रीय संबंध का लक्ष्य है जिसे सत्ता के जरिए प्राप्त करना अनिवार्य है। दूसरी तरफ आदर्शवादी हैं जो मानते हैं कि विश्वशांति का आदर्श विवेक, शिक्षा एवं विज्ञान की सहायता से प्राप्त किया जा सकता है। हाल के वर्षों में नवयथार्थवाद अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन की नई प्रणाली के रूप में विकसित हुई है।

1.6.1 पारम्परिक दृष्टिकोण: यथार्थवाद, आदर्शवाद, एवं नव-यथार्थवाद

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के पारम्परिक दृष्टिकोण की दो प्रमुख प्रणालियाँ हैं—यथार्थवाद और आदर्शवाद। जॉर्ज कौन और हान्स मॉगेन्थु का विचार है कि सत्ता संघर्ष ही तमाम अंतर्राष्ट्रीय सबंधों का केन्द्रीय तत्व है। सामान्यतः व्यक्तियों में यह भय बना रहता है कि दूसरे सदैव उन पर आक्रमण करने और उन्हें बर्बाद करने की ताक में बैठे हुए हैं और इसीलिए, अपनी रक्षा के लिए दूसरों को मारने के लिए लगातार तैयार रहना चाहिए। यही बुनियादी मानवीय वृति राज्यों के संबंधों को भी संचालित करती है। यानि, यथार्थवादी मानते हैं कि राष्ट्रों के बीच वैमनस्य और द्वंद्व, इस या उस रूप में सदैव मौजूद रहे हैं। जिस प्रकार निजी हित वैयक्तिक आचरण को संचालित करता है, ठीक उसी प्रकार राष्ट्रीय हित राष्ट्र राज्यों की विदेश नीति को संचालित करता है। निरंतर द्वंद्व अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की वास्तविकता है और यर्थाथवादियों के अनुसार यह द्वंद्व सीधा सत्ता संघर्ष का परिणाम है। यर्थाथवादी साधनों को कोई खास महत्व नहीं देते हैं। उनके लिए राष्ट्रीय हित ही एकमात्र लक्ष्य है और इसे हर कीमत पर बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

हॉन्स जे मॉर्गेन्थु की प्रभावकारी पुस्तक "पॉलिटिक्स अमंग नेशन्स" यथार्थवाद को बहुत दूर तक ले गई। यथार्थवादियों के लिए राष्ट्रों के बीच सत्ता वितरण की व्याख्या करना ही अंतर्राष्ट्रीय संबंध का एकमात्र काम है, दूसरा कुछ भी नहीं। अगर सत्ता वितरण को समझ लिया जाये, तो यथार्थवादियों का मानना है कि तब व्यवस्था की विशेषताओं और अलग–अलग राष्ट्रों के आचरण की व्याख्या करना संभव हो सकेगा। इसके विपरीत आदर्शवादियों का दृढ़ मत है कि मानव मन की मौलिक अच्छाई अंततः विजयी होगी और एक ऐसी विश्व व्यवस्था प्रकट होगी जिसमें न युद्ध होगा न असमानता न अत्याचार। यह नई विश्व व्यवस्था विवेक, शिक्षा और विज्ञान के इस्तेमाल से संभव होगी। आदर्शवादी भावी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं जिस में न राजनीति है, और न हिंसा न ही अनैतिकता। आदर्शवाद की मान्यता है कि आखिरकार एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय संगठन पैदा होगा जिसे सभी राष्ट्र–राज्यों का आदर प्राप्त होगा। वही संगठन दुनिया को द्वंद्व और युद्ध से मुक्ति देगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्ता की समस्या ही वह निर्णायक बिंदु है जहाँ यर्थाथवादी और आदर्शवादी एक दूसरे से जुदा होते हैं। सेंट साइमन, आल्डस हक्सले, महात्मा गांधी तथा वुड्रो विल्सन मुख्य आदर्शवादी विचारक हैं। नैतिकता उनके लिए अहम मुद्दा है, क्योंकि वे अंतर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग की वकालत करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यथार्थवाद एवं आदर्शवाद का विश्लेषण किया जाये तो पता चलेगा कि दोनों का अलग–अलग औचित्य है। बशर्ते दोनों अपनी जिद्द से बाज आएं। इन दोनों के बीच के रास्ते को चर्च–व्यवस्था (eclectreism) के नाम से जाना जाता है। एक तरह से यह दृष्टिकोण यथार्थवाद की निराशा एवं आदर्शवाद की आशा का मध्यम रूप है। चर्च–व्यवस्था यर्थाथवाद एवं आदर्शवाद दोनों की अच्छाइयों का इस्तेमाल करना चाहती है। क्विन्सी राइट यथार्थवाद को लघुसूत्री राष्ट्रीय नीति का परिचायक और आदर्शवाद को दीर्घसूत्री अंतर्राष्ट्रीयतावाद का द्योतक मानते हैं। यथार्थवादियों को तामसपुत्र (Children of darkness) तो आदर्शवादियों को प्रकाशपुत्र (children of light) की संज्ञा से नवाजा गया है। नाईबहर तामसपुत्रों का बुराई के रूप में उल्लेख करता है तो प्रकाशपुत्रों का गुणों के रूप में। किंतु एक दूसरे मानदंड के आधार पर वह कहता है, यथार्थवादी चतुर है क्योंकि वे आत्मबल की ताकत से वाकिफ हैं, जबकि आदर्शवादी मूर्ख हैं क्योंकि वे अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में अराजकता के खतरे से अनजान हैं। दोनों को इसमें सीखने के लिए बहुत कुछ है।

नवयथार्थवाद अथवा संरचनात्मक यथार्थवाद अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन की वर्तमान प्रणालियों में से एक है। वाल्ज, ग्रीको, क्विहेन तथा जोसेफ नाई इस प्रणाली के महत्वपूर्ण प्रणेताओं में से हैं। नव यथार्थवादी मानते हैं कि जिसकी लाठी उसकी भैंस का सिद्धांत मौलिक रूप से हौब्सवादी है। बड़ी ताकतें हमेशा वैमनस्य की भावना से ग्रस्त रहती है। संरचना के स्तर पर आम तौर पर अराजकता बनी रही है, यद्यपि इसके मुख्य अदाकार बदलते रहते हैं। संरचना से अर्थ है एक व्यवस्था के अंतर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ किस प्रकार सामंजस्य बनाए हुए हैं। मौजूदा व्यवस्था जो कि अराजक (राज्य सत्ता को चुनौतियाँ आम हैं) में हम अक्सर पाते हैं कि एक शक्तिशाली राष्ट्र की सबसे ज्यादा रूचि दूसरे राष्ट्रों को आपेक्षिक सामर्थ्य प्राप्त करने से रोकने में

होती है। क्विहेन और नाई आगे कहते हैं कि गैर राज्यीय तत्वों की भूमिका में इजाफा होने से यह और भी जटिल हो गई है। संक्षेप में, नवयथार्थवादी मानते हैं कि राष्ट्र राज्य आज भी राजनीति के मुख्य कलाकार हैं, कि राज्य के आचरण की विवेक सम्मत व्याख्या हो और राज्य अपने हितों का आकलन करता है। इस हद तक वे यथार्थवादियों के साथ है। किन्तु साथ ही नवयथार्थवादी यह भी कहते हैं कि आज अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की पहचान कता व बहुकेन्द्रक गतिविधियों के रूप में की जा सकती है और इन गतिविधियों का स्रोत अब राज्य ही नहीं बल्कि गैर–राज्य तत्व हैं। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, धार्मिक युद्ध, गृहयुद्ध की बढ़ती घटनाओं और प्रतियोगी बहुराष्ट्रीय निगमों की वजह से यह जटिलता और भी जटिलतर हो गई है।

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद के वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य एक नए रूप में प्रकट हुआ है। विखंडनकारी एवं अलगाववादी आंदोलनों की वजह से राष्ट्र–राज्यों का अस्तित्व खतरे में पड़ चुका है। जॉन स्ट्रेमलाऊ के अनुसार, "उन राजनयिकों जो कि अफ्रीका, बल्कन, पूर्व सोवियत संघ में अराजकता खत्म करने में लगे हैं, उनके लिए "रोकथाम" आज एक आम चर्चा का शब्द बन चुका है।" उदाहरण के लिए सन् 1992 में दुनिया भर में 30 स्थानों पर संघर्ष चल रहा था। इनमें से 29 के निपटारे के लिए सैन्य कार्रवाई की गई और ये सभी कार्रवाइयाँ अतः देशीय थी। इन उदाहरणों के हवाले यह दिखाया जा सकता है कि आज जितनी सैन्य कार्रवाइयां देशों के अंदर हो रही हैं उतनी देशों के बाहर या बीच नहीं हो रही। पूर्व युगोस्लाविया का जातीय संघर्ष (सर्बों व क्रोएशियाइयों तथा सर्बों व बोस्नियाइयों के बीच) अफगानिस्तान का आंतरिक उपद्रव, कुर्दों को लेकर ईराक में छिड़ा संघर्ष, सोमालिया की हताश स्थिति, मोहाजिर कौमी आंदोलन से संबंद्ध संघर्ष, भारत के उत्तरी राज्यों–जम्मु एवं काश्मीर तथा पंजाब में आतंकवादी गतिविधियाँ—ये राष्ट्र राज्य के अंदर होने वाली सैन्य कार्रवाइयों के कुछ उदाहरण हैं। शीतयुद्ध के उपरांत होने वाले संघर्षों में 90 प्रतिशत हत्यायें नागरिकों की हुई हैं, न कि सैनिकों की। इस प्रकार नव यथार्थवाद इस अराजक विश्व में सत्ता–संघर्ष के तत्व पर विशेष बल देता है। सत्ता संघर्ष केवल राज्यों के बीच ही नहीं है अपितु उनमें से प्रत्येक के अंदर भी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि कम से कम सामाजिक राजनीतिक स्तर पर यथार्थवादी नहीं चाहते कि विदेश नीति का निर्धारण घरेलू स्थितियों के अनुरूप हो। वे चाहते हैं कि राज्य की भूमिका सत्ता के राजनयिक, सैनिक व रणनीतिक स्त्रोतों तक ही सीमित रहे। शीतयुद्धोत्तर काल के नवयथार्थवादियों का मत है कि शीतयुद्ध (1945-89) के दौरान विश्व शांति संभव हो सकी तो इसलिए कि दुनिया तब दो स्थिर ध्रुवों में विभाजित थी, आतंक का संतुलन था तथा यह विश्वास की, कि परमाणु युद्ध अंततः आत्महत्या साबित होगा। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद यथार्थवादियों की सोच है कि दुनिया में शांति अब राज्यों के आपसी आचरण से ही कायम होगी और यह आचरण अमरीका अपने बाहुबल के जोर से सुनिश्चित करेगा। अमेरिका ऐसा करने में समर्थ है क्योंकि दुनिया की सत्ता पर उसका वास्तविक एकाधिकार है। यथार्थवाद संयुक्त राष्ट्र, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संघटन की भूमिका को स्वीकारता है, पर मानता है कि इन पर विश्व की प्रमुख शक्तियों का दबदबा है। यथार्थवादी मानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, व्यवस्थाओं व गैर राज्यीय तत्वों की मौजूदगी के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शक्ति का ही वर्चस्व बरकरार है।

यहाँ छात्रों के लिय यह जानना दिलचस्प होगा कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन की यथार्थवादी व यथार्थवादी प्रणालियाँ अमेरिका व यूरोप तक ही समीति हैं। दोनों राज्य सत्ता व्यवस्था एवं तरराज्यीय संबंधों पर जोर देते हैं। दोनों के बीच मौलिक अंतर यात्रा और फोकस को लेकर है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के संदर्भ में नवयथार्थवाद (जो अमेरिका व युरोप में ज्यादा मान्य है) यथार्थवाद से दो रूपों में भिन्न हैं। पहला, यह राजनयिक, सैनिक और रणनीतिक स्त्रोत, जो सत्ता संतुलन को कायम रखते हैं या तोड़ देते हैं, को कम महत्व देता है यह स्वपोषित अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के निर्माण में राजनीतिक व आर्थिक सरोकारों को प्राथमिकता प्रदान करता है। यही कारण है कि अधिकांश नवयथार्थवादी अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के विद्वान रहे हैं।

विकासशील देशों में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन का मामला अजीब है। इनके लिए पराश्रिता और विकास अध्ययन के मुख्य सरोकार हैं न कि पश्चिम की राज्यकेन्द्रित दृष्टि। यह दृष्टि प्रभुत्वकारी संतुलन अथवा स्थिरता के सिद्धांत में यकीन करती है (यानि, सत्ता का असमान वितरण जिसमें एक या दो राज्यों के पास अकूत ताकत इकट्ठी हो जाती है और वे ही विश्व में स्थिरता सुनिश्चित करते हैं।) जेम्स रोजैनाओ जैसे व्यवहारवादियों की आम शिकायत थी कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के तीसरी दुनिया के छात्र सहज ही परनिर्भरता सिद्धांत की और आकर्षित हो जाते हैं। यह

सिद्धात मानता है कि तीसरी दुनिया के देश ऐतिहासिक रूप से पश्चिम के विकसित देशों द्वारा शोषित होते रहे हैं।

1.6.2 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का व्यवहारवादी/वैज्ञानिक दृष्टिकोण

पश्चिमी विद्वान व्यवहारवादी दृष्टिकोण को अक्सर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में देखते रहे हैं क्योंकि यह दृष्टिकोण मात्रिक आकलनों पर आधारित है।

उन्होंने हमें संघर्ष की जटिल प्रकृति के बारे में और अधिक सजग बनाया है तथा नीति निर्माण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि मुहैया करायी है। व्यवहारवादी विद्वानों का अंतिम लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का एक सामान्य सिद्धांत विकसित करना है। पारंपरिक दृष्टिकोण मूल रूप से राजनीति विज्ञान से संबद्ध था, साथ ही वह विधि इतिहास और दर्शन का जमकर इस्तेमाल करता था। व्यवहारवादी दृष्टिकोण की वजह से अंतर्राष्ट्रीय संबंध की एक धारा कम से कम विकसित हो रही है जो अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में व्यावहारिक अध्ययन को तवज्जो देती है।

ऐसे अनेक सिद्धांत हैं जिन्हें एक साथ वैज्ञानिक/व्यवहारवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत रखा जा सकता है। इनमें से कुछ सिद्धांत जैसे पद्धति सिद्धांत दूसरे अन्य सिद्धांतों जैसे मोल तोल एवं खेल सिद्धांत की तुलना में ज्यादा व्यापक है। इस खंड में हम केवल दो मुख्य वैज्ञानिक/व्यवहारवादी सिद्धांतों–व्यवस्था या पद्धति सिद्धांत और खेल सिद्धांत की चर्चा करेंगे।

1.6.3 व्यवस्था सिद्धांत

व्यवस्था विभिन्न तत्वों का एक समुच्चय है जिसमें सभी तत्व एक दूसरे से संबंध रखते हैं। व्यवस्था की दूसरी विशेषता यह है कि इसकी एक सीमारेखा होती है जो इसे पर्यावरण से अलग करती है, यद्यपि पर्यावरण व्यवस्था के कार्यकलाप को प्रभावित करता रहता है। आम तौर पर, व्यवस्था प्राकृतिक (जैसे सौर–प्रणाली) हो सकती है, तकनीकि (कार, घड़ी या कम्पयूटर) या सामाजिक (अर्थात परिवार) सामाजिक व्यवस्था स्वयं ही समाज या अर्थ–व्यवस्था या राजनीति या अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था से जुड़ी हुई हो सकती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अंतर्राष्ट्रीय पद्धति व पद्धतियों की आम धारणा ही बहुत से विद्वानों के लिए आधार का काम करती रही है। कार्ल डब्ल्यू ड्यूश्य तथा रेमण्ड एरोन इसके सबसे अच्छे उदाहरण हैं। एरोन का कहना था कि कभी भी कोई अंतर्राष्ट्रीय पद्धति नहीं रही पूरी पृथ्वी के लिए भी नहीं। किंतु युद्धोत्तर काल में पहली दफा मानवता एकल इतिहास के साथ जी रही है तथा एक खास तरह की विश्व व्यवस्था प्रकट हुई है। यह व्यवस्था सामान्य असमरूप है लेकिन इतना भी नहीं कि विद्वान उन्हें एक विषय के अंतर्गत समेट न सकें। सच तो यह है कि स्टैनले हॉफमैन द्वारा दी गई विषय की आरंभिक परिभाषा ही काफी है। हॉफमैन के अनुसार, एक अंतर्राष्ट्रीय पद्धति विश्व राजनीति की बुनियादी इकाइयों के बीच संबंधों का ढर्रा है। इसकी पहचान इकाइयों द्वारा अनुसरित उद्देश्यों के क्षेत्र तथा इन इकाइयों के आपसी कार्य व्यापार तथा उन उद्देश्यों व उन कार्यों को संपादित करने के प्रयुक्त साधनों के रूप में की जा सकती है (अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में पद्धति व प्रक्रिया, 1957)।

अन्यों की तुलना में प्रो. मोर्टन काप्लान अंतर्राष्ट्रीय संबंध के क्षेत्र में प्रणाली सिद्धांतकार के रूप में सबसे ज्यादा प्रभावी माने जाते हैं। उन्होंने विश्व राजनीतिक संगठन के कई वास्तविक एवं कल्पित नमूने दिए हैं। उनके सुपरिचित छह नमूने थे:

i) सत्ता संतुलन प्रणाली

ii) शिथिल द्विध्रुवीय प्रणाली

iii) दृढ़ द्विध्रुवीय प्रणाली

iv) सार्वभौम नियोक्ता प्रणाली

v) श्रृंखलाबद्ध प्रणाली

vi) एकल वीटो प्रणाली

प्रथम दो वास्तविक ऐतिहासिक यथार्थ हैं जबकि शेष चार कल्पित नमूने हैं। हालांकि काप्लान ने नहीं कहा था कि उनकी ये छह प्रणालियाँ उपर्युक्त क्रम में ही प्रकट होंगी फिर भी उन्होंने आशा

की थी कि चूंकि महाशक्तियाँ काफी शक्तिशाली हैं, अतः गुटनिरपेक्ष देश धीरे–धीरे अपनी हैसियत खोकर इस या उस सत्ता केन्द्र के साथ निबद्ध हो जायेंगे और इस वजह से एक दृढ़ द्विध्रुवीय विश्व का निर्माण होगा। 1991 में सोवियत संघ के पतन के बाद यह द्विध्रुवीय प्रणाली समाप्त हो गई है। यह सही है कि संयुक्त राज्य अमेरिका अन्य राज्यों की तुलना में और अधिक ताकतवर हुआ है, किंतु साथ ही यह भी सच है कि जर्मनी और जापान जैसे अन्य देश भी आर्थिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आए हैं। इस तरह दुनिया को एकल ध्रुवीय या बहुध्रुवीय प्रणाली के रूप वर्गीकृत करना हमारे विश्लेषण की पद्धति पर निर्भर करता है। वर्तमान विश्व परिदृश्य काप्लान द्वारा सुझाए गए छह माडलों में से किसी भी एक के साथ पूरी तरह मेल नहीं खाता। इन मॉडलों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

i) सत्ता संतुलन प्रणाली : यह प्रणाली यूरोप में 18वीं और 19वीं सदी में मौजूद थी। इस प्रणाली के तहत कुछ शक्तिशाली देश अकेले या दूसरे के साथ गठबंधन कर सत्ता संतुलन कायम करने की कोशिश करते हैं। आमतौर पर एक देश संतुलनकर्ता होता है। संतुलनकारी राज्य एक ऐसा राज्य है जो हर उस राज्य की सहायता करता है जो कमजोर होने की इच्छा केवल इसलिए रखता है कि कहीं सत्ता संतुलन गड़बड़ा न जाए।

ii) शिथिल द्विध्रुवीय प्रणाली : शीत युद्ध के दौरान यह स्थिति मौजूद थी। विश्व सत्ता के नक्शे में द्विध्रुवीय विभाजन के बावजूद कुछ देशों ने किसी भी एक सत्ता केंद्र के साथ गठबंधन बनाना अस्वीकार कर दिया था। स्तरीकृत विश्व प्रणाली के अंतर्गत ये देश शिथिल रूप से लटके हुए हैं।

उदाहरण—गुटनिरपेक्ष देश, अंतर्राष्ट्रीय कर्ता के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ।

iii) दृढ़ द्विध्रुवीय प्रणाली : कल्पना करें कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी भूमिका करने वाले देश जैसे गुटनिरपेक्ष देश किसी एक सत्ता केंद्र के साथ गठबंधन करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में जो प्रणाली बनेगी वह दृढ़ ध्रुवीय प्रणाली कहलायेगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iv) सार्वभौम नियोक्ता प्रणाली : इस प्रणाली के अंतर्गत कोई अंतर्राष्ट्रीय संगठन जिसे सभी देशों की निष्ठा हासिल होती है, सत्ता का केन्द्र बन जाता है। देश चाहे छोटे हों या बड़े, सभी देश सर्वाभौम नियोक्ता जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। इस तरह बिना अपनी संप्रभुता का लोप किए हुए राष्ट्र राज्य संयुक्त राष्ट्र को मजबूत बना सकेंगे तथा आम तौर पर उसके निर्णयों का अनुपालन कर सकेंगे। अंततः इससे विश्व सरकार का रास्ता प्रशस्त होगा।

v) श्रृंखलाबद्ध अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली : इस प्रणाली के अंतर्गत एक देश इतना ज्यादा शक्तिशाली हो जायेगा कि दूसरे देश उसके निर्देशों के अनुसार संचालित होने लगेंगे। इस प्रणाली को एकल ध्रुवीय विश्व प्रणाली कह सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र तब भी मौजूद रह सकता है किंतु गुट निरपेक्ष देश नहीं रहेंगे, न ही संयुक्त राष्ट्र के पास पर्याप्त ताकत होगी।

vi) एकल वीटो प्रणाली : अंतर्राष्ट्रीय संबंध के संदर्भ में मॉर्टन काप्लान द्वारा प्रतिपादित एकल वीटो प्रणाली हॉब्स द्वारा प्रतिपादित "प्राकृतिक अवस्था" से मिलती जुलती है। प्रत्येक राज्य दूसरे राज्य का दुश्मन होगा क्योंकि तकरीबन सभी देशों के पास परमाणु हथियार होंगे। इस तरह सभी अंतर्राष्ट्रीय सूत्रधार अपने अपने दुश्मन के खिलाफ परमाणु हथियार इस्तेमाल करने में समर्थ होंगे।

बाद में खुद काप्लान ने अपने छह मॉडलों की सूची में कुछ अन्य मॉडल भी जोड़े थे। इसी बीच, दूसरे विद्वानों ने कुछ अन्य मॉडल भी सुझाए हैं। इस तरह कलम्बीस और वोल्फे काप्लान के छह मॉडलों को स्वीकार करते हुए तीन अन्य मॉडल जोड़ते हैं। ये हैं :

क) बहुकेन्द्रक (अथवा अंतर्राष्ट्रीय मॉडल)

ख) राष्ट्रीय – विखंडन (अथवा बहुध्रुवीय) मॉडल तथा

ग) उत्तर परमाणु युद्ध मॉडल

बहुकेन्द्रक मॉडल में दुनिया 5 से 7 विशिष्ट प्रभाव क्षेत्रों में बँटी हुई मानी गई है। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र एक–एक महाशक्ति के नियंत्रण में होगा। नतीजतन दुनिया बहुध्रुवीय बन जाएगी।

राष्ट्रीय विखंडन मॉडल : यह राजनीतिक और भूखंडीय टूटन का नतीजा होगा। जातीय, कबीलाई और रंगभेदी अलगाववादी आंदोलन की वजह से बड़े राज्य टूटकर छोटे-छोटे राज्यों में बदल सकते हैं। जैसे कि पूर्व सोवियत संघ, यूगोस्लोविया और चेकोस्लोवाकिया। आज ये टूटकर अनेक संप्रभु राज्यों में परिणत हो गए हैं।

उत्तर परमाणु युद्ध मॉडल : यह प्रलयकारी परमाणु युद्ध के बाद की दुनिया होगी। अगर इस तरह का कोई युद्ध होता है तो उसके बड़े सख्त नतीजे सामने आएंगे। ऐसी स्थिति में जो राज्य सबसे ज्यादा निरंकुश होगा वही रोटी, मकान व दवा-दारू का सही वितरण कायम रख सकेगा। ऐसी खतरनाक स्थिति से निजात पाने के लिए एक नई विश्व प्रणाली की स्थापना करनी होगी।

1.6.4 खेल सिद्धांत

खेल सिद्धांत विश्व राजनीति के अध्ययन के लिए एक मॉडल प्रदान करने की कोशिश करता है, खासकर एक अत्यंत प्रतियोगी माहौल में जहाँ कि फेसला लेना मुश्किल हो। ऐसा इसलिए क्योंकि विभिन्न अभिनेताओं के बारे में अनुमान लगाना संभव नहीं है। इस अनिश्चयपूर्ण माहौल में संभावनाओं के आंकलन का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए कुछ विद्वानों ने खेल सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। यह सिद्धांत एक झटके में थ्योरी ऑफ गेम्स एंड इकोनामिक बिहेवीयर (प्रिंसटन, 1994) नामक पुस्तक के प्रकाशन के पास प्रकट हुआ था। इसके लेखक जॉन वॉन न्यूमैन एक गणितज्ञ और ओश्कार मौर्गेन्स्टर्न, एक अर्थशास्त्री थे। उनके अनुयायियों में खास थे कार्ल ड्युश्च और मार्टिन शुबीक। हालांकि, हाल के वर्षों में सबसे पहले इसे अर्थशास्त्रियों ने ही अपनाया है, फिर भी संशोधनों के साथ इसका इस्तेमाल अन्य क्षेत्रों में भी हुआ है।

अपने सरलतम रूप में खेल सिद्धांत शून्य प्राप्तांक खेल का एक मॉडल है। यह द्वंद्व प्रतियोगिता की ऐसी स्थिति का द्योतक है जहाँ एक पक्ष की कुल हानि पूरी तरह की विरोधी पक्ष के लाभ के बराबर होती है। यही इस खेल का रहस्य है-लाभ व हानि का योग शून्य है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन के लिहाज से खेल सिद्धांत का मॉडल एक बहुदलीय शून्योतर प्राप्तांक खेल है। ऐसा इसलिए क्योंकि, जैसा कि जे. के. जवेदनी हमें याद दिलाते हैं, "हमें याद रखना होगा कि आज कुछ संघर्ष ऐसे भी हैं जिन्हें इस तरह सुलझाया जा सकता है कि दोनों पक्षों में से कोई भी न हारे या कोई भी न जीते।"

जैसा कि आप पहले ही जान चूके हैं, अलग-अलग पड़े हुए पूर्णतः स्वतंत्र देश इससे प्रभावित नहीं होते कि दूसरे देश क्या कर रहे हैं। फिर भी वे एक दूसरे से प्रभावित होते हैं और पारस्परिक निर्भरता के आधार पर पारस्परिक लाभ के लिए सहयोग भी करते हैं। पारस्परिक निर्भरता की ऐसी स्थिति में राज्य इस तरह खेल खेलते हैं कि उन्हें अधिकतम लाभ प्राप्त हो।

इस संदर्भ में जिन दो सबसे महत्वपूर्ण खेलों के नाम सुझाए गए हैं वे हैं-मुर्गा खेल और कैदी की दुविधा खेल। मुर्गा खेल की स्थिति में दो कार चालक सड़क के मध्य एक दूसरे की विपरीत दिशा में जा रहे होते हैं। उनमें से अगर एक किनारे पर रूककर दूसरे को आगे जाने के लिए रास्ता देता है, तो गंभीर दुर्घटना की संभावना बनती है जिसमें एक या दोनों ही चालकों की मौत हो सकती है। दूसरी ओर, जो भी दूसरे को जाने का रास्ता देता है, उसकी प्रतिष्ठा पर आँच आती है किन्तु दुर्घटना टल जाती है। राष्ट्रों को भी अक्सर ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ता है। आम तौर पर, कोई भी अपनी प्रतिष्ठा खोना नहीं चाहता। मुर्गा खेल की खास बात यह है कि दोनों पक्ष एक दूसरे की मंशा से वाकिफ रहते हैं, इसके बावजूद किसी देश की विदेश नीति के निर्माताओं के सामने केवल अपने हित की रक्षा का विकल्प खुला रहता है। इस क्रम में अगर दूसरे देश को भी फायदा पहुँच जाता है तो इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। जो देश अपनी ईज्जत से चिपका रहता है उसे भारी क्षति उठानी पड़ती है।

कैदी दुविधा खेल में स्थिति दूसरी होती है। कैदी की तरह एक राष्ट्र को भी दुविधा की स्थिति झेलनी पड़ती है जबकि उसे यह पता नहीं होता कि उसके दुश्मन की मंशा क्या है। इस मॉडल में हत्या के आरोप में गिरफ्तार दो कैदियों को अलग-अलग कमरों में रख दिया जाता है जहाँ न वे एक दूसरे को देख सकते हैं न ही आपस में कोई बात कर सकते हैं। खेल अधीक्षक उन दोनों से अलग-अलग कहता है कि तुम में से जो हत्या का जुर्म कबूल कर लेगा, उसे न केवल बरी कर दिया जायेगा बल्कि जो कबूल नहीं करेगा उसे फांसी भी दे दी जाएगी। अगर दोनों में कोई भी अपना जुर्म कबूल नहीं करता तब दोनों को ही छोड़ दिया जायेगा किन्तु उन्हें कोई ईनाम नहीं

दिया जाएगा। लेकिन अगर दोनों ही कबूल कर लेते हैं तो दोनों को ही कड़ा दंड दिया जायेगा। इस खेल का सबक यही है कि प्रत्येक व्यक्ति ईनाम या लाभ चाहता है, फिर भी खतरनाक स्थिति में फंस सकता है क्योंकि वह दूसरे की मंशा से वाकिफ नहीं रहता है।

1.6.5 समन्वय सिद्धांत

इस सिद्धांत के प्रतिपादक चार्ल्स केगली एवं विटकाफ है। 1993 में प्रकाशित अपने एक लेख में उन्होंने मानवीय प्रकृति की यथार्थवादी धारणा को अस्वीकार किया। उनका मानना है कि मनुष्यों की मनोवृति अलग अलग होती है और यह कि मानवीय कार्यकलाप व्यक्ति के ऐच्छिक निर्णयों का प्रतिफल होता है, किंतु यह ऐच्छिक निर्णय खुद पर्यावरण से प्रभावित होते रहते हैं। उदारवादी नहीं मानते कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध अराजक हैं। उनके मत में अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली आज देशांतरी अंतः क्रियाओं पर आधारित हो चुकी है और इसी के फलस्वरूप उनके बीच सहयोग के क्षेत्र बने हैं। बढ़ती सांस्कृतिक समरूपता तथा आर्थिक एवं सामाजिक निर्भरता विभिन्न समाजों एवं सरकारों को एक ही धागे में गूंथती जा रही है। अनेक अंतर्राष्ट्रीय एजेंसिया व प्रणालियाँ, जैसे विश्व व्यापार संगठन, देशों के बीच समन्वय को प्रोत्साहन दे रही है। क्षेत्रीय व विश्वस्तर पर देशों के बीच पारम्परिक निर्भरता बढ़ाने के काम में उदारवादी गैर–राज्यीय ताकतों, जैसे गैर सरकारी संगठन, क्षेत्रीय संगठन आदि की भूमिका पर विशेष बल देते हैं।

उदारवादी स्वीकार नहीं करते कि दुनिया एकलध्रुवीय हो गई है। उनके अनुसार शीतयुद्धोत्तर काल में दुनिया बहुध्रुवीयता की ओर बढ़ रही है। इसके साथ ही देशों के बीच मौजूद अविश्वास एवं तनाव को कम करने के लिए अंतरराज्यीय सहयोग भी बढ़ता जा रहा है। विश्व के देशों की पारस्परिक निर्भरता ही वह कारण है जिसके चलते सभी सरकारें परमाण्विक हथियारों की बढ़त आर्थिक मंदी, ओजोन छीलन, जलवायु में परिवर्तन तथा एड्स के मुद्दों के प्रति बराबर ढंग से सजग हो सकी है। आम सरोकार के ये मुद्दे देशों के बीच मौजूद पारस्परिक निर्भरता का इज़हार करते हैं। विद्वानों को चाहिए कि वे समन्वयन के संदर्भ में इन समस्याओं की जाँच पड़ताल करें। इसीलिए उदारवादी इन समस्याओं व दूसरे संगठनों के अध्ययन पर जोर देते हैं। उनका विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के विस्तार से देशों की पारस्परिक निर्भरता में बढ़त होगी। कुल मिलाकर, उदारवादियों की पारस्परिक निर्भरता का सिद्धांत शीतयुद्धोत्तर काल की बहुध्रुवीयता, संयुक्त राष्ट्र तथा दूसरे गैर सरकारी व क्षेत्रीय संगठनों की बढ़ती भूमिका तथा फलस्वरूप पश्चिमी औद्योगिक देशों के प्रभाव से पैदा हुए समन्वयन से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.6.6 परनिर्भरता दृष्टिकोण

जहाँ यथार्थवादी प्रभुत्वकारी संतुलन की बात करते हैं तथा उदारवादी पारस्परिक निर्भरता, वहीं तीसरी दुनिया के विद्वान सदैव विचार व्यक्त करते रहे हैं कि सामयिक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का आधार वास्तव में तीसरी दुनिया के अल्प विकास से जुड़ा हुआ है। हालांकि यह कोई श्रेष्ठ औपचारिक सिद्धांत नहीं है। फिर भी परनिर्भरता दृष्टिकोण उस शक्तिशाली मिथक को चुनौती देने में कामयाब रहा है जो विश्वास करता था कि तीसरी दुनिया के अविकास की बीमारियों का एक ही इलाज है, वह पश्चिम द्वारा सुझाए गए आधुनिक एवं यथार्थवादी नुस्खे पर अमल करे। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि यह दृष्टिकोण लैटिन अमरीकी देशों में पैदा हुआ था। अंतर्राष्ट्रीय संबंध के क्षेत्र में परनिर्भरता सिद्धांत के अनुयायिओं का कहना है कि :

i) परिधि देशों में परनिर्भरता की मौजूदा स्थिति विकसित देशों द्वारा उनके अतीत में किए गए शोषण का नतीजा है। ये शोषक देश ही आज केन्द्रक में स्थित है।

ii) इसीलिए राष्ट्रों के बीच संबंध असमरूप हैं, और

iii) ऐसी असमरूपता अंतरराज्यीय संबंधों तक ही सीमित नहीं है। क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय संबंध/कारोबार में कई कई समूहों/वर्गों के बीच संबंध स्थापित होते हैं। ऐसे संबंध देशों के अंदर, बाहर या उनके बीच कहीं भी बन सकते हैं। इस दृष्टिकोण की तर्क प्रणाली ने परनिर्भरता की संरचना–भूतकालिक एवं वर्तमानकालिक दोनों — के उन कारकों अथवा शक्तियों के विश्लेषण पर जोर दिया जिन्हें न यथार्थवादी, न नवयथार्थवादी, यहाँ तक कि उदारवादी भी, कोई महत्व नहीं देते थे। मुख्यतः मार्क्सवाद से प्रभावित यह दृष्टिकोण अंतरराज्यीय राजनीति के विकास को प्रभावित करने वाली विश्व शक्तियों व प्रवृत्तियों का फल मानता है। यह विकास अतीत और वर्तमान दोनों ही स्थितियों में असमान रहा है।

प्रो. एफ. एच. कार्डोसो (जो कि वर्तमान में ब्राजील के राष्ट्रपति हैं) रॉल प्रबिश्च, तथा उनके सहयोगी आंद्रे गुंदर फ्रैंक इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रणेताओं में से हैं। आज यह दृष्टिकोण व्यापक रूप से स्वीकृत है। पश्चिमी विद्वान भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं।

1.6.7 महिलावादी दृष्टिकोण

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह एक हाल ही का किंतु प्रभावी दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण मानता है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्पर्द्धी, सत्ताकेंद्रित व शोषणकारी है तो इसीलिए है कि राजनीति में पुरूषों का प्रभुत्व बरकरार है। मतलब यह है कि अगर विविध तरीकों से महिलाओं को राजनीति में उचित भागीदारी दे दी जाये तो अंतर्राष्ट्रीय संबंध और अधिक संतुलित व प्रभावी हो जायेंगे। उदार महिलावादियों का विश्वास है कि शिक्षा, राजनीतिक लामबंदी तथा परिवर्तनकारी दबाव के जरिये अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। दूसरी तरफ उग्र महिलावादी है जो सोचती है कि पूंजीवाद ही लिंग असमानता का प्रमुख कारण है, इसीलिए अगर समाजवाद को अपना लिया जाये तो लैंगिक समानता बहाल करने की प्रक्रिया तो तेज होगी ही, साथ ही इससे विश्व में शांति भी सुनिश्चित की जा सकेगी। यह कहा जाता है कि पश्चिमी दर्शन की वजह से पुरूषों में लैंगिक पूर्वाग्रह पैदा हुआ है। इससे भी छुटकारा पाने की जरूरत है। इस तरह महिलावादी सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की तमाम समस्याओं को लिंग असमानता व पुरूष वर्चस्व के साथ जोड़कर देखने का आग्रह करता है। लेकिन आलोचकों का कहना है लिंग विभेद प्राकृतिक और जीव विज्ञान जन्य है और इसी लिए इन महिलावादी सिद्धांतकारों को पुरूषों को संबोधित करने के बजाय उस समाज को संबोधित करना चाहिए जिसमें हम जन्म लेते हैं, बड़े होते हैं और अपने कार्य व्यापार का संपादन करते हैं। महिलावादी दृष्टिकोण से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण विचारकों में सिन्थिया एन्लो तथा स्पाईक पीटरसन के नाम खास हैं।

बोध प्रश्न 3

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

1) यथार्थवादी व आदर्शवादी सिद्धांतों का संक्षिप्त वर्णन करें।

....

....

....

....

2) नवयथार्थवाद क्या है ?

....

....

....

....

....

3) काप्लान के द्वारा दिए गए प्रणाली सिद्धांत के छह मॉडलों की संक्षिप्त व्याख्या करें।

....

....

....

....

4) उदारवादी/पारस्परिक निर्भरता सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

....

1.7 सारांश

इस इकाई में हमने पाठकों का अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से परिचय कराया है। 1991 में वेल्स विश्वविद्यालय में प्रथम अंतर्राष्ट्रीय पीठ की स्थापना के साथ ही यह विषय विकसित होने लगा। अपने आप में यह एक दिलचस्प कहानी है कि राजनयिक इतिहास से जन्मा यह विषय कैसे आज एक वैज्ञानिक विषय बन गया है। एक स्थिति के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संबंध संप्रभु देशों के बीच अधिकारिक संबंधों का सूचक है। किंतु एक विषय के रूप में यह इन अंतरराज्यीय संबंधों के व्यवस्थित ज्ञान का सूचक है। अध्ययन की एक शाखा के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संबंध उस प्रक्रिया की जाँच पड़ताल करता है जिसके जरिये एक राज्य अपने राष्ट्रीय हित को दूसरे राज्यों के हितों के साथ समायोजित करता है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के बीच फर्क न केवल वांछित है, बल्कि जरूरी भी है। जहाँ अंतर्राष्ट्रीय राजनीति भिन्न देशों के बीच मौजूद अधिकारिक एवं राजनयिक संबंधों का ही विश्लेषण करती है, वहीं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की परिधि काफी फैली हुई है। क्योंकि इसमें राजनीतिक आर्थिक, भौगोलिक, कानूनी और सांस्कृतिक संबंधों की जाँच पड़ताल भी शामिल है। एक तरह से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का ही एक अंश है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रौद्योगिकी व संचार के क्षेत्र में होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों की वजह से अंतर्राष्ट्रीय संबंध की परिधि और अंतर्वस्तु में काफी तब्दीलियाँ आई हैं। गुप्त राजनय ने अंतर्राष्ट्रीय संबंध की रूपरेखा बदल दी है। इसका क्षेत्र बढ़ा है, अब इसके अंतर्गत केवल अधिकारिक राजनीतिक संबंधों की चर्चा ही नहीं होती, बल्कि, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और आर्थिक क्षेत्रों की गतिविधियों की भी चर्चा होती है। अब इसकी परिधि में संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन जैसे सार्वभौम नियोक्ताओं तथा बहुराष्ट्रीय निगमों, गैर सरकारी संगठनों जैसे गैर–राज्यीय तत्वों की भूमिकाएं भी शामिल हो गई हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन में विद्वानों ने समय–समय पर तरह–तरह के दृष्टिकोणों का सहारा लिया है। पारस्परिक दृष्टिकोण विधि, इतिहास और राजनीति विज्ञान पर पूरी तरह निर्भर था। यथार्थवाद व आदर्शवाद पारंपरिक दृष्टिकोण के दो रूप हैं। यथार्थवाद, राष्ट्रीय हित व शक्ति पर विशेष जोर देता है और मानता है कि तमाम अंतर्राष्ट्रीय संबंध वास्तव में सत्ता संघर्ष ही है। आदर्शवाद के लिए शक्ति एक अस्थायी चीज है। वह मानता है कि शिक्षा, विज्ञान और विवेक के सहारे विश्व शांति स्थापित करना संभव है। व्यवहारवादी दृष्टिकोण जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रसिद्ध हुआ, अपनी प्रकृति में अंतरविधात्मक है। प्रणाली व खेल सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन के नए व्यवहारवादी मॉडल हैं। इस इकाई में हमने प्रणाली सिद्धांत और खेल सिद्धांत के संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किए हैं। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के अन्य दृष्टिकोणों जैसे परनिर्भरता व महिलावादी दृष्टिकोणों के संक्षिप्त वर्णन के साथ यह इकाई समाप्त होती है।

1.8 शब्दावली

विषय	:	क्रमबद्ध रूप से विकसित ज्ञान की एक शाखा।
स्थिति	:	प्रत्यक्ष व्यवहार से संबंधित
प्राचीनतम (शास्त्रीय)	:	घटनाओं की वास्तविक स्थिति।

व्यवहार	:	दीर्घकालिक व इतिहास सम्मत।
खेल	:	प्रतियोगिता की एक स्थिति जिसमें फलाफल तो अनिश्चित रहता है किन्तु संभावित व्यवहार के लाभ के लिहाज से विवेकसम्मत आंकलन किया जा सकता है।
आदर्शवादी	:	वह व्यक्ति जो अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संचालन में आदर्शोन्मुख लक्ष्यों व नैतिक मूल्यों के इस्तेमाल का आग्रह करता है।
वैज्ञानिक	:	वस्तुनिष्ठ व पर्यवेक्षणीय प्रणाली पर आधारित।
प्रणाली	:	एक दूसरे के साथ प्रकार्यात्मक अंतः क्रिया में शामिल तत्वों का एक समुच्चय। यह समुच्चय एक पर्यावरण में अवस्थित होता है जिसके कई भाग होते हैं। ये भाग एक दूसरे के साथ अंतः क्रिया के जरिये जुड़े होते हैं।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मार्गेन्थु हान्स, **पोलिटिक्स अमंग नेशन्स, स्ट्रगल फॉर पावर एण्ड पीस**

नो, के. तथा रोजेनाऊ जे. एन., **कन्टेंडिंग एप्रोचेज टु इंटरनेशनल पोलिटिक्स**

क्लौद, ईनिस, **पावर एण्ड इंटरनेशनल रिलेसन्स**

मैक्लेलैड चार्ल्स ए., **थ्योरी एंड द इंटरनेशनल सिस्टम**

काप्लान, मॉर्टन, **सिस्टम एंड प्रोसेस इन इंटरनेशनल पॉलिटिक्स**

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) एक स्थिति के रूप में संप्रभु राज्यों के बीच वास्तविक अधिकारिक संबंध उनके विवाद व द्वंद्व और उनके बीच सहयोग। एक विषय के रूप में यह अंतरराज्यीय संबंधों का क्रमबद्ध अध्ययन है और यह जरूरी नहीं है कि ये संबंध सदैव राज्यों के बीच के ही हों।

2) अंतरराज्यीय संबंधों का अध्ययन/यों तो राजनीतिक संबंध ही मुख्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का निर्माण करते हैं, किंतु इसके अंतर्गत आर्थिक, व्यापारिक व व्यावसायिक संबंधों यहां तक उन अंतरराज्यीय मुद्दों जो औद्योगिक, सांस्कृतिक व धार्मिक संगठनों से संबंधित होते हैं, का अध्ययन भी शामिल हैं।

3) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का क्षेत्र ज्यादा व्यापक है, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति बदलते सत्ता समीकरणों के संदर्भ में राज्य की नीतियों के बीच की अंतः क्रिया का अध्ययन करती है। यह राज्यों के बीच की अंतः क्रिया का अध्ययन करती है। यह राज्यों के संबंधों को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करती है।

4) यह अब यूरोपीय राज्यों तक ही सीमित नहीं रह गया है, उपनिवेशों के खात्में के साथ यह वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय बन गया है, यात्रा संचार तथा हथियारों व युद्ध की प्रकृति होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति भी बदल दी है।

बोध प्रश्न 2

1) हम एक ऐसी विश्व व्यवस्था में जी रहे हैं जहां दूरिया कम हो गई हैं तथा राज्यों के बीच के संपर्क, संघर्ष व सहयोग हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। ऐसे में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन करना बहुत उपयोगी है।

2) यह अंतरराज्यीय आर्थिक व राजनीतिक संबंधों का अध्ययन करता है। संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन तथा अनेक बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिकाओं का अध्ययन भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की परिधि में शामिल है।

बोध प्रश्न 3

1) यथार्थवाद अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन में शक्ति की प्रभुत्वकारी भूमिका को स्वीकार करता है। राष्ट्रीय हित सर्वोपरि है और प्रत्येक राष्ट्र शक्ति से इसकी रक्षा करना है। राजनीति सत्ता के लिए संघर्ष है। आदर्शवाद नैतिक मूल्यों के इस्तेमाल पर जोर देता है, शक्ति को क्षणस्थायी घटना मानता है तथा शिक्षा, विवेक आदि के जरिये विश्व शांति कायम करना चाहता है।

2) नवयथार्थवाद जो संरचनात्मक यथार्थवाद के नाम से भी जाना जाता है, मानता है कि अंतर्राष्ट्रीय अराजकता ही अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की मूल पहचान है। यह अराजकता इसलिए पैदा हुई है क्योंकि गैर राज्यीय सूत्रधारों की भूमिका मुख्य हो गई। उदाहरण—अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद धर्म तथा प्रतियोगी बहुराष्ट्रीय निगम, बहुद्देशीय कंपनियां, गैर सरकारी संगठन, बहुपक्षीय एजेंसिया जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन और सबसे बढ़कर संयुक्त राष्ट्र।

3) अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के बारे में काप्लान द्वारा किए गए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तावित करता है: सतत् प्रणाली का संतुलन, शिथिल द्विध्रुवीय प्रणाली, दृढ द्विध्रुवीय प्रणाली, सार्वभौम नियोक्ता प्रणाली, श्रेणीबद्ध प्रणाली तथा एकल वीटो प्रणाली।

4) यह इस विचार को नकारता है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध अराजक है। उनके अनुसार, विश्व प्रणाली अंतरराष्ट्रीय लेनदेन पर आधारित है जिससे पारस्परिक निर्भरता बढ़ती है। यह दृष्टिकोण राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता तथा तत्जनित विश्व के समन्वयन में विश्वास करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 2 कुछ अवधारणाएँ: साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद, फासीवाद और क्रांति

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 साम्राज्यवाद
    2.2.1 साम्राज्यवाद का अर्थ
    2.2.2 साम्राज्यवाद का विकास
    2.2.3 उपनिवेशवाद क्या है ?
    2.2.4 नव–उपनिवेशवाद
2.3 राष्ट्रवाद
    2.3.1 राष्ट्रवाद की अवधारणा
    2.3.2 राष्ट्रवाद के विविध चरण
2.4 फासीवाद
    2.4.1 फासीवाद की प्रमुख विशेषताएँ
    2.4.2 इटली, जर्मनी और स्पेन में फासीवाद
    2.4.3 मुसोलिनी, समाजवादी से फासीवादी
    2.4.4 इटली में फासीवाद के उदय के कारण
    2.4.5 यूरोप में नव–फासीवाद
2.5 क्रांतियाँ
    2.5.1 क्रांति क्या है ?
    2.5.2 कुछ महत्वपूर्ण क्रांतियाँ
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में चार महत्वपूर्ण अवधारणाओं की चर्चा की गयी है। इसको पढ़ने के बाद आप:

- साम्राज्यवाद की अवधारणा का विश्लेषण कर सकेंगे,
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के साथ उपनिवेशवाद की विवेचना कर सकेंगे,
- नव–उपनिवेशवाद जो साम्राज्यवाद का नूतन रूप है की व्याख्या कर सकेंगे,
- राष्ट्रवाद के महत्व एवं अर्थ का वर्णन कर सकेंगे,
- राष्ट्रवाद के विविध रूपों एवं चरणों को रेखांकित कर सकेंगे,
- फासीवाद के अर्थ की व्याख्या कर सकेंगे,
- जिनसे प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत फासीवाद का उदय हुआ, उन कारणों का पता लगा सकेंगे,
- क्रांतियों के अर्थ एवं महत्व की व्याख्या कर सकेंगे, तथा
- कतिपय महत्वपूर्ण क्रांतियों जैसे औद्योगिक क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति तथा बोल्शेविक क्रांति का वर्णन कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

साम्राज्यवाद का सीधा अर्थ है एक राजनीतिक व्यवस्था पर दूसरी राजनीतिक व्यवस्था का आधिपत्य। साम्राज्यवाद की जो अवधारणा पूँजीवाद से विकसित हुई उसने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को निर्णायक रूप से प्रभावित किया। मूलतः साम्राज्यवाद हमारे समय की आर्थिक एवं राजनीतिक प्रतिभाओं का प्रतिफल है जिसकी वजह से 20वीं सदी में कम से कम दो विश्वयुद्ध लड़े जा चुके हैं।

राष्ट्रवाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है। राष्ट्रवाद वह भावना है जो लोगों को एक साथ जोड़ती है। यह लोगों को अपनी आजादी तथा अपने राज्य के हितों की रक्षा के लिए लड़ने के लिए प्रेरित करती है। आधुनिक राष्ट्र राज्य इसी प्रकार राष्ट्रवाद की देन है। आज प्रत्येक राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों, अपनी राष्ट्रीय प्रत्याशाओं, और चिंताओं तथा अपने राष्ट्रीय संघर्षों की बात करता है। वास्तव में राष्ट्रवाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की समझ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कुंजी है।

राजनीतिक सिद्धांत के रूप में फासीवाद मुसोलिनी के कृत्यों से जुड़ा हुआ है। मुसोलिनी अंतः युद्ध अवधि में इटली का तानाशाह था। मार्क्सवाद एवं व्यक्तिवाद जैसे मुख्य राजनीतिक सिद्धांतों के विपरीत फासीवाद मूलरूप से एक कार्ययोजना थी, न कि कोई विचारधारा। इसका जन्म इटली एवं जर्मनी के विरूद्ध किए गए कथित अन्याय की प्रतिक्रिया में हुआ था। अगर जर्मनी पेरिस के शांति सम्मेलन में संपन्न हुई वर्साय संधि से अपमानित महसूस कर रहा था तो इटली इस बात से निराश था कि उसे युद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ने का कोई फायदा नहीं मिला। नतीजतन वहाँ की जनता चाहने लगी कि उनकी सरकारें फासीवादियों की तरह आक्रामक नीति का अनुसरण करें। फासीवाद अपने दृष्टिकोण में सर्वसत्तावादी है। कहने की जरूरत नहीं कि यह लोकतंत्र समाजवाद और यहाँ तक कि व्यक्तिवाद के सिद्धांतों के खिलाफ खड़ा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मौजूदा व्यवस्था से इतर जो चीज अचानक पैदा होती है, क्रांति कहलाती है। यह सामाजिक परिवर्तन की ऐसी अवधारणा है जो पूरी व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की सूचना देती है। उदाहरण के लिए इंगलैंड की औद्योगिक क्रांति से वहां की सामाजिक आर्थिक संरचना में महत्वपूर्ण बदलाव आये तथा पूंजीवाद का उदय हुआ। यूरोप के दूसरे देशों पर भी इसका गंभीर असर हुआ जिसकी वजह से उनके बीच उपनिवेशों को लेकर होड़ लग गयी। प्रकारान्तर से यह साम्राज्यवाद के तेज विकास के लिए भी जिम्मेवार बनी। उसी तरह फ्रांसीसी व अमरीकी क्रांतियों से लोकतंत्र, स्वतंत्रता और समानता की अवधारणाएं विकसित हुईं। 1917 की बोल्शेविक क्रांति ने रूस का कायापलट कर दिया। नतीजतन सामाजिक आर्थिक जीवन में समाजवाद का अस्तित्व संभव हो सका। इस इकाई में आपको संक्षेप में साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद, फासीवाद तथा क्रांति के बारे में पढ़ने का मौका मिलेगा।

2.2 साम्राज्यवाद

पाल्मर एवं पार्किन्स का कहना है कि साम्राज्यवाद की कोई सटीक परिभाषा करना तकरीबन नामुमकिन है। वे कहते हैं: "साम्राज्यवाद की विवेचना भर्त्सना और उसकी पैरवी की जा सकती है उसके लिए मरा जा सकता है, किन्तु इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती"। पश्चिमी विद्वान साम्राज्यवाद को अनिवार्य मानते थे क्योंकि दुनिया को सभ्य बनाना "गोरे व्यक्ति का बोझ" था। लेकिन अफ्रीका एवं एशिया के देशों में इसकी सर्वत्र भर्त्सना की गई क्योंकि वे ही इसके शिकार थे। दरअसल एक राज्य पर दूसरे राज्य का राजनीतिक और आर्थिक वर्चस्व ही साम्राज्यवाद की परिभाषा का मूलतत्व है। पाल्मर एवं पार्किन्स के विचारों के रहते हुए भी हम पाते हैं कि साम्राज्यवाद की परिभाषा को लेकर अलग-अलग विद्वान अलग-अलग और अक्सर विरोधी बात करते हैं।

2.2.1 साम्राज्यवाद का अर्थ

मैरिज गुलियस बोन के अनुसार, "साम्राज्यवाद साम्राज्य बनाने, संगठित करने तथा उसकी देखभाल की नीति है अर्थात एक विशाल आकार का राज्य जो कमोबेश अनेक विशिष्ट राष्ट्रीयताओं का संग्रह होता है किन्तु जिस पर एकल केन्द्रीकृत सत्ता का नियंत्रण हो। चार्ल्स ए वियर्ड ने लिखा है

कि "क्षेत्र, प्रोट्रेक्टोरेट, तथा प्रभाव हासिल करने के लिए सरकारी और कूटनीतिक जरियों के इस्तेमाल का नाम ही साम्राज्यवाद है। पी टी मून ने साम्राज्यवाद की सटीक किन्तु संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार की है, "साम्राज्यवाद का अर्थ है गैर यूरोपीय देशों पर यूरोपीय देशों का जो आपस में एक दूसरे से नितांत भिन्न थी, आधिपत्य। इस तरह मून की परिभाषा में यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि साम्राज्यवाद एशिया और अफ्रीका के काले लोगों पर यूरोपियनों का आधिपत्य का नाम था। ये यूरोपीन अपने को श्रेष्ठ समझते थे तथा मानते थे कि औपनिवेशिक सत्ता श्वेत लोगों के ऊपर एक बोझ है। हालांकि बियर्ड ने साम्राज्यवाद की परिभाषा से आर्थिक कारणों को खारिज कर दिया है, फिर भी साम्राज्यवाद का इतिहास दर्शाता है कि पश्चिमी देशों द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार करने के पीछे आर्थिक शोषण ही मूल आकर्षण रहा था।

घोर यथार्थवादी मांटेक्यू जो राजनीतिक को सत्ता संघर्ष मानता है, भी साम्राज्यवाद की परिभाषा में आर्थिक कारणों को शामिल नहीं करता। उसके लिए साम्राज्यवाद किसी राज्य द्वारा अपनी सीमाओं के विस्तार करने का नाम है। शुपिटर के लिए साम्राज्यवाद वह शक्ति है जो अपनी उद्भावना में प्राचीन तथा राष्ट्रवाद के युग में पतनशील और आत्मचेतन है। फिर भी वह अपने प्रतिद्वंद्वियों यानि उभरते पूँजीवाद को मात देने में सक्षम है।" किन्तु मार्क्सवादी विद्वान साम्राज्यवाद को पूँजीवाद का प्रतिद्वंद्वी नहीं मानते। उनके लिए, जैसा कि लेनिन ने कहा है, साम्राज्यवाद न केवल पूरी तरह आर्थिक है, अपितु पूँजीवाद के विकास की स्वाभाविक परिणति भी है।

साम्राज्यवाद की अभिप्रेरणा मूल रूप से आर्थिक रही है, यानी उपनिवेशों के शोषण से आर्थिक लाभ अर्जित करना। अक्सर साम्राज्यवाद राज्य विस्तार में परिणत हुआ और इसीलिए कुछ विद्वान आर्थिक प्रेरणा को विशाल साम्राज्य कायम करने की चाहत से अलग देखने की वकालत करते हैं। पाल्मर व पार्किन्स अच्छे और बुरे साम्राज्यवाद में विभेद करते हैं, किन्तु तीसरी दुनिया की नजर में कोई भी साम्राज्यवाद अच्छा नहीं हो सकता क्योंकि शोषण किसी के लिए अच्छा नहीं हो सकता। पूर्वी यूरोप की हाल की घटनाओं से भी यह बात साबित नहीं होती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूँजीवाद की कथित जीत और समाजवाद के पतन के आधार पर यह बात नहीं कही जा सकती कि साम्राज्यवाद अब कम शोषणकारी हो गया है न ही यह इन परिस्थितियों में पैदा होने वाले लोकतंत्रों के लिए साम्राज्यवादी फायदेमंद है। इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, एफ ए ओ विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के अध्ययन से भी यह साबित होता है कि तीसरी दुनिया से बड़े पैमाने पर पूँजी का बहिर्गमन हो रहा है और वहाँ के लोगों के जीवनस्तर में गिरावट आई है। प्रकारान्तर से यह सिद्ध होता है कि इन देशों का साम्राज्यवादी शोषण पहले से कहीं ज्यादा हो रहा है लेकिन यह सब विषय अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र की नजर से ही संभव हो सका है क्योंकि तीसरी दुनिया के देशों को असमान व्यापार की शर्तों से जोड़ दिया गया है। फिर ये देश बहुराष्ट्रीय कंपनियों व कर्ज की गिरफ्त में आ गये हैं।

एक महत्वपूर्ण (साम्राज्यवाद – एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण) के हवाले हैरी मेगडॉफ ने निष्कर्ष निकाला है कि पूँजी के वर्चस्व और एकाधिकार के आधार पर साम्राज्यवाद का जो रूप हमारे सामने है, वह पुराने साम्राज्यवाद से कतई भिन्न नहीं है। आक्रामक पूँजीवादी राष्ट्र राज्य (लेनिन) बदस्तूर कायम है। अलबत्ता; शोषण के तरीकों में तब्दीली जरूर आयी है। मेगडॉफ ने साम्राज्यवादी शोषण के तीन नये तरीकों को रेखांकित किया है:

1) प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र के साथ सैन्य उत्पादन का एकीकरण।

2) बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बढ़ता महत्व जो अधिक लाभ देने वाले और नये तरह के उद्योगों पर चाहे वे उपनिवेश में हो या विकसित देशों में, विश्व व्यापी नियंत्रण की कोशिश करता है, और

3) राज्य के कारोबार में सैन्य बहुराष्ट्रीय कंपनियों की प्राथमिकता।

साम्राज्यवादी शोषण के ये नये तरीके गौरतलब हैं कि क्योंकि इनसे तीसरी दुनिया के देशों का शोषण और घनीभूत ही हुआ है, न कि कम पश्चिमी उपनिवेशवाद के खात्में के साथ विद्वानों ने ऐसी–ऐसी उद्भावनाओं का प्रचलन कराया है जिसे सारांश रूप में हम साम्राज्यवाद का अंत भी कह सकते हैं। जॉन स्टैची, माइकल बैरटे ब्राउन, हाम्जा आलवी उन विद्वानों में से है जिनका मानना है कि साम्राज्यवाद का जोर अब आर्थिक शोषण पर उतना नहीं रहा। सच कहा जाये तो ऐसे सारे तर्क महज विचारधारात्मक हैं, न कि वास्तविक। पॉल स्लीजी ने अपने एक लेख "नवे दशक में साम्राज्यवाद" में इसकी सटीक विवेचना की है। आल्वी की राय है कि नवसाम्राज्यवाद

पूँजी का शोषण नहीं करता है। अब तक इसे ही साम्राज्यवाद की प्रमुख विशेषता माना जाता रहा है, अपितु वह विश्व बाजार पर नियंत्रण तक सीमित है, इस के जवाब में स्वीजी का कहना है कि छठे दशक की शुरूआत से ही बहुराष्ट्रीय कंपनियां सस्ती मजदूरी वाले देशों में अपनी उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करने का प्रयास करती रही हैं। दूसरे शब्दों में तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्था पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का नियंत्रण उनके बाजार पर नियंत्रण तक ही सीमित नहीं है, अपितु उत्पादन और वित्त के क्षेत्र में भी उनकी मौजूदगी बरकरार है।

उद्योगों के निजीकरण विविध नियंत्रणकारी उपायों को अप्रतिसाधित करने तथा उदारीकरण को केन्द्र में रखकर सुधार लागू करने से भूमंडलीकरण की जो नयी बयार बही है, वह दरअसल नवसाम्राज्यवाद को ही प्रतिबिंबित करती है। समाजवाद का पतन हो जाने से अब साम्राज्यवाद को कोई चुनौती देने वाला भी न रहा। साम्राज्यवाद खत्म नहीं हुआ है, केवल उसका रूप बदला है, लक्ष्य वही है किन्तु रास्ता बदल गया है यानी गरीब और आश्रित देशों का शोषण।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर को मिलाइए।

1) साम्राज्यवाद को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

2) साम्राज्यवादी शोषण के नये तरीकों की पहचान कीजिए।

Call us @7428092240

....

....

....

....

2.2.2 साम्राज्यवाद का विकास

इतिहास बताता है कि दुनिया विकास के कई चरणों से गुजर चुकी है। हम जानते हैं मानवता का इतिहास समाज और सामाजिक संरचना के विकास से जुड़ा हुआ है। पूँजीवाद एक सामाजिक संरचना के रूप में सामंतवाद की कोख से पैदा हुआ और वही उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के लिए उत्तरदायी है।

सामंतवाद 16-17वीं शताब्दी से पूर्व अस्तित्व में था। यूरोप में सामंतवाद मध्ययुगीन राज्यतंत्र से संबद्ध था। यह राज्यतंत्र मूलरूप से कुलीनतंत्र (राज और भूस्वामी) ही था और वही अर्थव्यवस्था व राज्यसत्ता का नियंत्रण करता था। सामंती राज्य के कारोबार में चर्च की भी अहम भूमिका थी। तेरहवीं सदी से इंगलैंड में सामंतवाद का पतन शुरू हुआ जो धीरे–धीरे पूरे यूरोप को अपनी गिरफ्त में लेता गया। इस पतन के पीछे औद्योगिक क्रांति, शहरों का विकास, सामंतों का आपसी संघर्ष आदि कारण रहे थे। नतीजतन यूरोप का सामाजिक जीवन भी बदलना शुरू हो गया। इसके साथ आर्थिक संगठन में बदलाव आया। अब अर्थव्यवस्था पर स्वतंत्र व्यापारियों और व्यावसायियों का नियंत्रण कायम हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि व्यापारिक पूँजीवाद सामंतवाद व पूँजीवाद के बीच संक्रमण की स्थिति थी और यह 16वीं सदी से लेकर 19वीं सदी तक जारी रहा। सामंतवाद की कोख से पैदा होने वाली व्यवस्थाएँ अलग–अलग देशों में अलग–अलग रहीं। उदाहरण के लिए इंगलैंड में पूँजीवाद का विकास अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में ज्यादा तेजी से हुआ। फ्रांस ने इस बदलाव का अनुकरण किया। बाद में जर्मनी और रूस भी इस दौड़ में शामिल हो गये। इस तरह प्रत्येक विकास होने के साथ–साथ पूंजीपतियों ने कच्चे माल व बाजार की खोज यूरोप से बाहर जाकर करने लगे। यही खोज एशिया व अफ्रीका में साम्राज्यवादी घुसपैठ का कारण बनी।

पूँजीवाद वह व्यवस्था है जिसमें वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन बाजार में विनिमय के लिहाज से किया जाता है ताकि लाभ कमाया जा सके। पूँजीवाद में पूँजी का स्वरूप वही नहीं रहता जो सामंतवाद में होता है। मालूम हो, सामंतवाद के अंतर्गत पूंजी मुख्यतया व्यापारिक पूँजी होती है। पूँजीवाद के अंतर्गत उत्पादक पूँजी प्रमुख होती है यानी वह पूंजी जिसका श्रम बाजार में निवेश किया जाता है। श्रम वह है जिसे कोई श्रमिक पूँजी के बदले देता है ताकि वह जीवित रह सके। इस तरह के श्रम को फिर उत्पादन की प्रक्रिया में शामिल कर नये लाभ के लिए नई वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इस तरह व्यापारी और वित्तधारकों (बैंक, सूदखोरों, आदि) की पूँजी संचरित होकर नई वस्तुओं का उत्पादन करती है। इस व्यापारिक/वित्तीय पूँजी का कार्य उत्पादक पूँजी की जरूरतों पर निर्भर करता है और वही उनका नियंत्रण भी करता है। इस तरह श्रम भी एक वस्तु बन गया है जिसे बाजार में खरीदा अथवा बेचा जा सकता है।

जिस तरह पूँजीवाद ने आर्थिक जीवन को प्रभवित किया था, उसी तरह उसने सामाजिक और राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित किया। पूँजीवाद के साथ दो वर्गों—पूँजीपति (बर्जुआई) व श्रमिक (सर्वहारा) का उदय हुआ। इन दो प्रमुख वर्गों के अलावा अन्य छोटे छोटे वर्ग भी अस्तिव में आये। राजनीतिक व्यवस्था भी पूर्ववत नहीं रही। इंगलैंड में राजसत्ता पर जमीदोज कुलीनों के साथ साथ व्यापारियों का भी नियंत्रण कायम हुआ। इसी तरह फ्रांस में जमींदोड कुलीनों की जगह गणतंत्र की स्थापना हुई। इस तरह पूँजीवाद के साथ निजी उद्यमों का विकास हुआ तथा राजसत्ता में जनता की भागीदारी बढ़ी।

2.2.3 उपनिवेशवाद क्या है ?

पूँजीवाद के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसका लगातार विस्तार होता है। यही कारण है कि सामंतवाद के खात्में तथा पूँजीवाद में उसके संक्रमण के बाद भी नयी राज्यसत्ता राजस्व के नये स्रोतों की तलाश करती रही है। राजस्व और लाभ की यही चाहत उन्हें दूसरे समाजों के धन पर कब्जा करने के लिए उकसाती रही। यह अकारण नहीं था कि यूरोपीय राज्यों ने अज्ञात क्षेत्रों की खोज प्रायोजित और प्रोत्साहित किया। उदाहरण के लिए मार्को पोलो और क्रिस्टोफर कोलंबस ने भारत प्रशांत द्वीप, अमरीका की खोज की। इस तरह यूरोपियों को हिंद महासागर तथा चीनी महासागर के रास्तों का पता चला। वहीं, जेम्स की समुद्री यात्रा से न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया का पता चला। दुनिया के समुद्री रास्तों की खोज से वस्तुओं के लेन देन का पैमाना काफी व्यापक हो गया। नतीजतन, इन नए क्षेत्रों की विपुल संपदा जैसे बहुमूल्य धातुएँ, मसाले, रेशम आदि यूरोप के बाजारों में पहुँचने लगी। संपत्ति के इस बहाव के कई नतीजे निकले, यूरोप अब काफी ऐशो—आराम की जिंदगी बसर कर सकता था। पूँजीवाद के विकास को बाहर से सहायता मिली तथा एशिया, अफ्रीका व अमरीका के पूर्व पूँजीवादी अथवा खेतिहर समाजों की लूट, जीत और उन्हें उप—निवेश बनाने की होड़ शुरू हुई। उपनिवेशों की खोज तथा उन पर कब्जा और नियंत्रण जमाने की जितनी जरूरत निजी उद्यमियों, कंपनियों को थी उतनी ही राज्य को भी थी। इस तरह हम कह सकते हैं कि 16वीं सदी के नाविकों और व्यापारियों की अगुआई में यूरोपीय राज्यों के विस्तार का साक्षी बना। इस क्षेत्र में कुछ ऐसे उद्यमी भी शामिल थे जो पूर्व के देशों की वस्तुओं को लूट कर उन्हें यूरोपीय बाजारों में बेचते थे। बहुत से व्यापारियों ने सुरक्षा की दृष्टि से निजी सैन्य टुकड़ियों का गठन भी किया था। उदाहरण के लिए, पुर्तगाली व्यापारी निरापद समुद्र यात्रा की गारंटी देकर सुरक्षा सेवा मुहैया करा रहे थे। इन सबका अंतिम परिणाम अनेक क्षेत्रों में औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना के रूप में सामने आया। लैटिन अमेरिका कैरिबियाई द्वीपों, अफ्रीकी राज्यों से होता हुआ उपनिवेशवाद एशिया में पहुंचा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपनिवेशवाद नए पूँजीवाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। यह पूँजीवाद काफी तेजी से विकसित हुआ। औपनिवेशिक शोषण से हासिल संपत्ति सामंती साम्राज्यवादी लाभों से अलग थी। दूसरे, यह जीवनशैली जहाँ कुछ के लिए कुछ बर्बादी थी तो अनेक के लिए अनुत्पादक। वहीं पहली स्थिति में उत्पादन संबंधों को बढ़ावा देकर बहुसंख्यक के आनंद के लिए ज्यादा धन पैदा किया गया। उपनिवेशवाद औपनिवेशिक सत्ता और उपनिवेशों के बीच विशेष रिश्तों का सूचक था जबकि सामंती साम्राज्यवादी जीतें (उदाहरण के लिए मुगल, ऑटोमैन आदि) केवल अतिक्रमण थी। वे विजेताओं के लिए कोई कर्तव्य निर्धारित नहीं कर पायी। दरअसल उपनिवेशवाद उपनिवेशों के साथ राजनीतिक व आर्थिक दोनों तरह के संबंध विकसित करने पर जोर देता है। उपनिवेश बना दिये गए देश तथा औपनिवेशिक विजेता देश विकास के अलग अलग चरणों में थे। उदाहरण के लिए, जब स्पेन और पुर्तगाल लैटिन अमरीका को उपनिवेश बना रहे थे तो वे खुद सामंती समाज थे।

लेकिन जब ब्रिटेन, फ्रांस एवं जर्मनी अफ्रीका को उपनिवेश बना रहे थे (उन्नीसवीं सदी के अंत में) तब वे औद्योगिक पूंजीवादी देश थे।

आधुनिक काल के आते–आते सभी साम्राज्य चीन और जापान को छोड़कर, यूरोपीय औपनिवेशिक सत्ता के नियंत्रण में आ गये थे। प्रश्न उठता है कि यूरोपीय देशों ने अफ्रीका और एशिया पर अपना आधिपत्य कैसे कायम किया। बहुत हद तक यह उनकी बेहतर तकनीक, बेहतर मारक क्षमता तथा उनके उच्चस्तरीय अनुशासन का नतीजा था जिनकी बदौलत वे दूसरे दूरस्थ क्षेत्रों के लोगों से लोहा ले सके। इन औपनिवेशिक साम्राज्यों के लिए 1880 से लेकर 1940 तक की अवधि स्वर्णकाल रही थी। किन्तु यह भी सच है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत के साथ ही उपनिवेशों के अंत की कहानी भी शुरू हो जाती है। औपनिवेशीकरण की शुरूआत यों तो पूरब की विलासितापूर्ण सामानों के व्यापार से होती है किन्तु बाद में औद्योगिक उत्पादों के लिए बाजार खोजने की होड़, प्राकृतिक संसाधनों और सस्ते श्रम के दोहन ने औपनिवेशिक विस्तार को अमली जामा पहनाया। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत यदि जर्मनी के उपनिवेशों को मित्र राष्ट्रों के बीच मैंडेट के रूप में वितरित कर दिया गया तो द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत इटली के उपनिवेशों को ब्रिटेन के पास ट्रस्ट क्षेत्र के रूप में गिरवी रख दिया गया। इसी तरह प्रशांत क्षेत्र के द्वीपों, जिन पर जापान का कब्जा था, पर अमरीकी आधिपत्य स्थापित कर दिया गया। केवल नामीबिया ही गोरे शासन के अंतर्गत बना रहा। अंततः 21 मार्च, 1990 को नामीबिया भी आजाद हो गया अन्यथा, पुर्तगाल को एक तरह से इस औपनिवेशिक होड़ का प्रथम और अंतिम यूरोपीय राज्य होने का गौरव प्राप्त है।

2.2.4 नव-उपनिवेशवाद

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत विश्व की संरचना और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति में आमूलचूल परिवर्तन आया। युद्ध में यूरोपीय अर्थव्यवस्था तहस–नहस हो गयी जिससे उपनिवेशवाद की बुनियाद हिल गई। फ्रांसीसी, अंग्रेजी, पुर्तगाली और स्पैनिश उपनिवेशों का टूटना शुरू हो गया और यह साफ हो गया कि अब उनके दिन लद चुके। कभी महान ताकत रहे इन देशों की चूलें हिल गयी। अब इनका पुराना दबदबा भी नहीं रहा। उनकी जगह तुरंत ही संयुक्त राज्य अमरीका काबिज हो गया क्योंकि 1945 के बाद वह एक दबंग अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद के रूप में स्थापित हो गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

साम्राज्यवाद अब दूसरे रूप में प्रकट होने लगा। युद्ध से पहले अमरीकी पूँजीवाद केन्द्रीय अमरीका, कैरिबियाई क्षेत्रों, फिलीपीन्स और प्रशांत द्वीपों पर अपना साम्राज्यवादी दबदबा कायम करने में दिलचस्पी रखता था किन्तु युद्धोपरांत जब एशिया एवं अफ्रीका में पुराने उपनिवेशों में स्वतंत्र किन्तु आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों का उदय हुआ, तब अमरीका की आर्थिक सैन्य और राजनीतिक गतिविधियां इन क्षेत्रों में भी पसरने लगी।

इसके लिए अमरीकी विदेश नीति ने अपने मित्र राष्ट्रों को आर्थिक सहायता तथा राजनीतिक और सैन्य समर्थन देना शुरू किया। अमरीका के ये नये मित्र राष्ट्र अक्सर तानाशाही को प्रश्रय देने वाले तथा जन आंदोलनों के विरोधी थे। संयुक्त राज्य अमरीका इन राष्ट्रों की मदद दिल खोलकर करने लगा जो वामपंथी अथवा कम्युनिस्ट समर्थक आंदोलनों को कुचल रहे थे या विरोध कर रहे थे। अमरीकी आर्थिक सहायता तथा विश्व बैंक पर अमरीकी दबदबे का मकसद यही था कि ये राष्ट्र अमरीकी विदेश नीति का आंख मूंद कर अनुपालन करें। विश्व बैंक की नीतियों ने निजी उद्यम को बढ़ावा दिया तथा राष्ट्रीयकरण आदि का विरोध किया। अमरीका अपनी उन नीतियों की वजह से नये उपनिवेशवाद का अगुवा बन बैठा। यह एक उपनिवेशवाद था जिसमें न उपनिवेश थे, न कोई नियंत्रण। इसे ही बाद में नव–उपनिवेशवाद का नाम दिया गया।

नवउपनिवेशवाद आर्थिक उपनिवेशवाद के नाम से भी जाना जाता है। इसका सीधा अर्थ यह है कि आर्थिक रूप से ताकतवर राज्य आर्थिक सहायता तथा व्यापार और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों के बूते अल्पविकसित राज्यों पर अपने नियंत्रण कायम कर सकते हैं।

शीतयुद्ध की समाप्ति के उपरांत नव–उपनिवेशवाद एक नया और खतरनाक आयाम ले चुका है। शीतयुद्ध से पहले, दोनों महाशक्तियों के बीच एक तरह की स्पर्द्धा थी जो आर्थिक और सैन्य सहायता नवसाम्राज्यवाद के चंगुल में फँसे देशों को मुहैया करा रहे थे, उसका निर्धारण भी इसी स्पर्द्धा के जरिये होता था। 20वीं सदी के अंतिम दशक में दो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटी। शीतयुद्ध समाप्त हुआ तथा सोवियत रूस का विखंडन हुआ। नतीजतन, संयुक्त राज्य अमरीका को अपना दबदबा कायम करने का मौका मिला। दूसरे, अनेक देशों, जिनमें भारत और चीन भी शामिल हैं, ने

आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू कर दी है तथा पूर्वी यूरोप के देशों में भी बाज़ार अर्थव्यवस्था को अंगीकार कर लिया है। कहने की जरूरत नहीं है कि इस स्थिति में पश्चिम के विकसित और पूँजीवादी देश नव–उपनिवेशवाद की नीतियों को साहस के साथ अंजाम देने में लगे हुए हैं। वे आर्थिक और सैन्य सहायता तो दे रहे हैं, साथ ही अपने बहुराष्ट्रीय निगमों को खुली छूट देकर वे तीसरी दुनिया के विकासशील देशों पर अपना आधिपत्य भी कायम करना चाहते हैं।

आर्थिक उदारीकरण की वजह से अर्थव्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण धीमा हुआ है। योजना की रूसी अवधारणा धूमिल हुई है तथा बाजार आर्थिक विकास को संचालित एवं नियंत्रित करने लगा है। तीसरी दुनिया के देशों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का निर्बाध आगम न हुआ है। भारत में कार्यरत विदेशी बैंक बेहतर सेवा प्रदान कर समृद्ध तबके के लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं "नतीजतन घरेलू बैकिंग संस्थाएँ बुरी तरह प्रभावित हो रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ पैसे के जोर पर ऐसे–ऐसे विज्ञापन देती हैं कि एक आम आदमी भी उनके उत्पादों को खरीदने के लिए मचल उठता है। जैसे–जैसे अधिक से अधिक लोग आकर्षित होते जा रहे हैं, वैसे वैसे स्वेदशी कपनियां सिमटती जा रही है। घरेलू कंपनियों की तालांबदी से स्थानीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी शिंकजा कसने का खतरा बढ़ गया है।

तीसरी दुनिया के जो देश विश्व बैंक तथा अमरीका, जर्मनी और जापान जैसे देशों से कर्ज लेते हैं, उन्हें ऋणदाताओं की शर्तों को भी स्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ती है, वैसे–वैसे विकासशील देश ऋणजाल में फंसते जाते हैं और इस तरह से नवसाम्राज्यवाद अथवा नवउपनिवेशवाद के शिकार हो जाते हैं।

अधिकांश देशों में राज्य नियंत्रित विकास की प्रक्रिया विफल साबित हुई। रूस के समाजवाद के ढहने के बाद, लोग पश्चिम उत्पादों और जीवन शैली के पीछे पागल हो रहे हैं। नतीजतन, मुद्रास्फीति में भंयकर बढ़ोतरी हो रही है। अगर पूर्व सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों को बाजार अर्थव्यवस्था को अंगीकार करने के लिए बाध्य किया गया तो दक्षिण के विकासशील देश आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया से नहीं बच सकते। सच्चाई यही है कि उदारीकरण के पश्चिमी देशों के वर्चस्व को बढ़ावा दिया है और आज बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मुख्य चिंता का कारण बनी हुई हैं। यह इसलिए कि विकासशील देशों को उनके दबाव में आकर अपने निर्णय लेने के संप्रभु अधिकार के साथ ही समझौता करना पड़ता है। विश्व बैंक और विदेशी बैंकों से लिए गए कर्ज पर हर साल जो भावी ब्याज देना पड़ता है उससे स्थिति और खराब हुई है। यानी अब साम्राज्यवाद का विकास बदस्तूर जारी है, भले ही हमारा नेतृत्व स्वतंत्रता और संप्रभुता का राग अलापता रहे। हम अपनी बात की समाप्ति नवसाम्राज्यवाद की उस शास्त्रीय परिभाषा से कर सकते हैं जो उसके कट्टर विरोधियों के सरगानाओं में एक क्वेम क्रुमैक ने दी हैं वे घाना के प्रथम राष्ट्रपति भी थे। उन्हीं के शब्दों में :

"नव–साम्राज्यवाद का मूल तथ्य है कि इसका अधीनस्थ राज्य सिद्धांत में तो स्वतंत्र और अंतर्राष्ट्रीय संप्रभुता के समस्त बाहरी आवरणों एवं साधनों से युक्त होता है। किन्तु वास्तविकता में उसकी अर्थव्यवस्था और उसकी राजनीतिक नीति भी कहीं बाहर से नियंत्रित होती है। इसका तरीका व स्वरूप अलग–अलग रूपों से प्रकट हो सकता है। उदाहरण के लिए एक चरम स्थिति में नव–साम्राज्यवाद देश की सैन्य टुकड़ियों और नव औपनिवेशिक राज्य की सैनिक छावनियों पर अपना अधिकार कायम कर सकता है और उसकी सरकार को नियंत्रित कर सकता है। तथापि नव साम्राज्यवादी नियंत्रण अक्सर आर्थिक एवं मौद्रिक तरीकों से कायम होता है। नव औपनिवेशिक देशों को साम्राज्यवादी देश को बने उत्पादक खरीदने के लिए मजबूर किया जा सकता है। ऐसा देश बाजार की स्पर्द्धा का लाभ नहीं उठा सकता। नव औपनिवेशिक देशों की सरकारी नीति पर नियंत्रण स्थापित करने के अलग–अलग हथकंडे हैं, कभी राज्य संचालन के लिए जरूरी धन उपलब्ध कराकर, कभी महत्वपूर्ण पद पर अपने प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त करवाकर, तो कभी साम्राज्यवादी ताकत द्वारा नियंत्रित बैंकिंग प्रणाली को जबरन उन पर लादकर विदेशी मुद्रा भंडार पर नियंत्रण कायम करके।" (नवसाम्राज्यवाद : साम्राज्यवाद की अंतिम अवस्था, 1965)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर को मिलाइए।

1) साम्राज्यवाद के विकास पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

2) उपनिवेशवाद की प्रक्रिया में पूँजीवाद की क्या भूमिका थी ?

....

....

....

....

3) नवसाम्राज्यवाद से आप क्या समझते हैं ?

....

DIKSHANT IAS

....

....

Call us @7428092240

....

2.3 राष्ट्रवाद

आम बोलचाल में हम राष्ट्र राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद पयार्यवाची की तरह प्रयोग करते हैं, लोग उनके अर्थों में फर्क करना नहीं जानते। जैसा कि कार्लटन जे. एच. हेमेस ने कहा है, "आज के सभ्य समाज की सोच एवं क्रियाक्लापों में राष्ट्रवाद इस तरह घुलमिल गया है कि हम अक्सर राष्ट्रीयवाद को अपनी बपौती मान बैठते हैं।" लेकिन इसमें से अधिकांश लोग इसके अर्थ से परिचित नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हित को सर्वोच्च वरीयता देता है और राष्ट्रीय हित की रक्षा के लिए ही सत्ता का पूरा संघर्ष भी है। राष्ट्रवाद अक्सर राष्ट्रभक्ति पैदा करता है। आश्रित लोगों के लिए जैसा कि हम 1947 से पहले थे, राष्ट्रवाद उस जज्बे का नाम है जिसने विदेशी सत्ता के खिलाफ संघर्ष में हमें कामयाब बनाया। लेकिन राष्ट्रवाद कभी–कभी हमारे नैतिक विश्वासों पर हावी हो जाता है कि हिटलर के नाजी जर्मनी में हुआ था। जर्मनी में राष्ट्रवाद का अर्थ था — थर्ड रीक का विस्तार और यहूदियों का निष्कासन, इजरायल में यह अरब विरोध के खिलाफ अस्तित्व की लड़ाई है तो पाकिस्तानी राष्ट्रवाद पूरी तरह भारत विरोधी मुहिम पर, खासकर कश्मीर के मसले पर टिका हुआ है।

2.3.1 राष्ट्रवाद की अवधारणा

शार्प और कुर्क के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्येता के लिए राष्ट्रवाद की समझ उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना कि उस व्यक्ति के लिए मास्टर कुंजी (master key) जरूरी है जो एक घर के सभी दरवाजों से अंदर आना चाहता है। यानी शार्प एवं कुर्क के लिए राष्ट्रवाद की समझ अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की मास्टर कुंजी है। आज राज्य व्यवस्था का पूरा व्यवहार राष्ट्रीय आशा, राष्ट्रीय डर, राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा, और राष्ट्रीय संघर्ष जैसे पदों से व्यक्त होता है। नेतागण यह कहते मिल सकते हैं कि चूंकि आधुनिक राज्य, राष्ट्र राज्य होता है। अतः वह राष्ट्रवाद को बढ़ावा

देना चाहता है। जैसा कि पाल्मर एवं पार्किन्स कहते हैं, "अपने सबसे घटिया रूप में राष्ट्रवाद व्यक्तियों की सोच को पूरी तरह ढक लेता है तथा इसके रहस्यवादी और धार्मिक दामन पर इस युग के कुछ क्रुरतम अमानवीय कृत्य दर्ज हैं।" इस तरह राष्ट्रवाद का प्रयोग लोगों को नेक काम के लिए लामंबद करने में हो सकता है जैसा कि तानाशाह करते रहे हैं, इस का प्रयोग घोर अमानवीय कृत्य नरसंहार को अंजाम देने में भी किया जा सकता है। 1990 से पहले का नामीबियाई स्वतंत्रता संघर्ष पहली श्रेणी में रखा जा सकता है तो यहूदियों के खिलाफ हिटलर की नीति आसानी से दूसरी श्रेणी में रखी जा सकती है।

इस इकाई में जितना सीमित स्थान उपलब्ध है, उसमें राष्ट्रवाद की संक्षिप्त व्याख्या ही की जा सकती है। राष्ट्रवाद से पहले राष्ट्र को समझना ज्यादा समीचीन है। अर्नेस्ट बार्कर ने राष्ट्र की अत्यंत सटीक परिभाषा की है। उसने लिखा है "राष्ट्र व्यक्तियों का ऐसा समुदाय होता है जो एक निश्चित क्षेत्र में निवास करते हैं और जो सामान्यतया विविध नस्लों से मिलकर बने होते हैं किन्तु जो अपने साझे इतिहास के दौरान साझे विचार और साझी भावना को अंगीकार कर लेते हैं। बार्कर ने साझे धार्मिक विश्वास तथा साझी भाषा को जुड़ाव का तत्व माना है तथापि राष्ट्र की एकता में सबसे महत्वपूर्ण तत्व यह होता है कि लोग एक ही तरह की इच्छा शक्ति को संजोय रखते हैं तथा उसी के अनुसार अपना अलग राज्य निर्माण करते हैं अथवा निर्माण करने की कोशिश करते हैं। इस तरह स्पष्ट है कि साझी इच्छा शक्ति ही राष्ट्र की आत्मा होती है। इस तरीके से गठित राज्य को राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है।

आम बोलचाल में राष्ट्र और राज्य पर्यायवाची की तरह प्रयुक्त होते हैं। यह कारण है कि अंतर्राज्यीय की जगह हम अंतर्राष्ट्रीय शब्द का प्रयोग करते हैं। किंतु चूंकि अधिकांश मौजूदा राष्ट्र राज्य के रुप में संगठित हैं, अतः राष्ट्र एवं राज्य की सीमा रेखा धूमिल हो गई है। हान्स मार्गेन्थु का मानना है कि राष्ट्र को राज्य की जरूरत है। इस तरह एक राष्ट्र एक राज्य राष्ट्रवाद की राजनीतिक उत्पत्ति है और राष्ट्र राज्य उसका आदर्श रूप। राष्ट्रीयता राष्ट्रवाद का अभिन्न अंग होता है। राष्ट्रीयता या तो राष्ट्रीय चरित्र का द्योतक होता है या फिर राष्ट्र के प्रति साझे जज्बे का। इस जज्बे से बंधे लोगों का समूह भी राष्ट्र में हो सकता है तो फिर हम राष्ट्र की अवधारणा की व्याख्या कैसे करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राष्ट्रवाद के प्रमुख अध्येताओं में जे. एच. हेमस एवं हान्स कोडन के नाम विशेष उल्लेखनीय है। हेमस के अनुसार राष्ट्रवाद "आधुनिक भावात्मक एकता बोध के साथ दो पुरानी अवधारणाओं– राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय भक्ति के अतिशयोक्तिकरण से मिलकर बनता है। कोहन कहता है कि "राष्ट्रवाद सबसे पहले और सर्वाधिक रूप से एक मनः स्थिति का नाम है, चेतना का नाम है।" आज राष्ट्रवाद मूलरूप से एक साझी मनः स्थिति एक साझा बंधन, देशभक्ति और चेतन कर्म के रूप में परिभाषित किया जाता है। आज पूरी दुनिया में राष्ट्रवाद राजनीतिक जीवन का रूप ले चुका है और यही कारण है राष्ट्रों का आपसी संबंध अंतर्राष्ट्रीय संबंध की विषयवस्तु बना हुआ है। फिर भी, जैसा कि कोहन ने लिखा है, "राष्ट्रवाद प्रत्येक देश की विशिष्टता ऐतिहासिक स्थितियों तथा सामाजिक संरचना के अनुसार अलग–अलग होता है। जैसे–जैसे राष्ट्रवाद की अवधारणा फैलती गयी है, वैसे वैसे व्यक्ति की अहमियत कम होती गई है। राष्ट्र राज्य सर्वशक्तिमान बन चुका है।

राष्ट्रवाद की अवधारणा समाज के अधिकांश तबकों में "हम एक हैं" की भावना से पैदा होती है। प्रोफेसर सिन्डर ने माना है कि राष्ट्रवाद को सरल भाषा में परिभाषित करना आसान नहीं है फिर भी उसने एक ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करने की कोशिश की है जिसे लेकर कम से कम आपत्ति हो सकती है। उसने लिखा है ". . . . . . इतिहास के एक खास दौर में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक कारकों से उत्पन्न राष्ट्रवाद एक भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोगों की मनः स्थिति, भावना अथवा उद्भावना का नाम है। . . . . . . ।" इस पर विपरीत प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सिन्डर कहता है, "राष्ट्रवाद न तो पूरी तरह तार्किक है, न ही विवेकसम्मत। इसकी जड़ें अचेतन दुनिया की अतार्किकता, अविवेक एवं फंतासी में ढूंढी जा सकती हैं। "सरल भाषा में कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद स्थितिजन्य भावना का नाम है जो लोगों को एकसूत्र में करती है।

2.3.2 राष्ट्रवाद के विविध चरण

अलग–अलग पाश्चात्य विद्वानों ने राष्ट्रवाद को अलग–अलग रूपों में वर्गीकृत किया है। किसी ने इसे अच्छा और बुरे के खानों में बाँटा तो किसी ने सृजनात्मक व विध्वंसक के खानों में और किसी अन्य ने भौतिक व आध्यात्मिक खानों में। ये व्याख्याएँ राष्ट्रवाद के चरित्र पर आधारित हैं जिसके

बारे में विश्वास के साथ कुछ कहना मुश्किल है। फिर भी विद्वानों ने राष्ट्रवाद के विविध चरणों को रेखांकित करने की कोशिश की है। इनमें क्विन्सी राइट भी शामिल है। क्रमिक तौर पर उसने राष्ट्रवाद को मध्ययुगीन, राजतंत्री क्रांतिकारी, उदारवादी और एकाधिकारवादी खानों में वर्गीकृत किया है। उसने सांस्कृतिक एवं मानवतावादी राष्ट्रवाद को कोई विशेष महत्व नहीं दिया है। किन्तु हेम्स ने राष्ट्रवाद के आर्थिक कारकों का विशद वर्णन किया है। प्रो. सिन्डर ने राष्ट्रवाद की चार अवस्थाओं – एक्यकारी, राष्ट्रवाद (1815-1871) विध्वंसक राष्ट्रवाद (1871-1899) आक्रामक राष्ट्रवाद (1900-1945) तथा सामयिक राष्ट्रवाद (1845 से) के नाम से गिनाये है। प्रथम चरण में राष्ट्रवाद जर्मनी और इटली जैसे देशों के एकीकरण के रूप में प्रकट हुआ था। दूसरे दौर में आश्रित राष्ट्रीयताओं जैसे आस्ट्रिया के अंतर्गत हंगरी द्वारा स्वतंत्रता की माँग की गयी। सिन्डर का मानना है कि दोनों विश्वयुद्ध आक्रामक राष्ट्रवाद के प्रतिफल थे। यह राष्ट्रवाद की तीसरी अवस्था है। चौथे दौर में आकर एशिया और अफ्रीका के उपनिवेश स्वतंत्र हुए।

कहा जाता है कि आधुनिक राष्ट्रवाद का जन्म 17वीं और 18वी सदी में पश्चिमी यूरोप और अमरीका में हुआ था। 18वीं सदी के आते–आते राष्ट्रवाद पूरे यूरोप में एक आम आंदोलन बन चुका था। शुरूआती राष्ट्रवाद को राजतंत्री राष्ट्रवाद के रूप में जाना जाता है। यह फ्रांसीसी क्रांति का नतीजा था कि लोग लोकतंत्र की अवधारणा जो जनता की सामान्य इच्छा तथा व्यक्ति एवं नागरिक के अधिकारों पर आधारित होती है, से वाकिफ हो सके। नेपोलियन की वजह से उसके शत्रु राष्ट्रों में जिस राष्ट्रवाद का जन्म हुआ उसे हेवस पारंपरिक राष्ट्रवाद का नाम देता है। इसी तरह रूस का जार अलेक्जेंडर 1815 में पारंपरिक राष्ट्रवाद का पुरोधा बन बैठा। दुनिया के लोगों और राष्ट्रों की बेहतरी के नाम पर उसने पवित्र गठबंधन का नारा बुलंद किया।

उन्नीसवीं सदी के उदारवादी राष्ट्रवाद से जर्मनी तथा इटली का एकीकरण संभव हो सका। बेल्जियम और पुर्तगाल जैसे देशों को राष्ट्र बनाने के लिए राष्ट्रीय विप्लव का सहारा लेना पड़ा। तब तक राष्ट्रवाद यूरोप की ही चीज मानी जाती थी। किन्तु तुरंत ही यह एशिया और अफ्रीका में फैल गया। पाल्मर एवं पार्किन्स ने लिखा है कि उन्नीसवीं सदी के अधिकांश काल में राष्ट्रवाद कई दूसरे आंदोलन जैसे लोकतंत्र, छायावाद, औद्योगिकवाद, साम्राज्यवाद और उदारवाद से जुड़ा रहा। बीसवीं सदी के आरंभ में उदार राष्ट्रवाद का पतन हो गया क्योंकि महाशक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा एक आमबात हो गयी थी। यही प्रतिस्पर्द्धा प्रथम विश्वयुद्ध का कारण भी बनी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कहते हैं कि राष्ट्रवाद प्रथम विश्वयुद्ध का कारक भी है और प्रभाव भी है। सिडनी वी. के. लिखता है, "राष्ट्रवाद ने प्रथम विश्वयुद्ध के लिए राजनीतिज्ञों का पथ प्रशस्त किया तथा लोगों को दिमागी रूप से तैयार किया .... इसका तात्कालिक कारण युगोस्लोवाकिया के गुप्त राष्ट्रीय संगठनों की जान लेना था .... जबकि इसका स्पष्ट तात्कालिक प्रभाव केन्द्रीय और पूर्वी यूरोप के देशों के स्वनिर्णय के अधिकार को अंगीकार करना था ....।" प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अंतराष्ट्रीयवाद का मुखौटा कारगर साबित न हो सका, नतीजतन अनेक देशों में **सर्वाधिकारवादी राष्ट्रवाद** का उदय हुआ। हिटलर, मुसोलिनी और फ्रैंको जैसे व्यक्तियों ने इस नयी धारा की अगुआई की। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष जो राष्ट्रवाद का ही एक नया रूप था, प्रकट हुआ। उसने साम्राज्यवाद की बुनियादें हिला दीं तथा उपनिवेशों के मुक्त होने की प्रक्रिया का सूत्रपात किया। ऐशिया, अफ्रीका व लैटिन अमरीका के अधिकांश देशों ने साम्राज्यवाद के जुए को उतार फेंका। नतीजतन, जो 100 से अधिक राष्ट्र राज्य अस्तित्व में आए, जहाँ लोकतंत्र, सामान्य इच्छा, स्वतंत्रता तथा न्याय पर आधारित राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर को मिलाइए।

1) राष्ट्रवाद की अवधारणा का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2) राष्ट्रवाद के विविध रूपों एवं अवस्थाओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2.4 फासीवाद

फासीवाद, जैसा कि प्रस्तावना में कहा गया है, कोई विचारधारा नहीं है। मुसोलिनी की अगुआई में इटली की फासीवादी पार्टी ने जो कार्य योजना शुरू की थी, बाद में फासीवाद के नाम से जाना जाने लगा। उसके बाद जर्मनी में हिटलर की नाजी पार्टी ने भी इसे अंगीकार कर लिया। फासीवाद लेटिन शब्द फासियो से बना है जिसका अर्थ होता है "लाठियों का गट्ठर"। पुराने रोम में "लाठियों और कुल्हाडियों के गट्ठर" का राज्य सत्ता का प्रतीक माना जाता था। "लाठियों का गट्ठर" वास्तव में अनुशासन एवं एकता का द्योतक था जबकि कुल्हाड़ी शक्ति का। इस तरह फासीवाद का स्पष्ट लक्ष्य सैन्य शक्ति एवं क्षमता का इस्तेमाल कर राष्ट्र की खोई हुई गरिमा और मर्यादा को पुनः स्थापित करना था। राष्ट्रीय मर्यादा को हासिल करने में बड़े पैमाने पर सैन्य संगठन अत्यंत महत्वपूर्ण हो उठा। आइये, फासीवाद की प्रमुख विशेषताओं को सूत्रबद्ध करें।

2.4.1 फासीवाद की प्रमुख विशेषताएँ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

फासीवादी अपने चरित्र में दृढ़ राष्ट्रवादी थे। वे इटली को फिर से पुराने रोमन साम्राज्य की तरह शक्तिशाली बनाना चाहते थे, किन्तु उनका राष्ट्रवाद छिछला था। वे ताकतवर राज्य के लिए युद्ध और साम्राज्यवादी विस्तार की नीति को आवश्यक मानते थे। फासीवादियों की नजर में राज्य और राष्ट्र की नैतिकता के अंतिम मानदंड है। इस तरह स्पष्ट है कि आक्रामक राष्ट्रवाद फासीवाद का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत था।

फासीवाद संसदीय लोकतंत्र के विरोधस्वरूप पैदा हुआ था। वह मानता था कि लोकतंत्र एक कमजोर सरकार होता है जो क्लिष्ट आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती। फासीवादी किसी भी तरह के विरोध को बर्दाशत नहीं करते थे। वे पार्टी और नेता के प्रति पूर्ण आस्था चाहते थे। मुसोलिनी उनका द्वितीय ड्यूक यानी नेता के रूप में स्थापित हुआ। उसके अथवा उसकी इच्छा के विरूद्ध कुछ भी नहीं किया जा सका। दूसरे शब्दों में फासीवाद एकल पार्टी के सर्वाधिकार में विश्वास करता है।

फासीवादी किसी भी तरह के समाजवाद के कट्टर विरोधी थे। वे कम्युनिस्टों से घृणा करते थे और दुनिया को साम्यवादी संकट से छुटकारा दिलाना चाहते थे। वे स्वतंत्र उद्यमिता के पक्षधर थे, अतः पूँजीवादी उनके साथ थे। फासीवादी व्यक्तिवाद का समर्थन नहीं करते थे, न ही खुली व्यापार प्रथा (लोसेज फेयर) चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि कोई व्यक्ति ताकतवर होकर राज्य के लिए चुनौती बन जाये। वे शक्तिहीन राज्य के हिमायती नहीं थे और यही कारण है कि फासीवादी राज्य निरंकुश सर्वशक्तिमान तथा व्यापक था।

फासीवादी अंतर्राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के भी खिलाफ थे। वे धुर राष्ट्रवाद में यकीन करते थे। यही कारण था कि राष्ट्रकुल को फासीवादियों का समर्थन हासिल नहीं हुआ। फिर भी मुसोलिनी राष्ट्रकुल में अपने विश्वास का मुखौटा लगाये रहा। 1935-36 में आकर उसका यह मुखौटा भी बेनकाब हो गया। उसने इथोपिया पर आक्रमण कर दिया।

फासीवादी युद्ध का समर्थन करते थे। निरस्त्रीकरण में उनका रंचमात्र भी विश्वास नहीं था। इस तरह फासीवादियों ने युद्ध को महिमामंडित किया। मुसोलिनी ने लिखा, "केवल युद्ध ही मानवीय ऊर्जा को उच्चतम शिखर तक ले जा सकता है और वही जोखिम उठाने का साहस रखनेवालों को श्रेष्ठता का प्रमाणपत्र भी दे सकता है। इस तरह मुसोलिनी और उसके जर्मन साथी हिटलर ने युद्ध के जरिये अपने-अपने साम्राज्यों का विस्तार किया।

इस तरह स्पष्ट है कि फासीवाद के पास कोई सुविचारित विचारधारा नहीं है। एक सिद्धांत के रूप में फासीवाद ने उग्र राष्ट्रवाद को जन्म दिया। यह शक्ति के प्रयोग तथा साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विस्तार करने में विश्वास करता था। उसने लोकतंत्र को अस्वीकृत किया तथा अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण निपटारे का मखौल उड़ाया। फासीवाद समाजवाद की बढ़ती धारा के खिलाफ एक दकियानूसी प्रतिक्रिया थी। फासीवाद सर्वाधिकारवाद का एक रूप था जिसे मुसोलिनी ने यों परिभाषित किया था, "सब कुछ राज्य में समाहित है, न तो उसके बाहर कुछ है न उसके खिलाफ।"

2.4.2 इटली, जर्मनी और स्पेन में फासीवाद

फासीवाद की उत्पत्ति सबसे पहले इटली में हुई जब मुसोलिनी ने फासीवादी पार्टी का गठन कर उसे सत्ता पर काबिज करवाया। इटली के लोग प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बनी सरकारों के प्रदर्शन से क्षुब्ध थे क्योंकि न तो वे राष्ट्रीय मर्यादा प्राप्त कर सकी थी और न ही राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा दे सकी थी। दूसरी तरफ पुरा देश वामपंथियों के आंदोलनों से जर्जर था। इस स्थिति में मुसोलिनी ने स्वयंसेवकों की भारी फौज तैयार की, उन्हें सैन्य प्रशिक्षण दिया तथा लोगों की राष्ट्रीय भावनाओं को उभारा। फासीवादियों की आंतरिक शांति और बाह्य महिमा की अपीलों से लोग प्रभावित हुए। वे मुसोलिनी के पक्षधर बन गये और वह सत्ता के करीब पहुंच गया। इसी माहौल में इटली के राज विक्टर इमैन्यूल III ने मुसोलिनी को मंत्रिमंडल गठित करने का आमंत्रण दिया और मुसोलिनी ने 31 अक्टूबर, 1922 को अपने मंत्रिमंडल का गठन कर लिया। उसने शीघ्र ही तमाम पदों को खारिज कर दिया और खुद ही तानाशाह बन बैठा। इटली की राजनीति में फासीवाद का दबदबा 1943 तक बना रहा।

जब हम फासीवाद के विकास की बात करते हैं तो हमारा ध्यान सामान्यतौर पर इटली के सत्ता परिवर्तन तक ही सीमित रहता है। किन्तु जर्मनी व स्पेन में भी ऐसे ही विचार वाले सत्ता पर काबिज हो गये थे। तीसरे दशक की शुरूआत में एडोल्फ हिटलर की अगुआई में नेशनल सोशलिस्ट पार्टी (अथवा नाजी पार्टी) सत्ता में आयी। नाजीवाद जर्मनी के उस अपमान की प्रतिक्रिया में पैदा हुआ था जो उसे पेरिस शांति सम्मेलन में इंग्लैंड, फ्रांस और उनके मित्र राष्ट्रों की ओर से मिला था। इटालियन फासीवादियों की तरह हिटलर की नाजी पार्टी ने भी सैन्यकरण, युद्ध और शांति समझौतों की समीक्षा की वकालत की। फासीवादियों की तरह नाजी भी संसदीय लोकतंत्र समाजवाद, राष्ट्रकुल और विवादों के शांतिपूर्ण निपटारे के खिलाफ थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जर्मनी में हिटलर की तानाशाही कायम होने के तुरंत के बाद ही अन्य यूरोपीय देशों में भी फासीवादी प्रवृत्तियाँ दिखने लगी। 1935-36 में फ्रांस की हालत भी वैसी हो गयी थी जैसी इटली की मुसोलिनी के आने से पहले थी। वामपंथियों और दक्षिणपंथियों की आपसी रंजिश इतनी तेज थी कि तानाशाही के उदय की संभावना साफ तौर पर दिखने लगी थी। सभी लोकतंत्रवादियों, वामपंथी समूहों, समाजवादियों और साम्यवादियों ने मिलकर संकट पर काबू पा लिया। उनका फ्रंट पोपुल्येर के नाम से साझा मंच बना और लियोन ब्लूम के प्रधानमंत्रित्व में साझी सरकार का गठन कर लिया गया।

इसी समय पड़ोसी राज्य बेल्जियम में डिजरैली की अगुआई में एक फासीवादी समूह उभरा। इसने सार्वजनिक जीवन में हिंसा और अश्लीलता को अंगीकार किया। इसने फ्रांस और बेल्जियम के गठबंधन को अस्वीकार कर दिया क्योंकि फ्रांस कम्युनिस्ट सोवियत संघ के साथ भी दोस्ती बनाये हुए था। फासीवादियों के दबाव में आकर बेल्जियम ने घोषणा कर दी थी कि वह फिर से तटस्थ की भूमिका अपनायेगा। बेल्जियम के इस कदम को लोकानों संधि के खिलाफ विद्रोह माना गया। हालांकि बेल्जियम में फासीवादी सत्ता पर काबिज नहीं हो सके, किन्तु इसकी भरपूर कोशिश जरूर की गई।

रोमानिया में कोर्नेलियो कोद्रेनु की अगुआई में आयरन गार्ड नामक फासीवादी पार्टी का गठन हुआ। यह पार्टी रोमानिया के तत्कालीन आर्थिक संकट और सरकार के कुप्रबंधन के खिलाफ प्रतिक्रिया का प्रतिफल था। इटली के ब्लैक्शर्टस तथा जर्मनी के स्टॉर्म ट्रुपर्स की तरह रोमानिया के आयरन गार्ड के सदस्यों ने संसदीय नेताओं, यहूदियों एवं मजदूरों को अपने आक्रमण का निशाना बनाया। रोमानिया का राजा कार्लोस फासीवादियों को कुचलने में नाकामयाब रहा तो खुद ही तानाशाह बन बैठा।

उधर पोलैण्ड में भी फासीवाद के स्पष्ट संकेत उभर रहे थे। 1937 में पोलैण्ड में फासीवादी तर्ज

पर तथा राष्ट्रीय एकता शिविर के रूप में सरकार का गठन किया गया। सरकार तथा किसानों और मजदूरों के बीच खुला युद्ध शुरू हो गया। अलबत्ता, गृहयुद्ध का आसन्न संकट सरकार की इस घोषणा से कि वह चुनाव सुधार पर अमल करेगी, टल गया। जर्मनी के बढ़ते खतरों के मद्देनजर स्थिति विस्फोटक मोड़ तक नहीं पहुँच सकी और प्रतिद्वंद्वी पार्टियों में किसी तरह समझौता हो गया।

किन्तु स्पेन, फासीवाद तूफान से नहीं बच सका। 1923 में वहां जनरल प्राइमों दि रिवेरा की अगुआई में तानाशाही स्थापित हो गई। किन्तु स्पेन में तब अराजकता का ऐसा माहौल था कि 1930 में रिवेरा ने हताशा में आकर इस्तीफा दे दिया। दूसरे वर्ष राजा अल्फांसो XIII को पदच्युत कर दिया गया और गणतंत्र स्थापित हो गया। किन्तु चुनी हुई सरकार भी देश में व्यवस्था बहाल नहीं कर सकी। फ्रांस की तरह स्पेन ने भी 1935 में पोपुलर फ्रंट (वामपंथी) की सरकार को सत्ता पर काबिज कर दिया। इससे देश का संकट और अधिक गंभीर हो गया। अनेक सैन्य अधिकारी खुली धमकी देने लगे कि यदि राष्ट्रपति अजाना की सरकार देश में अराजकता पर काबू करने में विफल होती है तो वे सत्ता अपने हाथ में ले लेंगे। संकट को भांपते हुए अजाना ने अनेक अधिकारियों को सेवामुक्त कर दिया तथा अनेकों का सुदूर स्थानों पर तबादला कर दिया। जनरल फ्रेंको उन्हीं अधिकारियों में से एक था। उसका दबादला केनरी द्वीप पर कर दिया गया था।

इसी बीच स्पेन के फासीवादियों ने 12 जुलाई, 1936 को एक पुलिसकर्मी की हत्या कर दी। बदले में पुलिसकर्मियों ने फासिवादियों के शीर्ष नेता काल्वो सोटेलो की हत्या कर दी। यह स्पेन में गृहयुद्ध के सूत्रपात का संकेत था। कुछ दिनों बाद जनरल फ्रेंको स्पेनिश मोरक्को में आ धमका और स्पेन में विप्लव की घोषणा कर दी।

फासीवादी इटली और नाजी जर्मन ने जनरल फ्रैंको की अगुआई में लड़ने वाले विद्रोहियों को भारी वित्तीय और सैन्य सहायता उपलब्ध कराई जबकि सोवियत संघ सरकार की मदद कर रहा था। तीन साल तक चलने वाला यह गृहयुद्ध अंततः 1939 में खत्म हुआ। इस युद्ध में फासीवादी नेता फ्रैंको को निर्णायक जीत हासिल हुई। इस प्रकार स्पेन भी इटली व जर्मनी के फासीवादी खेमे में शामिल हो गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.4.3 मुसोलिनी, समाजवादी से फासीवादी

बेमितो मुसोलिनी 1893 में पैदा हुआ था। शुरू में वह अपने पिता के समाजवादी विचारों से प्रभावित था। वह पहले स्विटजरलैंड गया फिर बाद में आस्ट्रिया। किन्तु अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों की वजह से उसे इन देशों से भागना पड़ा।

आस्ट्रिया से लौटने के बाद कुछ दिनों तक मुसोलिनी समाजवाद का प्रसार करता रहा। जब 1914 में युद्ध का सूत्रपात हुआ तो मुसोलिनी ने स्पेन के लिए तटस्थता की नीति की वकालत की। 1915 के आते–आते उसने अपने समाजवादी विचारों को तिलांजली दे दी और इटली को युद्ध में शामिल होने की मांग का समर्थन करने लगा।

मुसोलिनी शांति समझौता का कट्टर विरोधी बन गया। उसने अपने मित्रों, अवकाशप्राप्त अधिकारियों तथा वैसे लोगों जिन्होंने युद्ध के दौरान इटली से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया था, की एक सभा बुलाई। फिर उसने उनको फासिस्ट पार्टी के बैनर तले लामबंद किया तथा इटली को न्याय दिलाने तथा समाजवादियों, कम्युनिस्टों व कमजोर सरकार से छुटकारा पाने की अपील की।

फासीवादियों में अधिकांश समृद्ध व संपत्तिशाली वर्गों से आए हुए थे जिनमें व्यापारियों के जवान बेटे भी थे। इसके अतिरिक्त बेरोजगार भूतपूर्व सैनिक, असंतुष्ट पेशेवर तथा भारी संख्या में छात्र भी मुसोलिनी के अनुयायी बन गये थे। फासीवादी पूरी तरह कम्युनिस्टों के खिलाफ थे। अधिक से अधिक पूँजीपति ही उन्हें धन देते थे। 1920-21 में इटली में गृहयुद्ध का सा माहौल बना हुआ था। सरकार मूक दर्शक बनी बैठी थी और मुसोलिनी जनता को यह विश्वास दिलाने में कामयाब होता जा रहा था कि उनका भविष्य केवल उसकी पार्टी के हाथ में सुरक्षित है। प्रधानमंत्री जिमोलिती को 1921 में बाध्य होकर इस्तीफा देना पड़ा। उसकी जगह ल्युगी फैकना इटली का प्रधानमंत्री बना। पूर्ववर्ती प्रधानमंत्री की तरह वह भी निकम्मा और कमजोर साबित हुआ।

2.4.4 इटली में फासीवाद के उदय के कारण

अब तक आप फासीवाद के अर्थ से वाकिफ हो चुके हैं। आप फासीवादी जर्मनी व इटली की

कार्ययोजना से भी परिचित हो चुके हैं। हमने बताया था कि फासीवाद के पास कोई विचारधारा नहीं थी। वह तो महज किन्हीं खास परिस्थितियां की प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट हुआ था। हमने संक्षेप में यह बताने की कोशिश की है कि इटली और जर्मनी ने फासीवाद को कैसे और क्यों अंगीकार किया। इस उपभाग में हम इटली में फासीवाद के विकास के संबंध में विस्तृत चर्चा करेंगे, साथ ही उसकी घरेलू और विदेशी नीतियों पर भी प्रकाश डालेंगे।

इटली, जर्मनी तथा आस्ट्रिया–हंगरी के द्वैत गठबंधन में 1882 में सम्मिलित हुआ था। नतीजतन, द्वैत गठबंधन त्रिकोणीय गठबंधन में तब्दील हो गया। यह गठबंधन रूस और फ्रांस का मुकाबला करने के लिए बना था। लेकिन इटली इस गठबंधन का स्थायी स्दस्य बने रहना नहीं चाहता था। क्योंकि आस्ट्रिया–हंगरी के साथ कहीं कहीं इसका सीमा विवाद भी चल रहा था। इटली उत्तरी अफ्रीका के लीबिया को अपने साम्राज्य का अंग बनाना चाहता था। जब फ्रांस ने इटली को आश्वासन दिया कि वह उसके लीबिया अभियान में बाधा नहीं डालेगा तब इटली ने भी बदले में फ्रांस को यह आश्वासन दे डाला कि वह फ्रांस जर्मनी युद्ध में हिस्सा नहीं लेगा। किन्तु इटली त्रि–गठबंधन से औपचारिक रूप से अलग नहीं हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभ होने पर इटली ने तटस्थता की घोषणा कर दी। तथापि इतालवियों के मन में युद्ध में हस्तक्षेप करने के सवाल पर घोर संशय बना रहा। समाजवादी जो इटली की संसद में 80 सदस्य थे, अगर सरकार की तटस्थता की नीति का समर्थन कर रहे थे तो अन्य दूसरे पूंजीपति, हथियारों के निर्माता व दक्षिणपंथी राजनीतिक समूह युद्ध में हस्तक्षेप करने के पक्षधर थे। अंततः इटली केन्द्रीय शक्तियों के खिलाफ गठबंधन के साथ युद्ध में शामिल हो गया। गठबंधन ने इटली से वादा किया कि अगर युद्ध में उसे विजय मिलती है तो वह जर्मनी और आस्ट्रिया–हंगरी के कुछ हिस्से इटली को सौप देगा। जो क्षेत्र इटली को सौंपे जाने थे वे थे टायरोल से लेकर ब्रेनर पास तक क्षेत्र ट्राइस्टे, फियूम, गार्सिया तथा डालमातियन क्षेत्र के कई द्वीप। इस तरह अपने साम्राज्य के विस्तार की प्रत्याशा में इटली त्रिपक्षीय संधी से अलग हो गया। वह अंततः 23 मई, 1915 को युद्ध में शामिल हो गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युद्ध में इटली की जीत हुई। युद्ध के अंतिम दिनों में इटली ने गठबंधन की ओर से युद्ध में बहुमूल्य योगदान किया था। किन्तु युद्ध खत्म होने के तुरन्त बाद उसे अहसास होने लगा कि युद्ध में उसे आशा से बहुत ज्यादा खर्च करना पड़ गया है। अनुमानतः युद्ध में 7000000 इटालियन सैनिक मारे गये थे तथा 1000000 घायल हुए थे। आर्थिक क्षति तो चिंता का कारण थी ही। इस स्थिति में इटली के पेरिस शांति सम्मेलन का ही भरोसा रह गया था। वे आशा कर रहे थे कि उन्हें वो तमाम क्षेत्र मिल जायेंगे जिनके बारे में वादा किया गया था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। विल्सन का आदर्शवाद इटली के मार्ग में रोड़े बन कर खड़ा हो गया। इस वादा–खिलाफी के लिए इटली ने इंगलैंड व फ्रांस को दोषी ठहराया। उन्हें पता चला कि फियूम भी उन्हें नहीं मिलेगा। अभी पेरिस शांति सम्मेलन चल ही रहा था कि इटली के कवि गैब्रियल डि अनुन्जियों ने तख्तापलट की योजना लेकर फियूम पर कब्जा कर लिया। पेरिस शांति सम्मेलन में इसकी तीखी भर्त्सना की गयी। प्रधानमंत्री और लैण्डों, जो पेरिस शांति सम्मेलन में इटली को न्याय दिलाने में विफल रहा था, को हटाकर 1920 में जियोलिती को प्रधानमंत्री बना दिया। नये प्रधानमंत्री ने कवि के उग्र–राष्ट्रवाद की अवधारणा से असहमति जतायी। मियोलिती ने रिवेलो नामक स्थान पर 1920 में युगोस्लाविया के एक समझौता किया जिसके फलस्वरूप फियूम युगोस्लोवाकिया को लौटा दिया जायेगा। मियोलिनी के इस कदम से सरकार अत्यंत अलोकप्रिय हो गयी और प्रकारान्तर से यही इटली में फासीवाद के बढ़ने का महत्वपूर्ण कारण भी बना।

अल्बनियाई समस्या भी गियोलिनी की सरकार की अलोकप्रियता का एक महत्वपूर्ण कारण थी। एड्रियेटिक सागर के दूसरे तट पर बसा अल्बानिया एक छोटा सा देश है। पुर्तगाल व युगोस्लाविया इसके निकटतम पड़ोसी हैं। युद्ध के दौरान अल्बानिया पर गठबंधन का कब्जा हो गया था। युद्ध के बाद इटली अल्बानिया को मैडेटेड क्षेत्र के रूप में घोषणा करवा कर अपना आसन कायम करना चाहता था। किन्तु पेरिस शांति सम्मेलन ने इटली की यह मांग ठुकरा दी। इतना ही नहीं, अल्बानिया को पुर्तगाल, युगोस्लाविया तथा इटली के बीच बांट देने का प्रस्ताव भी अस्वीकृत हो गया। फिर भी इटली के सैनिक अल्बानिया पर अपना कब्जा बनाये रहे। उन्नीसवी सदी के दूसरे दशक के मध्य तक इटली में अनेक आंतरिक समस्याएं पैदा हो गई जिसके चलते प्रधानमंत्री को मजबूरन अपनी सैन्य टुकड़ियों को अल्बानिया से हटाना पड़ा। प्रधानमंत्री के इस कदम से इटली की जनता क्रुद्ध हो उठी।

इसके अलावा फ्रांस और इंगलैंड ने 1915 में निकट पूर्व के जिन क्षेत्रों को इटली के हवाले कर देने का वादा किया था, वह भी इटली को हासिल नहीं हुआ। वे क्षेत्र या तो पुर्तगाल को दे दिए

गये या फिर उन्हें तुर्की के अधीन ही रहने दिया गया। अफ्रीका में इंगलैंड, फ्रांस एवं बेल्जियम ने जर्मनी के कितने ही उपनिवेशों को मैंडेट में बदल दिया था, लेकिन इटली को कोई भी उपनिवेश नहीं मिला। उसे सिर्फ लीबिया और सोमालीलैंड के अपने उपनिवेशों में विस्तार करने का मौका मिला। इटली के लोग विदेशी मामलों के ऐसे कुप्रबंधन से काफी नराज थे। इटली के मिजाज की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति उस वाक्यांश में हुई थी जिसमें इटली की जीत को अपंग जीत की सजा दी गयी थी।

इटली की आर्थिक स्थिति भी अराजक थी। लाखों की संख्या में लोग सेवा से निकाल दिए गए थे। बेरोजगारी, बजटीय घाटा और आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में बेतहाशा बढ़ोतरी हो रही थी। यह स्थिति समाजवादी ताकतों के बढ़ने के लिए अनुकूल थी। 1919 के संसदीय चुनाव में समाजवादियों को 156 सीटें मिली थी। किन्तु वे सदैव सरकारी कदमों का विरोध करते रहे और इस तरह संसद को पंगु बना के छोड़ दिया। इसकी तरफ कम्युनिस्ट और उसके सहयोगी विरोध व प्रदर्शनों का आयोजन कर रहे थे। 1919 से 1920 में हड़ताल, तालाबंदी एवं विरोध के कारण 35,00,000 कार्य दिवसों की क्षति हुई थी।

सरकार इस संकट से जूझने में असमर्थ थी। अगर संसद समस्याओं का समाधान नहीं कर पायी तो कम्युनिस्ट भी कोई पूर्ण विकल्प नहीं सुझा सके। उल्टे, इटली के समाज और अर्थतंत्र को भी झकझोरते रहे। इन परिस्थितियों में फासीवादी नेतृत्व जनता को यह समझने में सफल हो गया कि इटली को एक मजबूत कारगर, राष्ट्रवादी और गैर तथा मार्क्सवादी सरकार की सख्त जरूरत है। इसी पृष्ठभूमि में बेनितो मुसोलिनी सत्ता पर काबिज हुआ तथा इटली में फासीवाद की स्थापना हुई।

2.4.5 यूरोप में नव-फासीवाद

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शीतयुद्ध जब समाप्त होने लगा तो फासीवादी तथा नाजी शक्तियों ने फिर से सर उठाना शुरू कर दिया। इस दफा वे उतने जिद्दी एवं दकियानूस नहीं थे जितना कि वे दो विश्वयुद्धों के बीच की अवधि में थे। फासीवाद शुरू से ही राष्ट्र और उसके गुर्गों का अतिवादी व हताश प्रयास रहा था . . . . . वह एक तरफ तो सर्वाधिकारवादी प्रशासन थोपता था तो दूसरी तरफ राष्ट्रवाद का महिमामंडन करता था।" 1994 में संघवादियों ने इस जुमले को उछालकर इटली में नवफासीवाद के खतरों से सावधान करने का प्रयास किया। फासीवाद एक अनगढ़ व आदिमजातीय विचारधारा है। नवफासीवाद धुर दक्षिणपंथी पार्टी के रूप में संगठित होने की कोशिश कर रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत के बाद यह पहली बार 1994 में हुआ कि इटली की सरकार में नवफासीवादी पार्टी के कुछ सदस्यों को मजबूरन शामिल करना पड़ा। इस पार्टी का नाम नेशनल अलायंस था। यों तो यह पार्टी इंकार करती है कि वह नवफासीवादी पार्टी है, तथापि उसका मुख्य एजेंडा "इटालियन सोशल मूवमेंट है। मालूम हो इसका गठन युद्ध के बाद के दिनों में शुद्ध फासीवादी नीतियों के आलोक में हुआ था। लेकिन इसके अंदर भी फर्क है – कठोर एवं सम्माननीय खंड (हार्डलाइन व रेस्पेक्टेबुल विंग)। सरकार में शामिल होने के बाद नव फासीवादियों ने अपने उदारवादी चरित्र को भुनाने का भरसक प्रयास किया। शीतयुद्ध के अंत के असर से एकीकृत जर्मनी अस्तित्व में आया तो वहां भी नव नाजीवादी समूह पनप आये। लेकिन जर्मनी में वे सरकार में शामिल नहीं है। फासीवाद मूलतः नकारात्मक मूल्य बोधों पर आधारित है। उसकी नजर में आदमी का आदमी द्वारा शोषण, राष्ट्रीय घृणा व असहिष्णुता, सब कुछ जायज है। फासीवाद का अगुआ एक करिश्माई व्यक्ति था। 1920 की वर्साय की संधि में इटली के साथ जो अन्याय हुआ था उसकी याद दिलाते हुए वह जनता में राष्ट्रभक्ति का उन्माद खड़ा करने में सफल हो सका था। यह दूसरे दशक की बात है। शीत युद्ध के बाद के दिनों में न तो इटली में और न ही जर्मनी ने धुर दक्षिणपंथी पार्टी में कोई करिश्माई नेता मौजूद है। फिर नवफासीवाद को न्यायसंगत ठहराने का कोई कारण भी नहीं है। लेकिन मतलब यह नहीं कि हम नवफासीवाद को आसानी से खारिज कर सकते हैं। वह अपना खौफनाक सिर फिर से उठा सकता है।

इस तरह स्पष्ट है कि फासीवाद (1922) इटली की पतनशील राजनीतिक संस्थाओं की प्रतिक्रिया में हुआ था और इसीलिए वह कार्ययोजना ज्यादा और विचारधारा कम है। फिर भी यहाँ यह जान लेना उपयोगी होगा कि लगभग प्रत्येक यूरोपीय राज्य में कोई न कोई फासीवाद पार्टी अथवा आंदोलन सक्रिय रूप से प्रकट हुई/हुआ। यह कल के लिए भी सच था और आज के लिए भी सच है। लेकिन इससे इतना ही साबित होता है कि फासीवाद भले ही कोई सामान्य प्रवृत्ति न हो, फिर भी हम "फासीवादी शैली के प्रशासन की बात तो कर ही सकते हैं। सही है कि जर्मनी की नाजी पार्टी

इटली की फासीवादी पार्टी की तर्ज पर प्रकट हुई थी, तथापि बहुत से लोग दोनों को एक ही कोटि में रखना पसंद नहीं करेंगे। इन दो फासीवादी पार्टियों के बीच कितनी थोथी समानता थी, यह इसी से साफ हो जाता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान उनका गठबंधन टूटने में कोई देर नहीं लगी थी। फिर भी फासीवाद का नाजीवादी रूप नये अथवा पुराने, विविध फासीवादी प्रयोगों को विचारधारात्मक खुराक (नस्लवाद, हिंसा, क्रूरता) देता रहा है। इस तरह स्पष्ट है कि फासीवाद प्रकृति से प्रयोगधर्मा होता है और इसीलिए वह दृढ़ता से किसी दी हुई विचारधारा का अनुकरण नहीं करता है; भले ही कोई इटली, जर्मनी, स्पेन, रोमानिया और दूसरे देशों में हुए ऐसे प्रयोगों में सामान्य विशेषताओं को रेखांकित कर ले।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर को मिलाइए।

1) फासीवाद की तीन अनिवार्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

2) इटली में फासीवाद के उदय के क्या कारण थे ?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2.5 क्रांतियाँ

घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति कई मौकों पर क्रांतियों से प्रभावित हुई है। किसी देश के सामाजिक व्यवस्था में जब अचानक और पूर्ण बदलाव आ जाता है तो उसे क्रांति कहते हैं। उदाहरण के लिए, 1688 में घटित इंगलैंड की गरिमामयी क्रांति एवं 1789 में घटित फ्रांसीसी क्रांति का देश और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर दूरगामी असर हुआ था। इन क्रांतियों के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक आयाम भी थे। इस तरह क्रांति का अर्थ हुआ हठात्, मौलिक एवं व्यापक रूप परिवर्तन। जैसा कि कार्ल, जे फ्रेडरिक कहता है कि अपने नाभिक अर्थ में क्रांति मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ एक चुनौती होती है जो पूर्ववर्ती व्यवस्था से बिल्कुल अलग तरह की होती है। फिर भी क्रांति की उचित परिभाषा करने में एक व्यावहारिक कठिनाई आती है और वह यह कि क्रांति शब्द का प्रयोग विप्लव, तख्तापलट, विद्रोह जैसी स्थितियों के लिए होने लगा है। इन शब्दों के अलग–अलग अर्थ है और प्रत्येक अर्थ क्रांति से भिन्न है। लेकिन यहां हम क्रांति के अलावा किसी और शब्द के अर्थ पर गौर नहीं करेंगे।

2.5.1 क्रांति क्या है ?

सब लोग मानते हैं कि गहरा बदलाव ही क्रांति की मूल धारणा है। यह बतलाना आसान नहीं है कि क्रांति का वास्तविक अर्थ क्या होता है और न ही कितने व्यापक बदलाव को क्रांति कहा जाये। कहा जाता है कि पोप के खिलाफ मार्टिन लूथर का आंदोलन धार्मिक क्रांति थी क्योंकि इसी क्रांति ने ईसाई मत के अंदर प्रोटेस्टेंट पंथ को जन्म दिया था। इसका ईसाई समाज पर गहरा असर हुआ था। इसी तरह मशहूर औद्योगिक क्रांति ने इंगलैंड की बुनियादी अर्थव्यवस्था बदल दी। सामंतवाद की जगह पूंजीवाद स्थापित हो गया। इन क्रांतियों से समाज का कोई भी तबका अछूता नहीं था।

व्यापक परिवर्तन के बारे में लिखते हुए बारबरा साल्वेंट कहता है, "ऐसी घटनाएँ जो शिक्षा पद्धति से लेकर भूमि व्यवस्था तक सब परिवर्तन लाती हैं, निश्चय ही क्रांति की संज्ञा से अभिहित की जा सकती हैं। चीनी क्रांति ऐसी ही घटना थी।" सामान्यतया यह मान लिया जाता है कि क्रांतियाँ अपने में जोर जबरदस्ती तथा हिंसा के तत्वों को समाहित किये रहती है। आमतौर पर यह सच भी है, किन्तु ये क्रांतियां भी अनिवार्य शर्तें नहीं हैं।

फ्रांसीसी विद्वान मौनियर कहता है कि "क्रांति से हमारा आशय उन दूरगामी परिवर्तनों के समुच्चय से है जो समाज की वास्तविक बीमारियों के निदान की दृष्टि से पैदा होता है। ये बीमारियों ऐसी होती है जिनका कोई निदान मौजूदा व्यवस्था में संभव नहीं दीखता है।" अंततः क्या होता है यही देखने की चीज होती है न कि यह कि क्रांति के बारे में हमारी भाषा कितनी भांवुक है अथवा संयमित। यानी साध्य ही महत्वपूर्ण होता है न कि साधन। मौनियर आगे लिखता है —यह जानना बिल्कुल उचित है कि यह शल्य क्रिया गंभीर किन्तु समाज जीवन के लिए महत्वपूर्ण होती है और इसी लिए हिंसक प्रतिरोध से सामना होना तय है और यह स्थिति प्रतिहंसा को जन्म देती है। यह परिभाषा इंगित करती है कि समाज की वास्तविक बीमारी का निदान अनिवार्य है तथा यह कि इस बीमारी का निदान अक्सर हिंसक होता है। यही वास्तव में फ्रांसीसी क्रांति, रूसी क्रांति और चीनी क्रांति के दौरान हुआ भी था। आमतौर पर हम मान लेते हैं कि क्रांति अक्सर सामाजिक आर्थिक चिंता से पैदा होती है, तथापि ऐसे कितने विद्वान है जैसे बर्टेंड जूवेनल, जो मानते हैं कि क्रांति बुनियादी रूप से क्रांति की कई परिभाषाएं है। सैम्मुल पी हंटिंगटन कहता है कि क्रांति समाज के आधिकारिक मुल्यों व मिथकों में त्वरित, मौलिक व हिंसक आंतरिक बदलाव को कहते हैं।" हन्ना आरेंट के शब्दों में कहें तो क्रांति की अवधारणा इस विश्वास से अभिन्न तरीके से जुडी हुई है कि इतिहास अचानक कोई दूसरी राह पकड़ लेता है। वास्तव में क्रांति एक युग से दूसरे युग में संक्रमण का नाम है। उपरोक्त परिभाषाओं व विचारों में जोर देकर कहा गया है कि क्रांति मूल्यों, सामाजिक संरचना व संस्थाओं—सबको पूर्ण रूप से बल देती है। इसके अतिरिक्त सत्ता एक समूह से दूसरे समूह में हस्तांतरण होती है—कानूनी तरीके से या हिंसक तरीके से। किन्तु क्रांति की मार्क्सवादी विवेचना वर्गीय आधिपत्य में आए बदलाव पर ही जोर देती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.5.2 कुछ महत्वपूर्ण क्रांतियाँ

ऊपर क्रांति की जैसी विवेचना की गई है उसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि क्रांति वह गतिविधि/कार्य है जो पुरानी और अपनी उपयोगिता खो चुकी व्यवस्था को उखाड़ फेंकती है। फिर यह भी स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि वह सबकी जरूरत बन चुकी होती है। हमने उल्लेख किया है कि क्रांति व्यापक बदलाव लाती है और इसीलिए उसे सीमित सुधार मान लेना भूल होगी। फिर, क्रांति में अकस्मात परिवर्तन होता है न की धीरे—धीरे। क्रांति का साधन सवैधानिक व अहिंसक हो सकता है तो हिंसक भी। दुनिया के अलग—अलग समाजों में कई क्रांतियां हुई हैं और प्रत्येक की प्रकृति और व्यापकता अलग थी।

कुछ क्रांतियों को उदारवादी अथवा लोकतांत्रिक कोटि में रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए फ्रांसीसी क्रांति की वजह से व्यक्ति और राज्य के संबंधों में व्यापक बदलाव आया था। उसने आजादी, समता और बंधुत्व को बढ़ावा दिया था तथा मनुष्य के अधिकारों की घोषणा की थी।

1789 से पहले फ्रांस में निरपेक्ष राजतंत्र था। राजा सर्व शक्तिमान होता था, जनता को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था और अधिकारों का कोई विभाजन भी नहीं था। असंतोष पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। क्रांति का सूत्रपात पेरिस में हुआ। भीड़ ने शहर पर धावा बोल दिया, सुरक्षाकर्मी बेकाबू कर दिये गये और कैदियों को मुक्त करा लिया गया। भीड़ ने आजादी, समता व भाई चारे का नारा बुलंद किया। देखते ही देखते, पुरानी व्यवस्था मिट गई और क्रांतिकारी सरकार का गठन हुआ। अगले दस वर्षों में कितनी तरह के संविधान लागू हुए, किन्तु प्रत्येक फ्रांसीसी को मत देने का अधिकार प्राप्त था। मतदाताओं को अपने चुने हुए प्रतिनिधियों को औपचारिक निर्देश जारी करने का अधिकार प्राप्त था। फ्रांसीसी क्रांति से भी पहले जब अमरीका के 13 देश ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता के खिलाफ उठ खड़े हुए थे और ईस्वी सन् 1776 के जुलाई महीने में स्वतंत्रता की उदघोषणा कर दी थी, उसे लोकतांत्रिक क्रांति का सूत्रपात माना जा सकता है। घोर संघर्ष के बाद वे ब्रिटिश दासता से मुक्त हुए थे। फिर उन सबने अपना संविधान बनाया जिसके तहत 1789 में संयुक्त राज्य अमेरिका का निर्माण किया गया। इस तरह देखा जाये तो अमरीकी क्रांति एक उदारवादी क्रांति थी जिसके फलस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका में लोकतांत्रिक सरकार की नीव पड़ी। इसी तरह ब्रिटेन में हुई 1689 की गरिमामयी क्रांति रक्तहीन थी किन्तु उसने राजतंत्र को

लोकतंत्र में बदल दिया था। वह एक अत्यंत व्यापक बदलाव था। सन् 1685 में चार्ल्स द्वितीय की मृत्यु के बाद, उसका छोटा भाई जेम्स द्वितीय राजा बना, किन्तु वह मात्र तीन साल ही शासन कर सका। उसने यह अधिकार ले लिया था कि वह संसद की सहमति के बगैर भी किसी विधेयक के खिलाफ वीटो शक्ति का इस्तेमाल कर सकता है। इससे संसद के नेता क्षुब्ध थे। ओरांगे के राजकुमार विलियम को इंगलैंड पर चढ़ाई करने के लिए उकसाया गया। जब उसने इंगलैंड पर चढ़ाई की तो जैम्स द्वितीय भागकर फ्रांस चला गया क्योंकि उसे पता चल गया था कि वह अकेला पड़ गया है। इस तरह वहाँ रक्तहीन महान क्रांति संपन्न हुई थी। विलियम एवं मैरी वहाँ के राजा रानी बने और बनते ही संसद द्वारा प्रस्तावित बिल ऑफ राईट्स को स्वीकृति प्रदान कर दी। यह भी स्वीकार करना पड़ा कि राजा संसद की पूर्व सहमति के बिना कोई टैक्स नहीं लगायेगा। राजा साल में कम से कम एक बार संसद को अवश्य बुलायेगा और संसद की पूर्व स्वीकृति के बगैर कोई सेना नहीं रखी जायेगी। ऊपर जिन तीन क्रांतियों का वर्णन किया गया है, उनमें से प्रत्येक ने प्रशासन के ढर्रे को बदलकर जनता पर जनता के अधिकार को स्थापित किया था।

1917 की बालशेविक क्रांति दूसरी कोटि की थी। उसने तो रूस की सामाजिक व्यवस्था को ही पूरी तरह बदल दिया था। जार का शासन निरंकुश व बिल्कुल अलोकतांत्रिक था। क्रांति पूर्व के रूस में मजदूरों व किसानों का आर्थिक शोषण एक आम बात थी। अर्थव्यवस्था पर या तो सामंतों का कब्जा था या कुछ हद तक पूँजीपतियों का। लोग भूखे और अनपढ़ थे। रूसी ड्यूमा (विधायिका) जार को फरवरी 1917 में ही गद्दी छोड़ देने के लिए मजबूर कर चुकी थी। लेकिन ड्यूमा भी जनता का भरोसा जीतने लायक कोई काम नहीं कर सकी। ड्यूमा द्वारा गठित अस्थायी सरकार ने उस स्थिति में भी युद्ध जारी रखने का निर्णय ले लिया जब सैनिक युद्ध करने से इंकार कर रहे थे। इस परिस्थिति का लाभ उठाते हुए लेनिन ने रेड गार्ड के साथ अक्टूबर, 25, 1917 को धावा बोल दिया और सत्ता पर कब्जा कर लिया। उसकी सरकार ने जर्मनी के साथ युद्ध के अंत की घोषणा कर दी। सामाजिक आर्थिक संबंधों में व्यापक बदलाव आया। बोल्शेविकों ने जनता के नाम पर सत्ता का अधिग्रहण किया था। नतीजतन, सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना के साथ रूस पहला समाजवादी राज्य बना। उदारवादी क्रांतियों के विपरीत, रूसी क्रांति की वजह से रूस की पूरी की पूरी आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था बदल गई थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1949 में हुई चीनी क्रांति भी समाजवादी क्रांति का ही एक और उदाहरण थी। लेकिन रूसी क्रांति के विपरीत चीन की क्रांति भ्रष्ट चियांग काई शेक प्रशासन के खिलाफ लंबे गृहयुद्ध का नतीजा थी। चीनी क्रांति को संभव बनाने में किसानों, मजदूरों, सैनिकों व बुद्धिजीवियों का हाथ था। माओ ने इस क्रांति की अगुआई की थी। क्रांति के फलस्वरूप चीन की अर्थव्यवस्था और राजनीति में जबरदस्त बदलाव आया था।

कुछ लोग हिटलर द्वारा जर्मनी की सत्ता हथिया लिए जाने की घटना को भी क्रांति की ही संज्ञा देते हैं लेकिन वह कथित नाजी क्रांति एक नकारात्मक आंदोलन थी। उसने लोकतंत्र को बर्बाद कर हिटलर की तानाशाही स्थापित की थी और इसीलिए एक प्रतिक्रियावादी घटना को क्रांति का नाम नहीं दिया जा सकता।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि क्रांति वह प्रक्रिया है जिसमें सत्ता अविश्वासनीय शासक वर्ग के हाथ से छिटककर दूसरे वर्ग के हाथ में आ जाती है। इस वर्ग को जनता का विश्वास प्राप्त होता है अर्थात् सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था में इस तरह के बदलाव आ जाते हैं कि एक पूरी नई व्यवस्था ही स्थापित हो जाती है। फिर क्रांति कोई अलग किस्म की घटना भर नहीं होती अपितु घटनाओं की एक पूरी श्रृंखला होती है। उसका मकसद स्थापित प्रणाली को उखाड़ फेंकना ही नहीं होता अपितु उसका मकसद बिल्कुल नए तरीके की व्यवस्था का निर्माण करना होता है। अक्सर क्रांति की प्रक्रिया हिंसक होती है। किन्तु यह जरूरी नहीं है। व्यापक परिवर्तन ताकत का प्रयोग किए बिना भी हासिल किए जा सकते हैं।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर को मिलाइए।

1) क्रांति की अवधारणा की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

....

2.6 सारांश

1) इस इकाई में आपको चार महत्वपूर्ण अवधारणाओं के बारे में बताया गया है। साम्राज्यवाद शब्द का अर्थ है एक देश का दूसरे देश पर आधिपत्य। शुरूआती दौर में साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद के नाम से जाना जाता था। जैसा कि मून ने कहा है, व्यवहार में साम्राज्यवाद का अर्थ था, जैसा कि मून ने कहा — गैर यूरोपीय देशों पर अलग–अलग किस्म के यूरोपीय देशों का आधिपत्य। उपनिवेशवाद का अर्थ था : उपनिवेशों का पश्चिम के पूँजीवादी देशों द्वारा आर्थिक शोषण। उपनिवेशवाद को पूँजीवाद की अंतर्राष्ट्रीय अभिव्यक्ति कहा गया है और जैसा कि लेनिन ने कहा था — "साम्राज्यवाद पूंजीवाद के विकास का शिखर बिंदु है।" द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उपनिवेशों में स्वतंत्रता की तेज भावना जगी और तकरीबन सभी पूर्व उपनिवेश स्वतंत्र हो गये। किन्तु आज भी नव स्वतंत्र देशों पर पूँजीवादी देशों का दबदबा कायम है। उपनिवेशवाद के इस नये रूप को नव उपनिवेशवाद कहा जाता है।

2) राष्ट्रवाद को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की मास्टर कुंजी के रूप में देखा गया है। राष्ट्रवाद एक भावना है — ऐसी भावना जो खास लोगों के बीच धर्म, नस्ल, भाषा, संस्कृति और परम्परा की साझी विरासत के आधार पर एकता के सूत्र में पिरोती है। गुलाम देशों में राष्ट्रवाद जनता को आजादी के लिए लड़ने के लिए एक जुट करता है लेकिन स्वतंत्र देशों में राष्ट्रवाद का मूल राष्ट्रभक्ति के साथ साझा बंधन के रूप में दिखाई पड़ता है। आधुनिक राष्ट्रवाद का जन्म 17वीं तथा 18वीं सदी के दौरान यूरोप और अमरीका में हुआ। हिटलर जैसे नेताओं द्वारा कभी–कभी राष्ट्रवाद का गलत इस्तेमाल भी किया गया है। हिटलर ने राष्ट्रवाद का उपयोग दूसरे देशों के प्रति जर्मनी के लोगों की भावना को भड़काने के लिए किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) फासीवाद खास कार्य योजना पर आधारित एक सिद्धांत था। इसके पास कोई सुपरिभाषित विचारधारा नहीं थी। इसका दृष्टिकोण सामान्यतया नकारात्मक था। वह प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इटली में पैदा हुआ था जिसे बाद में जर्मनी ने भी नाजीवाद के नाम से अंगीकार कर लिया। इसका पराराष्ट्रवाद में विश्वास था तथा समाजवाद, लोकतंत्र निरस्त्रीकरण और यहां तक कि व्यक्तिवाद के खिलाफ होता है। वह धर्म को अस्वीकार नहीं करता तथा युद्ध का महिमामंडन करता है। साथ ही वह किसी एक व्यक्ति को सर्वोच्च नेता के रूप में मान्यता प्रदान करता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए मुख्य रूप से फासीवाद ही जिम्मेदार था।

4) विविध अवसरों पर देश की और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति क्रांतियों से प्रभावित हुई है। क्रांति सामाजिक व्यवस्था में व्यापक बदलाव की सूचना देती है। समाज के दबंग मूल्यबोधों और मिथकों में व्यापक बदलाव के रूप में क्रांति की परिभाषा की जा सकती है। क्रांति एक युग से दूसरे युग में संक्रमण का नाम है। क्रांति हिंसक और अहिंसक दोनों ही प्रकार की हो सकती है। जिन क्रांतियों से व्यापक बदलाव आये हैं, वे हैं — महान क्रांति, औद्योगिक क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति, अमरीकी क्रांति तथा बोल्शेविक क्रांति।

2.7 शब्दावली

गोरे व्यक्ति का बोझ : औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने वाले यूरोपीय देशों का मानना था कि अफ्रीका एवं एशिया के औपनिवेशिक देश साम्राज्यवादी शक्तियों पर बोझ है, जबकि वे वास्तव में उन पर शासन करते थे।

आधिपत्य : कुछ देशों द्वारा अल्पविकसित देशों पर नियंत्रण।

विवेकवाद : परम्परा एवं अंधविश्वास से मुक्त व विज्ञान पर आधारित तर्क।

पूंजीवाद : ऐसी व्यवस्था जिसमें वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन इसलिए किया जाता है ताकि उन्हें बाजार में बेचकर अधिकतम लाभ कमाया जा सके।

बहुराष्ट्रीय निगम : पश्चिमी पूँजीवादी देशों की एक या एक से अधिक कंपनियों में साझीदार कोई विशाल कंपनी। ऐसी कंपनियां अनेक विकासशील देशों में कार्यरत होती हैं। चूंकि उनका मुख्य सरोकार लाभ बढ़ाना होता है, अतः विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर उनका प्रतिकूल असर होता है।

तख्तापलट : सत्ता पर अचानक सेना का कब्जा हो जाना।

गतिरोध : मतभेद की अनसुलझी स्थिति जिसमें पारस्परिक कड़े दृष्टिकोण की वजह से कोई भी निर्णय लेना मुश्किल होता है।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लेनिन बी आई, **साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरण अवस्था** (संकलित ग्रंथ में)

रोजर एण्ड बॉब स्टक्लिफ ओएन, **स्टडीज इन थ्योरी ऑफ इंपेरियलिज्म**

इ. एच. कार, **बोल्शेविक क्रांति**

पोकर टी., मून, **साम्राज्यवाद व विश्व राजनीति**

जे. ए. हाब्सन, **साम्राज्यवाद : एक अध्ययन**

लूई विर्थ, **राष्ट्रवाद के प्रकार** (अमरीकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी) मई 1936

हेयस, **नेशनेलिज्म, एन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज**

पाल्मर एण्ड पर्किन्स, **अंतर्राष्ट्रीय संबंध**

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) साम्राज्यवाद एक देश पर दूसरे देश का आधिपत्य स्थापित करने का तंत्र, गैर यूरोपीय लोगों पर यूरोपीय देशों का आधिपत्य तथा राज्य सत्ता का अपनी सीमा से बाहर जाकर विस्तार करने का नाम है।

बोध प्रश्न 2

1) इंगलैंड में हुई औद्योगिक क्रांति, जिसमें शहरों और अंतसीमतीय संघर्षों का विकास हुआ, के साथ ही सामंतवाद का पतन शुरू भी हुआ। सामंतवाद को हटाकर जो पूँजीवाद स्थापित हुआ, उसने कच्चे माल बाजार की तलाश में अपने डैनों को यूरोप से बाहर भी फैलाया। जैसे जैसे उपनिवेशवादी राजनीतिक सत्ता हासिल करते गये, वैसे–वैसे साम्राज्यवाद का भी विकास होता रहा।

2) उपनिवेशवाद सीधे रूप से पूंजीवाद का प्रतिफल था। औपनिवेशिक शोषण से प्राप्त धन पूंजी बनता रहा। नतीजतन, उपनिवेशवादी देशों का उपनिवेशों में राजनीतिक व आर्थिक नियंत्रण कायम हो गया। पूंजीवाद का उपनिवेशवाद से सीधा संबंध था।

3) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवाद का जो नया रूप प्रकट हुआ उसे नव साम्राज्यवाद का नाम दिया गया। अफ्रीका व एशिया के नव स्वतंत्र देशों का आर्थिक शोषण करके उन पर राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करने का नाम ही नव उपनिवेशवाद है।

बोध प्रश्न 3

1) किसी देश की जनता के बहुल तबकों में एक होने का भाव राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों से बनी एवज की मनः स्थिति अथवा भावना।

2) स्नाइडर चार अवस्थाओं को रेखांकित करता है — संयोजनकारी राष्ट्रवाद। इसके प्रकार हैं: शुभ (भारतीय स्वतंत्रता संग्राम) अथवा अशुभ (हिटलर का नाजीवाद, रचनात्मक व विधवंसात्मक, भौतिक व आध्यात्मिक।)

बोध प्रश्न 4

1) फासीवाद की तीन विशेषताएं : पराराष्ट्रवादी, सर्वाधिकारवादी, समाजवाद विरोधी, युद्धपोषक, व्यक्तिवाद विरोधी। फासीवाद एक राष्ट्र, एक पार्टी एवं एक नेता के सिद्धांत में विश्वास करता है।

2) इटली के लोगों का मानना है कि पेरिस शांति सम्मेलन में उनके साथ अन्याय हुआ है। इटली में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान बनी सरकारें कमजोर थी, नतीजतन वे राष्ट्रीय हितों की रक्षा नहीं कर सकी। कम्युनिस्टों की गतिविधियों ने आर्थिक प्रगति को ठप कर दिया था किन्तु सरकार अराजकता पर काबू नहीं पा रही थी।

बोध प्रश्न 5

1) सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं में होने वाले अचानक परिवर्तन को क्रांति कहते हैं। यह अक्सर हिंसक होती है, किन्तु जरूरी नहीं कि सदैव बल का प्रयोग करना पड़े। क्रांति समाज के मूल्य बोधों एवं मिथकों में व्यापक परिवर्तन लाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 3 कुछ अवधारणाएँ : राज्य व्यवस्था, शक्ति, राष्ट्रहित और राष्ट्रीय सुरक्षा

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 राज्य व्यवस्था
 3.2.1 राज्य व्यवस्था की विशेषताएँ
 3.2.2 राज्य व्यवस्था का विकास
3.3 शक्ति
 3.3.1 शक्ति क्या है
 3.3.2 शक्ति के तत्व
 3.3.3 शक्ति का आंकलन
 3.3.4 शक्ति का तरीके
 3.3.5 शक्ति का प्रबंध
3.4 राष्ट्रीय हित
 3.4.1 राष्ट्रीय हित की परिभाषा
 3.4.2 राष्ट्रीय हित–विदेश नीति का आधारमूल तत्व
3.5 सुरक्षा
 3.5.1 सुरक्षा और राष्ट्रीय हित
 3.5.2 सुरक्षा और परमाणु हथियार
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से जुड़े चार महत्वपूर्ण अवधारणाओं पर चर्चा की गयी है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- राज्य व्यवस्था (स्टेट सिस्टम) का क्या अर्थ है और उसका क्या महत्व है स्पष्ट कर सकेंगे,
- समकालीन सम्प्रभुता प्राप्त राष्ट्रीय–राज्य व्यवस्था का विकास किस प्रकार हुआ यह जान सकेंगे,
- शक्ति को परिभाषित कैसे करें तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में इसकी प्रभावी भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे,
- शक्ति के विभिन्न तत्वों को पहचान कर उनकी विवेचना कर सकेंगे,
- शक्ति के इस्तेमाल के विभिन्न तरीकों की व्याख्या कर सकेंगे,
- शक्ति प्रबंधन के तरीकों के रूप में शक्ति संतुलन तथा सामूहिक सुरक्षा की विवेचना कर सकेंगे,
- किसी राष्ट्र राज्य के संदर्भ में उसके राष्ट्रीय हित के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे,
- राष्ट्रीय हित तथा विदेशनीति के बीच के संबंधों का विश्लेषण कैसे करें, यह जान सकेंगे, और
- सुरक्षा की परिभाषा कैसे करें और राष्ट्रीय हित एंव शक्ति के इस्तेमाल का बचाव करने में सुरक्षा की भूमिका को व्याख्यायित कैसे करें यह समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

आधुनिक संदर्भ में राज्य का तात्पर्य एक निश्चित भूभाग में मौजूद राष्ट्र–राज्य की अवधारणा से समझा जाता है। इसका विकास यूरोप में पंद्रहवीं और सतरहवीं शताब्दी के बीच अनेक युगान्तरकारी परिवर्तनों के मध्य हुआ। आज की दुनिया में ऐसे तकरीबन 185 राज्य हैं जो अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के तहत निर्मित हैं। इन संप्रभुता प्राप्त राष्ट्रों के आपसी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं तथा अंतरक्रियाओं का संचालन जब उनकी विदेश नीतियों के माध्यम से होता है तो इससे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और राजनीति का प्रभुद्य होता है। पूर्ण अधिकार संपन्न राजनीतिक संस्थान के रूप में ये देश अपने तमाम घरेलू संसाधनों का उपयोग युद्ध, राजनय, क्रियाओं या शांति समाधान जैसे अंतर्राष्ट्रीय अंतः क्रियाओं के प्रति सामर्थ्यवान और सक्षम हैं। इस इकाई में हम राज्य व्यवस्था का विकास कैसे हुआ और समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और विश्व समुदाय के प्रति इसकी प्रासंगिकता पर चर्चा करेंगे।

शक्ति (Power) वह क्षमता है जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति दूसरों की सोच और उनकी क्रियाओं को नियंत्रित कर सके। सम्प्रभुता प्राप्त राष्ट्रों के संदर्भ में शक्ति को किसी राष्ट्र "क" के ऐसे सामर्थ्य के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके माध्यम से वह (राज्य "क") किसी अन्य राज्य "ख" या दूसरे राष्ट्रों के बर्ताव को प्रभावित कर सके। इस प्रकार, एक शक्तिशाली राज्य यह सुनिश्चित कर सकता है कि दूसरे अन्य राज्यों की क्रियाएं वैसी ही हों जैसा कि वह उनसे चाहता है। अब, यह किसी राज्य के पास मौजूद शक्ति से आंका जाता है कि उसे सबसे बड़ी ताकत (Super Power) के रूप में आँका जाए। आम तौर पर किसी राष्ट्र की शक्ति को उसके सही रूप में या पूरा का पूरा माप पाना बड़ा कठिन कार्य है। वस्तुतः किसी राज्य की शक्ति उसके उन विभिन्न घटकों (alimants) के माध्यम से मापी जाती है जिनसे उस राज्य विशेष का गठन होता है। ऐसे घटक स्थूल रूप में हो सकते हैं जिन्हें देखा जा सके और उनके आकार का अंदाज लगाया जा सके। दूसरी तरफ ऐसे घटक अदृश्य या अमूर्त रूप में भी हो सकते हैं जिन्हें देखा तो नहीं जा सकता परन्तु जिनका अंदाजा लगाया जा सके या जिनका अहसास किया जा सके। इस प्रकार राज्य का आकार, उसकी भौगोलिक बनावट, नक्शे में उसका स्थान आबादी, सेना का आकार और मौजूद प्राकृतिक संसाधन ऐसे स्थूल या मूर्त घटकों के रूप में आते हैं जिनसे राज्य विशेष की शक्ति का आंकलन किया जा सकता है। अदृश्य या अमूर्त घटकों को किसी राज्य की मौजूदा नेतृत्व की प्रभावकारी क्षमता या उसकी आबादी और सेना में व्याप्त नैतिक साहस जैसे तत्वों से आँका जा सकता है। राज्य अपनी शक्ति का इस्तेमाल विभिन्न माध्यमों से कर सकते हैं। इसके लिए वे साम दाम, दंड भेद या ताकत का सहारा ले सकते हैं। वस्तुतः शक्ति भी पैसे की तरह अलग–अलग तरीकों से प्रदर्शित की जा सकती है। शक्ति सम्पन्न राष्ट्र इसके लिए जिन तरीकों का इस्तेमाल करते हैं उनमें दो बड़े महत्वपूर्ण है। ये हैं, शक्ति संतुलन (बैलेंस ऑफ पावर) तथा सामूहिक सूरक्षा (क्लेक्टिव सिक्यूरिटी)।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को प्रायः विदेशनीति से जोड़ कर देखा जाता है। हालांकि, ऐसा करना हमेशा उपयुक्त साबित नहीं होता है, लेकिन यह भी सत्य है कि राष्ट्र राज्यों के पारस्परिक संबंधों में उनकी विदेश नीतियाँ बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विदेश नीति का आधार राष्ट्र हित पर टिका होता है इसलिए विदेश नीति के निर्माताओं को अपनी परिकल्पना सदैव इस समझ के साथ शुरू करनी होती है कि उनके राष्ट्र के हित किन बातों पर आधारित हैं। यही कारण है कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्र हित को ही अंतिम शब्द के रूप में जाना जाता है।

विदेशनीति के निर्माताओं के सामने पहला दायित्व यही होता है कि वे किस प्रकार अपने राज्य की सुरक्षा का निर्वहन करते हैं। वस्तुतः राष्ट्र हित का सबसे महत्वपूर्ण अवयव सुरक्षा ही होता है। सुरक्षा का मतलब महज किसी राज्य की क्षेत्रीय अखंडता या उसकी संप्रभुता का बचाव ही नहीं है। बल्कि इसका एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवयव आर्थिक विकास भी है क्योंकि इसके ही सहारे कोई राज्य विशेष अपनी शक्ति में इजाफा कर सकता है और फिर उस शक्ति का उपयोग वह विश्व समुदाय के बीच अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने में कर सकता है। इस प्रकार, इस इकाई में हम जिन चार अवधारणाओं पर चर्चा करेंगे वे वास्तव में आपस में काफी अंतरंगता से जुड़े हुए हैं। इन अवधारणाओं को गहराई से समझ बूझकर ही हम अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का वास्तविक आंकलन कर सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.2 राज्य व्यवस्था (State System)

विश्व समुदाय 185 से अधिक संप्रभुता प्राप्त राज्यों में संगठित है। मानव समुदाय का संप्रभुता प्राप्त राज्य के बीच बटवारा ही आज के राज्य व्यवस्था (State System) कहलाती है। इस व्यवस्था को पश्चिमी राज्य व्यवस्था (Western State System) राष्ट्र राज्य व्यवस्था (Nation State System) या संप्रभुता प्राप्त राज्य व्यवस्था जैसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। पामर और पार्किन्स ने इसकी परिभाषा इन शब्दों में दी है, "यह राजनीतिक जीवन का ऐसा रूप है जिसमें मानव आबादी संप्रभुता प्राप्त राज्यों के बीच अलग–अलग इस प्रकार बँटी हुई है कि वे राष्ट्र निर्विवाद रूप से सह अस्तित्व के सिद्धांत पर अमल करते दिखाई देते हैं।" इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी राज्य के दो अत्यंत महत्वपूर्ण गुण "संप्रभुता तथा निश्चित भू भाग" हैं। साथ ही, जैसा कि गार्नर ने कहा है कि लोगों का समुदाय तथा एक व्यवस्थित सरकार की मौजूदगी भी किसी राज्य के बुनियादी तत्वों में ही गिनी जाती है। प्रत्येक राज्य खुद में वह ताकत समाहित रखता है जिससे कि वह अपने राष्ट्र राज्य का विकास बीते हुए महज साढ़े तीन शताब्दियों के इतिहास की बात है। आज यह व्यवस्था तमाम दुनिया में अपना अधिपत्य स्थापित कर चुकी है। अतः अंतर्राष्ट्रीय संबंध वस्तुतः इन्हीं राज्यों के बीच के बनते, बिगडते रिश्ते और उनके बीच की अंतरक्रियाएँ हैं और इन्हीं से राज्य व्यवस्था का निर्माण होता है।

3.2.1 राज्य व्यवस्था की विशेषताएँ

राजकीय व्यवस्था के अस्तित्व के लिए कुछ विशेषताएँ होना अनिवार्य है। इनके बिना राज्य व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। पामर और पार्किन्स ने इन अत्यावश्यक विशेषताओं को कोरोलरीज के नाम से वर्णित किया है। वे राष्ट्रवाद, संप्रभुता और शक्ति की अवधारणा को स्वीकार करते हैं। राष्ट्रवाद वह मनोवैज्ञानिक या आध्यात्मिक गुण है जो किसी राज्य के लोगों को आपस में जोड़ती है और "उनमें वह रास्ता अख्तियार करने की इच्छा जगाती है जिसमें कि उन्हें राष्ट्रहित दिखाई देता है।" संप्रभुता की अवधारणा के पीछे असीमित शक्ति की इच्छा छुपी होती है। एक निश्चित भू–भाग में रहने वाली कोई आबादी तक संप्रभुता प्राप्त कहलाती है जब उसके पास अपनी इच्छानुसार चलने के लिए आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार की स्वतंत्रता मौजूद हो। इस प्रकार राष्ट्रीय शक्ति वस्तुतः किसी राज्य की वह क्षमता है जिसके बल बूते पर वह अपने कार्यों को ठीक उसी रूप में संपन्न कर पाता है जिसमें कि उसने करने का मन बनाया हुआ था। अतः शक्ति स्थूल एवं अमूर्त कई प्रकार के घटकों से बना तत्व है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आपने इकाई 2 में राष्ट्रवाद की अवधारणा के बारे में पढ़ा है तथा इस इकाई के अगले अध्याय में शक्ति की अवधारणा (Concept of Power) की विस्तृत रूप से विवेचना की गयी है अभी हम संप्रभुता की अवधारणा के विषय में संक्षेप में नीचे चर्चा करेंगे। आज के आधुनिक राज्य यथा भारत, ब्रिटेन, रूस अमरीका, पाकिस्तान, या मिस्र आदि में एक साझा गुण पायेंगे। इस सब में आप मानव आबादी के विशाल समुदाय को उसमें मौजूद पायेंगे जो एक सरकार द्वारा शासित होती है। राज्य विशेष की आबादी जहाँ सरकार के निर्देशों का पालन करती दिखाई देती है वहीं यह सरकार किसी भी बाहरी ताकत का हुक्म मानने को बाध्य नहीं होती। ऐसे तमाम राष्ट्र एक निश्चित भू–भाग की सीमा में अवस्थित होते हैं।

इस प्रकार संप्रभुता की साधारण व्याख्या की जाए तो इसका मतलब किसी राज्य की वह असीमित शक्ति है जिसका प्रयोग वह बाहरी तथा आंतरिक दोनों हालातों में करता है। संप्रभुता ही वह मुख्य गुण है जो किसी राष्ट्र को अन्य संस्थाओं या संगठनों से अलग करता है।

संप्रभुता की शुरूआती परिभाषाओं में से एक लोकप्रिय परिभाषा फ्रांस के फिलास्फर जीन बोडिन (1530-1596) द्वारा दी गई है। इसके अनुसार "संप्रभुता शासितों एवं नागरिकों के उपर लागू होने वाला वह असीमित अधिकार है जिसे कानून के किसी दायरे में बांधा नहीं जा सकता।" हालांकि बोडिन की संप्रभुता को इस प्रकार परिभाषित करने के पीछे असल इरादा तत्कालीन फ्रांस सम्राट की गद्दी को मजबूत करना था जो उन दिनों अराजकता तथा गृह युद्ध के मसले को लेकर डगमगा रहा था।

थोम्स हॉब्स (1588-1679) ने सप्रभुता की परिभाषा को नया विस्तार दिया। उसने संप्रभुता की शक्ति को व्यक्तिवादी दायरे से बाहर निकाला। उसके अनुसार संप्रभुता राजा या किसी व्यक्ति विशेष में नहीं बल्कि सत्ता या राज्य में सन्निहित होती है। हॉब्स ने संप्रभुता की तुलना राज्य और

सरकार के साथ की। उन्होंने आतंरिक और बाह्य संप्रभुता के बीच एक बहुत ही महत्वपूर्ण रेखा खींची है। आंतरिक संप्रभुता सर्वोच्च होती है जो राज्य और उसमें रहने वाले नागरिकों पर कानूनी प्राधिकार प्राप्त होती है।

दूसरी ओर, बाह्य संप्रभुता उस हालात को कहते हैं जिसमें दुनिया के तमाम राज्य प्रत्येक देश की स्वतंत्रता, उसकी क्षेत्रीय अखडता एवं अभेदयता को स्वीकार करते हैं तथा उसके इन गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार को मान्यता देते हैं। हालैंड के विधवेता ह्यूगो ग्रोटियस (1583-1645) ने संप्रभुता की व्याख्या "उस शक्ति के रूप में की जिसका क्रियान्वयन दूसरों की नियंत्रण शक्ति के दायरे से बाहर हो।" ग्रोटिप्स के अनुसार संप्रभुता उस वक्त अपने सबसे उज्जवल रूप में दिखाई देती है जब एक राज्य अपने आंतरिक मामलों के निर्वहन के वक्त दूसरे राज्यों के नियंत्रण से पूर्णता मुक्त हो। इन परिभाषाओं के साथ संप्रभुता वर्तमान काल की आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का सबसे निर्णायक तत्व माना जाता है। हम यहाँ इसी बाह्य संप्रभुता के विषय में चर्चा कर रहे हैं।

संप्रभुता की इस अवधारणा को सबसे पहले वैध अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के रूप में मान्यता 1648 की वेस्टफालिया संधि के तहत मिली। इस मान्यता ने इसे पहली बार संस्थागत रूप (Institutional-ised) में देखा। वेस्टफालिया संधि के तहत संप्रभुता के लिए निम्नलिखित विशेषताओं की चर्चा की गयी :

1) केवल संप्रभुता प्राप्त राज्य ही अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के मामलों में शामिल माने जा सकते हैं.

2) किसी भी राष्ट्र को अंतर्राष्ट्रीय मामलों में शामिल होने की मान्यता तभी दी जा सकती है जब उसके पास एक निश्चित भू–भाग, उसमें रहने वाली तयशुदा आबादी और ऐसी प्रभावकारी सैन्य ताकत हो जिसके जरिए वह अपने अंतर्राष्ट्रीय सहभागिता सुनिश्चित कर सके, और

3) अंतर्राष्ट्रीय कानूनों एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अनुपालन में तमाम संप्रभुताप्राप्त राज्यों को समान अधिकार प्राप्त हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.2.2 राज्य व्यवस्था का विकास

यूरोप में तीस वर्षों के युद्ध का समापन 1684 में वेस्टफालिया की संधि के रूप में हुआ। इसी संधि की शर्तों में आधुनिक काल की राज्य व्यवस्था की शुरूआत के सूत्र खोजे जा सकते हैं। ऐसा नहीं कि वेस्टफालिया संधि के पहले दुनिया में राज्यों का अस्तित्व नहीं रहा हो या कि उनमें पारस्परिक संबंधों का निर्वाह नहीं होता था। राज्यों या अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की सामग्री इस संधि के पहले भी दुनिया में मौजूद थी, फर्क बस इतना था कि वर्तमान राज्य व्यवस्था से उनकी तुलना नहीं की जा सकती थी। प्राचीन काल में ग्रीस, भारत, मिस्र और इटली में छोटे–छोटे नगर राज्य हुआ करते थे। प्राचीन ग्रीस में ऐसे नगर राज्य एथेंस और स्पार्टा के रूप में थे तो भारत में इंद्रप्रस्थ और हस्तिनापुर के रूप में। तब इन नगर राज्यों का शासन वंश के आधार पर पीढ़ी दर पीढ़ी चलाया जाता था। प्राचीन काल के विशाल रोमन साम्राज्य के बारे में कौन नहीं जानता जिसका शासन पूरे सभ्य पश्चिमी यूरोप में चलता था। लेकिन तब, नस्ल संबंधों के आधार पर राष्ट्र राज्य की अवधारणा प्रचलित नहीं थी और न ही संप्रभुता नामक कोई मान्यता प्राप्त व्यवस्था थी।

तीस वर्षों के युद्ध की शुरूआत प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक विवादों के बीच हुई। इस लम्बे संघर्ष के बावजूद दोनों धर्मों में से कोई एक दूसरे का अस्तित्व मिटाने में सफल रहा हो, ऐसा तो नहीं हो पाया, हाँ इतना जरूर हुआ कि संघर्ष की समाप्ति के बाद कैथोलिक चर्च की धाक जम गयी। इसका एक सुखद परिणाम यह निकला कि एक दूसरे के अस्तित्व को बरदास्त एवं स्वीकार करने की भावना में जोरदार इजाफा हुआ। यह स्वीकार भावना आज तक बरकरार चल रही है। इसी स्वीकार्य भावना ने राष्ट्र राज्य व्यवस्था की अवधारणा को जन्म दिया। पामर और पार्किन्स लिखते हैं कि "विनाशकारी बरबादी के बावजूद सार्वभौमिक चर्च की सत्ता पर हुए हमले तथा युरोप के टुकड़ों के रूप में सुपरिभाषित राष्ट्र राज्यों का जन्म वेस्टफालियाँ संधि (1648) के रूप में दिखाई दी। इस संधि से उत्पन्न शांति ने यूरोप के लिए तत्कालीन स्थिरता का माहौल बना दिया।"

वेस्टफालियाँ संधि के रूप में तीस वर्षों के युद्ध की समाप्ति ने भविष्य में पनपने वाले उन सिद्धातो के बीज बो दिये जिनसे राज्यों के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में अपनाए जाने वाले आपसी व्यवहार की रूपरेखा निकलनी थी। इसने मध्यकालीन यूरोप में प्रचलित उन अवधारणाओं को बदलना शुरू कर

दिया जो सिर्फ यूरोप पर अवलंबित थी और जिनके पीछे की मूल भावना क्रिस्चयन कामनवेल्थ की सोच से ऊपर नहीं उठ पा रही थी। इस संधि ने अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को विश्व व्यापी ऐसी नई अवधारणा के रूप में देखा गया जो संप्रभुता प्राप्त राज्यों के सह–अस्तित्व पर आधारित थी। नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में सहभागिता करने का एकछत्र वैध अधिकार केवल ऐसे ही निश्चित भू–भाग वाले राज्यों को मिला। इस प्रकार अब केवल संप्रभुता प्राप्त राज्यों का अधिकार बनता था कि वे युद्ध छेड़ सकें, संधियों में शामिल हो सकें अथवा एक दूसरे के साथ मैत्री संबंध बना सकें।

राज्यों की संप्रभुता की अवधारणा के मूर्तरूप लेते ही इसकी स्वाभाविक परिणति या उसके परिणाम के रूप में राष्ट्रों की समानता के सिद्धांत वाली सोच सिर उठाने लगी। इस नये सिद्धांत की वकालत में व्हील की यह दलील पूरी दुनिया में मशहूर हो गई कि, " एक बौना व्यक्ति भी उतना ही बड़ा इंसान है जितना कि एक विशालकाय कद–काठी वाला व्यक्ति, एक छोटा गणतंत्र किसी भी मामले में एक सबसे शक्तिशाली राष्ट्र से कम संप्रभुता प्राप्त नहीं है।"

लेकिन, राष्ट्रों की समानता का यह सिद्धांत कानूनी तौर पर भले सहज स्वीकार्य दिखला हो किंतु इसकी व्यावहारिक स्थिति भिन्न दिखाई देती थी। जहाँ तक राज्यों की समानता की बात थी तो व्यावहारिक रूप में यह केवल यूरोप की महाशक्तियों यथा फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रिया और रूस तक ही सीमित थी। न्यायोचित शक्ति संतुलन की अवधारणा में सन्निहित तथाकथित वर्चस्व विरोधी व्यवस्था वस्तुतः इन्हीं महाशक्तियों का विशेषाधिकार थी और इसके कायदे कानून इन्हीं मुट्ठीभर देशों के लिए प्रचलित थे। यही कारण था कि वेस्टफालिया संधि के बाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के निर्वहन के लिए जो वास्तविक योजनाएँ दुनिया के रोजमर्रा की जिंदगी में आई उनमें से यूरोप के देश प्रायः बाहर ही थे।

बल्कि, इसे यूँ समझें कि इस अवधि के अंतर्राष्ट्रीय कायदे कानून तब के प्रभावी राष्ट्रों में वंशानुगत शासन व्यवस्था की अवधारणा पर आधारित थे। यहाँ संप्रभुता का यह अर्थ समझा जाता था कि यूरोप के विभिन्न भूभागों पर शासन कर रहे वंशानुगत सम्राटों की पीढ़ियों एक दूसरे को अधिकार प्राप्त, स्वतंत्र एवं संप्रभुता प्राप्त की मान्यता देगी। इस प्रकार वेस्टफालिया संधि के बाद की व्यवस्था ने संबंधों के अपने खास स्तर विकसित कर लिये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वेस्टफालिया संधि तथा उसके बाद के उट्रेट संधि के बीच की अवधि में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर दो घटनाक्रम विशेष तौर पर हावी रहे। एक तरफ जहाँ लूई चौदहवाँ, फ्रांस का वर्चस्व बढ़ाने में जुटा रहा वहीं दूसरी तरफ ब्रिटेन, फ्रांस हॉलैंड और स्पेन के बीच प्रतिस्पर्द्धा नयी हदों को पार करती रही। इसका समापन उट्रेट संधि (1713) पर हुआ जिसमें फ्रांस को भारी नुक्सान उठाना पड़ा। इस अवधि में स्वीडन, रूस या पोलैंड की हैसियत ऐसी नहीं थी कि वे पश्चिमी यूरोपीय देशों को विश्वास में लिए बिना अंतर्राष्ट्रीय मामलों में कोई स्वतंत्र फैसला ले सके।

वेस्टफालियन व्यवस्था आने वाले दिनों में नये रूप परिवर्तित करती रही और इन रूपों का विस्तार भी होता गया। इनकी स्पष्ट झलक विएना कांग्रेस (1815) के बाद की उभरी व्यवस्था में दिखाई देने लगी। नयी व्यवस्था भी मुख्य रूप से युरोप पर ही आधारित थी। इस नयी व्यवस्था में शामिल 23 राष्ट्रों में से 22 तो यूरोप के ही थे। यूरोप से बाहर के एकमात्र राष्ट्र संयुक्त राज्य अमरीका को इस व्यवस्था में स्थान मिला था। इस विरोधाभास के बावजूद यह नयी व्यवस्था अनेक मामलों में विश्व व्यापी व्यवस्था के रूप में नजर आने लगी थी। इस व्यवस्था के अंतर्गत ऐसे अनेक कायदे कानून बनाये गये थे जिनका असर कमोवेश पूरी दुनिया पर पड़ना था। इस व्यवस्था का नतीजा यह निकला कि विकास की दौड़ में पिछड़े राष्ट्र तत्कालीन महाशक्तियों की समरधूरि बन गये जहाँ ताकतवर देशों के आपसी झगड़े सुलझाये जाने लगे। इस प्रकार विएना कांग्रेस के बाद उत्पन्न व्यवस्था वस्तुतः महाशक्तियों के वर्चस्व की व्यवस्था थी। इस व्यवस्था को कनसर्ट ऑफ युरोप के नाम से पुकारा जाता है। आज की दुनिया में जो सामूहिक सुरक्षा (क्लेक्टव सिक्यूरिटी) की प्रचलित अवधारणा देती जा रही है उसके बीच कंसर्ट ऑफ यूरोप में ही पड़ गये थे। कंसर्ट ऑफ यूरोप के तहत पाँच महाशक्तियों यथा, ब्रिटेन, फ्रांस, प्रसिया, रूस और आस्ट्रिया ने खुद के उपर यह जिम्मेदारी ले ली कि वे अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की देखरेख करेंगे। यह व्यवस्था इस अवधारणा पर आधारित थी कि विश्व व्यवस्था के सुचारू निर्वहन के लिए अंत्यावश्यक है कि ये पाँचो महाशक्तियाँ विशेष अधिकारों से लैस रहे। विएना कांग्रेस (1815) के बाद वेस्टफालियन व्यवस्था में जो परिवर्तन आते दिखाई दिये, उनके पीछे मुख्य दबाव राष्ट्रीयता का उदय तथा इसकी वजह से प्रचलन में आये नये कायदे कानून थे। इस परिवर्तन की आंधी में संप्रभुता प्राप्त राष्ट्र की अवधारणा को तो चुनौती नहीं मिली लेकिन इसका आधार राजशाही से खिसककर राष्ट्रीयता की तरफ होने लगा।

इस प्रकार राज्य की अवधारणा का राष्ट्रीयता के साथ मेल हुआ और आधुनिक राष्ट्र राज्य की बुनियाद पड़ी। अंततः फीमियन युद्ध की समाप्ति पेरिस सम्मेलन में हुई जिसमें राष्ट्रीय आत्म निर्धारण (Nation self determination) के सिद्धांत को मान्यता मिली। इस प्रकार धीरे–धीरे प्रत्येक राष्ट्रीयता का यह अधिकार पनपा कि वें समानता के आधार पर स्वतंत्र राजनीतिक इकाई के रूप में काम कर सके। आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विकास की दिशा में यह मील का पत्थर साबित हुआ।

वर्ष 1914 तक इस व्यवस्था से जुड़े सदस्यों की संख्या 43 तक पहुँच चुकी थी। इस प्रकार यह पहला मौका था जब अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के परिचालन के मामले में यूरोप के वर्चस्व को भारी झटका पहुँचा। तत्कालीन व्यवस्था में लैटीन अमरीका के 17 देश, एशिया के 3 तथा अफ्रीका और मध्यपूर्व देशों से एक–एक सदस्य शामिल थे। इस प्रकार आधुनिक कूटनीति का बीच जहां वेस्टफालिया में अंकुरित हुआ और विश्ना और पेरिस समझौतों के तहत पनपा वहीं उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जाकर ही वह माहौल बना जब राज्यों के आचरण को लेकर नियमित रूप से अंतर्राष्ट्रीय बैठकें होने लगी और उनमें आवश्यक फैसले लिए जाने लगे। इन कंवेंशनों में जिन विषयों पर चर्चा होती थी उनमें कूटनय के नियम, (रैंक, प्रोटोकाल अपनाये जाने वाले तरीके तथा विशेषाधिकार) समुद्री व्यापार के नियम, तटस्थता, नाकांबदी व अवैध व्यापार, मुक्त सामुद्रिक यात्रा, अंतर्राष्ट्रीय जलमार्ग संबंधी कानून, कापीराइटस और पेटेंट तथा युद्ध के नियम शामिल थे।

समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में राष्ट्रों के एक दूसरे के प्रति औपचारिक आचरण की बुनियाद जिन सिद्धांतों पर टिकी होती है उनमें प्रत्येक राष्ट्र की समान संप्रभुता तथा एक दूसरे के आंतरिक मामलों में दखल नहीं देने का रिवाज सबसे प्रमुख माना जाता है। चूंकि वर्तमान व्यवस्था में ऐसी कोई विश्वव्यापी कानूनी संस्था नहीं है, जिसके फैसले तमाम राष्ट्रों पर बाध्यकारी रूप से लागू हो, इसलिए सिद्धांत रूप से प्रत्येक राज्य को यह छूट रहती है कि वह अपने तरीके से हित चिंतन के रास्ते टटोल सके। और उनका प्रयोग करे। व्यावहारिक रूप में इस छूट का लाभ केवल चंद महाशक्तियां ही उठा पाती हैं। हालांकि उनके लिए भी निरंकुश होकर हित चिंतन के मार्ग पर चलने की छूट अतिशयोक्ति ही प्रतीत होती है क्योंकि सभ्यता के सैकड़ों काल में धीरे–धीरे पनपे अंतर्राष्ट्रीय कायदे कानून और परम्परा इतनी वैधता तो प्राप्त कर ही चुके हैं कि ताकत से ताकतवर देशों के लिए भी विश्व जनमत की एकदम उपेक्षा करते हुए इनके खिलाफ चलना संभव नहीं रह गया है। लीग ऑफ नेशन्स के उत्तराधिकारी के रूप में पनपा संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी तमाम कमजोरियों के बावजूद आज भी विश्व समुदाय की नजरों में प्रतिष्ठा प्राप्त अंतर्राष्ट्रीय संस्था है। यह इसके बावजूद कि अनेक मौकों पर राष्ट्र ताकतवर देशों के आक्रामक तेवरों पर अंकुश लगाने में विफल रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद के उपनिवेशवाद का विश्वस्तर पर सफाया हो गया है। इस कारण से दुनिया का ध्यान अब युरोप की तरफ से हट कर एशिया और अफ्रीका के नवस्वतंत्र राज्यों पर केंद्रित हो गया है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था से संबंधित हाल के घटनाक्रमों पर सरकारी निगाह डालने से उभर रहे नये तौर तरीकों का अहसास होता है जो बताते हैं कि भू–भाग पर आधारित संप्रभुता प्राप्त राष्ट्र राज्यों की वेस्टफालियन व्यवस्था क्रमिक रूप से अवनति की ओर खिसक रही है।

राष्ट्र राज्यों की विशाल संख्या जो औपचारिक रूप से संप्रभुता प्राप्त राष्ट्रों की मान्यता प्राप्त है, के बावजूद वे नयी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के सापेक्ष में खुद को संतुलित करने की कोशिश में जुटे हैं। विश्व स्तर पर उभरी यह नयी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था तीखे तौर पर विभिन्न स्तरों (हीरेरकी) में बँटी हुई है जो इन राष्ट्रों को संतुलन बनाने में और मुश्किलें खड़ी करती रहती है। इस नयी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का आधार महाशक्तियाँ तथा उनके इर्द गिर्द घूमते सेटेलाइट देशों के समूह है। फिर भी संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्ताक्षेप करने वाले कार्यकलाप है (जिसमें कि अंतर्राष्ट्रीय कूटनय के नाम पर महाशक्तियाँ खुले आम विरोधियों के हाथ मरोड़ती रहती है, कठिन शर्तों के साथ खड़े अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा संस्थान आई एम एफ जैसे संस्थान हैं, विशाल आकार वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जिनके सालाना बजट तो अनेक देशों के अपने बजटों से भी विशाल होते हैं। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों के एक एक कर भू–मंडलीकरण की चपेट में आ जाने से राष्ट्रों के संप्रभु अधिकार घट रहे प्रतीत होते हैं। इसके अलावा, विश्व आर्थिक व्यवस्था की बढ़ती अंतर निर्भरता और राष्ट्रों से बड़े दिखाई देने वाले सुप्रा स्टेट अंतर्राष्ट्रीय प्राधिकारों यथा आई एम एफ, गैट, डब्ल्यू एच ओ, वर्ल्ड बैंक आदि का बढ़ता प्रभाव भी राष्ट्रों की संप्रभुता को श्रीहीन बना रहा है। शीतयुद्ध के उतरार्द्ध

वाले आज के दिनों में यदि संसार का एकमात्र देश संप्रभुता की अवनति से साफ बचा हुआ है तो वह है संयुक्त राज्य अमरिका। उल्टे, अमरीका की संप्रभुता तो दिनोदिन ताकतवर होती जा रही है तथा वर्चस्व बढ़ा रही दिखाई दे रही है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) राज्य व्यवस्था से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

....

2) राज्य व्यवस्था की तीन अवधारणाओं अथवा कोरोलरीज की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

3) वेस्टफालियाँ संधि के बाद से राज्य व्यवस्था का विकास कैसे हुआ इसे व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत कीजिए।

Call us @7428092240

....

....

....

....

3.3 शक्ति

3.3.1 शक्ति क्या है ?

शक्ति एक ऐसा तथ्य है जो तमाम किस्म के संबंधों से जुड़ा होता है। स्वाभाविक है कि राजनीतिक संबंध भी शक्ति के प्रभाव से अछूते नहीं रह सकते। ह्रांस मोरजेंथाउ ने शक्ति की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह "किसी एक व्यक्ति के द्वारा अन्य व्यक्तियों के दिमाग और उनके क्रियाक्लापों को नियंत्रित करने की ताकत का नाम है।" लेकिन, शक्ति चूंकि अपने आप में दिखाई देने वाली चीज नहीं है इसलिए इसके प्रभाव को व्यक्तियों तथा राज्यों के बर्ताव या आचरण से आँका जाता है। इस प्रकार शक्ति को व्यापक अर्थों में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है "यह, वह सामर्थ्य या क्षमता है जिसके द्वारा दूसरों के आचरण को नियंत्रित किया जा सकता है उनसे वह करवाया जा सकता है जो कोई करवाना चाहता है और देखा जा सकता है कि दूसरे ऐसा कुछ नहीं करें जो वह नहीं चाहता है।" *अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शक्ति (पावर) किसी राष्ट्र की वह क्षमता है या सामर्थ्य है जिसके माध्यम से वह अपने फैसलों को लागू करवाता है, दूसरे राज्यों के आचरण को प्रभावित करता है और उनसे आदर पाता है।*' प्रोफेसर महेन्द्र कुमार ने इन्हीं शब्दों में राज्य की शक्ति को परिभाषित किया है। साधारण शब्दों में कहें तो शक्ति ऐसा सामर्थ्य है जिसका प्रदर्शन किया भी जा सकता है और नहीं भी। लेकिन, जब कभी भी इस सामर्थ्य का प्रदर्शन किया जाता है

तब इसके द्वारा कोई राज्य अन्य राज्यों के आचरण को यकीनी तौर पर प्रभावित करने की स्थिति में आ जाता है।

प्राचीन भारत में ईसा की चौथी शताब्दी पूर्व कौटिल्य ने भी शक्ति की विस्तृत चर्चा की थी। कौटिल्य के अनुसार शक्ति "ताकत रखने की वह क्षमता है जो तीन गुणों से मिलकर बनती है। ये गुण हैं, ज्ञान, सैन्य बल और शौर्य। मारेजेंथाऊ को भी कोटिल्य के दर्शन का उत्तराधिकारी माना गया है। उसका दर्शन और रचनाएँ भी शक्ति की बुनियाद पर ही आधारित हैं। जैसा कि हम इससे पहले इकाई 1 में भी अध्ययन कर चुके हैं। मोरजेथाऊ की नजर में राजनीति और कुछ नहीं बस शक्ति के इर्द गिर्द घूमने वाले घटनाक्रमों का नाम है। इस व्याख्या के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति राज्यों के बीच शक्ति पाने के लिए चलने वाला संघर्ष मात्र है। राबर्ट डाल ने शक्ति की व्याख्या करते हुए कहा है कि "क" की ताकत "ख" के ऊपर इस प्रकार हावी है कि वह इसकी मदद से "ख" से वह सब कुछ करवा सकता है जो सामान्य परिस्थितियों में "ख" के वश के बाहर की बात थी। इस प्रकार प्रत्येक राज्य चंद अन्य राज्यों के सापेक्ष में शक्तिमान हो सकता है। दुनिया में चंद ऐसे अत्यंत छोटे राज्य भी हैं जो इतने अल्पशक्ति सम्पन्न वाले हैं कि वैसी भी हालत में अन्य किसी भी राज्य के आचरण को प्रभावित करने की क्षमता नही रखते। लेकिन, अधिकांश राज्यों के पास इतनी शक्ति तो अवश्य होती ही है कि वे जरूरत पड़ने पर और परिस्थिति विशेष में अन्य राज्यों के आचरण को प्रभावित कर सकें। हालांकि विभिन्न राज्यों के मौजूदा शक्ति की मात्रा भी भिन्न होती है। अमरीका की तुलना में भारत के पास अन्य राज्यों के आचरण को प्रभावित करने की शक्ति कम है। इस प्रकार अमरीका के पास भारत से अधिक शक्ति है। दूसरी ओर, नेपाल या इंडोनिशया जैसे देशों की तुलना में भारत के पास, संभवतः अधिक शक्ति है। राज्य की शक्ति का प्रदर्शन अनेक तरीकों से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, वर्ष 1996 में शस्त्र परिसीमन संधि पर जैनेवा में चल रही वार्ता सिर्फ इसलिए असफल हो गयी कि भारत ने इसके फैसले में शामिल होने से इंकार कर दिया था। इस इंकार के कारण यह कॉफ्रेंस संपूर्ण परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (सी टी बी टी) को लागू करवा पाने में सफल नहीं हो पाया। इस उदाहरण में हमने देखा कि परिस्थितिविशेष में भारत की शक्ति तमाम राष्ट्र, अमरीका सहित, को प्रभावित करने वाली साबित हुई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शक्ति की तुलना बड़ी सुविधा के साथ पैसे से की जा सकती है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति की वही भूमिका होती है जो अर्थव्यवस्था में पैसों की। लोगों को पैसों की जरूरत तो इसीलिए होती है कि वे अपनी इच्छाअनुसार जो चाहें पा सकें या करवा सकें। हालांकि, कुछ लोगों के लिए पैसे का महत्व इससे भी आगे निकलकर नशा सरीखा हो जाता है। वे पैसों की खोज में अपने तमाम होशोहवास खो देते हैं सिर्फ इसलिए कि इसका अधिकाधिक संग्रह कर सकें। ऐसे लोगों के लिए पैसा कुछ करने या पाने का माध्यम नहीं बल्कि अपने आप में लक्ष्य बन जाता है। परन्तु अधिकांश लोगों के लिए पैसा कुछ पाने या करने का माध्यम भर ही रहता है। इसी प्रकार शक्ति भी राज्यों के अस्तित्व के लिए, अत्यंत मूल्यवान अवयव है। लेकिन अनेक दफा यह उनके लिए महज लक्ष्य भर बन कर रह जाता है। प्रत्येक राज्य की सबसे बड़ी इच्छा यही होती है कि वह जितनी अधिक से अधिक शक्ति संग्रह कर सके। इसीलिए बर्नोन बैन डाइक ने लिखा था कि : शक्ति एक साथ दोहरी भूमिका निभाती है "यह राज्यों के लक्ष्यों का सरताज भी है और उनके वर्चस्व को स्थापित करने का साधन भी।" डाइक यह कहना चाहता है कि राज्यों के लक्ष्यों तथा इरादों में सबसे पहला स्थान शक्ति की प्राप्ति का है और फिर यही शक्ति वह बुनियादी माध्यम भी है जिसके द्वारा वे राज्य अपने हितों का मार्ग टटोलते हैं।

इस प्रकार शक्ति अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की धूरी है। लेकिन इसे परिभाषित करना हमेशा आसान नहीं होता। हालांकि विभिन्न तरीकों से इसे परिभाषित करने के अनेकों प्रयास किये गये हैं। कुलोम्बिस और वूल्फ ने शक्ति को परिभाषित करते हुए इसे "ऐसे सार्वभौम अवधारणा के रूप में चित्रित किया है जो उन सब क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं को प्रतिबिम्बित करता है जिनके द्वारा कोई कर्ता "क" अन्य दूसरे कर्ता "ख" के आचरण को नियंत्रित करता है।

शक्ति तीन बुनियादी अवयवों से बना है: बल, प्रभाव और प्राधिकार। कॉलोम्बिस और वुल्फ के अनुसार, जब कर्ता आदर या स्नेह के वशीभूत होकर स्वेच्छा से कर्ता "क" की इच्छा का पालन करता है तो यह अधिकार की श्रेणी में आता है। प्रभाव की परिभाषा में इसे कर्ता क के ऐसे कृत्य आते हैं जब वह समझा बुझा कर, ताकत का इस्तेमाल किये बिना कर्ता ख को बाध्य कर देता है कि वह कर्ता व स्वेच्छा से उसके कर्ता क के निर्देशों का पालन करे। अंत में, बल तब प्रभावी माना जाता है जब कर्ता क कर्ता ख पर पूरा दबाव डाल कर उसे बाध्य कर देता है कि वह कर्ता ख

उसके कर्ता क के राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति करें। इस प्रकार हम देखते हैं कि शक्ति तीन *अवयवों* प्राधिकार (अथोरिटी : स्वेच्छा से पालन करना), प्रभाव (इंफ्लुएंस : समझा बुझा कर स्वेच्छा से निर्देशों का पालन करवाना), एवं बल (दबाव डालकर जबरन निर्देशों का पालन करवाना) का मिश्रण मात्र हैं।

शक्ति

प्राधिकार प्रभाव बल

3.3.2 शक्ति के तत्व

कोई भी राष्ट्र शक्ति का संचय इसके विभिन्न तत्वों के माध्यम से करता है। ऐसी कोई परमस्थिति नहीं है जो खुद–ब–खुद शक्ति में बदल जाती हो। शक्ति का संचय विभिन्न तत्वों के संयोग से विभिन्न हालातों में होता है। अगर हालात बदल जाएं तो हो सकता है कि उन्हीं तत्वों का संयोग शक्ति का उद्घोष नहीं कर पाए। इसी प्रकार किसी हालात विशेष में चंद तत्वों का संयोग किसी देश विशेष के लिए विशेष शक्ति का उद्घोष करे जबकि इन्हीं हालातों और उन्हीं तत्वों का संयोग किसी अन्य देश के लिए उतनी शक्ति का समावेश नहीं कर पाए। शक्ति का आधार बनने वाले इन तत्वों को मोटे तौर पर दो दो भागों, मूर्त (प्रकट) या अमूर्त (अदृश्य) में बाँटा जा सकता है। दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो शक्ति को दो अन्य भागों, संख्यात्मक और गुणात्मक में बाँटा जा सकता है। विलियम इबेनस्टिन ने शक्ति के संदर्भ में इसके गुणात्मक पहलु पर जोर दिया है वह कहता है कि

"अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में, किसी राष्ट्र विशेष के लिए उसकी शक्ति का आकलन वस्तुतः गुणात्मक फैसलों और मापदण्डों पर निर्भर करता है। उसका कारण यह है कि कभी राष्ट्र विशेष की राष्ट्रीय शक्ति उसकी आबादी, उसके पास मौजूद नये संसाधन तथा अन्य संख्यात्मक कारकों के कुल योग से कहीं अधिक होती है। किसी राष्ट्र की कुल शक्ति का आंकलन जिन गुणात्मक तत्वों के आधार पर किया जाता है उनमें उस राष्ट्र की अन्य राष्ट्रों के साथ साझेदारी करने की क्षमता, उसके नागरिकों में मौजूद राष्ट्र प्रेम का जज्बा, उसे संस्थानों का लचीलापन, उसके तकनीकी ज्ञान की क्षमता, संकटों को झेलने की उसकी क्षमता आदि शामिल होते हैं।"

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शक्ति के विभिन्न तत्वों की संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत है:

मूर्त तत्व : आबादी एक ऐसा तत्व है जिसे आसानी से प्रकट रूप में गिना जा सकता है। इसलिए यह शक्ति का एक मूर्त तत्व है। ऐसा अमूमन माना जाता है कि बड़ी आबादी वाले राष्ट्र, अपेक्षाकृत शक्तिशाली होते हैं। बड़ी आबादी के फायदे यह है कि राष्ट्र विशेष को इससे एक मजबूत सेना बनाने में मदद मिलती है। इसके अलावा उसे अपनी आर्थिक गतिविधियों के संचालन में अधिक से अधिक लोग उपलब्ध होते हैं। परन्तु, सिर्फ एक बड़ी आबादी की मौजूदगी किसी देश को शक्तिशाली बनाने के लिए काफी नहीं होती। उन्नीसवीं सदी का चीन आबादी के मामले में ब्रिटेन से काफी आगे था परन्तु शक्ति के मामले में ब्रिटेन से उसका कोई मुकाबला नहीं था। ताजा उदाहरण इजरायल का है जिसकी आबादी केवल 50 लाख की है, लेकिन शक्ति के मामले में उसकी गिनती दुनिया के शीर्ष देशों में होती है। इजरायल ने तो इतनी छोटी आबादी के बावजूद परमाणु हथियारों जैसे घातक अस्त्रों से खुद को लैस कर लिया है। इस प्रकार जैसा कि कॉलोम्बिस और वूलफ का कहना है, "एक आबादी जो स्वस्थ है, जिसे उपयुक्त पोषाहार उपलब्ध है, जो भावनात्मक एकता में बँधी हुई है उपयुक्त भौगोलिक दायरा जिसे रहने के लिए उपलब्ध है, और जिसके पास ठोस सूचना तंत्र हो — ऐसी आबादी वाला राष्ट्र किसी भी दूसरे अन्य ऐसे राष्ट्र से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है जिसकी आबादी कुपोषण और बीमारियों से ग्रस्त हो, जिसे रहने के लिए अति संकुचित भौगोलिक दायरा उपलब्ध हो, जो अशिक्षित हो, जिसमें एकता का अभाव हो और जो राष्ट्र के प्रति वफादार नहीं हो।"

भू–भाग : शक्ति का दूसरा मूर्त तत्व भू–भाग है। कुछ लेखक इस तत्व को भौगोलिक क्षेत्र का नाम देते हैं और प्रभावकारी भू–भाग को इसके भौगोलिक क्षेत्र के अंदर डालते हैं। इस तत्व के महत्वपूर्ण घटकों में राष्ट्र का आकार इसका वातावरण व मौसम भौगोलिक बनावट तथा नक्शे में इसका स्थान आदि शामिल है। सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि बड़े आकार वाला राष्ट्र छोटे आकार वाले राष्ट्रों की तुलना में अधिक शक्तिशाली होता है। भू–भाग का बड़ा आकार किसी राष्ट्र विशेष के लिए अधिकाधिक कृषि भूमि उपलब्ध कराता है और औद्योगिक गतिविधियों में भी वृद्धि के अवसर प्रदान करता है। इसके अलावा बड़ा भू–भाग इसकी सेना को रक्षात्मक रणनीति को भी

बेहतर अवसर प्रदान करता है। युद्ध में अग्रिम मोर्चे पर पराजय के बाद ऐसे राष्ट्र की सेना को पीछे हटने के लिए पर्याप्त भू–भाग मिलता है – पीछे हट कर यह सेना फिर से एकजुट होकर आगे बढ़ती हुई दुश्मन सेना की घेरेबंदी कर उसे पराजित कर सकती है। लेकिन, सिर्फ आकार किसी देश की शक्ति का अंतिम निर्धारक घटक नहीं हो सकता। किन्हीं हालातों में कोई छोटे आकार वाला राष्ट्र भी अधिक शक्तिशाली बन सकता है। इजरायल इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसने भू–भाग के छोटे आकार के बावजूद एक सशक्त और विशाल सेना खड़ी कर रखी है। दूसरी तरफ कनाडा और ब्राजील जैसे विशाल भू–भाग वाले राष्ट्र होने के बावजूद दुनिया के शक्तिशाली देशों में नहीं गिने जाते। कारण, कनाडा के बड़े भू–भाग का अधिकांश हिस्सा बर्फीली झीलों से और ब्राजील का जंगलो से अटा पड़ा है।

इसी प्रकार किसी देश का मौसम भी उसकी शक़्ति को प्रभावित करता है। इस प्रकार अंटार्टिका का बर्फीला भू–भाग और सहारा का विशाल रेगिस्तान किसी राष्ट्र की शक्ति संरचना के लिए कहीं से भी उपयुक्त नहीं हो सकते। हालांकि इन्हीं भौगोलिक क्षेत्रों की सतह के अंदर यदि पेट्रोलियम के भंडार या यूरेनियम के स्त्रोत निकल आएँ तो जिन राष्ट्र विशेषों से ये भू–भाग जुड़े हैं उनकी शक्ति में नाटकीय ढंग से इजाफा हो सकता है। इसके अलावा राष्ट्र की भोगौलिक बनावट तथा नक्शें में स्थान उनकी रणनीति के लिए बड़ा महत्व रखता है। भौगोलिक बनावट राष्ट्रों के बीच की सीमा तय करने में तथा शक्ति के निर्धारण में अहम भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार ऊँचे पहाड़ों तथा समुद्र से घिरे देशों के लिए ऐसी प्राकृतिक सीमा उनकी सुरक्षा को मजबूत करती है और इस प्रकार उनकी शक्ति बढ़ाती है। हालांकि, यह विशेषता भी अकेले शक्ति अभिवर्द्धन के लिए जिम्मेदार हो ऐसा नहीं है। लेकिन इसमें दो मत नहीं कि कृत्रिम रूप से देशों के बीच खींची गई सीमा रेखा अमूमन इन देशों की शक्ति का अपव्यय करने का प्रमुख कारण बन जाती है। भारत पाकिस्तान तथा जर्मनी फ्रांस इस बात के आदर्श उदाहरण हैं।

प्राकृतिक संसाधन : किसी देश के शक्ति निर्धारण में उस देश में मौजूद प्राकृतिक संसाधनों का भंडार प्रभावी भूमिका निभाता है। इस प्रकार पेट्रोलियम, यूरेनियम या अन्य दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों की मौजूदगी किसी राष्ट्र विशेष को अत्यंत शक्तिशाली बना सकती है। अरब देशों का उदाहरण सामने है। पेट्रोलियम भंडार का मालिक होने के कारण दुनिया का शक्तिशाली से शक्तिशाली देश इनकी उपेक्षा करने का साहस नहीं जुटा सकता। कोयला और लोहा जैसे प्राकृतिक संसाधन रखने वाले देश भी मौका पड़ने पर दुनिया के सामने अपनी शर्ते थोप सकते हैं। खनिज पदार्थ यदि किसी देश को शक्तिशाली बनाते हैं तो साथ ही वह देश अपना खनिज, कृषि पदार्थ और औद्योगिक उत्पाद का उपहार बाँट कर अपने अधिकार क्षेत्र में अभिवृद्धि कर सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि क्षमता : शक्ति का चौथा महत्वपूर्ण मूर्त तत्व उसकी कृषि क्षमता है। जिस देश को खाद्यान्नों के मामले में आत्म निर्भरता प्राप्त है वह युद्ध जैसे संकट की घड़ियों में अपेक्षाकृत रूप से अधिक शक्तिशाली होता है।

सैन्य क्षमता : शक्ति का पाँचवा मूर्त तत्व सैन्य क्षमता है। परम्परा से चली आ रही कहावत भी इस बात को पुष्ट करती है कि शक्ति का आधार सेना का आकार होता है। किसी राष्ट्र राज्य की सैन्य क्षमता का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि वहां सुरक्षा तथा सैन्य गतिविधियों के लिए खर्चे जाने वाले बजट का आकार कितना बड़ा है। इसके अलावा किसी राष्ट्र विशेष ने यदि अपने भौगोलिक सीमा के बाहर भी सैन्य ठिकाने जमाने में सफलता प्राप्त कर ली हो तो उसकी सुरक्षा एवं मारक शक्ति दोनों तरह की क्षमता प्राप्त कर ली हो तो उसकी सुरक्षा एवं मारक शक्ति दोनों तरह की क्षमता में जोरदार इजाफा हो जाता है। ऐसी सैन्य गतिशीलता हालांकि राष्ट्र राज्य की इस क्षमता पर निर्भर करती है कि वह जमीन, समुद्र एवं वायु के माध्यमों से शत्रु के खिलाफ किस सीमा तक युद्ध को चला सकता है। परन्तु यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि राष्ट्र राज्य की सफलता का दारोमदार अंततः चंद अमूर्त तत्वों यथा तैयारी, प्रशिक्षण नेतृत्व, नैतिक बल आदि पर भी निर्भर करता है क्योंकि हालात विशेषों में सेना कैसे अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर पाती है। यही इन्हीं अमूर्त तत्वों की देन है।

शक्ति के मूर्त तत्वों की चर्चा से स्पष्ट हो जाता है कि किसी संप्रभुता प्राप्त राष्ट्र राज्य व्यवस्था में राष्ट्र राज्यों की क्षमता में अभिवर्द्धन के लिए इन मूर्त तत्वों की मौजूदगी आवश्यक है। वहीं पर इन अमूर्त तत्वों के बिना भी संप्रभुता प्राप्त राष्ट्र राज्य की शक्ति निष्फल हो जाती है।

शक्ति के अमूर्त तत्व

शक्ति के अमूर्त तत्वों में नेतृत्व, अधिकारी तंत्र की कार्यकुशलता, सरकार का स्वरूप, समाज में प्रगाढ़ता जैसे तत्व शामिल हैं। हालांकि इन तत्वों को प्रकट रूप में माप पाना संभव नहीं है। लेकिन इससे इनकी इस महत्ता में कोई कमी नहीं आती कि किसी संप्रभुता प्राप्त राष्ट्र की शक्ति में इजाफे के लिए ये कितने आवश्यक हैं।

शक्ति के अत्यंत महत्वपूर्ण अमूर्त तत्वों में नेतृत्व का स्थान आता है। इसका महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि राष्ट्र विशेष का नेता अपने देश की विदेश नीतियों की सफलता की राह में अपने नागरिकों को किस हद तक प्रेरित कर पाता है। इस तत्व की अचूक मांप तो संभव नहीं है लेकिन किसी संप्रभुता प्राप्त राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में पड़ने वाले प्रभाव पर नेतृत्व की कुशलता की छाया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

अधिकारी तंत्र की कार्य कुशलता शक्ति के अमूर्त तत्वों में महत्व के दृष्टिकोण से दूसरे स्थान पर आता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जिन राष्ट्रों के पास कार्यकुशल एवं चुस्त अधिकारी तंत्र होता है वे अपनी घरेलू तथा विदेशिक नीतियों को बेहतर ढंग से कार्यन्वित कर सकते हैं।

शक्ति का तीसरा अमूर्त तत्व किसी राष्ट्र विशेष की शक्ति इस बात पर भी बहुत हद तक निर्भर करती है कि वहाँ की सत्ता का स्वरूप क्या है। हालांकि आम या विशेष हालातों में विभिन्न प्रकार की सरकारों का राष्ट्र विशेषों की शक्ति पर क्या असर पड़ता है इसे मापा जाना बड़ा कठिन कार्य है। हाँ इतना जरूर कहा जा सकता है कि जिस राष्ट्र विशेष में अपनी घरेलू आवश्यकताओं और बदलते विदेशी हालातों के अनुरूप चुस्ती से निर्णय लेने की क्षमता हो तथा जो खुद को परिस्थितियों के अनुरूप ढालनें की क्षमता रखता हो उसकी शक्ति अधिक प्रबल मानी जाती है। इसके अलावा राष्ट्र विशेष में मौजूद सत्ता लोकतांत्रिक कायदे कानूनों के प्रति कितनी जवाब देह है इसका असर भी उस राष्ट्र की शक्ति पर काफी पड़ता है। एक जवाबदेह संप्रभुता प्राप्त राष्ट्र की विदेश नीति तो बदलते अंतर्राष्ट्रीय माहौल के अनुरूप चुस्त होती ही है साथ ही उसे विश्व स्तर पर अधिकाधिक मान्यता भी मिलती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सामाजिक प्रगाढता शक्ति का चौथा अमूर्त तत्व है। यह आम मान्यता है कि जिस किसी राष्ट्र विशेष की आबादी में आंतरिक एकजुटता रहती है वही राष्ट्र शक्तिशाली होता है। आतंकवाद की चपेट में फंसा राष्ट्र, नियमित तौर पर हड़तालों तथा गृहयुद्ध से जूझने वाले देश आंतरिक तौर पर अस्थायित्व और अनिश्चितता के शिकार होते हैं। जाहिर है कि ऐसे देशों की ऊर्जा अपनी समस्याओं से जूझने में व्यय होती रहती है और आने वाले समय में कमजोर होकर ये अपनी संप्रभुता का विशेषधिकार खो बैठने को मजबूर हो जाते हैं।

और अंत में शक्ति के अत्यंत महत्वपूर्ण अमूर्त तत्वों में राष्ट्रीय नैतिक बल का प्रमुख स्थान है। अगर किसी राष्ट्र विशेष की सेना का नैतिक बल ऊंचा है तो उसे परास्त कर पाना शक्तिशाली से शक्तिशाली दुश्मन को लोहे के चने चबाने सरीखा होता है। शांति के समय में भी किसी राष्ट्र विशेष के नागरिकों का उच्च नैतिक बल जब उस देश को चुस्त तथा मजबूत बनाता है। अगर नैतिक बल में ह्रास होता है तो उस राष्ट्र विशेष की आबादी उत्साह के साथ अपने दायित्व को सम्पन्न नहीं कर पायेगी और वहां की सेना भी युद्ध में पराजित होती रहेगी। इसलिए यदि किसी राष्ट्र विशेष का नैतिक बल ऊंचा हो तो वह इसके बल पर अपनी अनेक खामियां भी छुपा सकता है।

शक्ति के अनुरूप अमूर्त तत्वों की व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि इन तत्वों को भले मापा नहीं जा सके लेकिन शक्ति की दृष्टि से इनका महत्व किसी भी दशा में मूर्त तत्वों से कम नहीं है।

3.3.3 शक्ति का आँकलन

यह आवश्यक नहीं है कि शक्ति को बनाने वाले तत्वों की मौजूदगी मात्र से कोई राष्ट्र विशेष शक्तिशाली दिखाई देने लगे। इस प्रकार केवल खनिज पदार्थों के विशाल भंडार की मौजूदगी, कच्चे पदार्थो की उपलब्धता या बड़ी आबादी की मौजूदगी मात्र से किसी राष्ट्र की शक्ति बढ़ नहीं जाती। शक्ति अभिवर्द्धन के लिए जरूरी है कि संसाधनों का बेहतर इस्तेमाल का अंतर भी समझना जरूरी है। अगर किसी राष्ट्र विशेष को केवल उसमें मौजूद शक्ति के विभिन्न तत्वों के नजरिये से देखते हैं तो यह उस राष्ट्र विशेष की सामर्थ्य है। परन्तु, जब हम इन संसाधनों को शक्ति के इस्तेमाल के लिए लगाने की बात करते हैं तो यह उस राष्ट्र विशेष की शक्ति की चर्चा है। इस

प्रकार शक्ति की सम्भावनाओं की मौजूदगी सामर्थ्य है और इस सामर्थ्य का इस्तेमाल वास्तविक शक्ति का प्रदर्शन है।

शक्ति से संबंधित एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि किसी राष्ट्र विशेष की शक्ति का आकलन कैसे हो। वैसे, शक्ति का वास्तविक आकलन लगभग दुस्साध्य है। इसका सदैव सापेक्ष रूप में आकलन किया जा सकता है लेकिन तीसरे अन्य देश ख से कमजोर हो सकता है। ऐसा इसलिए कि राष्ट्र क अपनी इच्छा के अनुरूप ग पर वह सफलतापूर्वक अपनी इच्छा लाद सकता है। रे एस क्लाइन ने शक्ति को मापने या आकलन के लिए एक उपयोगी तरीके का सुझाव दिया है। क्लाइन के अनुसार शक्ति का अहसास खास कर उन दोनों देशों का तो होता ही है–पहला देश जो शक्ति का प्रदर्शन करता है और दूसरा वह देश जिसके ऊपर इस शक्ति का इस्तेमाल होता है क्लाइन ने इस सिलसिले में एक फार्मूला सुझाया है जिससे मोटे तौर पर शक्ति का आकलन या मापा जा सकता है। हालांकि यह फार्मूला शक्ति की वास्तविक माप बता दे ऐसा जरूरी नहीं है। फार्मूले के अनुसार,

प प = (ग + क + ख) x (क + ख)

$$(PP = (C + E + M) \times (S + W)$$

यहाँ प प = आँकी जाने वाली शक्ति, ग = आबादी एवं भू क्षेत्र का गुणक, क = आर्थिक क्षमता, ख = सैन्य क्षमता, ग = लक्ष्य एवं उनकी पूर्ति की रणनीति तथा ख = राष्ट्रीय लक्ष्य की रणनीति को पूरा करने की इच्छा शक्ति।

इस फार्मूले में ग, क तथा ख मूर्त तत्व हैं जबकि क एवं ख अमूर्त तत्व हैं। इस प्रकार, शक्ति के संदर्भ में रे एस क्लाइन लक्ष्य, उन्हें हांसिल करने की रणनीति तथा इसे पूरा करने की इच्छाशक्ति को बहुत महत्व देते हैं।

शक्ति को आँकने या मापने का एक दूसरा तरीका राबर्ट डेल बताते हैं। इसके अनुसार "क को ख पर इतना प्रभाव प्राप्त है कि वह (क) उससे (ख ग) वह काम करवा सकता है जो सामान्य परिस्थितियों में वह (ख) नहीं कर पाता। लेकिन, डेल का यह फार्मूला भी शक्ति को संतोषजनक ढंग से माप पाने में असमर्थ है। इसलिए, शक्ति को सही सही माप पाना अंततः एक दुष्कर कार्य बना हुआ है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.3.4 शक्ति के तरीके

यदि शक्ति वह सामर्थ्य है जिससे इच्छानुसार कार्य करवाये जा सकते हैं यह जानना आवश्यक हो जाता है कि शक्ति सम्पन्न राष्ट्र अपनी इच्छानुसार कार्य सम्पन्न करवाने के लिए अन्य राष्ट्रों के खिलाफ कौन–कौन से तरीके किस प्रकार इस्तेमाल करते हैं। शक्ति के इस्तेमाल के लिए आम तौर पर चार तरीके इस्तेमाल किये जाते हैं। ये तरीके इस प्रकार समझे जा सकते हैं।

समझा बुझा कर, ईनाम बाँट कर, दंड देकर या बल का इस्तेमाल कर। इन चार तरीकों को शक्ति के इस्तेमाल का तरीका कह सकते हैं। इन चारों तरीकों में समझाने बुझाने का रास्ता सबसे आसान माना जाता है। इस तरीके में राष्ट्र "क" समझा बुझा कर "ख" के बर्ताव को प्रभावित करने की कोशिश करता है ताकि वह राष्ट्र (ख) अपना रास्ता बदल लें। वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में इस तरीके का इस्तेमाल सबसे अधिक होता है। इस तरीके में दबाव डालना या ताकत के इस्तेमाल की धमकी जैसी बातों का सर्वथा अभाव होता है। शक्ति के इस्तेमाल का दूसरा तरीका ईनाम बाँट कर लक्ष्यों की प्राप्ति करना होता है। इसमें अन्य राष्ट्रों को प्रलोभन दिया जाता है। यह ईनामों के तहत लक्ष्य देशों को कोई भू–भाग सौंपने का वादा हो सकता है या हथियारों, सैन्य अड्डे या युद्ध की तकनीक के प्रशिक्षण का प्रलोभन हो सकता है। इनके अलावा आर्थिक मदद या कर्ज के रूप में भी ऐसे ईनाम बांटे जा सकते हैं। ऐसे इनाम राजनीतिक राष्ट्र संघ या किसी अन्य संस्थान अथवा एजेंसी के समर्थन में वोट देने का वादा किया जाए। दंड, शक्ति प्रदर्शन, का तीसरा तरीका है। यह अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है। जैसे आर्थिक, या सैन्य सहायता रोक कर या रोकने की धमकी देकर। इसी प्रकार विरोध में प्रचार या विरोधियों अथवा दुश्मनों को राजनीतिक समर्थन प्रदान कर। अथवा, व्यापार या पारगमन में कठिन शर्तें लाद कर भी अन्य राष्ट्रों के खिलाफ शक्ति दिखाई जा सकती है। इस प्रकार जब अमरीका भारत की मर्जी के खिलाफ पाकिस्तान को सहायता देने का वचन माँगता है तो इन हालातों में अमरीका भारत के खिलाफ दंड की कारवाई कर रहा होता है। अंत में, जब दंड कर धमकी को वास्तविक रूप में अमली जामा

पहनाया जाता है तब इसे बल का इस्तेमाल कहते हैं। दूसरे शब्दों में, दंड वस्तुतः धमकी है जबकि दंड का क्रियान्वयन बल के रूप में परिलक्षित होता है।

यहाँ यह बात गौर करने वाली है कि दंड और बल के माध्यम से शक्ति का प्रदर्शन अमूमन तात्कालिक और अस्थायी तरीका है। प्रोफेसर केनेथ इ बोल्डिंग का कहना है कि उन्नीसवीं सदी के मध्य से स्वतंत्र देशों के बीच स्थायीत्व और शांति की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। इसका मतलब यह निकलता है कि सीमा में परिवर्तन के लिए अब सैन्य धमकियों का सहारा कम से कम लिया जाता है। बीसवीं सदी में भारत और चीन से इस बात के आदर्श उदाहरण मिले हैं कि "शक्ति प्रदर्शन का एकमात्र आधार धमकी" वाले तर्क आज की दुनिया में कितना अव्यावहारिक होते जा रहे हैं यह किसी से छिपा नहीं है। गांधी जी ने राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए अहिंसक सत्याग्रह के सफल प्रयोग के जरिए दुनिया के उस हर किसी जगह का ध्यान इस अनूठे हथियार की तरफ खीचा जहां ऐसे आंदोलन चल रहे थे। वर्ष 1989 में पूर्वी यूरोप की घटनाएँ इस बात का ताजा उदाहरण हैं। इसी प्रकार चीन ने यह दिखाया कि वह किस प्रकार अपने तरीकों के इस्तेमाल से अपने ऊपर हावी होने वाली विश्व शक्तियों की सोच और उनके रास्ते को चीन के पक्ष में मोड सकता है। इसके अलावा, विनाश के नये तरीकों की इजाद ने भी अनेक मौकों पर धमकी की जरूरत को कम कर दिया है। जैसा कि प्रोफेसर बोल्डिंग बताते हैं कि "तोप और बंदूकों के आविष्कार ने सुरक्षा के लिए बनाये जाने वाले सामंतकालीन किलों तथा नगर के चारों और बनाये जाने वाली ऊंची दीवालों का महत्व घटा दिया। इससे ऐसे राष्ट्र राज्यों की स्थापना संभव हो पायी जो अपेक्षाकृत बड़े इलाके में आंतरिक शांति और स्थायित्व का माहौल लम्बे समय तक बना कर रहने में सफल हो पाये हैं। इसी प्रकार परमाणु हथियार और लम्बी दूरी तक प्रहार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों ने वर्तमान काल के राष्ट्र राज्यों के बीच शांति बहाली में कमोवेश वही भूमिका निभायी है जो सामंतकालीन इतिहास में बंदूक और तोपों के अविष्कार ने निभाई थी। इस प्रकार इन विनाशकारी हथियारों की मौजूदगी भी संसार में स्थायित्व के लिए तथा शांति के इच्छुक लोगों के लिए कई बार बहुत ही महत्वपूर्ण और हितकारी प्रमाणित हुई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.3.5 शक्ति का प्रबंध

असंतुलित ताकतों से बनी इस दुनिया में प्रत्येक राष्ट्र राज्य अपने अधिकाधिक फायदे के लिए अपनी शक्ति का प्रबंधन और उसका उपयुक्त प्रयोग करता है। इस प्रयास में अमूगन दो तरह की रणनीतियां अपनायी जाती हैं।

शक्ति संतुलन : शक्ति संतुलन से मौटे तौर पर ऐसी स्थिति का भान होता है जहाँ विभिन्न राष्ट्र कमोवेश बराबर ताकत के साथ एक दूसरे के सह–असतित्व को स्वीकार करते हैं ऐसे तरीके अपनाए जाते हैं जिनसे शक्ति का संतुलन बना रहे। यह हालत बताती है कि शक्ति का विभिन्न राष्ट्रों के बीच मौटे तौर पर बराबरी में बँटवारा होना चाहिए। लेकिन, जब हम यह कहते है कि शक्ति संतुलन का पलड़ा अमुक, अमुक राष्ट्रों के पक्ष में शक्ति की प्रबलता है। शक्ति संतुलन की अवस्था के लिए जरूरी है कि कम से कम पाँच छह बड़ी ताकत वाले देश एक दूसरे के साथ सह अस्तित्व को स्वीकार करें, आपस में शक्ति की बराबरी को बनाये रखें और इस चेष्टा में लगे रहें कि किसी एक देश के पक्ष में अत्याधिक शक्ति का पलड़ा भारी न हो जाए या फिर वह झुक ना जाए। ऐसी दशा में इन बड़ी ताकतों के अलावा अनेक और भी ऐसे देशों का अस्तित्व बना रहता है जो देश मध्यम श्रेणी वाले या छोटी श्रेणी वाली ताकत रखते हैं। क्विसी राइट के अनुसार शक्ति संतुलन के पीछे आम तौर पर पाँच तरह की अवधारणाएँ होती हैं। पहली अवधारणा यह सोच है कि प्रत्येक राष्ट्र को अपने आवश्यक हितों की रक्षा के लिए हर संभव कदम उठाने का अधिकार है। इन अत्यावश्यक हितों में प्रायः सुरक्षा, अपने भू क्षेत्र की अखंडता की रक्षा, राजनीतिक स्वतंत्रता और आर्थिक संसाधनों की रक्षा शामिल है। दूसरी अवधारणा यह है कि राष्ट्रों के आवश्यक हितों को सदैव प्रतिस्पर्द्धियों से खतरा बना रहता है या भविष्य में ऐसी आशंका बनी रहती है। जाहिर है कि जब तक आवश्यक हितों को खतरा नहीं पहुंचेगा या इसकी आशंका नहीं बनी रहेगी तब तक कोई देश इनकी रक्षा के विषय में क्यों सोचेगा। तीसरी अवधारणा यह है कि शक्ति संतुलन की मदद से कोई देश अपने हितों की रक्षा दूसरे राष्ट्रों को हमले की धमकी देकर करता है। हमला करके करता है या फिर यदि किसी देश पर हमला हुआ है तो वह शक्ति संतुलन के जरिए सक्रिय जवाब देकर हमलावर को परास्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में कोई शक्तिशाली देश अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भविष्य में हमले की योजना तभी बनायेगा अगर उसे शक्ति संतुलन अपने पक्ष में दिखाई देगा। चौथी अवधारणा के अनुसारर शक्ति संतुलन में शामिल तमाम देशों की आपेक्षिक

ताकत को मापा जा सकता है और इस आकलन को कोई राष्ट्र विशेष खास रणनीति के द्वारा अपना पक्ष शक्तिशाली बनाने में इस्तेमाल कर सकता है। अंतिम अवधारणा यह है कि शक्ति संतुलन के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत एवं यथार्थ अध्ययन करने के बाद ही राष्ट्र विशेष के नेता अपनी अंतर्राष्ट्रीय नीति तय करते हैं। इन अवधारणाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी राष्ट्र विशेष के महत्वपूर्ण हितों की रक्षा करने के लिए जब उसे अन्य राष्ट्रों से खतरा हो शक्ति का प्रबंध ही शक्ति संतुलन कहलाता है।

शक्ति का संतुलन स्थापित करने के लिए निम्न कदमों का सहारा लिया जा सकता है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कदम हथियारों का संचय है। चूंकि किसी भी विवाद को सुलझाने का अंतिम रास्ता युद्ध का ही बचता है। इसलिए विभिन्न राष्ट्र अपनी सैन्य क्षमता को अभिवर्द्धन कर इसका फायदा उठाने की फिराक में रहते हैं। लेकिन जब एक राष्ट्र अपने लिये नये हथियार जुटाने लगता है तो उसके प्रतिद्वंद्वी भी सतर्क हो जाते हैं और वे भी हथियारों के संचय में जुट जाते हैं। अपने पक्ष में शक्ति संतुलन स्थापित करने के लिए राष्ट्र प्रायः दूसरों के साथ मिलकर गठबंधन करते है। इन गठबंधनों के जवाब में प्रतिस्पर्द्धी राष्ट्र भी जवाबी गठबंधन बनाने लगते हैं ताकि प्रतिद्वंद्वी गुट की शक्ति प्रबलता का करारा जवाब तैयार किया जा सके। इस प्रकार विभिन्न राष्ट्रों के बीच नये गठबंधन बनाने की और पुराने गठबंधनों को तोड़ने की कोशिशे चलती रही हैं लेकिन शक्ति संतुलन तब प्रभावी माना जाता है जब अनेक शक्तिशाली राष्ट्र अस्तित्व में हो और वे नये अथवा जवाबी गठबंधन बनाने की अपनी क्षमता का इच्छानुसार प्रयोग करने को स्वतंत्र हों। इसके अलावा शक्ति संतुलन को अपने पक्ष में करने के लिए अथवा महाशक्तिशाली बनने के लिए राष्ट्र प्रायः दूसरे राष्ट्रों का भू क्षेत्र छीनने की कोशिश करते हैं। इससे छीनने वाले राष्ट्र की शक्ति अक्सर ही बढ़ जाया करती है। साम्राज्यवाद के दिनों में ऐसी कोशिशें आम बात हुआ करती थी। ताजा उदाहरण वर्ष 1990 का है जब इराक ने कुवैत पर हमला करके इसे अपने अधीन कर लिया था। हालांकि, बाद में इराक को कुवैत से हटना भी पड़ा। इसके पहले इजरायल ने अनेक अरब देशों से भूखंड छीन लिये थे। अंत में, कोई राष्ट्र अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए शक्तिशाली परन्तु परस्पर विरोधी दो राष्ट्रों के बीच बफर राष्ट्र की स्थापना कर देता है। उदाहरण के लिए, किसी वक्त रूस और जर्मनी के बीची पोलैंड बफर राष्ट्र के रूप में स्थापित था। इसी प्रकार भारत पर ब्रिटिश हुकूमत के दिनों में तिब्बत् भारत और चीन के बीच जफर राष्ट्र की तरह मौजूद था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हस्तक्षेप

शक्ति संतुलन को अपने पक्ष में करने के लिए प्रायः हस्तक्षेप का भी सहारा लिया जाता है। ऐसी घटना प्रायः तब घटती हैं जब कोई बड़ी ताकत अपने से अलग हुए किसी मित्र देश को फिर से अपने साथ करने के लिए अथवा कोई नये देश से गठबंधन बनाने के लिए किसी छोटे देश के मामलों में हस्तक्षेप करता है और वहाँ मित्र सरकार की स्थापना कर देता है। उदाहरण के लिए अमरीका ने विएतनाम और डोमिनिकन रिपब्लिक जैसे छोटे देशों के मामलों में दखल दिया था। इसी प्रकार वर्ष 1979 में सोवियत यूनियन ने अफगानिस्तान के मामलों में दखल दिया था। अंत में, शक्ति संतुलन में निर्णायक फेरबदल लाने के लिए विरोधी खेमे से जुडे राष्ट्रों को उक्त गठबंधन से अलग करने का कार्य भी किया जाता है। इस क्रिया में विरोधी खेमें से जुड़े देशों को दबाव डालकर या फिर तटस्थ रहने या फिर अपने पक्ष में मिला लेने की कोशिशे होती हैं। शक्ति संतुलन को प्रभावित करने के ये तमाम तरीके पहले भी में अपनाये गये हैं और भविष्य में भी अपनाये जाते रहेंगे।

शक्ति संतुलन के खेल में कभी कभी तीसरे पक्ष की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण हो जाती है। यह तीसरा पक्ष वैसा राष्ट्र या राष्ट्रों का गठबंधन होता है जो आम तौर पर शक्ति संतुलन के लिए उलझे हुए दो प्रतिस्पर्द्धी राष्ट्रों या राष्ट्रों के समूहों की आपसी प्रतिद्वंद्विता के तटस्थ होता है। इसके साथ ही यह भी हो सकता है कि यह तीसरा पक्ष मौका आने पर अपनी तटस्थता का त्याग कर दें और शक्ति संतुलन की होड में कमजोर पड़ रहे पक्ष का पल्ला पकड़ कर उसे मजबूत बना दे। ब्रिटेन परम्परागत रूप से ऐसे संतुलनकारी राष्ट्र की भूमिका निभाता आ रहा है।

सामुहिक सुरक्षा

शक्ति के प्रबंधन का एक और तरीका सामूहिक सुरक्षा का भी है। शांति प्रबंधन के लिए अपनाये जाने वाले तमाम तौर तरीकों में यह रास्ता बेहद लोकप्रिय माना जाता है। इस व्यवस्था में राष्ट्रों के समूह आपस में मिल बैठ कर शक्ति का ऐसा प्रबंध करते हैं कि किसी हमलावर राष्ट्र या राष्ट्रों के

समूह को अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से करारा जवाब मिलता जाता है क्योंकि इसमें गठबंधन या जवाबी गठबंधन बनाने, हथियारों की होड़ अथवा राजनीतिक कलाबाजियां जैसी घटनाएँ शामिल नहीं होती हैं। सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा के रूप में सुरक्षा जहाँ लक्ष्य का काम करता है वहीं सामूहिकता वह रास्ता या तरीका है जो इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए अपनाया जाता है। स्वार्जवर्गर ने इसकी परिभाषा देते हुए इसे संयुक्त रूप में काम करने वाली ऐसी व्यवस्था बताया है जो किसी स्थापित व्यवस्था के खिलाफ होने वाले हमले का मुकाबला करती है या उस पर प्रत्याक्रमण करती है।" सामूहिक सुरक्षा की अवधारण के पीछे दो बुनियादी बातें हैं। पहला, यह युद्ध अनिवार्य है और इसके छिड़ने की आशंका है। दूसरा, इस हमले को परास्त किया जा सकता है, बशर्ते इसके खिलाफ विशाल जनमत की ताकत का इस्तेमाल किया जाए। इनिस क्लाउड इस अवधारणा को और स्पष्ट करते हुए कहता है कि यह (सामूहिक सुरक्षा) शक्ति को नष्ट करने का नहीं बल्कि इसके प्रबंधन की कला है। वस्तुतः यह अवधारणा शक्ति संतुलन एवं विश्व सरकार इन दोनों अवधारणाओं के बीच की कड़ी है। सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था (लीग ऑफ नेशन्स) तथा युनाइटेड नेशन्स जैसी अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के रूप में प्रभावी होती है। यह व्यवस्था गुटीय सुरक्षा व्यवस्था से इस मायने में अलग है कि इसमें अपनाये जाने वाले सिद्धांत सभी के साथ एक समान रूप में लागू किए जाते हैं। इस उद्घोषणा पर टिकी हुई है कि एक देश पर हमला सभी पर हमला माना जाएगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी एक सदस्य राष्ट्र पर हमला, पूरे संयुक्त राष्ट्र संघ पर हमला माना जाता है। यदि सुरक्षा परिषद इस हमलावर की पहचान करती है और अपने तमाम सदस्य देशों को हमलावर के खिलाफ आर्थिक या सैन्य नाकेबंदी को कहती है तब उस दशा में तमाम संदस्य राष्ट्रों से यह आशा की जाती है कि वे इस निर्देश का अवश्य पालन करेंगे और एक साथ मिल कर हमलावर का मुकाबला करेंगे। इस प्रकार, हमलावर की पहचान शुरू में ही नहीं कर ली जाती है। यह कोई भी राष्ट्र हो सकता है जिसके खिलाफ सामुहिक कार्यवाही होनी है दूसरी और गुटीय सुरक्षा गठबंधनों पर आधारित होती है। यहां प्रतिस्पर्द्धी विरोधी या दुश्मन की पहचान पहले ही कर ली जाती है और इस अवस्था में शामिल तमाम दूसरे देश इसी पहचाने गये दुश्मन के खिलाफ कार्रवाई की भावना से एक जुट हो जाते हैं। सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की तरह इसमें यह भावना नहीं होती कि "एक सबके लिए और सब एक के लिए।"

DIKSHANT IAS

सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था के रूप में पल्लवित हुआ था। वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ में भी दर्शन के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय शांति स्थापना तथा शक्ति के प्रबंध की कोशिश चल रही है।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) शक्ति की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

2) शक्ति के मूर्त तत्व कौन से हैं ?

....

....

....

....

3) शक्ति के अमूर्त तत्वों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

4) शक्ति के चार तत्वों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

5) शक्ति संतुलन क्या है, इसकी स्थापना के तरीके कौन–कौन से हैं ?

....

....

....

....

6) सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.4 राष्ट्रीय हित

अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की प्रकृति और स्वरूप की कोई भी चर्चा राष्ट्रीय हित की अवधारणा को समझे बिना संभव नहीं है। यह बात सार्वभौम रूप से मानी जाती है कि सत्ता की कार्यवाइयों का वैधानिक स्वरूप राष्ट्रीय हित की सोच में उभरता है। अमरीकी राष्ट्रपति विल्सन उन चंद आदर्शवादी विचारकों में से माने जाते हैं जो सत्ता के इस विशेषाधिकार की सोच से सहमत नहीं थे। बहरहाल, विदेशी नीति की आधारशिला राष्ट्रीय हितों पर ही आधारित होती है। जैसा कि हंस मोरगेन्थाऊ ने लिखा भी है कि "जब तक दुनिया राजनीतिक रूप से राष्ट्रों में संगठित है तब तक विश्व राजनीति के फैसले राष्ट्रीय हितों के आधार पर ही तय होते रहेंगे।" वस्तुतः यही राष्ट्रीय नीति का यह एकमात्र वैध और बुनियादी कारण है। लार्ड पामरस्टोन ने उन्नीसवीं सदी में एक बार कहा था कि "न तो हमारे दोस्त अंनत काल के लिए है और न दुश्मन। यह सिर्फ हमारे हित हैं जो अनंत काल के लिए हैं और हमारा कर्तव्य है कि हम इनकी रक्षा के प्रयासों में जुटे रहे।" राष्ट्रीय हित की परिभाषा को शब्दों में बांधना न केवल कठिन है बल्कि यह समझाना भी बड़ा कठिन है कि दुनिया भर के नेता अपनी कार्रवाइयों को कैसे राष्ट्रीय हित की आड़ में वैध ठहराए जाते हैं।

3.4.1 राष्ट्रीय हित की परिभाषा

राष्ट्रीय हित वस्तुतः है क्या। नेपोलियन ने रूस के खिलाफ हमले की अपनी कार्रवाई को यह कह कर वैध ठहराया था कि वह फ्रांस के हितों की रक्षा के लिए सक्रिय है। बाद में, वाटरलू की अंतिम लड़ाई के वक्त भी उसने फ्रांस के हितों का हवाला ही दिया था। हिटलर भी जर्मनी के हितों की आड़ में विस्तारवाद की आग भड़काता रहा। आस्ट्रिया पर कब्जा और चेकोस्लोवाकिया का विघटन भी जर्मनी के राष्ट्रीय हितों के अनुकूल ही हिटलर ने बताया था। इसी नीति के तहत स्टालीन ने पोलैंड तथा अन्य पूर्वी युरोपीय देशों में "मित्र समाजवादी" सरकारों की स्थापना करा दी क्योंकि उसकी नजर में ऐसी कार्यवाई सोवियत संघ के राष्ट्रीय हितों के अनुकूल थी। इराक ने जब कुवैत

को कब्जे में कर लिया तब अमरीकी राष्ट्रपति बुश ने इराक के खिलाफ युद्ध यही कह कर छेड़ था कि यह अमरीका के राष्ट्र हितों के अनुकूल है। बेनजीर भुट्टो यही सोचती है कि भारत के सीमांत प्रदेश जम्मू कश्मीर में अस्थिरता फैलाना पाकिस्तान के राष्ट्रीय हित में है। इस प्रकार, दुनिया के तमाम देश अपनी कारवाईयों को चाहे वह कितनी ही गलत क्यों न हो, राष्ट्रीय हितों की आड़ में ही वैध ठहराते रहते हैं। ऐसी हालत में राष्ट्रीय हितों की चर्चा के लिए जरूरी है कि पहले इसकी परिभाषा पर विचार कर लिया जाए। राष्ट्रीय हितों की परिभाषा को किसी सीमा में बांधना बड़ा कठिन है यह हम पहले ही कह चुके हैं। विभिन्न संदर्भों में इसके मतलब भी बदलते जाते है। अभी तक राष्ट्रीय हितों की अवधारणा को न तो वस्तुनिष्ठ रूप में और न ही वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित किया गया है। हालांकि, पेडलफोर्ड और लिंकन का कहना है कि "राष्ट्रीय हितों की अवधारणा समाज के बुनियादी मूल्यों पर टिकी होती है। इन मूल्यों में राष्ट्रीय कल्याण की अवधारणा राजनीतिक विचारधाराओं की सुरक्षा जिंदगी का राष्ट्री ढर्रा भू भाग की अखंडता और अपना अस्तित्व बचाये रखने के प्रयास शामिल हैं।" राबर्ट ऑसगुड के अनुसार राष्ट्रीय हित राजकाज के ऐसे मामले हैं जो सिर्फ इसलिए कीमती हैं कि ये राष्ट्र के कल्याण के लिए उठाये गये हैं। मोरगेंथउ का मानना है कि किसी राष्ट्र की बुनियादी जरूरत यह है कि वह अन्य देशों के आक्रमण तेवरों से अपने भौगोलिक भू भाग, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहचान के अस्तित्व की रक्षा कैसे करे। लेकिन, जोसेफ फ्रेंकिल राष्ट्रीय हितों को उनके लक्ष्यों और उनको पूरा करने के तरीकों के रूप में देखता है। लक्ष्य यानि राष्ट्र की खुद के व्यक्तित्व के बारे में क्या धारणा है। एक खुशहाल जिंदगी और इसके परम लक्ष्यों को प्राप्त करने की चुनौती इस पर राष्ट्र का आम नजरिया क्या है। राष्ट्रीय हित का दूसरा पक्ष, लक्ष्यों को पूरा करने का तरीका है जो राष्ट्र के कुल हितों तथा उन्हें पूरा करने के लिए क्रियान्वित नीतियाँ इन दोनों के योग से बनता है।

3.4.2 राष्ट्रीय हित—विदेश नीति की आधार शिला

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विदेशनीति के निर्माता अपनी रणनीतियों की चारदीवारी को राष्ट्रीय हितों से ही बांधते हैं। यह सही है कि कभी–कभी सत्ता के मद में चूर हिटलर जैसे मुट्ठी भर तानाशाह राष्ट्रीय हितों की आड़ में विनाश का कहर बरपा देते हैं। लेकिन, ऐसे मामले अपवादस्वरूप होते हैं। सामान्य तौर पर विदेश नीति का निर्धारण सिर्फ इसी दृष्टि से होता है कि इससे कैसे देश का भला हो। यही देश के भले की धारणा या राष्ट्रीय हित की अवधारणा विदेश नीति के आधार का कार्य करते हैं। ऐसे आदर्शवादी नेता भी हुए हैं, जैसे अमरीका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन जिनकी विशेष राय थी की राष्ट्रीय हितों को भी वैधानिक रूप से नैतिक मूल्यों तथा मानव समुदाय के हितों की रक्षा के दायरे में बांधा जा सकता है। विल्सन ने कहा है कि "किसी राष्ट्र की विदेश नीति को सिर्फ उसके राष्ट्रीय हितों के दायरे में समेट कर रखने की कोशिश एक खतरनाक शुरूआत होगी. . . . . हम उन आदर्श सिद्धांतों से हटने का साहस नहीं जुटा सकते जिनके अनुसार हमारी पथ प्रदर्शक नीतियां नैतिकता पर आधारित हैं न कि जरूरत पर। हमारे किसी तरह के स्वार्थी इरादे नहीं है।" लेकिन, ऐसे आदर्शवादी विचार राष्ट्रीय हितों से जुड़े विदेशनीति के नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह ही साबित हुए है। विल्सन के ये आदर्श विचार उनके पूर्ववर्ती, अमरीका के पहले राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन से बिल्कुल मेल नहीं खाते हैं। वाशिंगटन ने कहा है कि "कोई भी देश चाहे उसकी विचारधारा कितनी ही आदर्शवादी क्यों न हो और उन्हें पूरा करने की इच्छा भी चाहे कितनी प्रबल क्यों न हो वह अपनी विदेश नीति का आधार अपने राष्ट्रीय हितों से अलग नहीं बना सकता।" उनकी राय थी कि कोई भी समझदार सत्ता शीर्ष या अनुभवी राजनेता कभी भी इन नीतियों से खुद को अलग करने का साहस नहीं जुटा सकेगा।

अब एक नजर इस पर देखें कि राष्ट्रीय हित के तत्व कौन–कौन से हैं। एक आधुनिक राष्ट्र के लक्ष्यों में भू–भाग की सुरक्षा, आर्थिक विकास एवं विश्व स्तर पर शांति जैसे मुद्दे विशेष रूप से शामिल रहते हैं। तमाम देश राष्ट्रीय सुरक्षा, राजनीतिक स्वतंत्रता और भू–भाग की अखंडता बनाये रखने की इच्छा भी रखते हैं और इन्हें पूरा करने की कोशिशें भी करते रहते हैं। दूसरे शब्दों में, राष्ट्र की सुरक्षा स्वाभाविक रूप से विदेश नीति की बुनियादी सोच होती है। दूसरे, आर्थिक हितों को बढ़ावा देना तथा व्यापार के लिए अनुकूल माहौल प्राप्त करना भी विदेश नीति के केन्द्र में ही होती है। तीसरे, अधिकांश आधुनिक राष्ट्र अब इस पर सहमत हैं कि अंतर्राष्ट्रीय शांति का माहौल हर हालत में बनाये रखा जाए, अंतर्राष्ट्रीय कानूनों के प्रति विश्व समुदाय की आस्था और इज्जत बढ़े, अंतर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा मिल बैठकर शांति से हो तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को और सशक्त बनाया जाये।

जब भारत ने नेहरू के नेतृत्व में तटस्थता की नीति अपनायी थी तब इस नीति को देश के राष्ट्रीय

हितों के साथ-साथ विश्व शांति की स्थापना के एक औजार के रूप में भी देखा गया। नेहरू, नासिर और टीटों की अगुवाई में शुरू किया गया निर्गुट आंदोलन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य यह था कि सुलगते हुए दो खेमों में बंटे इस संसार में उत्पन्न शांति पर आए खतरे की आशंका को निर्मूल करना था। अगर भारत ने खुद को दो खेमों में से किसी एक के साथ संबद्ध कर लिया होता तो हमारा आर्थिक विकास भी दोनों में से किसी एक के ही दर्शन की राह पर चल रहा होता। ऐसे विश्व नेताओं की कमी नहीं है जो विश्वास रखते हैं कि विदेश नीति यकीनी तौर पर किसी आदर्श विशेष से बंधा होना चाहिए। जैसे, फासीवाद या साम्यवाद का प्रसार या फिर साम्यवाद को रोकने की मुहिम। लेकिन व्यावहारिक राजनेता केवल राष्ट्रहितों पर ही गौर करते हैं उनका ध्यान केवल अपने राष्ट्र के हितों पर ही केंद्रित होता है। किंतु, हाल के दिनों में विदेश नीति के संदर्भ में आदर्शों, सिद्धांतों की महत्ता का ह्रास हुआ है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) विदेश नीति के निर्माण में राष्ट्रीय हित के महत्व की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.5 सुरक्षा

3.5.1 सुरक्षा और राष्ट्रीय हित

सुरक्षा की अवधारणा सीधे तौर पर राष्ट्रीय हित से जुड़ी हुई है। तमाम राज्य व्यवस्था आदमी की इस इच्छा से जुड़ी हुई है कि वह विभिन्न स्त्रोतों से अपने खिलाफ उठने वाली चुनौतियों का मुकाबला किस प्रकार करें। इसके पहले हम सुरक्षा से संबंधित दो तरीकों पर चर्चा कर चुके हैं (देखिए भाग 3.3.5)। शक्ति के प्रबंधन की अंतर्निहित अवधारणा भी यही होती है कि शक्ति को इस प्रकार नियंत्रित रखा जाए कि राष्ट्र की सुरक्षा सर्वोपरि रहे और किसी के पास ऐसी ताकत पैदा हो जाए जो दूसरे राष्ट्रों की सुरक्षा को खतरे में डाल दे। जब कभी राष्ट्रों की सुरक्षा खतरे में पड़ी है तब तब ही इंसान ने राष्ट्रों की भौगोलिक अखंडता और राजनीतिक स्वतंत्रता को बचाये रखने और उसे निश्चित करने के तरीके खोजे हैं। हमने देखा कि राष्ट्र राज्य की अवधारणा की पैदाइश की वेस्टफालिया शांति समझौते से हुई थी। जो खुद तीस वर्षो के युद्ध की समाप्ति का नतीजा था। जब नेपोलियन परास्त हुआ तब उसके हाथों कष्ट भोग चुके युरोप के राष्ट्रों ने विएना कांग्रेस की बैठक के बाद कंसर्ट ऑफ युरोप का गठन किया। इसके पीछे भी यही भावना थी कि नये उभर रहे राष्ट्र राज्यों की सुरक्षा का इंतजाम कैसे हो। जब रूस के जार ने हेग कांफ्रेस (1899 एवं 1907) के लिए पहल की तब उसका भी लक्ष्य राष्ट्र राज्यों की सुरक्षा के रास्ते टटोलना ही था। हेग कांफ्रेंस ने इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल करते हुए अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधानों के लिए हेग में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान छिड़े सिद्धांतहीन लड़ाइयों में जब अंतर्राष्ट्रीय नियमों और नैतिकता की धज्जियाँ उड़ने लगी तब विश्व नेताओं और सिद्धांतकारों ने अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के नये विकल्प के रूप में लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना की। लीग ऑफ नेशन्स की प्रस्तावना में ही इस लक्ष्य को सुपरिभाषित कर दिया गया था और स्पष्ट कर दिया था। इसके अनुसार, संस्था के सदस्य राष्ट्र मिल जुल कर एक ऐसी व्यवस्था के गठन पर सहमत थे जिससे अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के अवसर बढ़े, विवादों के समाधान के लिए युद्ध का रास्ता नहीं अपनाया जाए। लीग ऑफ नेशन्स ने अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा का माहौल बनाने के लिए अनेक प्रयास भी किये, लेकिन अंततः यह व्यवस्था असफल हो गई। इसके बाद संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन हुआ। इसका चार्टर भी यही कहता है कि "हम संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य संकल्प लेते हैं कि . . . . अपनी सामर्थ्यों को एकजुट करके अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा का माहौल

बनायेंगे . . . . . कि एकमात्र साझे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सेना का उपयोग नहीं करेंगे।" इस प्रकार ऐसे प्रयासों के जरिए सुरक्षा की चिंता अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की सोच में निरंतर शामिल रही है।

3.5.2 सुरक्षा एवं परमाणु हथियार

परमाणु हथियारों के आगमन ने राष्ट्र राज्यों की सुरक्षा की अवधारणा में बुनियादी परिवर्तन कर दिया। लेकिन, ऐसे विनाशकारी हथियारों के इजाद के पहले भी राष्ट्र की सुरक्षा की चिंता सदैव सताती रहती थी। इस चिंता को दूर करने के लिए ऐसे राष्ट्र नित नये गठबंधनों तथा जवाबी गठबंधनों की तालाश में रहते थे। इसी चिंता के कारण हथियारों की प्रतिस्पर्द्धा भी दिनोंदिन तेज होती जा रही थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद फ्रांस जीतने के बावजूद पराजित जर्मनी से इतना भयभीत था कि उसने पेरिस कांफ्रेंस लीग ऑफ नेशन्स तथा इनके बाहर भी बार–बार अपनी सुरक्षा की गांरटी मांगी। पहले और दूसरे महायुद्ध के बीच की अवधि में फ्रांस की यह चिंता तमाम तरह के अंतर्राष्ट्रीय बैठकों में हावी रही थी। लीग की बैठक में मिले आश्वासन फ्रांस की आशंका को निर्मूल नहीं कर पाये। सुरक्षा की उसकी तलाश निरंतर जारी रही। संयुक्त एंग्लो–अमरीकन गारंटी (जो बाद में निष्फल साबित हुआ, आपसी सहायता की संधि (हाफट ट्रीटी ऑफ म्यूचुअल असिसटेंस –1923) एवं जेनेवा प्रोटोकाल (1924) ये दोनों तो शुरू भी नहीं हो सके, लौकार्नो समझौता (1925) और पेरिस समझौते (1928) इन तमाम बैठकों और संधियों में फ्रांस की सुरक्षा की चिंता झलक रही थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले भी और बाद में भी सुरक्षा की तलाश अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों का अहम हिस्सा रही है।

नाटो, सीटो, बगदाद संधि तथा वारसा संधि जैसे गठबंधनों के गठन ही संबद्ध की सुरक्षा के मद्देनजर किये गये। ये तमाम गठबंधन या तो सोवियत संघ के खिलाफ थे या अमरीका के। इसके अलावा, सैन्य अड्डों की तलाश तथा अनेक राष्ट्रों को दी जाने वाली सैन्य सहायता (पाकिस्तान सहित) के पीछे भी संबद्ध राष्ट्रों की सुरक्षा की चिंता को निर्मूल करना ही था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जब अमरीका ने अगस्त 1945 में जापान के दो शहरों, हिरोशिमा तथा नागासाकी पर एटम बम गिराये तो जापान के आत्म समर्पण के साथ ही अब तक के युद्ध के तमाम समीकरण ही बदल गये। दूसरे, इसके साथ ही सुरक्षा की प्रकृति और इससे जुड़े सवालों के नजरिए भी बदल गये। बम गिराने के अगले चार वर्षों तक (1949) तक अमरीका इकलौता एटोमिक ताकत बना रहा और इस दौरान पूरी दुनिया की सुरक्षा उसके रहमोकरम पर टिकी रही। इस वक्त कोई भी राष्ट्र सुरक्षा को लेकर निशिचिंत नहीं था। यहां तक कि सोवियत संघ भी निरंतर चिंता से ग्रस्त था क्योंकि यह किसी को मालूम नहीं था कि अमरीका के पास ऐसे और खतरनाक कितने बम हैं या नहीं हैं और वह रूस के खिलाफ इनका प्रयोग करने वाला है या नहीं। रूस और अमरीका तब अपने–अपने सिद्धांतों को लेकर दूसरे के साथ बुरी तरह उलझे हुए थे।

इसी चिंत के बीच सोवियत संघ ने 1949 में अपने एटम बम का परीक्षण किया और इसके साथ ही इस विनाशक हथियार की प्रतिस्पर्द्धा शुरू हो गयी। ब्रिटेन, फ्रांस और अंत में चीन भी इस प्रतिस्पर्द्धा में शामिल हो गये। इसके बाद से कम से कम तीन और ऐसे देश निकल आये जिन्हें परमाणु हथियारों के द्वार पर खड़ा माना जाता है इनमें भारत, पाकिस्तान और इजराइल शामिल हैं। भारत का कहना है कि वह परमाणु ताकतों का इस्तेमाल केवल शांतिपूर्ण कार्यों के लिए करेगा। इनके अलावा और भी कई देश हैं जो परमाणु ताकत प्राप्त करने की सामर्थ्य रखते हैं। परमाणु हथियारों के आज के जमाने में राष्ट्रों की सुरक्षा की चिंता केवल पारम्परिक हथियारों को जमा करने तथा गठबंधनों का निर्माण करने मात्र से दूर नहीं होने वाली है। अब ये देश सुरक्षा के लिए नाभिकीय छतरी की तलाश भी करने लगे हैं। शीत युद्ध ने राष्ट्रों की सुरक्षा की चिंता को और बढ़ा दिया और अब वे महाशक्तियों से परमाणु मिसाइलें तथा सैन्य अड्डों की सुविधा भी मांगने लगे हैं। परमाणु हथियार दुनिया में कैसा विनाश फैला सकते हैं इसकी झलक तो हिरोशिमा और नागाशाकी की घटनाओं से मिल ही चुकी है। मैक्स लर्नर ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि हम संहारक युग में रह रहे हैं क्योंकि परमाणु हथियारों का जो विशाल जमावड़ा विभिन्न देशों के पास मौजूद है वह दुनिया को अनेक बार बरबादी की आग में धकेल सकता है। परमाणु हथियारों के कारण आज की दुनिया में युद्ध अब केवल सेना पर आश्रित नहीं रह गया है। अब नागरिक आबादी भी हथियारों के लक्ष्य में लाये जाते हैं। भले ही इसके लिए गैर परमाणु, परम्परागत बमों का ही प्रयोग क्यों न किया जाए। ऐसे विस्फोटक हालातों में सुरक्षा की तलाश पूरी दुनिया के लिए सबसे

गंभीर मसला बना हुआ है।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) सुरक्षा एवं राष्ट्रीय हितों के बीच के संबंध की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

2) आज के परमाणु युग में सुरक्षा की चिंता कितनी गंभीर हो गयी है, इस पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.6 सारांश

इस इकाई में हम अब तक चार अवधारणाओं पर चर्चा कर चुके हैं: राज्य व्यवस्था, शक्ति, राष्ट्रीय हित और सुरक्षा। राज्य व्यवस्था प्राचीन काल में भी अस्तित्व में थी। भारत और यूनान के नगर राज्य इसके उदाहरण हैं। इनके बाद विशाल साम्राज्यों यथा, होली रोमन एम्पायर का जमाना आया। आधुनिक काल की राज्य व्यवस्था का विकास वेस्टफालिया की संधि (1648) से शुरू हुआ। विएना कांग्रेस की समाप्ति तक यह व्यवस्था संप्रभुता प्राप्त राष्ट्र राज्य की अवधारणा को स्वीकार कर चुकी थी। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का स्वर्णिम युग प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद आया जब बड़ी संख्या में राष्ट्र राज्यों का विश्व के नक्शे पर प्रादुर्भाव हुआ। आज की राज्य व्यवस्था मूलतः निश्चित भू–भाग वाले ऐसे राष्ट्र राज्यों के समूह से बनी है जिन्हें आंतरिक एवं बाह्य सम्प्रभुता प्राप्त है। इस प्रकार की राज्य व्यवस्था पुरानी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था से स्पष्टतः लाभ की स्थिति में है। नई व्यवस्था का मूलाधार राष्ट्रों की समानता पर टिका है। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की बुनियाद राष्ट्र राज्यों में है।

शक्ति वह क्षमता है जिससे दूसरों की सोच और उनके क्रियाक्लापों को नियंत्रित किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिलसिले में इसका अर्थ राष्ट्रों की उस क्षमता से लगाया जाता है जिससे वे दूसरे राष्ट्रों के आचार व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। शक्ति का वस्तुतः वही महत्व है जो बाजार व्यवस्था में पैसे का होता है। राजनीति के तमाम अंगों की तरह अंतर्राष्ट्रीय राजनीति भी शक्ति के लिए किया जाने वाला संघर्ष ही है। शक्ति कई तत्वों से मिलकर बनी है–इनके अलावा शक्ति के अमूर्त या अदृश्य तत्व भी हैं जिन्हें मापना या जिनका आकलन तो सहज नहीं है लेकिन किसी संप्रभुता राष्ट्र सम्पन्न की शक्ति के संदर्भ में इनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। शक्ति के मूर्त तत्वों में आबादी, भूखंड (इसका आकार, मौसम बनावट और नक्शे में इसका स्थान), प्राकृतिक संसाधन, कृषि क्षमता तथा सैन्य क्षमता शामिल है। इन सभी तत्वों की स्थितियाँ सापेक्षिक होती हैं। अमूर्त तत्व भी राष्ट्र की शक्ति के संदर्भ में जुड़े बेशकीमती होते हैं। इनमें नेतृत्व की क्षमता, सत्ता का प्रकार, समाज में जुड़ाव तथा राष्ट्रीय नैतिकता शामिल है।

बल या धमकी शक्ति का महत्वपूर्ण अंग तो है परन्तु इसका नतीजा सदैव अल्पकालिक होता है। यह सिद्धांत स्थायित्व और शांति की उस संरचना नजरअंदाज कर देता है जो स्वतंत्र राष्ट्रों

आपसी प्रयासों के अथक परिश्रम से वर्षों में बनी है और जिनके पीछे अहिंसक सामूहिक प्रयासों की सफल रणनीतियां रही हैं। किसी राष्ट्र की शक्ति को पूर्ण तौर पर मापना सहज नहीं है। यह अनेक कारकों पर आधारित होती है। शक्ति के इस्तेमाल के चार लोकप्रिय तरीके हैं—समझा बुझा कर, ईनाम देकर, दंड के द्वारा या बल लगा कर। आजकल की दुनिया के अस्तित्व के लिए शांति सबसे बड़ी जरूरत बन गयी है। शक्ति के संतुलित प्रबंध से ही शांति की स्थापना संभव है। इस प्रबंध के तीन लोकप्रिय तरीके हैं – शक्ति संतुलन, सामूहिक सुरक्षा तथा विश्व सरकार। शक्ति संतुलन के जरिए यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र विशेष के पास शक्ति की ऐसी प्रबलता न हो जाए कि वह दूसरों के लिए खतरा न बन जाए। शक्ति संतुलन को प्रभावित करने वाले राष्ट्र की इसमें बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है और उसे लाफिंग थर्ड के नाम से पुकारा जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की समझ बनाने में राष्ट्रीय हित की अवधारणा केन्द्रीय महत्व वाली होती है। इस अवधारणा की परिभाषा तो कठिन है। लेकिन प्रत्येक विदेशनीति का रास्ता इसी से होकर निकलता है। इसमें राष्ट्रों का कल्याण, उनकी राजनीतिक विचारधारा की सुरक्षा, उनके स्वतंत्रता एवं अखंडता की सुरक्षा आदि शामिल होती है। राष्ट्रीय हित का बुनियादी लक्ष्य सुरक्षा, आर्थिक विकास तथा ऐसे विश्व व्यवस्था का निर्माण है जो स्थायित्व के साथ चलें तथा जिसमें गंभीर विवादों के विस्फोट के अवसर कम से कम रहें।

प्रत्येक राष्ट्र की बुनियादी समस्या उसकी सुरक्षा से जुडी होती है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यह प्रत्येक राष्ट्र का आधारभूत लक्ष्य तथा उसकी बुनियादी राष्ट्रीय हित है। शक्ति का इस्तेमाल राष्ट्रीय हित के प्रतिपादन में तथा सुरक्षा को सुनिश्चित करने में होता है। आज के परमाणु युग में सुरक्षा को गंभीर खतरा उत्पन्न हो गया है जिस कारण इसका महत्व सबसे अधिक माना जा रहा है।

3.7 शब्दावली

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संप्रभुता : राष्ट्रों की वह निरंकुश शक्ति जिस पर किसी किस्म का आंतरिक या बाह्य नियंत्रण न हो।

राष्ट्र राज्य : राष्ट्र का वह स्वरूप जो उसकी आबादी की जाति की पहचान पर आधारित हो इसकी आबादी खुद को साझे बंधनों से जुड़ी महसूस करती है एक निश्चित भौगोलिक खंड होता है जिसकी निश्चित सीमा होती है एंव एक स्वतंत्र सरकार की देखरेख में सत्ता होती है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था : अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की निर्माण राष्ट्रों, राज्यों या साम्राज्यों के ऐसे स्वतंत्र राजनीतिक इकाइयों द्वारा होता है जो शांतिपूर्ण सहअस्तित्व में विश्वास रखते हैं।

शक्ति : वह सामर्थ्य जिसकी बिना पर कोई दूसरों से अपना मनचाहा कार्य सम्पादित करा सके और यह सुनिश्चित कर सके कि दूसरे वह नहीं करें जो उसकी इच्छा नहीं हो।

मूर्त तत्व : आबादी और भूंखड जैसे तत्व जिनकी माप या गणना की जा सके।

अमूर्त : ऐसे तत्व जो आंखों से दिखाई न दें और जिनका आंकलन सहज न हो।

सामुहिक सुरक्षा : हमलों के खिलाफ सुरक्षा स्थापित करने की ऐसी रणनीति जिसमें दुनिया के देश मिल जुल कर साझी आर्थिक व सैन्य कार्यवाई की योजना बनाते हैं।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

हैज, जॉन एच, **द नेशन स्टेट एंड दा काइसिस ऑफ वर्ल्ड पालिटिक्स**

मारेगेंथाई, हेंस, **पालिटिक्स एमोंग नेशंस**

डयूश, कार्ल डब्ल्यू, **द एनालिसिस ऑफ इंटरनेशनल रिलेशंस**

पामर एंड पार्किस, **इंटरनेशनल रिलेशंस**

मार्टिन वाइट, **सिस्टम्स ऑफ स्टेटस,** लिसेस्टर, 1977

केनेथ ई वूल्डिंग, **थ्री पेसेज ऑफ पावर,** कैलिफोर्निया

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ऐसी व्यवस्था जिसमें संप्रभुता प्राप्त राष्ट्र अपनी विदेश नीतियों के माध्यम से एक दूसरे के साथ अंतर क्रियाओं में सहभागिता करते हैं। एक राष्ट्र लोगों का ऐसा समुदाय है जो एक निश्चित भुखंड में निवास करता है और जो एक स्वतंत्र सरकार के माध्यम से संप्रभुता का विशेषाधिकार रखता है। ऐसे राष्ट्र राज्य वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की इकाई बनाते हैं।

2) राज्य व्यवस्था के तीन प्रमुख गुण हैं:

   क) राष्ट्रीयता — ऐसी मनोवैज्ञानिक विशेषता जिसमें आबादी में घनिष्ठता आती है।

   ख) संप्रभुता

   ग) राष्ट्रीय शक्ति, इच्छानुसार कार्य करवाने की सामर्थ्य।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) राष्ट्रीयता एवं निश्चित भूखंड पर आधारित राष्ट्र, यूरोसेंट्रिक व्यवस्था जिसमें 22 राष्ट्र शामिल थे, प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रीय राज्यों का विकास, दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद संप्रभुता प्राप्त राष्ट्रों का विकास।

बोध प्रश्न 2

1) शक्ति वह सामर्थ्य है जिससे दूसरों के व्यवहार को नियंत्रित किया जाता है। यह मानव का दूसरे मानवों सोच और आचरण पर स्थापित किया जाने वाला नियंत्रण है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्रम में यह राष्ट्रों की वह क्षमता है जिसके द्वारा वे अन्य राष्ट्रों से मनवांछित कार्य सम्पन्न करवा पाते हैं।

2) ऐसे तत्व जिनका माप या आकलन संभव हो, आबादी, भूखंड (इसका आकार, मौसम, भौगोलिक बनावट, नक्शें में स्थान, आदि), प्राकृतिक संसाधन, कच्चा माल, औद्योगिक इकाइयां, सेना का आकार।

3) ऐसे तत्व जिनकी माप या आकलन सहज नहीं हो पाती, नेतृत्व की क्षमता, अधिकारी तंत्र की कार्यकुशलता, सत्ता का प्रकार, सामाजिक प्रगाढता और राष्ट्रीय नैतिक बल।

4) समझा बुझा कर, इनाम बांट कर, दंड के द्वारा या बल लगाकर।

5) ऐसी व्यवस्था जिसमें करीब आधे दर्जन राष्ट्र लगभग बराबर ताकत वाले हों, एक दूसरे की ताकत को इस प्रकार संतुलित करते हों कि किसी के पास ताकत की खतरनाक बहुलता या अधिकता न हो जाए, इस व्यवस्था को अक्सर एक या अनेक ऐसे राष्ट्र संतुलित करते हैं जो बैलेंस या लाफिंग थर्ड कहलाते हैं, जिन तरीकों से व्यवस्था संचालित होती है उनमें गठबंधन बनाना, हथियार संग्रह करना, सफर स्टेट का निर्माण तथा हस्तक्षेप आदि शामिल हैं।

6) अंतर्राष्ट्रीय स्थायीत्व लक्ष्य है जबकि सामूहिक प्रयास इसे पाने का तरीका है। इसमें हमलावर को विश्व समुदाय की सामूहिक शक्ति का सामना करना पड़ता है। इसका सिद्धांत है, एक, सबके लिए – सबके लिए एक। यह संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से कार्य करता है।

बोध प्रश्न 3

1) राष्ट्रीय हित का लक्ष्य समाज की बुनियादी जरूरतों को साधना है। इसमें राष्ट्र का कल्याण, आर्थिक विकास, राजनीतिक विचारधारा की सुरक्षा, संप्रभुता, राष्ट्रीय रूझान एवं भू–भाग की अखंडता की रक्षा शामिल है। राष्ट्रीय हित विदेश नीति का आधारभूत तत्व है। यही विदेशनीति की शुरूआती सीमा है और इसी पर विदेश नीति का समापन भी है।

बोध प्रश्न 4

1) प्रत्येक सरकार का बुनियादी लक्ष्य राष्ट्र की सुरक्षा है। विदेश नीति वह औजार है जिसके द्वारा राष्ट्रीय हितों की रक्षा की जाती है। इसलिए यदि सुरक्षा के लिए पर्याप्त उपाय नहीं किये गये तो इससे राष्ट्रीय हित की बली चढ़ जाती है।

2) परमाणु हथियारों के आगमन ने परम्परागत युद्ध की शैली एवं हथियारों की महत्ता में व्यापक फेरबदल कर दिये है। यह ओवरकिल का युग है। परमाणु हथियार ऐसे विनाशक हैं कि इनके इस्तेमाल से पूरी दुनिया के इंसानों का नामोनिशां मिटाया जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 4 प्रथम विश्वयुद्ध : कारण, घटनाएँ एवं प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 कारण
- 4.2.1 आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा
- 4.2.2 औपनिवेशिक विवाद
- 4.2.3 स्पर्द्धाकारी संधि व्यवस्था
- 4.2.4 बढ़ती राष्ट्रीय अपेक्षाएँ
- 4.2.5 युद्ध का सूत्रपात

4.3 युद्ध की घटनाओं की क्रमिकता
- 4.3.1 युद्ध का यूरोपीय चरण
- 4.3.2 युद्ध का विश्वव्यापी चरण
- 4.3.3 युद्ध की समाप्ति

4.4 युद्ध के परिणाम
- 4.4.1 पेरिस शांति सम्मेलन
  - 4.4.1.1 वर्सा की संधि
  - 4.4.1.2 अल्प संधियाँ

4.5 युद्ध के प्रभाव
- 4.5.1 यूरोप पर प्रभाव
- 4.5.2 विश्व पर प्रभाव

4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में प्रथम विश्वयुद्ध (1914-18) की चर्चा की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- युद्ध के कारणों का पता लगा सकेंगे,
- युद्ध की घटनाओं की प्राथमिकता का निर्धारण कर सकेंगे,
- युद्ध के परिणामों की चर्चा कर सकेंगे तथा
- युद्ध के प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्वयुद्ध 1914 के तृतीय चौथाई में आरम्भ हुआ था। शुरुआत में यह यूरोप तक ही सीमित था। तदुपरांत यह पूरे विश्व में फैल गया। यह चार सालों से ज्यादा चला। दुनिया को अभूतपूर्व विभीषिका का सामना करना पड़ा। स्थापित राजतंत्र ध्वस्त हुए, यूरोप का पतन तथा अमरीका का आधिपत्य शुरू हुआ। युद्ध ने नई विचारधाराओं को जन्म दिया, नई संस्थाओं को स्थापित किया तथा दुनिया में नवीन नेतृत्व का सूत्रपात हुआ। सच तो यह है कि युद्ध समाप्त होते-होते पूरी दुनिया बदल गयी थी।

यह इकाई उन कारणों की छानबीन करती है जिनसे प्रथम विश्वयुद्ध की शुरुआत होती है। तदुपरांत यह युद्ध के क्रमिक विकास की चर्चा करती है, साथ ही इस बात की भी छानबीन करती है कि उसने अंतर्राष्ट्रीय संबंध के विकास व उसके भविष्य को कैसे निर्धारित किया।

4.2 कारण

हैप्सवर्ग की गद्दी के संभावित उत्तराधिकारी आर्कड्यूक फ्रांसिस फर्डीनेंड था, उनकी उन्नीसवीं सदी की आखिरी चौथाई में हत्या कर दी गई। इस हत्या के विरोध में युद्ध की शुरुआत हुई। 28 जून 1914 को बोस्निया के क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने उसकी हत्या कर दी थी। फिर भी हत्या युद्ध का असल कारण नहीं थी। यह तो महज एक बहाना था। युद्ध के असल कारणों का पता उन राजनीतिक आर्थिक विकासों में

ढूँढा जा सकता है जो 1870 के फ्रांस जर्मनी युद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में प्रकट हुए थे। उस युद्ध के फलस्वरूप यूरोप में आर्थिक प्रतियोगिता, उपनिवेशों के लिए विवाद तथा परस्पर विरोधी गठबंधन व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। गुलाम जनता की बढती राष्ट्रीय आकांक्षाओं ने आग में घी का काम किया।

4.2.1 आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा

19वीं सदी की अंतिम चौथाई तथा बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में अधिकांश यूरोपीय देशों के बीच टैरिफ युद्ध चल रहा था। तथा समुद्र पार के बाज़ार को लेकर उनमें गंभीर प्रतियोगिता चल रही थी। टैरिफ युद्ध इटली और फ्रांस, रूस और जर्मनी तथा आस्ट्रिया एवं सर्बिया आदि के बीच चल रहा था। समुद्रपार के बाज़ार को लेकर आमतौर पर सभी यूरोपीय ताकतों, खासकर इग्लैंड और जर्मनी के बीच गहन प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी। पूरी 19वीं सदी के दौरान ग्रेट ब्रिटेन सर्वोच्च आर्थिक ताकत बना रहा था। उसकी इस हैसियत में नौसेना तथा थलसेना का भी विशेष योगदान था। अचानक यूरोप में जर्मनी महान आर्थिक शक्ति के रूप में प्रकट हुआ क्योंकि उसके छोटे-छोटे सामंती जागीर एकजुट होकर राष्ट्र राज्य का निर्माण कर चुके थे। जर्मनी का आर्थिक महाशक्ति के रूप में उदय ने समुद्रपार के बाज़ार में भी उसे कड़ा प्रतियोगी बना डाला। कहना न होगा कि इस बाज़ार में सभी यूरोपीय ताकतों जिनमें ग्रेट ब्रिटेन भी शामिल था, का बहुत कुछ दांव पर लगा हुआ था। इस प्रतियोगिता के दूरगामी राजनीतिक नतीजे निकले। इससे उन राज्यों के संबंधों के बीच अंतहीन तनाव का सिलसिला चल पड़ा। इन संबंधों में कटुता तब और भी बढ़ गयी जब प्रतियोगी देश व्यापार मार्गों तथा व्यापारिक जहाजों की सुरक्षा के लिए अपनी अपनी नौसेनाओं को मजबूत करने लगे। जर्मनी, जिसके पास पहले से ही एक बड़ी सेना थी, ने अपनी पूरी ताकत नौसेना को मजबूत करने में झोंक दी और जल्दी ही वह अपने मकसद में कामयाब भी हो गया। जर्मनी की बढ़ती आर्थिक शक्ति तथा मजबूत नौसेना और अतिविशाल आर्मी को ग्रेट ब्रिटेन एवं जर्मनी के अन्य विरोधी सहन न कर सके। नतीजतन प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी तथा जोर आजमाईश अनिवार्य हो गया।

4.2.2 औपनिवेशिक विवाद

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अपनी अतिरिक्त पूँजी एवं औद्योगिक उत्पाद के लिए सुरक्षित बाज़ार की तलाश में यूरोपीय ताकतें उपनिवेशों पर कब्जा बनाने की गरज से एक दूसरे के साथ उलझ पड़ी। उपनिवेशों की दौड़ में जर्मनी सबसे पीछे था। आर्थिक रूप से महाशक्ति बनते ही जर्मनी विदेशी बाज़ार की माँग आक्रामक ढँग से करने लगा ताकि उसके बढ़ते अर्थतंत्र के लिए बाज़ार मिल सके। जर्मनी में यह आम बात बनती जा रही थी कि उसे भी किसी न किसी उपनिवेश का मालिक होना ही चाहिए। उपनिवेशों की इस लड़ाई में जर्मनी के लिए ग्रेट ब्रिटेन सबसे बड़ा रास्ते का रोड़ा था। ग्रेट ब्रिटेन को जर्मनी दाल भात में मूसलचंद कहकर खिल्ली उड़ाता था। उपनिवेशों के लिए यह लड़ाई केवल जर्मनी एवं इंग्लैंड तक ही सीमित नहीं थी। सच तो यह है कि प्रथम विश्वयुद्ध से पहले सभी बड़ी ताकतें इस छीनाझपटी में शामिल थी। अफ्रीका और एशिया में उपनिवेश में यह अंतर्विरोध और तीव्र हुआ। नतीजतन यूरोपीय देशों के आपसी संबंधों में कटुता आई।

4.2.3 स्पर्द्धाकारी संधि व्यवस्था

दुनिया के विविध भागों में उपनिवेशों पर कब्जा जमाने के सवाल पर परस्पर विरोधी ताकतों के बीच स्पर्द्धा गठबंधन बनने लगे। रास्ता दिखाने का काम जर्मनी ने किया। उसने 1879 में आस्ट्रिया हंगरी के साथ द्वैत संधि की। इस संधि का मकसद जर्मनी को ताकतवर बनाना था ताकि वह संभावित फ्रांसीसी आक्रमण का मुकाबला कर सके। मालूम हो, जर्मनी ने फ्रांस के अल्सेस लोरैन पर कब्जा कर रखा था। संधि का मकसद आस्ट्रिया एवं हंगरी को रूसी आक्रमण से बचाना भी था क्योंकि वाल्कन क्षेत्र में इनके बीच दीर्घकालिक संघर्ष पहले से ही चल रहा था। यह संधि 1882 में त्रिसंधि बन गयी क्योंकि जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी के साथ इटली भी शामिल हो गया। उपनिवेशों की लड़ाई इटली एवं फ्रांस के खिलाफ थी और यह संधि इटली के समर्थन में बनी थी।

त्रिसंधि में शामिल देशों ने महादेश में यथास्थिति बनाये रखने का प्रयास किया। जबकि दूसरे देशों के लिए उनकी यह चाल यूरोप में आधिपत्य स्थापित करने तथा उन्हें एक दूसरे से अलग-थलग रखने की साजिश थी। इसीलिए उन्होंने प्रतिसंधि बनाने की पहल करने का प्रयास किया। नतीजतन 1893 में फ्रांस और रूस के बीच संधि हुई। यह संधि त्रिसंधि के बढ़ते प्रभाव को रोकने तथा ब्रिटेन को औकात में रखने के लिए की गयी थी। मालूम हो, उपनिवेशों को लेकर फ्रांस और रूस दोनों ही ब्रिटेन के साथ संघर्ष कर रहे थे। हालांकि समय बीतने के साथ-साथ फ्रांस, रूस एवं ब्रिटेन के विवादों का शांतिपूर्ण निपटारा हो गया। बाद में उनके बीच संधि हुई। पहले ब्रिटेन एवं फ्रांस के बीच 1904 में समझौता हुआ। तदन्तर 1907 में ब्रिटेन और रूस के बीच हुआ। ये दोनों संधिया बाद में त्रिसंधि में तबदील हो

गयी। इस प्रकार यूरोप दो विरोधी गठबंधनों में विभाजित हो गया। नतीजतन पहले से ही कटु होते जा रहे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में और भी कड़वाहट आ गयी।

4.2.4 बढ़ती राष्ट्रीय अपेक्षाएँ

उस समय यूरोप के विभिन्न हिस्सों में गुलाम अल्पसंख्यक समुदाय मौजुद थे। ये अल्पसंख्यक अपने संबद्ध साम्राज्यवादी शासकों के खिलाफ थे। उनकी बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना ने उन्हें विदेशी शासन के विरोध में ला खड़ा किया। वे स्वशासन की माँग करने लगे। अल्सासे लोरेन की फ्रांसिसी जनता जर्मनी के अतिक्रमण के खिलाफ थी। इसी तरह हैप्सवर्ग साम्राज्य को गुलाम जनता के विरोध का सामना करना पड़ रहा था। इस साम्राज्य पर, आस्ट्रिया और हंगरी का शासन कायम था। आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य के विरूद्ध इटालियन, रामैनियन तथा स्लैविक जनता भी उठ खड़ी हुई तथा स्वनिर्णय अथवा पड़ोसी राज्यों में रहने वाले अपने भाई बंधुओं के साथ एकाकार होने की माँग करने लगी। फिर भी, शासकों ने राष्ट्रवादी चेतना के उभार को शामिल करने की भरपूर कोशिश की। नतीजतन, राष्ट्रीय आन्दोलन उग्र क्रांतिकारी आंदोलनों में तबदील हो गये। बाल्कन क्षेत्र में कई स्थानों पर गुप्त क्रांतिकारी एवं उग्रवादी संगठन खड़े हो गये। ऐसे ही एक संगठन जिसका नाम ब्लैक हैड था, की स्थापना बोस्नियाई सर्वो ने वेल्ग्रेड में की। 1911 में स्थापित इस संगठन ने आर्कड्यूक फ्रांसीस फ्रेडीवैंड की हत्या करने की साजिश की तथा इस साजिश को अंजाम देने की जिम्मेदारी ने गैवरिलों प्रिसिप तथा उसके साथियों को सौप दी। फ्रेडीवैंड उस समय सराजेनों की राजकीय यात्रा पर था। प्रिसिप में अपनी योजना में सफल रहा।

4.2.5 युद्ध का सूत्रपात

आर्कड्यूक की हत्या के उपरांत आस्ट्रिया ने 23 जुलाई 1914 को सर्बिया को कड़ी धमकी दी। सर्बिया को ड्यूक की हत्या की साजिश के बारे में कुछ भी पता नहीं था। फिर भी सर्बिया ने धमकी का विनीत जवाब दिया। वह सभी माँगों/शर्तों के पालन के लिए तैयार हो गया, किन्तु एक माँग उसे स्वीकार नहीं थी। धमकी में अन्य बातों के अलावा माफी माँगने, आस्ट्रिया विरोधी आंदोलनों के दमन तथा हत्या की जवाबदेही तय करने में आस्ट्रियाई अधिकारियों की भागीदारी की माँगे शामिल थी। सर्बिया ने छानबीन में आस्ट्रियाई अधिकारियों की भागीदारी की माँग ठुकरा दी। आस्ट्रिया ने सर्बिया के जवाब को अस्वीकार करते हुए उसके विरूद्ध 28 जुलाई 1914 को युद्ध की घोषणा कर दी। सर्बिया के समर्थन में रूस भी इस युद्ध में 30 जुलाई को कूद पड़ा। रूस की भागीदारी ने जर्मनी को युद्ध में कूदने के लिए बाध्य कर दिया। उसने रूस और फ्रांस के खिलाफ क्रमशः पहली तथा तीसरी अगस्त को युद्ध की घोषणा कर दी। फ्रांस पर आक्रमण करने के लिए जर्मनी ने बेल्जियम को परास्त करने की रणनीति अपनाई। इससे ब्रिटेन खफा हो उठा। 4 अगस्त को उसने युद्ध की घोषणा कर दी। इस तरह दोनों खेमों के बीच युद्ध पूर्णरूपेण शुरू हो गया। एक खेमे में आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी थे तो दूसरे खेमें में फ्रांस, ब्रिटेन और रूस। पहला केन्द्रीय शक्ति के रूप में जाना गया तो दूसरा गठबंधन के रूण में मशहूर हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) प्रथम विश्वयुद्ध के मूल कारणों की पहचान कीजिए?

....

....

....

....

2) युद्ध में विरोधी खेमे कौन-कौन से थे।

....

....

....

....

4.3 युद्ध की घटनाओं की क्रमिकता

युद्ध के आरम्भ में माना जा रहा था कि यह एक छोटी सी मुठभेड़ होगी जिसमें कोई न कोई एक विजेता होगा। लेकिन ये मान्यताएँ झूठी साबित हुई। यह युद्ध लगभग चार साल तक जारी रहा जिसमें जान माल की अभूतपूर्व हानि हुई। विजेता और हारने वाले दोनों को ही बराबर नुक्सान उठाना पड़ा। हालांकि गठबंधन की जीत हुई थी, किन्तु उसे भी भारी कीमत चुकानी पड़ी थी।

4.3.1 युद्ध का यूरोपीय चरण

1917 के आरम्भ तक युद्ध जारी रहा और तब तक यह अनिवार्य रूप से माना जा रहा था कि यह यूरोपीय घटना थी। युद्ध यूरोप के मसले तथा उपनिवेशों पर उसके नियंत्रण के सवाल पर लड़ा जा रहा था। यूरोप ही युद्ध का मुख्य मंच था। जर्मन रणनीति युद्ध को एकाध महीने में खत्म करने की थी। इसलिए उसने फ्रांस पर आक्रमण करने से पहले बेल्जियम को रोंद डाला। कुछ ही दिनों में जर्मन की सेना पेरिस के नजदीक तक पहुँच गयी। किन्तु जर्मन अपनी इस जीत को कायम नहीं रख सका। फ्रांसीसी सैनिकों ने उसे आइसे नदी के किनारे तक वापस जाने पर मजबूर कर दिया। यह नदी स्वाभाविक सुरक्षा रेखा के रूप में जानी जाती थी। अगले तीन वर्षों तक युद्ध में शामिल पक्षों ने कोई प्रगति नहीं की। एक तरह का गतिरोध पैदा हो गया था। इस मोर्चे पर भारी क्षति उठानी पड़ी। प्रारंभिक चार महीनों में ही 7,00,000 जर्मन, 8,50,000 फ्रांसीसी तथा 90,000 ब्रिटिश लोग मारे जा चुके थे।

रूसी तथा बाल्कन के मोर्चे पर निर्णायक युद्ध लड़ा जा रहा था। रूसी मोर्चे पर अगर रूसी सैनिक पूर्वी एशिया पर कब्जा करने में नाकामयाब रहे तो बाल्कन क्षेत्र में आस्ट्रिया को अपमानजनक हार का मुंह देखना पड़ा। सर्बो ने आस्ट्रियाइयों को खदेड़ भगाया। 1914 में टर्की केन्द्रीय शक्तियों से आ मिला। टर्की ने आपूर्ति मार्ग बंद कर दिया तथा गठबंध को समुद्री मार्ग से रूस को भी जाने वाली आपूर्ति को ठप्प करने का प्रयास किया।

नतीजतन 1915 के मध्य में जर्मनी तथा आस्ट्रिया की संयुक्त सेना के हाथों रूस की अपमानजनक हार हुई। इस हार के साथ ही जार शासन का पतन भी आरम्भ हो गया। इसी बीच बुल्गारिया केन्द्रीय ताकतों के साथ आ मिला जिससे उनकी ताकत तथा मारक क्षमता में इजाफा हुआ। अब सर्बिया केन्द्रीय ताकतों के अधीन था। इस बिंदु पर इटली को संधि वाली ताकतों के समर्थन में हस्तक्षेप करने के लिए राजी किया गया।तथापि, इटली के हस्तक्षेप से युद्ध में कोई अंतर नहीं आया। केन्द्रीय ताकतों को महत्त्वपूर्ण जीतें हासिल हुई और हैम्बर्ग से परसियन खाड़ी तक का इलाका उनके कब्जे में आ गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1916 के फरवरी में केन्द्रीय ताकतों ने गठबंधन पर चौतरफा धावा बोल दिया। उनकी रणनीति गठबंधन को करारी हार देकर युद्ध की समाप्ति के लिए शांति शर्तों को निर्देशित करने की थी। जर्मनी को जान और माल दोनों की भारी क्षति उठानी पड़ी। रूस ने आस्ट्रिया को पराजित किया। इसी समय रोमानिया गठबंधन से आ मिला तथा पुर्तगाल ने अपनी तटस्थता को तिलांजली देते हुए गठबंधन के समर्थन में युद्ध में कूद पड़ा। बाल्कन मोर्चे पर केन्द्रीय ताकतों के खिलाफ गठबंधन के संयुक्त आक्रमण ने जर्मनी सेना को कई मोर्चों पर हार का सामना करना पड़ा। उसने समुद्र में अंधाधुंध पनडुब्बी युद्ध छेड़ दिया। ताकि ब्रिटेन की आपूर्ति पहुँचाने वाले जलयानों का मार्ग अवरूद्ध हो सके। हालांकि यह रणनीति काफी कामयाब रही, किन्तु इससे अमरीका गठबंधन के समर्थन में युद्ध में शामिल होने के लिए मजबूर भी हो गया। इस तरह युद्ध का पाश्विक दौर आरंभ हुआ।

अब युद्ध चौथे साल में प्रविष्ट हुआ। यूरोप को जानमाल का भारी नुकसान उठाना पड़ा। सच तो यह है कि यूरोप ढहने के कगार पर था। शांति अब सबकी माँग बन गयी थी।1917 में जर्मनी की संसद रिक्शटैग ने शांति का मसौदा तैयार किया। महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा यूरोपीय सभ्यता की रक्षा के लिए अपीलें की गई। लेकिन अभी तो इससे भी बुरे दिन आने बाकी थे।

4.3.2 युद्ध का विश्वव्यापी चरण

युद्ध में संयुक्त राज्य अमरीका के कूदने तथा 1917 की रूसी क्रांति की सफलता ने युद्ध के रंग को पूरी तरह बदल दिया। अब वह यूरोपीय घटनामात्र न रहकर विश्वव्यापी मामला बन गया।
अमरीकी हस्तक्षेप और रूसी क्रांति की वजह से विचारधारा का संघर्ष भी उभर कर सामने आया। रूसी क्रांति से क्रांतिकारी विचारधारा का सूत्रपात हुआ और अमरीका लोकतंत्र और शांति व सुरक्षा का इंतजाम करने लगा। इसी समय अमरीकी राष्ट्रपति विल्सन के मशहूर चौदह सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की गयी।

जार प्रशासन के पतन में युद्ध का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। जार प्रशासन के खात्मे के बाद बोल्शेविक सरकार की स्थापना हुई जिसने जर्मनी के साथ मार्च 1918 में ब्रेस्ट लिटोवस्क संधि पर हस्ताक्षर किये।

इस संधि की वजह से रूस युद्ध से बाहर आ गया तथा जर्मनी और रूस के बीच युद्ध का अंत हो गया। युद्ध के आरंभ से अमरीका अपनी तटस्थता बनाए हुए था। किंतु कई कारणों, जिनमें व्यापारिक जहाजों पर जर्मनी द्वारा किया जाने वाला अंधाधुंध पनडुब्बी आक्रमण तथा अमरीका के आर्थिक हितों को दाव पर लगाना एवं अंदर ही अंदर होने वाली उसकी सैन्य तैयारी शामिल थी, जिससे उसे अपनी यह चुप्पी तोड़नी पड़ी।

1917 के अप्रैल महीने में अमरीका संधि ताकतों के समर्थन में युद्ध में शामिल हुआ। युद्ध में शामिल होने के बाद राष्ट्रपति विल्सन ने अपने 14 सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की। इस 14 सूत्री कार्यक्रम में अन्य बातों के अलावा निम्नांकित बिंदुओं को शामिल किया गया था। गुप्त समझौतों के बजाय शांति की खुली प्रतिज्ञा करना, समुद्री मार्गों की आजादी, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से अवरोधों को हटाना, शस्त्र भंडारण में कमी, औपनिवेशिक प्रजा के लिए न्याय, यूरोप के विविध गुलाम, अल्पसंख्यकों के लिए स्वनिर्णय का अधिकार तथा विश्व में शांति कायम करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय निकाय की स्थापना।

4.3.3 युद्ध की समाप्ति

युद्ध में अमरीका के शामिल हो जाने से गठबंधन की मारक क्षमता काफी बढ़ गयी। अमरीका सैनिक और युद्ध सामग्री दोनों की आपूर्ति करता था। 1918 के जुलाई तक विविध मोर्चों पर तैनात अमरीकी सैनिकों की संख्या 3,00,000 थी। दूसरी तरफ, केन्द्रीय शक्ति को कहीं से भी आपूर्ति की आशा नहीं रह गयी। नतीजतन, उन्हें गठबंधन के आक्रमण को झेलने के लिए मजबूर होना पड़ा। 1918 के आते आते केन्द्रीय शक्ति में शामिल देशों ने एक के बाद एक आत्म समर्पण कर दिये। हैप्सबर्ग साम्राज्य का विघटन को गया तथा सम्राट चार्ल्स पदच्युत कर दिया गया अब जर्मनी के लिए कोई रास्ता नहीं बचा था। सम्राट कैसर विलियम II को पदच्युत कर दिया गया। अंततः जर्मनी ने नवम्बर की शुरुआत में समर्पण कर दिया। इस तरह गठबंधन की जीत के साथ युद्ध का अंत हुआ।

युद्ध चार साल और तीन महीने तक जारी रहा था। इस युद्ध में यूरोप, अमरीका, एशिया तथा अफ्रीका के तीस देश सम्मिलित हुए थे। युद्ध में चार राजतंत्र मिट गये तथा सात नये राज्यों का जन्म हुआ। युद्ध में 1.8 करोड़ से ज्यादा लोग मारे गये थे तथा 333 खरब डालर का खर्च आया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) युद्ध के यूरोपीय चरण में घटित होने वाली महत्त्वपूर्ण घटनाओं तथा प्रगतियों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

2) युद्ध में अमरीका के शामिल होने के क्या कारण थे ?

....

....

....

....

3) रूस ने युद्ध से अलग होने का फैसला क्यों किया ?

....

....

....

....

4.4 युद्ध के परिणाम

इस युद्ध के दौरान जानमाल की अभूतपूर्व क्षति हुई। दुनिया में यूरोप के वर्चस्व का पतन होने लगा तथा संयुक्त राज्य अमरीका महाशक्ति के रूप में उभरा। पूर्व में जापान ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। युद्ध का अंत गठबंधन और केन्द्रीय शक्ति के विभिन्न देशों के बीच हुए पाँच अलग-अलग समझौतों/संधियों की वजह से हुआ। ये संधियां थी, –जर्मनी के साथ बर्साम की संधि, आस्ट्रिया के साथ सेंट जर्मन की संधि, बुलगारिया के साथ नेडली की संधि, हंगरी के साथ ट्रायनन की संधि, टर्की के साथ ऐवर्स की संधि। इनमें से चार संधियों पर हस्ताक्षर 1919 में किए गए जबकि अंतिम संधि पर हस्ताक्षर 1920 में हुआ। इन संधियों में अन्य विशेषताओं के अलावा निम्नांकित महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ शामिल थी—राष्ट्रकुल की स्थापना, केवल यूरोप में स्वनिर्णय के अधिकार का अनुपालन तथा इस सिद्धांत का एशिया और अफ्रीका के यूरोपीय उपनिवेशों में लागू न किया जाना।

4.4.1 पेरिस शांति सम्मेलन

सामान्यता युद्ध की समाप्ति तथा शांति की बहाली संधियों के जरिये संभव हो पाती है। प्रथम विश्वयुद्ध भी शांति समझौतों के जरिये ही समाप्त हुआ था। जब युद्ध निर्णायक दौर में पहुँचा तब गठबंधन ताकतें विभिन्न खेमों द्वारा सुझाई जा रही योजनाओं और प्रस्तावों पर विचार करने लगी ताकि विश्व में शांति की स्थापना हो सके। जर्मनी के समर्पण तथा instruments of armistie पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद, गठबंधन ताकतों ने शांति सम्मेलन आयोजित करने की पहल की। यह सम्मेलन अंततः 1919 में पेरिस में बुलाया गया। यह करीब छह महीने तक चलता रहा। इस सम्मेलन में 32 देशों जिनमें अधिकांश गठबंधन के देश थे, ने भाग लिया। यह सम्मेलन काफी प्रभावी था क्योंकि इसमें दुनिया के सभी बड़े नेता शरीक हुए थे। किसी ऐसे सम्मेलन में पहली दफा गैर यूरोपीय देश संयुक्त राज्य अमरीका, जापान आदि शामिल हो सके। रूस इसमें शामिल नहीं हुआ, क्योंकि वह युद्ध से पहले ही अलग हो गया था। केन्द्रीय शक्तियों ने किसी भी देश को सम्मेलन की कार्यवाइयों में आमंत्रित नहीं किया था। सम्मेलन का संचालन यूँ तो मुख्य रूप से तीन बड़ी ताकतों– अमरीका, ब्रिटेन तथा फ्रांस ने किया था तथापि दूसरों की उपेक्षा भी नहीं की गयी थी। फिर भी परस्पर विरोधी एवं संकुचित राष्ट्रीय हितों क्षुद्र एवं अनुचित दावों तथा उपनिवेशों के ही लोग सम्मेलन की कार्यवाहियों में छाये रहे। नतीजतन राष्ट्रपति विल्सन के चौदह सूत्री कार्यक्रम में शामिल आदर्शवाद, धरा का धरा रह गया। सम्मेलन को कई जटिल मुद्दों के अलावा सम्मेलन को जिन मुद्दों को सुलझाना था, वे थे–यूरोप के गुलाम देशों की बढ़ती राष्ट्रीय आकांक्षाओं का ख्याल रखना, युद्ध के दौरान हुई गुप्त संधियों की समीक्षा करना, यूरोप के गठबंधन – ताकतों को हुई क्षति की भरपाई की मांग करना और युद्ध के दौरान जर्मनी द्वारा की गई गलतियों को दुरूस्त करना और युद्ध के दौरान जर्मनी के द्वारा की गई गलतियों को दुरुस्त करना आदि था। युद्ध की घोषणा के लिए जर्मनी को दोषी करार दिया गया। जानमाल की भारी क्षति के लिए भी इसी को दोषी माना गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

औपचारिक शुभारंभ के बाद पेरिस शांति सम्मेलन ने विभिन्न समस्याओं और मसलों का बारीकी से अध्ययन करने तथा उनके निदान के उचित सुझाव देने के लिए विशेषज्ञों और राजनयिकों की समितियाँ गठित की। सम्मेलन में शरीक हुए देशों की परस्पर विरोधी माँगों, लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को देखते हुए यह आसान नहीं था कि सम्मेलन किसी ठोस युक्तिसंगत नतीजे पर पहुँच जाये। राष्ट्रपति विल्सन को यूरोपीय देशों के दबाव में झुकना पड़ा। यूरोपीय देश जर्मनी से बदला लेने के लिए अडिग थे। काफी जद्दोजहद के बाद सम्मेलन शांति संधि का प्रस्ताव पास करा सका। इस संधि की शर्तें काफी कठोर थी। फिर यह संधि प्रस्ताव जर्मनी के पास यह कहकर भेजा गया कि उसे यह प्रस्ताव पूर्णरूपेण स्वीकार करना होगा। जर्मनी ने संधि यह कहते हुए अस्वीकार कर दी कि समर्पण के समय उसे भरोसा दिया गया था कि उसके साथ राष्ट्रपति विल्सन के चौदह सूत्री कार्यक्रमों में निहित सिद्धान्तों के अनुसार व्यवहार किया जायेगा। उसका आरोप था कि शांति संधि में चौदह सूत्री कार्यक्रम में निहित सिद्धान्तों का अनुपालन नहीं किया गया है। जर्मनी की आपत्तियाँ दरकिनार कर दी गयी तथा उससे कहा गया कि या तो वह चुपचाप संधि पर हस्ताक्षर कर दे या नतीजे भुगतने के लिए तैयार हो जाये। जर्मनी को अपमान का घूंट पीना पड़ा। बाद में वह इस अपमान का बदला लेने के लिए उतारू हो गया। इस तरह इस संधि में ही दूसरे युद्ध के बीज छुपे हुए थे।

4.4.1.1 वर्सा की संधि

वर्सा संधि गठबंधन ताकतों और जर्मनी के बीच हुई थी। पाँच संधियों की श्रृंखला में यह सबसे महत्त्वपूर्ण संधि थी। संधि में 440 धाराएँ शामिल की गयी थी। इसमें केन्द्रीय ताकतों की सीमाई, सैन्य और युद्ध जनित दोषों तथा शांति स्थापना के आर्थिक, राजनीतिक तथा अन्य संबंध जिसे युद्ध की शुरुआत करने का दोषी करार दिया गया था, के साथ काफी सख्त सलूक किया गया। उसे तकरीबन 40,000 वर्ग किलोमीटर का भूभाग छोड़ना पड़ा। इस भूभाग पर करीब 7,00,000 लोग निवास करते थे। इस भूभाग के खो देने से जर्मनी प्राकृतिक संसाधनों से वंचित हो गया। कहने की जरूरत नहीं की

प्राकृतिक संसाधन ही आर्थिक विकास की रीढ़ होते हैं। इसके अलावा जर्मनी को भारी हर्ज़ाना देने के लिए भी कहा गया। काफी खींचतान के बाद हर्जाने की रकम 33 खरब डालर तय की गयी। जर्मनी के उपनिवेशों को उससे छिपकर उसे राष्ट्रकुल का आवेश क्षेत्र घोषित कर दिया गया और उसे फ्रांस ब्रिटेन और जापान के बीच आबंटित कर दिया गया। सेना और नौसेना के आकार को घटाकर जर्मनी की सैनिक ताकत को भी काफी कमजोर कर दिया गया। उसे वायु सेना गठित करने अथवा आधुनिक व्यापारिक नौसेना रखने की इजाजत नहीं दी गयी। 50 किलोमीटर पूर्व तक राइन नदी को सैन्य मुक्त कर दिया गया।निरस्त्रीकरण के प्रावधानों के देखरेख की जिम्मेवारी एलायड आयोग को सौंप दी गयी। इतना ही नहीं, जर्मनी और आस्ट्रिया को एकीकरण की इजाजत नहीं दी गयी। सारांश यह कि संधि में जर्मनी को अंग भंग कर उसे सदा के लिए गठबंधन ताकतों की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया गया। बेल्जियम, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी आदि को स्वतंत्र देशों के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गयी। रूस एवं जर्मनी के बीच हस्ताक्षरित ब्रेस्ट लिटवोस्क संधि खुद ब खुद अप्रासंगिक हो गयी।

वर्सा की संधि ने दुनिया में पहली दफा विश्व शांति कायम करने के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन—राष्ट्रकुल को जन्म दिया। इस संधि ने एक और नये अंतर्राष्ट्रीय संगठन को जन्म दिया। दुनिया में पहली दफा श्रमिकों के कल्याण के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का निर्माण संभव हो सका। संधि में आवेशित भूभाग के प्रशासन के लिए भी प्रावधान बनाये गये थे।

4.4.1.2 लघु संधियाँ

वर्सा संधि के पश्चात् चार लघु संधियाँ अस्तित्व में आई। गठबंधन और आस्ट्रिया के बीच सेंट जरमेन संधि हुई। इसने हंगरी, चेकोस्लोवाकिया (अब यह चेक व स्लोवाक नामक दो स्वतंत्र देशों में विभाजित हो चुका है।) पोलैंड और यूगोसलावाकिया को स्वतंत्र देशों के रूप में मान्यता प्रदान की। आस्ट्रिया को भी विशाल भूभाग छोड़ना पड़ा।उसका साम्राज्य विखंडित हो गया था तथा आबादी भी काफी कम हो गयी थी। अब वह विशाल बहुभाषी साम्राज्य की जगह जर्मन भाषी लोगों का छोटा सा देश रह गया था।

गठबंधन और बुल्गारिया के बीच नेडली की संधि हुई थी। बुल्गारिया को फिर से अपना तट पुर्तगाल को तथा देश के पश्चिमी हिस्से में मौजूद रणनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र को यूगोस्लावाकिया को सुपुर्द करना पड़ा। बुल्गारिया की सेना घटा दी गयी तथा उसे गठबंधन ताकतों को हर्ज़ाने के रूप में 500 लाख डालर देना पड़ा।

DIKSHANT IAS

ट्रायनन संधि में गठबंधन एवं हंगरी भागीदार थे। संधि की शर्तों के अनुसार हंगरी को भूभाग और आबादी की क्षति बर्दाश्त करनी पड़ी। उसे रोमानिया को ट्रांससिनवेनिया, यूगोस्लोवाकिया को क्रोशिया, तथा चेकोस्लोवाकिया को स्लोवाक जिसे सौंपने पड़े।

Call us @7428092240

सेवर्स संधि गठबंधन और टर्की के बीच अगस्त 1920 में संपन्न हुई थी। संधि की वजह से टर्की को अपना साम्राज्य खोना पड़ा। 1923 में संधि में संशोधन किया गया तथा टर्की गणतंत्र बन गया। नई सरकार ने लुसाने में संशोधित संधि पर हस्ताक्षर कर दिए। यह लुसाने संधि के रूप में जानी गयी। टर्की ने अरब भू भाग पर अपना दावा छोड़ दिया। टर्की को न तो युद्ध का हर्जाना देने पर विवश होना पड़ा न ही इसे अपनी मर्जी की सेना रखने से वंचित किया गया।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) वर्सा संधि की मुख्य शर्तें क्या थी।

....

....

....

....

2) पेरिस शांति सम्मेलन में सम्पन्न हुई लघु संधियों के नाम बताएँ।

....

....

....

....

4.5 युद्ध के प्रभाव

इस युद्ध में यूरोप इतना कमजोर हो गया कि फिर कभी आर्थिक एवं राजनीतिक ताकत के रूप में उभर न सका। इसकी जगह संयुक्त राज्य अमरीका ने ले ली। यूरोप का आर्थिक पतन हुआ, उसे एक के बाद एक राजनीतिक संकटों का सामना करना पड़ा और उपनिवेशों की जनता की नजर में उसकी इज्जत घटती गयी। यूरोप दुनिया में आर्थिक सत्ता केन्द्र के रूप में स्थापित था तो इसीलिए कि उपनिवेशों के संसाधनों पर उसका कब्जा था। उसे अपने निवेश से होने वाली आय का काफी भरोसा था और वह उसी पर निर्भर था। युद्ध ने आय के इस स्रोत को बंद कर दिया। ब्रिटेन को अपने युद्ध पूर्व निवेश में 25% की कटौती करनी पड़ी। जबकि फ्रांस को 34%। जर्मनी का निवेश तो पूरी तरह बंद हो गया। यूरोप की जगह संयुक्त राज्य अमरीका ने ले ली। अब यूरोप एवं अमरीका का आर्थिक संबंध भी उलट गया।अब यूरोप साहूकार न रहकर कर्ज़दार हो गया था। यूरोप अब दुनिया का बैंकर और कार्यशाला नहीं रह गया।

4.5.1 यूरोप पर प्रभाव

यूरोप पर युद्ध के राजनीतिक परिणाम भी दूरगामी साबित हुए। राष्ट्रपति विल्सन के चौदह सूत्र व रूसी क्रांति के सफल निस्पादन से क्रांतिकारी विचारों का सूत्रपात हुआ।नतीजतन, महादेश के हर भाग में पुरानी व्यवस्था के खिलाफ सख्त विरोध शुरू हो गया। यूरोप की जानी मानी लोकतंत्र प्रणालियों में भी सीमित मताधिकार को ही मान्यता प्राप्त थी। युद्ध के परिदृश्य को बदल डाला। अनेक यूरोपीय देशों में जहाँ औरतों को मताधिकार प्राप्त नहीं था, अब प्राप्त हो गया। युद्ध ने नारी मुक्ति की प्रक्रिया का भी सूत्रपात किया। यूरोप के मानचित्र से निरंकुश राजतंत्रों का सफाया हो गया। अनेक देशों की वैधानिक किताबों में श्रमिक वर्ग के बुनियादी अधिकारों को शामिल किया जाने लगा। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि उपनिवेशों में यूरोप की प्रतिष्ठा खत्म हो गयी। अतः यूरोपीय अंतर्विरोध और मतभेद खुलकर सतह पर आ गये। एक दूसरे से लड़कर दोनों खोमों ने अपनी इज्जत गँवा दी। इसे वह फिर कभी न पा सके।

4.5.2 विश्व पर प्रभाव

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युद्ध का विश्व पर सर्वतोमुखी प्रभाव पड़ा। एक महत्वपूर्ण प्रभाव संयुक्त राज्य अमरीका का महाशक्ति के रूप में उभरना था। यूरोप तो युद्ध में मिट गया किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका समृद्ध होकर सामने आया। युद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमरीका दुनिया का बैंकर एवं कार्यशाला के रूप में स्थापित हो गया। कल-कारखाने कुकुरमुत्ते की तरह हर जगह स्थापित होने लगे क्योंकि युद्ध के दौरान उत्पादित वस्तुओं की माँग काफी बढ़ गयी थी। अमरीका जो एक समय कर्ज़दार देश था तथा जिस पर यूरोपीय देशों का 4 खरब डालर का कर्ज़ लदा था, अब एक साहूकार देश बन गया। 1919 के आते आते यूरोप पर अमरीका के 3.7 खरब डालर का कर्ज़दार बन चुका था। 1930 में यह कर्ज़ बढ़कर 8.8 खरब डालर हो गया। युद्ध में गठबंधन के समर्थन में शामिल होने के पीछे अमरीका की नीयत ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रों पर कब्जा करने की थी। शीघ्र ही जापान ने प्रशांत महासागर के जर्मन द्वीपों पर अपना कब्जा बना लिया। सान्तुंग प्रायः द्वीप पर उसने अधिकार कर लिया। वर्सा की संधि में जापानी माँग का बहुत हद तक अनुमोदन कर दिया। सान्तुग में जर्मनी ने किनोचाऊ का क्षेत्र पट्टे पर लिया था। संधि के इस क्षेत्र को जापान के हवाले कर दिया। जर्मनी के उत्तर प्रशांत क्षेत्रों का शासन भी जापान को सौंप दिया गया। इससे जापान दुस्साहसी होकर साम्राज्यवादी देश बन गया। चीन 1917 में युद्ध में शामिल हुआ। वह आशा कर रहा था कि वह अपना खोया क्षेत्र वापस पा सकेगा। किंतु शांतिदूतों ने चीन की माँग को अनसुना कर दिया। चीन ने संधि पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। पूरे चीन में हिंस्र प्रदर्शन आयोजित किए गए, खासकर जापान के खिलाफ। वैसे तो ये प्रदर्शन सभी विदेशियों के खिलाफ आयोजित किये गये थे किंतु जापान के प्रति चीनियों की घृणा तो जगजाहिर थी ही। इन आंदोलनों से चीन का राष्ट्रीय आंदोलन क्रांतिकारी विचारों से लैश होने लगा। भारत में भी युद्ध के दूरगामी प्रभाव देखने को मिले। युद्ध के दौरान ब्रिटेन ने वादा किया था कि युद्धोपरांत वह उन्नत किस्म के प्रशासनिक सुधारों को प्रस्तावित करेगा, बशर्ते भारत ब्रिटेन के युद्ध प्रयासों का समर्थन करे। किंतु ब्रिटेन अपने वादे पर खरा नहीं उतरा। नतीजन भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के स्वरूप पूरी तरह बदल गए तथा अततः ब्रिटेन को पूरे उपमहाद्वीप को आजादी देनी पड़ी।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) युद्ध ने विश्व (यूरोप को छोड़कर) को कैसे प्रभावित किया

....

....

....

....

4.6 सारांश

प्रथम विश्व युद्ध 1914 में भड़का और 1918 तक जारी रहा। यूरोपीय देशों की आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा, उपनिवेशों पर अपना अधिकार को लेकर उनके बीच चलने वाले विवादों तथा विरोधी गठबंधन व्यवस्थाओं ने दुनिया को विस्फोटक स्थिति में पहुँचा दिया था। गुलाम राष्ट्रों की बढ़ती राष्ट्रीय आकांक्षाएँ तथा बड़ी शक्तियों की बेजोड़ सैन्य तैयारी ने आग में घी का काम किया। इस आग की चपेट में पूरी दुनिया आ गयी। आस्ट्रियाई राजसिंहासन के संभावित उत्तराधिकारी आर्कड्यूक फर्डीनेंड की हत्या इस माहोल में की गयी। युद्ध तभी समाप्त हुआ जब लड़ने वाले देशों ने अपना सबकुछ खो दिया। शांति संधियाँ स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया गया। संधि की शर्तें अपमानजनक थी, इसमें भावी युद्ध के बीज छुपे पड़े थे। संयुक्त राज्य अमरीका महाशक्ति के रूप में उभरा। जापान एक बड़ी शक्ति बन गया। टर्की का आधुनिकीकरण हुआ और वह गणतंत्र देश बन गया। यूरोप के निरंकुश राजतंत्रों को लोकतंत्र के लिए जगह खाली करनी पड़ी। भारत सहित अनेक औपनिवेशिक देश तथा यूरोप के दूसरे पराश्रित देश युद्ध के प्रति काफी उत्साहित थे क्योंकि युद्ध ने क्रांतिकारी विचारों का सूत्रपात किया था। अब वे और दमखम के साथ राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम को आगे बढ़ाने का प्रयास करने लगे।

4.7 शब्दावली

टैरिफ्फ : एक देश से दूसरे देश में निर्यातित/ आयातित वस्तुओं पर लगाया जाने वाला कर।

DIKSHANT IAS

फ्रांस जर्मन युद्ध : यह युद्ध फ्रांस और जर्मनी के बीच 1870-71 में लड़ा गया था। फ्रांस पराजित हुआ तथा जर्मनी का एकीकरण संभव हो सका। इस युद्ध ने प्रथम विश्व युद्ध का बीजारोपण किया।

Call us @7428092240

रूसी क्रांति : 1917 में रूस अनेक क्रांतियों का गवाह बना। इन क्रांतियों की अंतिम परिणति बी आई लेनिन की अगुआई में समाजवादी राज्य की स्थापना के रूप में हुई। यह नया राज्य यू एस एस आर के नाम से जाना गया।

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डेविड थामसन, 1974, **यूरोप सिन्स नेपोलियन,** मिडिलसेक्स, इग्लैंड।

एल. एस. स्टावेरियेनोस, 1983, **ए ग्लोबल हिस्ट्री / दि ह्यूमन** हिरेटेज, न्यू जरेसी।

एम डब्ल्यू वाल्डविन, 1962, **प्रथम विश्वयुद्ध : एन आडरलाइन हिस्ट्री,** ऑक्सफार्ड।

विलियम वुडरॉक, 1981 **दि स्ट्रगल फार वर्ड पावर** 1500 -1900 : लंदन।

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1.) युद्ध के मुख्य कारण थे—बड़ी ताकतों के बीच आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा, उपनिवेशों को लेकर उनके बीच होने वाले विवाद तथा विरोधी गठबंधन व्यवस्थाएँ, उनका बढ़ता सैन्यीकरण तथा गुलाम राष्ट्रों में बढ़ती राष्ट्रीय आकांक्षाएं। आर्कड्यूक फर्डीनेड की हत्या, इस युद्ध का तात्कालिक कारण थी।

2.) सभी बड़ी ताकतें दो खेमों में बँटी थी—गठबंधन व केन्द्रीय शक्ति। जर्मनी, आस्ट्रिया हंगरी, बुल्गारिया तथा टर्की केन्द्रीय शक्ति के खेमे में शामिल थे, तो फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, रूस, अमरीका व अन्य दूसरे देश गठबंधन खेमें में। गठबंधन व केन्द्रीय शक्तियां युद्ध में विरोधी शक्तियों के रूप में शामिल थी।

बोध प्रश्न 2

1) केन्द्रीय ताकतों की आरंभिक विजयों, जर्मन रणनीति की विफलता, रूस की पराजय। अबाधित अंतः समुद्री युद्ध। रूस का युद्ध से बाहर आ जाना, अमरीका द्वारा युद्ध में हस्तक्षेप करना, हताहतों की भारी संख्या आदि।

2) जर्मनी का अबाधित, पनडुब्बी युद्ध, यूरोप में संयुक्त राज्य अमरीका का निवेश, अमरीका की सैन्य तैयारी आदि।

3) रूसी क्रांति एवं जार का पतन।

बोध प्रश्न 3

1) पेरिस शांति सम्मेलन में संधियों की शर्तें तय की गयी जिनसे प्रथम विश्वयुद्ध का अंत हुआ। इस सम्मेलन में केवल गठबंधन देशों ने भाग लिया था। यह सम्मेलन जनवरी 1918 से जून 1918 तक जारी रहा था। इसने दो अंतर्राष्ट्रीय निकायों की स्थापना की बुनियाद तैयार की—

   i) राष्ट्रकुल और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन- इसने जर्मनी को अपमानजनक संधि स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। दूसरे युद्ध का बीजारोपण भी इन्हीं संधियों में कर दिया गया था।

   ii) इसका मकसद जर्मनी को लंगड़ा–लूला बनाकर उसे गठबंधन के अधीन बनाये रखा था। संधि ने विश्वनिकायों की स्थापना भी की।

2) चार लघु संधियाँ सम्पन्न हुई– सेंट जरमेन संधि, नेडली संधि, ट्रायनन संधि और सेवर्स संधि- इन्हीं संधियों का नतीजा था कि गठबंधन और आस्ट्रिया, हंगरी, बुल्गारिया तथा टर्की के बीच युद्ध खत्म हुआ।

बोध प्रश्न 4

1) i) यूरोप कमज़ोर हुआ। यूरोप में निरंकुश शासन का अंत हुआ यूरोप और अधिक प्रणाली की दिशा में बढ़ चला।

   ii) संयुक्त राज्य अमरीका दुनिया की महाशक्ति के रूप में उभरा। पूर्व में जापान के प्रभाविता ईजाफा हुआ। टर्की का आधुनिकीकरण हुआ। रूस में क्रांति तेज हुई। औपनिवेशिक राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम और दमदार हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 5 बोल्शेविक क्रांति एवं उसका प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 बोल्शेविक और अंतर्राष्ट्रीय संबंध की नई व्यवस्था
  5.2.1 बोल्शेविक सरकार के शांति प्रयास
  5.2.2 बोल्शेविक सरकार पड़ोसी देशों में अपने विशेषाधिकारों के खात्में की घोषणा
5.3 बोल्शेविक एवं उपनिवेश-विरोधी संघर्ष
  5.3.1 पूर्व में समाजवादी विचारों का प्रसार
  5.3.2 पूर्व में राष्ट्रवादी एवं समाजवादी ताकतों की एकता
  5.3.3 राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम का तीव्र होना
5.4 कम्युनिस्ट एवं मजदूर आंदोलनों का उद्‌भव एवं विकास
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में बोल्शेविक क्रांति, जो दुनिया की पहली समाजवादी क्रांति थी, की वजह से अंतर्राष्ट्रीय संबंध में आये महत्वपूर्ण बदलावों की चर्चा की गयी है। साथ ही पूरी दुनिया में चल रहे उपनिवेश विरोधी संघर्षों, श्रमिक एवं किसान संघर्षों पर बोल्शेविक क्रांति के प्रभावों की चर्चा की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- बोल्शेविक क्रांति एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध पर पड़ने वाले उसके प्रभावों की व्याख्या कर सकेंगे,
- नये सोवियत राज्य ने शांति एवं अनाक्रमण पर आधारित शोषण तथा औपनिवेशकरण से मुक्त नयी विश्व व्यवस्था बनाने की दिशा में कौन से पहल किये हैं, उनका विश्लेषण करने में समर्थ हो सकेंगे,
- उपनिवेश विरोधी संघर्षों पर बोल्शेविक क्रांति के प्रभाव को समझ सकेंगे और
- अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी तथा श्रमिक आंदोलनों में बोल्शेविक क्रांति के योगदान की समीक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

1861 में कृषि गुलामों की मुक्ति तथा क्रिमिया युद्ध (1856-59) में रूस की हार के बाद रूस में पूँजीवाद एवं औद्योगिकीकरण की तीव्रता से विकास हुआ। महाद्वीप में अपनी मजबूत स्थिति बनाये रखने की जरूरत ने रूस को बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण को बढ़ावा देने के लिए प्रेरित/मजबूर किया। यह सब आर्थिक गतिविधियों में राज्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका से संभव हो सका। पूँजीवाद के विकास के साथ रूस को कच्चे माल और बाज़ार की भी जरूरत पड़ी। 19वीं सदी की तीसरी चौथाई के वर्षों के शुरू होते-होते रूसी साम्राज्यवाद पहले ही केन्द्रीय एशिया में अपने उपनिवेश बना लिये थे तथा वाल्कन एवं सुदूर पूर्व क्षेत्र में उपनिवेश बनाने के लिए दूसरी साम्राज्यवादी ताकतों के साथ प्रतिस्पर्द्धा कर रहा था। सदी के अंत तक रूस एक साम्राज्यवादी ताकत बन चुका था किंतु उसकी कृषि आज भी अर्द्ध सामंती व्यवस्था पर आधारित थी तथा उसकी राज्य व्यवस्था भी निरंकुश थी। न तो कोई जनप्रिय सरकार थी, न कानून बनाने के लिए कोई प्रतिनिधिक संस्था थी और न ही कोई जनाधिकार एवं राजनीतिक स्वतंत्रता थी। उदारवादी समूह कमज़ोर थे जो शासकों के साथ बहुधा समझौते करते रहते थे। मार्क्सवाद लोकप्रिय हो रहा था। उसे सामंत विरोधी एवं पूँजीवाद विरोधी ताकतों की एकजुट करने के कठिन काम को पूरा करना था।

मार्क्सवादी समूह जो तब सामाजिक लोकतंत्रवादी कहे जाते थे, आपस में कई समूहों में बँटे हुए थे। उनके बीच विचारधारात्मक विभेद ऐसे थे कि उन्हें बाँटा नहीं जा सकता। 1898 में गठित रसन सोसल डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी (आर एस डी एल जी) दो मुख्य समूहों में विभाजित था: बोल्शेविक (बहुसंख्यक) और मेन्शेविक (अल्पसंख्यक)। हालांकि दोनों समाजवादी क्रांति से पहले लोकतांत्रिक सामंत विरोधी

क्रांति की वकालत करते थे, किन्तु बोल्शेवकों की राय थी कि श्रमिक वर्ग ही क्रांति के इस लोकतांत्रिक दौर की अगुआई करें। जबकि मेन्शेविक चाहते थे कि बुर्जआॅजी यानि पूँजीवादी इसका नेतृत्व करें। अंततः लेनिन की अगुआई में बोल्शेविक 1917 के आते आते क्रांति के अगुआ बन गये। उनके नेतृत्व में मज़दूरों और किसानों का गठबंधन क्रांति के बाद राज्य सत्ता पर काबिज हुआ। 1917 में जार प्रशासन का तख्तापलट हो जाने के बाद बर्जुआॅनी का समर्थन तथा उनकी सरकार में शामिल होने वाले मेन्शेविकों का मजबूर किसानों के बीच कोई आधार नहीं रह गया। अक्टूबर के आते आते वे बिल्कुल अलग-थलग हो गये। 7 नवम्बर (पुराने रूसी कैलेंडर के अनुसार 25 अक्टूबर) को तीन दिनों के कड़े सशस्त्र संघर्ष के बाद बोल्शेविकों को विजय मिल सकी। जब 1917 के फरवरी में अस्थायी सरकार ने अंततः समर्पण कर दिया।

प्रथम विश्वयुद्ध पहले ही जार प्रशासन के भाग्य का फैसला कर चुका था। युद्ध ने रूसी राज्य के संकटों को उजागर कर दिया था। युद्ध की शुरूआत में रूसी समाज अंतर्विरोधों का बंडल था–सामंतों एवं किसानों के बीच अंतर्विरोध थे, कुलकों और भूमिहीन मजदूरों के बीच अंतर्विरोध थे, यानि तरह तरह के अंतर्विरोध विद्यमान थे। युद्ध शुरू होते ही ये अंतर्विरोध तेज हो गये। युद्ध की भारी कीमत रूस के लिए बहुत अधिक थी क्योंकि अन्य साम्राज्यवादी देशों की तुलना में वह एक पिछड़ा हुआ राज्य था। राज्य युद्ध का इतना भारी खर्च वहन नहीं कर सका और अंततः इस बोध को किसानों एवं मजदूरों को ढ़ोना पड़ा। मजदूर यहाँ तक कि सैनिक भी राज्य के खिलाफ खड़े हो गये। इतिहास में पहली दफा एक समाजवादी क्रांति सफल हुई। कब्जा न होगा कि क्रांति के लिहाज से रूस से बेहतर कोई दूसरा देश नहीं था क्योंकि वह साम्राज्यवादी श्रृंखला की सबसे कमजोर कड़ी थी।

अक्तूबर क्रांति ने एक युग का सूत्रपात किया। किसानों और मजदूरों ने राज्य सत्ता पर कब्जा बनाया। इनके हित धार्मिक शोषण, युद्ध, आक्रमण, औपनिवेशीकरण और नस्लवादी भेदभाव के खिलाफ थे। क्रांति ने एक ऐसे राज्य को जन्म दिया जो युद्ध व साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई में प्रेरक शक्ति के रूप में काम करता रहा। इसने वैकल्पिक विश्व समाजवादी व्यवस्था को भी जन्म दिया। जो यह व्यवस्था बराबरी और शोषण मुक्ति के सिद्धान्त पर आधारित थी जिसमें किसी भी तरह के अतिक्रमण औपनिवेशीकरण एवं नस्लवादी पूर्वाग्रह के लिए कोई जगह नहीं थी। यह व्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था जो औपनिवेशीकरण, आर्थिक शोषण एवं नस्लवाद आदि पर आधारित थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.2 बोल्शेविक एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध की नई व्यवस्था

दुनिया के मेहनतकश लोगों और उपनिवेशों के लोगों को अक्तूबर क्रांति ने आशा और मुक्ति का पैगाम दिया। यह संदेश किसी भी तरह के शोषण से मुक्ति का संदेश था, चाहे उसका स्वरूप राष्ट्रीय हो, सामाजिक हो, आर्थिक हो अथवा राजनीतिक हो। इसकी अभिव्यक्ति बोल्शेविक सरकार की उद्घोषणाओं, उसके कानूनी प्रावधानों तथा राजनयिक पहलों में हो रही थी।

मज़दूर वर्ग और शोषित जनता के अधिकारों का घोषणा-पत्र 1918 के जनवरी माह में होने वाले ऑल रसियन कांग्रेस ऑफ सोवियत में स्वीकार किया गया था। इस घोषणा पत्र में मानवता को युद्ध से मुक्ति दिलाने का दृढ़ संकल्प दुहराया गया था और कहा गया था राष्ट्रों के बीच शांति बहाल करने की भारी से भारी कीमत भी चुकायी जायेगी। इसके लिए न तो किसी राज्य को जबरन अपने में मिलाया जाएगा और न ही किसी से कोई हर्ज़ाना लिया जायेगा। घोषणा पत्र में सोवियत राज्य के बारे में कहा गया है —"बुर्जुआ सभ्यता की उस बर्बर नीति से पूरे तौर पर अलग जिसने कुछ चुने हुए राष्ट्रों के शोषकों की समृद्धि के लिए एशिया के सैकड़ों लाखों लोगों, सामान्यतया सभी उपनिवेशों एवं छोटे देशों को गुलाम बनाया है।"

सोवियत राज्य ने मौजूदा अंतर्राष्ट्रीय संबंध जहाँ युद्ध व औपनिवेशीकरण सहजीवी अंग थे, के खिलाफ सख्त रूप अपनाया। इसके बदले, न्यायसंगत एंव लोकतांत्रिक शांति तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंध की ऐसी व्यवस्था जो सामान्य लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित हो, की वकालत की गयी। गुप्त राजनय की भर्त्सना अंतर्राष्ट्रीय राजनय की अनिवार्य तार्किक परिणति है।

5.2.1 बोल्शेविक सरकार के शांति प्रयास

दि डेक्री ऑन पीस सोवियत राज्य के महत्वपूर्ण प्रारंभिक कानूनों में से एक था। इसमें गुप्त राजनय की नीति की भर्त्सना की गयी थी। इस कानून के मुताबिक सोवियत विदेश मंत्रालय जारवादी राज्य (रूसी शहंशाहों को जार कहा जाता था) द्वारा की गयी गुप्त संधियों को उजागर करने लगा। इन संधियों में आंग्ल रूसी संधि तथा मध्य पूर्व में ब्रिटेन एवं रूसी हितों के क्षेत्रों की पहचान करने के लिए 1907 में हुए सम्मेलन तथा टर्की को ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के बीच विभाजित करने वाली 1916 की संधि शामिल थी।

गठबंधन शक्तियों (प्रथम विश्व युद्ध की विजेता शक्तियाँ) द्वारा शांति का सामान्य हल ढूंढने की मनाही ने रूस को जर्मनी आस्ट्रिया, हंगरी, टर्की तथा बुल्गारिया (युद्ध का दूसरा गुट) के साथ समझौता करने पर विवश कर दिया। सोवियत प्रस्ताव में 6 बिंदु थेः युद्ध के दौरान अधिग्रहित क्षेत्र पर किसी भी तरह का जबरन कब्जा नहीं करना, युद्ध में पराजित राष्ट्रों की राजनीतिक स्वतंत्रता की पुनर्बहाली, जातीय अल्पसंख्यकों को अपनी मर्ज़ी से पूर्व राज्य के साथ रहने अथवा जनमत के द्वारा स्वतंत्र राष्ट्र बनाने का अधिकार देना, किसी राज्य के जातीय अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा विशेष कानूनों, जिसमें राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और हो सके तो प्रशासनिक स्वतंत्रता की बात शामिल हो, के जरिये करना, युद्ध के हर्जाने को खत्म करना और औपनिवेशिक समस्याओं का हल उपर्युक्त चार सिद्धान्तों के आधार पर तय करना। यद्यपि जर्मनी ने सोवियत प्रस्ताव को ठुकराते हुए उस पर अपमानजनक शांति शर्तों को थोप दिया, फिर भी, लेनिन अपनी ही पार्टी एवं सरकार के तीखे विरोध की अवहेलना करते हुए, जर्मनी की शर्तों पर ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए राजी हो गया। लेनिन का दृढ़मत था कि युद्ध मेहनतकश जनता के लिए हानिकारक है।

5.2.2 बोल्शेविक सरकार द्वारा पड़ोसी देशों में अपने विशेषाधिकारों के खात्मे की घोषणा

सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में राष्ट्रीय संप्रभुता एवं समानता की धारणाएँ सोवियत विदेश नीति के अनिवार्य अंग थे। इनके जरिये रूस लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय संबंध को प्रतिष्ठित करना चाहता था। पहले समाजवादी राज्य के उदय ने औपचारिक रूप से स्वतंत्र छोटे राज्यों, उपनिवेशों और अर्द्ध-उपनिवेशों को साम्राज्यवादी ताकतों के शोषण एवं अतिक्रमण के खिलाफ संघर्ष तथा अपनी संप्रभुता की रक्षा करने के लिए प्रेरित किया। अंतर्राष्ट्रीय संबंध की नयी व्यवस्था के निर्माण की प्रक्रिया में सोवियत राज्य ने पूर्वी राज्यों के साथ अपने संबंधों को तरजीह दिया। ये संबंध समानता, परस्पर सम्मान व मित्रता के सिद्धान्तों पर बनाये जाने थे। सोवियत साम्राज्यवाद के खिलाफ उनके संघर्ष में दोस्ताना मदद देने के लिए तैयार था।कठिन आर्थिक हालात के बावजूद, सोवियत राज्य ने टर्की, अफगानि- स्तान, ईरान आदि देशों को न केवल राजनीतिक एवं नैतिक समर्थन अपितु भारी आर्थिक मदद भी प्रदान की। 1919 के जून महीने में सोवियत राज्य ने ईरान में रूसी नागरिकों के तमाम विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया, ईरान के राजकीय राजस्व पर से अपने तमाम नियंत्रण हटा लिये तथा ईरान के कैस्पियन तट पर स्थित बैंकों, रेलमार्गों, सड़कों और बंदरगाहों तथा उन तमाम परिसंपत्तियों को जिन पर जारकालीन रूस का कब्जा था, को फिर से ईरान के हवाले कर दिया। 1921 के फरवरी महीने में ईरान के साथ मैत्री संधि (ईरान और यूरोप के बीच संपन्न हुई पहली समतामूलक संधि) पर हस्ताक्षर हुआ। इस संधि ने ईरान की स्वतंत्रता और सोवियत राज्य से लगी। उसकी सीमाओं की सुरक्षा की गारंटी दी। इसी तरह टर्की के साथ मैत्री एवं सहयोग की संधि की गयी। नतीजतन टर्की सोवियत राज्य द्वारा दिये जाने वाले प्रचुर आर्थिक, वित्तीय और सैन्य सहायता का हकदार बना। 1921 के बसंत में सोवियत अफगान संधि हुई जिसके तहत अफगानिस्तान को ब्याजमुक्त कर्ज दिया गया तथा वहाँ काम करने के लिए सोवियत विशेषज्ञ भेजे गये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) बोल्शेविकों ने अंतर्राष्ट्रीय संबंध की किस नई वैकल्पिक व्यवस्था का निर्माण किया ?

....

....

....

....

2) बोल्शेविक शांति नीति की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

5.3 बोल्शेविक एवं उपनिवेश-विरोधी संघर्ष

फिर भी इस स्वप्नसरीखे प्रथम समाजवादी राज्य की स्थापना का सबसे चिरस्थायी देन प्रेरणा के रूप में सामने आई थी। क्रांतिकारी चिंतन और विचारों की सफलता ने उपनिवेश बना दिए राष्ट्रों के स्वतंत्रता सेनानियों की पीढ़ियों को प्रभावित किया। इसने अल्पविकसित दुनिया की मेहनतकश जनता के क्रांतिकारी आंदोलनों को भी बल दिया। सामंती और पूँजीवादी प्रभुओं पर रुसी मेहनतकश जनता की जीत ने उपनिवेशों की जनता के सामने यह उजागर कर दिया कि यूरोपीय साम्राज्यवादी एवं उसके स्थानीय बंधु शोषितों के समवत संघर्ष के सामने अजेय नहीं है। नये समाजवादी राज्य की रूस एवं पूर्व की मेहनतकश जनता के नाम जारी अपील में इरानियों, तुर्कों, अरबों और हिन्दुओं से कहा गया कि वे अपने कंधों से शोषण के जुए को उतार फेंकने में समय जाया न करें तथा जल्दी से जल्दी अपनी जमीनों पर अपनी मिल्कियत कायम करें। अपील में भारत की उबलती राष्ट्रीय चेतना का विशेष उल्लेख किया गया था नये क्रांतिकारी राज्य की ऐसी घोषणाओं ने उपनिवेशों की जनता को भरोसा दिया कि रूस की क्रांतिकारी सरकार के रूप में उनका असल हमदर्द खड़ा है जिसे वे साम्राज्यवादी के खिलाफ अपने संघर्ष में इस्तेमाल कर सकते हैं।

5.3.1 पूर्व में समाजवादी विचारों का प्रसार

अक्तूबर क्रांति की राह पाकर समाजवादी विचारों का व्यापक प्रसार हुआ। राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के कई नेता इन विचारों से प्रभावित हुए।भारत के पंडित नेहरू वैज्ञानिक समाजवाद से खासतौर पर प्रभावित थे। भारत की खोज नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा, "सामाजिक विकास के मुतल्लिक मार्क्स का सामान्य विश्लेषण उल्लेखनीयरुप रूस से सही प्रतीत होता है। लेनिन ने इन विचारों को अनुवर्ती विकासों में सफलतापूर्वक उपभोग किया है।" वैज्ञानिक समाजवाद राष्ट्रीय बुद्धिजीवी वर्ग के लिए अपने देश अथवा बाहर की राजनीतिक और सामाजिक ताकतों के बारे में बेहतर समझ पैदा करने में सहायक रहा। इस समझ का प्रयोग राजनीतिक स्वतंत्रता एवं सामाजिक विकास के संघर्षों में किया जा सकता था। इसने उन्हें उस विचार धारा की पहचान करने में मदद दी जो राष्ट्रीय पुनर्जीवन के लिए सबसे ज्यादा माकूल हो सकता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.3.2 पूर्व में राष्ट्रवादी एवं समाजवादी ताकतों की एकता

अक्तूबर क्रांति के प्रभाव में समाजवादी विचारों का व्यापक प्रसार हुआ। अनेक क्रांतिकारी समूहों एवं कम्युनिस्ट पार्टियों का गठन हुआ। इनके क्रियाकलापों से मेहनतकश जनता की चेतना में ईजाफा हुआ और शोषण चाहे साम्राज्यवादीयों की हो अथवा स्थानीय शोषकों के खिलाफ लामबंद हुए। ये समूह जनता को राजनीतिक रूप से सक्रिय बनाने की दिशा में तो कार्य कर ही रहे थे, किसानों और मज़दूरों के संघर्ष को राष्ट्रीय मुक्ति और साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्षों से जोड़ने के लिए जमीन भी तैयार कर रहे थे। साम्राज्यवाद को पराजित करने में मज़दूरों और जनता के राष्ट्रीय संघर्षों के बीच एका की महत्ता का अहसास अक्तूबर क्रांति ने करा दिया था। रूस में समाजवाद की सफलता तथा विश्व साम्राज्यवाद को लगे झटके के साथ-साथ एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमरीका का राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम और अधिक व्यापक और तेज हुआ। एक-एक कर अनेक देश और समाज के अनेक तबके इस मुहिम में शामिल होते चले गए। राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के लक्ष्यों और सरोकारों में और अधिक गहराई आई और सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि वे उत्तरोत्तर सफल होते गए। सोवियत राज्य राष्ट्रीय एवं सामाजिक मसालों का सफल संचालन कर चुका था। बहुत हद तक यह उसी क्रांतिकारी प्रभाव का नतीजा था। संक्षेप में कहा जाए तो अक्तूबर क्रांति ने पूरी दुनिया में समाजवाद और राष्ट्रीय मुक्ति की ज्वाला प्रज्जवलित कर दी। इसने उपनिवेशों की जनता को जागृत किया, राष्ट्रीय आंदोलनों के आधार को व्यापक बनाया और अंततः उपनिवेशों और अर्द्ध उपनिवेशों में उत्तरपंथी आंदोलन की प्रक्रिया को तेज किया।

रूसी क्रांतिकारियों की कामयाबी से प्रेरित होकर विदेशों में कार्यरत्त भारतीय क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने लेनिन एवं अन्य बोल्शेविक नेताओं से संपर्क साधा। महेन्द्र प्रताप, बर्कतुल्ला, ओबेदुल्ला, सिन्धी, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन्द्रनाथ दत्त, हरदयाल एवं एम एन राय मास्को जाकर भारत की मुक्ति के लिए सहयोग और निर्देश प्राप्त करने वाले महत्वपूर्ण व्यक्तियों में से थे। पंडित नेहरू एवं रवीन्द्र नाथ टैगोर रूसी घटनाओं से गहरे प्रभावित होने वाले दो भारतीय नेता थे। वे जीवन भर सोवियत रूस के प्रतिबद्ध मित्र बने रहे। विदेशों में कार्यरत्त भारतीय क्रांतिकारियों ने अक्तूबर क्रांति से प्रेरणा ग्रहण की थी और समाजवाद को व्यावहारिक लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया था। इनमें अफगानिस्तान के रास्ते रूस जाने वाले युवा मुहानिदीन व प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व संयुक्त राज्य अमरीका में स्थापित गदर पार्टी के सदस्य शामिल थे। भारत के नवजात मज़दूर आंदोलन ने अनेक कम्यूनिस्ट समूहों का निर्माण किया और अंततः 1925 में कम्यूनिस्ट पार्टी के गठन की औपचारिक घोषणा को संभव बनाया। जेल के दिनों में

शहीद भगत सिंह समाजवाद की ओर आकर्षित होने लगे थे। जेल में रहते हुए उनकी अंतिम गतिविधि थी लेनिन दिवस मनाना।

5.3.3 राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम का तीव्र होना

उपनिवेशों की व्यापक जनता को अनुप्रेरित कर अक्तूबर क्रांति ने राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम की गति को तेज किया। भारत में 1915 के आखिर और 1919 की शुरुआत में बड़े पैमाने पर हड़तालें हुई। भारत के लिए इतने बड़े पैमाने पर हड़तालों का आयोजन अनजानी बात थी। बम्बे कपड़ा मिलों के मजदूरों की हड़ताल में 1, 25, 000 व्यक्तियों ने शिरकत की थी। 1920 के शुरुआती छह महीनों में हड़ताल आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। इस दौरान करीब 200 हड़तालें हुई जिसमें एक करोड़ पचास लाख लोग शामिल हुए। यही वह स्थिति थी जब गांधी जी और कांग्रेस ने अहिंसक असहयोग आंदोलन चलाने का फैसला किया था। जब लामबंदी की नजर से यह बहुत बड़ा कदम साबित हुआ।

अन्य देशों में भी साम्राज्यवाद के खिलाफ कड़े संघर्ष देखे गये। माइकेल कॉलीन्स की अगुआई में आयरिस उग्रवादी ब्रिटेन के खिलाफ युद्ध जारी रखे हुए थे जबकि सिन फियेन पार्टी आयरिश गणतंत्र के गठन की घोषणा कर चुकी थी। मिस्र में जगलुल पासा की राष्ट्रवादी ब्रिटिश सत्ता को गंभीर चुनौती दे रही थी। 1919 में जगलुल का देश निकाला होने पर जबर्दस्त जन विद्रोह उभरा जिसे ब्रिटिश शासन ने बर्बरता से कुचल डाला। 1920 में मिस्र की आजादी की घोषणा की गयी। टर्की में मुस्तफा कमाल पासा ने गठबंधन के अधिग्रहण के खिलाफ जंग का ऐलान कर दिया और एक अस्थायी सरकार का गठन किया। चीन ने न केवल वर्सा संधि पर हस्ताक्षर करना अस्वीकार कर दिया, अपितु वह साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष के नये दौर में भी जा पहुँचा। 1919 के चतुर्थ मई आंदोलन, जो संक्रमण का संकेतक बना, में बड़े पैमाने पर बुद्धिजीवियों और छात्रों की भागीदारी हुई, कंफ्युशियनवाद पर सीधा धावा बोला गया तथा जापानी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया।

पूर्व के राष्ट्रवादी नेताओं का अक्तूबर क्रांति के प्रति सकारात्मक रूख था। बाल गंगाधर तिलक ने अपने केसरी अखबार में क्रांति का अभिवादन किया था। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे प्रमुख नेता विपिन चन्द्र पाल अक्तूबर क्रांति और हर तरह के शोषण का अंत करने के उसके दावे से गहरे प्रभावित थे। लाला लाजपत राय के दिल में रूसी क्रांति की सफलता और पूरब के प्रति उसकी नीति के प्रति बहुत सम्मान था। जवाहरलाल नेहरू के राजनीतिक चिंतन पर रूसी क्रांति और उसकी समाजवादी उपलब्धियों का गहरा असर था। और नेहरू की वजह से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सोच में क्रांतिकारी बदलाव आया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन भात सेन चीन के नेताओं में पहले थे जिन्होंने एशियाई राज्यों का आहवान किया कि वे सोवियत रूस को मान्यता प्रदान करे। यह नये क्रांतिकारी राज्य के द्वारा चीन के प्रति अपनायी गयी नीतियों का भी प्रतिफल था। बेजिंग की सरकार सोवियत गणतंत्र के प्रति दुश्मनी का भाव रखती थी, फिर भी जन चेतना का ऐसा विस्फोट होता रहा। 1918 में सोवियत रूस उन तमाम संधियों, समझौतों और कर्ज़ों को खारिज कर दिया जिन्हें जार प्रशासन ने चीन के ऊपर आरोपित किये थे। चीन के बड़े बुद्धिजीवियों ने चीन के भविष्य निर्धारण में अक्तूबर क्रांति की महत्ता को पहचान लिया था। लि दाजों और लू शून, जो चतुर्थ मई आंदोलन के प्रणेता थे, ने क्रांति को नये युग की सुबह कह कर सम्मानित किया। चतुर्थ मई आंदोलन आगे चलकर चीनी कम्युनिष्ट आंदोलन का नायक बना था

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) उपनिवेश विरोधी संघर्ष में बोल्शेविकों ने किस प्रकार योगदान किया था ?

....

....

....

....

2) उपनिवेश विरोधी संघर्षों में समाजवादी और राष्ट्रवादी ताकतों के बीच एकता कायम करने में बोल्शेविक क्रांति की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

3) राष्ट्र मुक्ति संग्राम को तीव्र करने में अक्तूबर क्रांति की क्या भूमिका रही ?

....

....

....

....

5.4 कम्युनिस्ट एवं मजदूर आंदोलनों का उद्‌भव और विकास

अक्तूबर क्रांति का असर केवल उपनिवेशों के मुक्ति संघर्ष पर ही नहीं हुआ था, अपितु इसने पूरब में कम्युनिस्ट और मजदूर आंदोलनों की शुरुआत के लिए मार्ग भी प्रशस्त किया। विभिन्न कम्युनिस्ट समूहों और आंदोलनों को एकजूट करने, मार्क्सवादी, लेनिनवादी विचारधारा को लोकप्रिय बनाने तथा साम्राज्यवाद के खिलाफ जंग में कम्युनिस्ट ताकतों को जोड़ने की रणनीति और तरीकों की चर्चा करने के लिए 1919 में मास्को में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (यह कोमिनटर्न के नाम से भी जाना जाता है) की स्थापना की गयी। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का मकसद विकसित पश्चिमी दुनिया के मज़दूरों और उपनिवेशों की दमित जनता की एकता कायम करना था ताकि साम्राज्यवाद के खिलाफ साझी लड़ाई को प्रभावी बनाया जा सके। दुनिया भर के क्रांतिकारियों के लिए कम्युनिस्ट इंटरनेशनल संयोजन केन्द्र बन चुका था। राष्ट्रीय और औपनिवेशिक सवालों के मद्देनजर साम्राज्यवाद विरोधी ताकतों का सांझा मोर्चा खोलना सदैव ही कोमिनटर्न के सिद्धान्त और व्यवहार के केन्द्र में रहा। सभी साम्राज्यवाद विरोधी ताकतों और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों की एकता, अंततः 1920 में कोमिनटर्न के दूसरे कांग्रेस में फलीभूत हुआ।

औपनिवेशिक प्रशासन के दमनकारी चरित्र को देखते हुए यह अजीब नहीं था कि पूर्वी देशों की अनेक कम्युनिस्ट पार्टियों का गठन कोमिनटर्न के तत्वाधान में रूस में किया गया। टर्की के कम्युनिस्टों ने सबसे पहले रूस में अपनी पार्टी का गठन किया था, बाद में इरानियों, चीनियों व कोरियाइयों ने अपनी पार्टियाँ बनाई। भारत में पहली दफा 1920 में कंयुनिस्टों का कोई संगठन बना। यह भी तब संभव हुआ जब ताशकंद में सम्पन्न दूसरे कांग्रेस में उपस्थित होने वाले भारतीय लोग लौटकर भारत आए। एम एन राय और एच मुखर्जी की पहल पर सात व्यक्तियों के इस ग्रुप ने अपने आपको भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी कहन शुरू कर दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के महत्व पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

2) कम्युनिस्ट व मज़दूर पार्टियों के निर्माण में बोल्शेविकों का क्या योगदान रहा है ?

....

....

....

....

5.5 सारांश

बोल्शेविकों की जीत और मुक्ति संग्रामों को दिए गए उनके समर्थन ने उपनिवेशों में साम्राज्यवाद विरोधी। संघर्ष को तेज करने का माकूल माहौल बनाया। इसने न केवल दुनिया भर के राष्ट्रवादियों और कम्युनिस्टों को प्रेरित किया अपितु उन्हें साझे साम्राज्यवाद विरोधी जंग में एक मंच पर लाने में भी मदद पहुँचाई। बोल्शेविक सरकार की शांति नीति तथा विशेषाधिकारों एवं गुप्त राजनय छोड़ने के उसके संकल्प ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की नयी व्यवस्था के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

5.6 शब्दावली

साम्राज्यवाद एक ऐसी व्यवस्था जहाँ विकसित पूँजीवादी राज्य अल्पविकसित देशों को कच्चेमाल, श्रम एवं बाज़ार के लिए उपनिवेश बनाते हैं। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि इस व्यवस्था के अंतर्गत विकसित राज्य ऊँचे लाभ के लिए अपनी अधिपूँजी का निवेश अल्पविकसित राज्यों में करते हैं।

पूंजीवादी व्यवस्था पूँजीवादी अथवा बुर्जुवा व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें भूमि श्रम एवं उत्पाद बाज़ार, चीजे होती है और मजदूरों का उत्पादन के साधनों पर न तो कोई मल्कियत होती है और न ही कोई नियंत्रण। नतीजतन पूँजीपति मज़दूरों का शोषण करते हैं।

समाजवाद ऐसी व्यवस्था जहाँ मज़दूर वर्ग ही शासक वर्ग होता है और उत्पादन के साधनों पर किसी का निजी स्वामित्व नहीं होता।

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अशरफ अली एंड जी ए सियोमिन (संपादित), 1917, अक्तूबर क्रांति और भारतीय स्वतंत्रता, सटलिंग पब्लिसर्स दिल्ली

ई एच कार, दि बोल्शेविक रिवोल्यूशन 1917-21, पेंज्युइन बुक्स, लंदन।

मिल्कोखिन, एल बी, 1901, लेनिन इन इंडिया, एलायड पब्लिसर्स, दिल्ली।

पटनायक अशोक कुमार, 1992, सोवियत और भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन 1917-29, अनामिका पब्लिसर्स, दिल्ली।

पेथीब्रिज, रोजर, 1972, रूसी क्रांति का प्रसार, ऐसे ऑन 1917, मैक्मिलन, लंदन।

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. भाग 5.2 तथा उपभाग 5.2.3 देखें।
2. उपभाग 5.2.2 तथा 5.2.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1. उपभाग 5.2.3 व 5.3.1 देखें।
2. उपभाग 5.3.2 व 5.3.3 देखें।
3. उपभाग 5.3.3 व 5.3.4 देखें।

बोध प्रश्न 3

1. भाग 5.4 देखें।
2. उपभाग 5.3.2, 5.3.3, व भाग 5.4 देखें।

इकाई 6 द्वितीय विश्वयुद्ध : कारण और परिणाम (महाशक्तियों का उदय)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारंभ और कारण
  6.2.1 युद्ध का प्रारंभ
  6.2.2 संयुक्त राज्य अमरीका एवं सोवियत संघ का मित्र बनना
6.3 द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम
  6.3.1 इटली और जर्मनी की पराजय
  6.3.2 जापान की पराजय
6.4 द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् शांति की स्थापना
  6.4.1 पोट्सडम सम्मेलन
  6.4.2 शांति संधियाँ
6.5 महाशक्तियों का उद्गम
  6.5.1 संयुक्त राज्य अमरीका का नाभिकीय शक्ति बनना
  6.5.2 संयुक्त राज्य अमरीका को सोवियत संघ की चुनौती
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में द्वितीय विश्वयुद्ध का वर्णन किया गया है। इस युद्ध का प्रारंभ सितम्बर 1939 में हुआ और संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा दो आण्विक बमों का प्रयोग करने पर अगस्त 1945 में इसका अंत हुआ। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- द्वितीय विश्वयुद्ध के कारणों को जान सकेंगे,
- कैसे द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारंभ हुआ और किस प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ मित्र बने समझ सकेंगे,
- प्रयासों का परिणाम युद्ध के समापन पर शांति संधियों पर हस्ताक्षर के रूप में हुआ इसके बारे में जान सकेंगे, और
- संयुक्त राज्य अमरीका एवं सोवियत संघ के महाशक्तियों के रूप में उद्गम के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

पोलैण्ड पर 1 सितम्बर को जर्मन आक्रमण के साथ 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारंभ हुआ। इससे पूर्व दो भूतपूर्व शत्रुओं जर्मनी तथा सोवियत संघ ने गैर आक्रमण समझौते पर हस्ताक्षर कर दोनों ने अपने बीच पोलैण्ड के विभाजन के मार्ग को प्रशस्त किया। एक ओर सोवियत संघ और दूसरी ओर ब्रिटेन एवं फ्रांस के बीच समझौता करने के सभी प्रयास व्यर्थ साबित हुए। किंतु ठीक उसी समय सोवियत संघ एवं जर्मनी के बीच और जर्मनी एवं ब्रिटेन के बीच गुप्त बातचीत जारी

रही। ब्रिटेन एवं फ्रांस ने सोवियत संघ को स्वतः अपना मित्र मान लिया था और उसके साथ एक सैनिक गठबंधन करने की कोशिश नहीं की। इसी ने सोवियत जर्मन गैर आक्रामक समझौते के मार्ग को प्रशस्त किया और जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने के कुछ माह पूर्व ब्रिटेन तथा फ्रांस दोनों ने पोलैण्ड को आश्वस्त करते हुए यह गारन्टी दी थी कि यदि पोलैण्ड पर आक्रमण होता है, तब ब्रिटेन एवं फ्रांस उसकी सभी संभावित सहायता करेंगे। जब युद्ध टालने तथा पोलैण्ड की रक्षा करने के सभी प्रयास असफल हो गये और जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया, तो ब्रिटेन एवं फ्रांस ने 3 सितम्बर, 1939 को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इसके बाद शीघ्र ही अन्य देशों ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जापान ने चीन के विरुद्ध आक्रमण छेड़ दिया, किन्तु उसने कुछ समय तक न तो सोवियत संघ और न ही संयुक्त राज्य अमरीका के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। कुछ समय तक इटली भी युद्ध में तटस्थ बना रहा, और अंततः वह जून, 1940 में जर्मन की ओर से युद्ध में सम्मिलित हो गया। जर्मनी ने यूरोप में बहुत से देशों के विरुद्ध निर्णायक विजयों को हांसिल करने के पश्चात् 22 जून, 1941 को सोवियत संघ के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ कर दिया। इस घटना ने सोवियत संघ को मित्र राष्ट्रों के खेमों में ला खड़ा किया। 7 दिसम्बर, 1941 को पर्ल हार्बर पर जापान द्वारा बम वर्षा करने के साथ अंततः संयुक्त राज्य अमरीका भी युद्ध में शामिल हो गया। यह युद्ध एक ओर मित्र राष्ट्रों, (ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ, संयुक्त राष्ट्र, अमरीका तथा उनके अन्य मित्र देशों) और दूसरी ओर धुरी शक्तियों (जर्मनी, इटली एवं जापान) के बीच लड़ा गया।

इटली, जर्मनी तथा जापान के द्वारा बगैर किसी शर्त के आत्म समर्पण करने के साथ यह युद्ध समाप्त हो गया।

इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि किन परिस्थितियों में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हुआ और युद्ध के लिए कौन से कारक उत्तरदायी थे। इस इकाई में सैनिक गतिबिधियों तथा बहुत सी लड़ाइयों के विस्तृत विवरण से हमारा सरोकार नहीं है। इस इकाई के अंत में हम उन प्रयासों को उद्धृत करेंगे, जिनको युद्ध के बाद पराजित शक्तियों के साथ शांति संधियाँ संपन्न करने के लिए किया गया। हम यह भी विवेचना करेंगे कि किस प्रकार से भूतपूर्व बड़ी शक्तियों ने अपनी ताकत को खोया और सोवियत संघ एवं संयुक्त राज्य अमरीका कैसे दो महाशक्तियों के रूप में उभरे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.2 द्वितीय विश्व युद्ध का प्रारंभ और कारण

आप द्वितीय विश्वयुद्ध के विषय में पढ़ चुके हैं कि उसका प्रारंभ जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण करने और ब्रिटेन एवं फ्रांस द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के परिणामस्वरूप सितम्बर, 1939 में हुआ। इससे प्रतीत होता है कि युद्ध का कारण पोलैण्ड का झगड़ा था। यह कुछ सीमा तक सत्य है। पोलैण्ड की समस्या युद्ध का तात्कालिक कारण थी, किन्तु ऐसे बहुत से दूसरे कारण थे जिन्होंने ऐसी स्थिति को उत्पन्न किया जिसमें युद्ध को टालना असंभव हो गया था। अब हम तथा युद्ध के दूरवर्ती एवं तात्कालिक कारणों की विवेचना करेंगे।

वर्साय की संधि

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 1919 में होने वाले पेरिस शांति सम्मेलन में न्याय, शांति तथा निरस्त्रीकरण पर आधारित एक आदर्श विश्व व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास किया गया। लेकिन वारसा संधि के रूप में अंततः जो उभर कर आया वह जर्मनी पर थोपी गयी शांति संधि थी। विजयी राष्ट्रों में उद्देश्य की गंभीरता का अभाव था, जर्मनी के हाथों 1871 की अपनी पराजय एवं अपमान का बदला लेकर फ्रांस अपनी पुरानी शत्रुता को चुकाने का इच्छुक था।

एक सार्वभौमिक देश के प्रतिनिधियों द्वारा सामान्य मानदण्डों की आशा को जर्मनी तक विस्तारित नहीं किया गया था। शांति सम्मेलन का प्रारंभ जनवरी, 1919 में हुआ। पराजित जर्मनी के साथ किसी भी प्रकार की बातचीत किये बगैर मित्र राष्ट्रों द्वारा शांति संधि के प्रारूप को तैयार किया गया। 7 मई, 1919 को संधि के प्रारूप को जर्मनी के पास उसके सुझावों के लिए भेजा गया जिसमें तीन सप्ताह का समय दिया गया था। संधि की शर्तों की घोषणा के प्रति जर्मनी में जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। जर्मनी ने इससे इंकार कर दिया कि केवल वह अकेला ही युद्ध के लिए

उत्तरदायी था। जर्मनी ने बहुत से प्रश्नों को उठाया और उनमें संशोधन का सुझाव दिया, लेकिन मात्र उसके एक संशोधन के अलावा उसके द्वारा उठाये गये सभी प्रश्नों को दबा दिया गया और 28 जून, 1919 को अंततः जर्मनी से वारसा संधि पर हस्ताक्षर करा लिये गये। जर्मनी के लोगों ने इसे (Diktate) कहा और इस अनादर एवं अपमान को सहन किया।

जर्मनी को न केवल समुद्रपार उपनिवेशों से बेदखल कर दिया गया अपितु यूरोप में भी उसके आकार में पर्याप्त कटौती भी की। उसकी कीमत पर पोलैण्ड, फ्रांस तथा बेल्जियम ने भूभागों को प्राप्त किया। उसकी सेना तथा नौसेना में भारी कटौती की गयी। उसको किसी भी प्रकार की हवाई सेना न रखने को कहा गया। जर्मनी को युद्ध अपराधों को करने का दोषी घोषित किया गया और उससे विजयी राष्ट्रों को विशाल युद्ध हर्जाना अदा करने को कहा गया। वारसा संधि ने जर्मनी को विक्लांग और अपमानित किया। बीस वर्षों के बाद जर्मनी को बदला लेने का अवसर प्राप्त हुआ। हिटलर का एक ताकत के रूप में उद्भव हुआ और उसने अपनी अभिमानी जनता को उनके अपमान का बदला लेने के लिये नेतृत्व किया और इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के लिए मार्ग को प्रशस्त किया।

सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की असफलता

सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था एक महत्वपूर्ण आदर्श था और प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में विश्व नेताओं ने इसकी शपथ ली थी। आक्रमण से पीड़ित देश को सामूहिक साधनों द्वारा सुरक्षा उपलब्ध कराना लीग ऑफ नेशन्स का उद्देश्य था। यदि किसी देश पर आक्रमण होता है तब लीग ऑफ नेशन्स के सदस्यगण अपनी सामूहिक कार्यवाही के द्वारा हमलावर देश को युद्ध से हटने के लिये दबाव डालेंगे। यह सामूहिक कार्यवाही हमलावर देश के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लगाकर या फिर आक्रमण के शिकार देश की सैनिक सहायता या दोनों कार्यवाहियों को करके की जा सकती थी।

अंतर्युद्ध के वर्षों के दौरान यदि किसी शक्तिशाली देश ने किसी छोटे देश के विरुद्ध युद्ध भागों पर अधिकार कर लिया, ऐसी स्थिति में लीग ऑफ नेशन्स एक प्रभावविहीन संगठन बना रहा। 1931 में जापान ने चीन पर आक्रमण कर दिया और 1932 तक उसने चीन के मंचूरिया प्रांत पर विजय प्राप्त कर ली। जापान बड़ी चालाकी से लीग को यह कहता रहा कि मंचूरिया में उसकी कार्यवाही आत्म-रक्षा के लिए है अर्थात् (मंचूरिया में वह जापानी जीवन एवं सम्पत्ति की रक्षा कर रहा है और यह मात्र पुलिस कार्यवाही है न कि आक्रमण)। लीग के स्थायी सदस्य जापान ने मंचूरिया के कठपुतली मंचुकुओ के शासन की स्थापना की। जब लीग ने सदस्य राष्ट्रों से मंचुकुओ सरकार को मान्यता न देने को कहा तब जापान ने लीग की सदस्यता का परित्याग कर दिया किन्तु विजित क्षेत्र पर अपना नियंत्रण बरकरार रखा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1933 में इटली ने अबीसीनिया के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ कर उसे पराजित कर दिया और मई, 1936 में उसे औपचारिक तौर पर इटली साम्राज्य में मिला लिया। लीग सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था को लागू करने की कोशिश की, इटली को एक हमलावर घोषित किया और उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लगा दिये गये। लेकिन यह सब किसी उपयोग का न था क्योंकि इटली के विरुद्ध कोई सैनिक कार्यवाही नही की गयी और इटली अब एक बड़ी शक्ति तथा लीग काउंसिल का एक स्थायी सदस्य था। ठीक इसी प्रकार से कमजोर लीग ऑफ नेशन्स के द्वारा उस समय जर्मनी के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गयी जब उसने 1933 में वारसा संधि की धाराओं का उल्लंघन किया था उसने लोकानों समझौते का उन्मुक्त तरीके से उल्लंघन किया था और चेकोस्लोवाकिया के अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया (1938-39) । इस प्रकार सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की असफलता द्वितीय विश्वयुद्ध का एक महत्वपूर्ण कारण बन गयी।

निरस्त्रीकरण की असफलता

पेरिस शांति सम्मेलन में यह सहमति हुई थी कि विश्व शांति को तभी सुनिश्चित किया जा सकेगा जब सभी राष्ट्र अपनी घरेलू सुरक्षा या रक्षा की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने हथियारों में कटौती करें। इसका अभिप्राय था कि आक्रामक प्रवृत्ति के सभी हथियारों को नष्ट किया जाए। हथियारों की कटौती की योजना को तैयार करने का कार्य लीग ऑफ नेशन्स को सौपा गया। लीग ने 1920 में उस मिश्रित आयोग की अस्थायी नियुक्ति की जो कोई पर्याप्त कार्य न कर सका क्योंकि फ्रांस ने निरस्त्रीकरण से पूर्व सुरक्षा पर जोर दिया था। 1925 में प्रांरभिक आयोग का गठन किया गया। राष्ट्रों के भिन्न-भिन्न विचारों के कारण आक्रामक हथियारों की पहचान न की जा सकी। अंततः बिना किसी विशेष प्रारंभिक कार्य के फरवरी, 1932 में जनेवा में निरस्त्रीकरण सम्मेलन आयोजित

किया गया। एक बार फिर आपसी अविश्वास तथा संदेह के कारण लम्बी वार्ताओं के बाद यह सम्मेलन भी असफल रहा।

जर्मनी को वारसा की संधि द्वारा हथियार विहीन कर दिया गया था। विजयी राष्ट्रों को बाद में हथियार विहीन किया जाना था। यद्यपि वे स्वयं को कभी हथियार विहीन नही करना चाहते थे। इसलिये जर्मनी ने 1933 में घोषित किया कि वह निरस्त्रीकरण सम्मेलन तथा लीग ऑफ नेशन्स दोनों को छोड़ रहा है। बाद में 1935 में उसने घोषणा की कि अब वह वारसा संधि की सैनिक या निरस्त्रीकरण संबंधी धाराओं को मानने के लिए बाध्य न होगा। दूसरे देशों के पास पहले से ही विशाल मात्रा में शस्त्र एवं बड़ी सशस्त्र सेनाएँ विद्यमान थी। जर्मनी के निर्णय ने एक व्यापक हथियारों की होड़ का प्रारंभ कर दिया जिसके कारण सशस्त्र संघर्ष हुए। निरस्त्रीकरण की असफलता द्वितीय विश्वयुद्ध का एक दूसरा बड़ा कारण थी।

विश्व आर्थिक संकट

अमरीकी वित्तीय घरानों द्वारा यूरोपीय देशों को अचानक कर्ज़ों को देना रोक देने के साथ ही 1929 में विश्व आर्थिक संकट प्रारंभ हो गया। उनमें से कई देश विशेषकर जर्मनी अधिकतर उधार लिये गये अमरीकी धन की सहायता से तेजी के साथ औद्योगिक प्रगति कर रहा था। इस संकट का भयंकर प्रभाव 1930-32 के दौरान हुआ। इस संकट ने अधिकतर देशों की अर्थव्यवस्था को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। जर्मनी सबसे बुरी तरह प्रभावित होने वाले देशों में से था और वहाँ पर 7,00,000 लोग बेरोज़गार हो गये। उसको यह घोषणा करने के लिए बाध्य होना पड़ा कि वह अब और युद्ध हर्ज़ाने की अदायगी नहीं करेगा। जर्मनी के आर्थिक संकट से एडोल्फ हिटलर की नाज़ी तानाशाही का उद्‌गम हुआ। 1933 में वह जर्मनी का चांसलर बन गया, लेकिन उसने शीघ्र ही लोकतंत्र को नष्ट कर दिया और अपनी तानाशाही की स्थापना कर दी। इसी बीच ब्रिटेन को भी स्वर्णमान का परित्याग करना अर्थात् कुछ कठोर कदमों को उठाना पड़ा। जर्मनी, जापान तथा इटली ने इस आर्थिक संकट का लाभ उठाया और आक्रामक नीतियों को शुरू कर दिया। उन्होंने अपने फासीवादी गठबंधन की स्थापना की और यह द्वितीय विश्वयुद्ध का एक और महत्वपूर्ण कारण बन गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

रोम-बर्लिन-टोकियो धुरी

प्रथम विश्वयुद्ध की पूर्व संध्या के अवसर पर भी यूरोप दो शत्रुतापूर्ण खेमों में विभाजित था। 1936-37 के दौरान कोमिन्टर्न विरोधी समझौते के माध्यम से जर्मनी, जापान एवं इटली के द्वारा एक गठबंधन का निर्माण करने के साथ एक बार फिर उस प्रक्रिया को दोहराया गया। फासीवादी ताकतों के इस साम्यवाद विरोधी गठजोड़ को सामान्यत: रोम-बर्लिन-टोकियो धुरी कहा जाता है और इस गठबंधन का लक्ष्य साम्राज्यवादी प्रसार था। उन्होंने युद्ध का गुणगान किया और खुले तौर पर झगड़ों के शांतिपूर्ण निबटारे का तिरस्कार किया। उन्होंने पश्चिमी देशों को धमकाया और चीन, आस्ट्रिया, चैकोस्लोवाकिया, अलबेनिया एवं पोलैण्ड जैसे छोटे देशों को उत्पीड़ित किया। उनके द्वारा किये गये युद्ध जैसे कामों और आक्रमणों की ओर ध्यान तो दिया गया लेकिन उनको दंडित नहीं किया गया। धुरी शक्तियों के व्यवहार से चिन्तित होकर इंग्लैण्ड तथा फ्रांस एक दूसरे के और समीप आये तथा ऐंग्लो-फ्रेंच-सोवियत मोर्चे को बनवाने का असफल प्रयास किया। यद्यपि फ्रांस तथा सोवियत संघ का गठबंधन था, लेकिन फ्रांस और इंग्लैण्ड को हिटलर के प्रति तुष्टीकरण की नीति के कारण उन्होंने सोवियत संघ की अवहेलना की और जब स्टालिन-गैर-फासीवादी ताकतों के बीच सैनिक समझौता किया तब उन्होंने इसको गम्भीरता से नहीं लिया। सोवियत संघ को संदेह होने लगा और उसने जर्मनी के साथ आक्रमण विहीन समझौता कर दुनिया को आश्चर्यचकित कर दिया। इसने प्रत्यक्ष रूप में पोलैण्ड पर जर्मन आक्रमण का मार्ग प्रशस्त कर दिया और यह द्वितीय विश्वयुद्ध का कारण बन गया। जिस समय सोवियत संघ ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया, इंग्लैण्ड तथा फ्रांस ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों की समस्या

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद होने वाली शांति संधि का परिणाम यूरोप में कई नये राष्ट्र राज्यों के निर्माण के रूप में हुआ, लेकिन इनके साथ बड़ी संख्या में राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों की स्थिति की कोई परवाह किये बगैर उन्हें छोड़ दिया गया था। संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति विल्सन ने आत्मनिर्णय के सिद्धांत की वकालत की थी। लेकिन बहुत से सामरिक सोच-विचारों के कारण इस सिद्धांत को

उचित प्रकार से लागू नहीं किया गया। दृष्टांत के तौर पर, विशाल जर्मन अल्पसंख्यकों ने स्वयं को पोलैण्ड तथा चैकोस्लोवाकिया में गैर जर्मनों की संगत में पाया।

पोलैण्ड और रूमानिया में रूसी अल्पसंख्यक थे। पेरिस सम्मेलन के बाद होने वाली अल्पसंख्यक संधियों के बावजूद भी 7,50,000 जर्मन विदेशी शासन के अधीन थे। हिटलर ने स्थिति का लाभ उठाया और चैकोस्लोवाकिया एवं पोलैण्ड में जर्मन अल्पसंख्यकों के अधिकारों के हनन के नाम पर आक्रमण की तैयारी की। उसने आस्ट्रिया को अधीन कर लिया, चैकोस्लोवाकिया को नष्ट और अस्तित्वविहीन कर दिया तथा अंततः पोलैण्ड को रौंद डाला। इस प्रकार अल्पसंख्यकों की समस्या एक महत्वपूर्ण सवाल एवं युद्ध के लिए एक बड़ा बहाना बन गया था।

ब्रिटेन एवं फ्रांस द्वारा तुष्टीकरण

नाज़ी-फासीवादी तानाशाहों की तुष्टीकरण पर आधारित विदेश नीति और द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात ब्रिटेन तथा फ्रांस की नीतियों में टकराव प्रकट होने लगा। ब्रिटेन की विदेश नीति का आधारस्तंभ शक्ति संतुलन का सिद्धांत था। ब्रिटेन को भय था कि शक्तिशाली फ्रांस शक्ति संतुलन में बाधा डाल सकता था। इसलिए उसने युद्ध के बाद के वर्षों में फ्रांस के विरुद्ध जर्मनी की सहायता की। जैसे ही जर्मनी में हिटलर सत्ता में आया और इटली नाज़ी तानाशाह का सहयोगी हो गया वैसे ही ब्रिटेन की फ्रांस के साथ समीपता बढ़ने लगी क्योंकि शत्रुता से भरे जर्मनी के विरुद्ध फ्रांस को ब्रिटेन की सहायता की अति आवश्यकता थी। 1933 के बाद फ्रांस की विदेश नीति वास्तव में ब्रिटिश विदेश नीति का विस्तारित रूप बन गयी। ब्रिटेन साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव से चिन्तित था। न केवल सोवियत संघ को प्रभावशाली ढंग से चुनौती देनी थी अपितु फ्रांस तथा स्पेन में तथाकथित लोकप्रिय मोर्चे को भी नष्ट करना था। इस उद्‌देश्य को ध्यान में रखते हुए ब्रिटेन ने हिटलर तथा मुसोलिनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति को अपनाया। फ्रांस ने भी शीघ्र ही इसका अनुसरण किया। तुष्टीकरण का प्रारंभ बाल्डविन द्वारा किया गया था, लेकिन 1938 में नोविल चेम्बरलेन ने इसको गहनता से जारी रखा। अबीसीनिया युद्ध के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस मुसोलिनी का समर्थन करना चाहते थे जबकि वे लीग के प्रयासों का भी समर्थन कर रहे थे, म्युनिख सम्मेलन में इन दोनों ने हिटलर के सम्मुख बिल्कुल ही समर्पण कर दिया था, आस्ट्रिया तथा अलबेनिया जैसे कमज़ोर राष्ट्रों की सुरक्षा करने के मामले में उनकी असमर्थता स्पष्ट तौर पर ब्रिटेन तथा फ्रांस की कमज़ोरी के साक्ष्य थे और इसने युद्ध के लिए एक और आधार तैयार किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पोलैण्ड पर जर्मनी का आक्रमण

पोलैण्ड पर 1 सितम्बर, 1939 को जर्मनी का आक्रमण युद्ध का प्रकट एवं तात्कालिक कारण था। इससे पूर्व जब सोवियत संघ के साथ गठबंधन करने के ब्रिटेन-फ्रांस के प्रयास असफल हो गये, फिर हिटलर ने स्टालिन के साथ गैर-आक्रामक समझौता किया। यह बिलकुल भी अपेक्षित न था क्योंकि नाज़ी जर्मनी तथा सोवियत संघ के बीच कई वर्षों तक केवल घृणा विद्यमान थी। अब जर्मनी तथा सोवियत संघ स्वयं अपने बीच पोलैण्ड का विभाजन करने के लिए उत्सुक थे और दोनों ने एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध न करने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। लेकिन घटनाक्रम इस समझौते की सीमाओं के बाहर भी घटित होने लगा और इसके आलोचकों ने इसे "पोलैंड के विरुद्ध साधारण आक्रमण" कहा। एक गुप्त समझौते द्वारा जिसका खुलासा केवल 1945 में हुआ, दोनों देशों ने 1 सितम्बर, 1939 को पूर्वी यूरोप को अपने प्रभावी क्षेत्रों में विभाजित करने का प्रस्ताव किया था। जैसा कि आप जानते हैं कि ब्रिटेन और फ्रांस ने आक्रमण होने की स्थिति में पोलैंड को सहायता देने का आश्वासन दिया था। जहाँ जर्मनी ने पोलैंड पर पश्चिम की ओर से आक्रमण किया वहीं सोवियत सेनाएँ 17-18 सितम्बर, 1939 को पोलैंड में पूरब की ओर से प्रवेश कर गयी। सोवियत जर्मन सीमा तथा 28 सितम्बर, 1939 की मित्रता संधि द्वारा जर्मनी एवं सोवियत संघ ने पोलैण्ड का अपने बीच विभाजन कर लिया। इसी बीच अन्य कई देशों ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी यद्यपि ये घोषणाएँ प्रतीक मात्र थीं क्योंकि ब्रिटेन एवं फ्रांस भी युद्ध की तैयारियों में व्यस्त थे जबकि पोलैंड को नष्ट किया जा रहा था।

6.2.1 युद्ध का प्रारंभ

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि पोलैंड युद्ध का तात्कालिक कारण बन गया था। 23 मार्च, 1939 को जर्मन सेनाओं ने आसानी से मैमल पर अधिकार कर लिया (यह जर्मन शहर था जिस पर लिथूनिया सरकार का अधिकार था) इसके बाद हिटलर ने लिथूनिया से कहा कि वह उसके समक्ष

समर्पण कर दे। ठीक उसी दिन जर्मन विदेश मंत्री रीवनट्रोप ने पोलैंड के राजदूत को बुलाया और उसके सम्मुख शर्तों को रखते हुए कहा कि जर्मनी इनको पोलैंड पर लागू करना चाहेगा। उसने डाजिंग को (डाजिंग का पहले ही नाजीकरण किया जा चुका था) जर्मनी को लौटाने के लिए कहा और पूरब-पश्चिम मार्ग तथा पोलैंड के गलियारे से गुजरने वाले रेल मार्ग की माँग की जिससे पूर्वी प्रशिया को जर्मनी से सीधे जोड़ा जा सकता था जिसका अभिप्राय था कि एक गलियारे को पार करता हुआ एक और गलियारा। हिटलर ने आशा की थी कि ब्रिटेन म्युनिख जैसी एक और गलती करेगा लेकिन ऐसा न हो पाया। प्रधानमंत्री चेम्बरलैन ने बगैर किसी संदेह के पोलैंड को ब्रिटिश द्वार गारंटी देने की घोषणा की। बाद में जब इटली ने 7 अप्रैल, 1939 को अलबेनिया पर अधिकार कर लिया तो ब्रिटेन ने इसी प्रकार की गारंटियाँ यूनान तथा रूमानिया को भी दी। फ्रांस ने ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए अनिवार्य सैनिक सेवा की घोषणा की। अगले दिन हिटलर ने बदले के लिए कार्यवाही की और 1934 के जर्मन-पोलैंड गैर-आक्रमण समझौते तथा 1933 की ऐंग्लो-जर्मनी नौसैनिक संधि को रद्द कर दिया।

नवम्बर, 1936 में जापान तथा जर्मनी ने कौमिन्टर्न विरोधी समझौते पर हस्ताक्षर किए तथा एक वर्ष बाद इटली भी इसमें शामिल हो गया। इस प्रकार रोम-बर्लिन-टोकिया धुरी विश्व साम्यवाद को समाप्त करने की तीन देशों की निश्चयता का प्रतिनिधित्व करती थी। वास्तव में यह सोवियत संघ के विरुद्ध एक गठबंधन था।

अगस्त, 1939 तक हिटलर अपनी स्वयं की शर्तों पर पोलैंड के प्रश्न को हल करने के लिए तैयार था। अब वह एक उचित बहाने की तलाश में था। उसका अवसर प्राप्त हो गया (या दूसरे शब्दों में उसने पक्का निश्चय कर लिया) और उसने ब्रिटेन को कूटनीतिक तौर पर उस समय मात दी जब हिटलर डाजिंग के मामले पर पोलैंड से प्रत्यक्ष बातचीत करने के लिए सहमत हुआ। हिटलर ने 29 अगस्त, 1939 को बर्लिन में ब्रिटिश राजदूत के माध्यम से ब्रिटेन से पोलैंड प्रतिनिधि मंडल की व्यवस्था करने को कहा। उसने कहा कि इस प्रतिनिधि मंडल को अगले दिन ही बर्लिन पहुंचना चाहिए और इसे बातचीत करने तथा जर्मनी के साथ समझौते करने के अधिकार प्राप्त हों। यह बिलकुल ही असामान्य माँग थी। सामान्यतः अन्तर्राष्ट्रीय वार्ता शुरू करने के लिए काफी समय लगता है। किसी भी मामले में विदेशी प्रतिनिधिमंडल को आमंत्रित करने से पूर्व औपचारिक प्रस्तावों को कूटनीतिक माध्यम से पहले भेजा जाता है। इससे स्पष्ट है कि शांतिपूर्ण ढंग से समस्या का समाधान करने की हिटलर की कोई इच्छा न थी। क्योंकि पोलैंड का प्रतिनिधिमंडल स्पष्ट तौर पर 30 अगस्त को नहीं पहुँच सकता था और जर्मनी ने वार्ता के सभी दरवाजों को बंद कर दिया था। इसने हिटलर को पोलैंड पर उस योजनाबद्ध आक्रमण का बहाना दिया जिसकी उसे बड़ी प्रतीक्षा थी। 1 सितम्बर, 1939 की प्रातः उस समय युद्ध प्रारंभ हो गया जब जर्मन सेनाओं ने पोलैंड पर आक्रमण किया। 3 सितम्बर, 1939 को इंग्लैंड तथा फ्रांस ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 18 सितम्बर को सोवियत संघ ने भी पोलैंड पर आक्रमण कर दिया, किंतु न तो इटली और न ही संयुक्त राज्य अमरीका कुछ समय तक युद्ध में शामिल हुए। इसी बीच इंग्लैंड तथा उसके मित्र राष्ट्र युद्ध में व्यस्त थे, लेकिन अभी भी किसी प्रकार के समाधान हेतु प्रयास जारी थे। लेकिन जर्मनी एक सम्पूर्ण युद्ध के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.2.2 संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ का मित्र बनना

जिस समय युद्ध का प्रारंभ हुआ उस समय जर्मनी तथा इटली राजनीतिक मित्र थे, लेकिन सोवियत जर्मन गैर-आक्रामण समझौते ने मुसोलिनी को बड़ा हताश किया। इटली जून, 1940 तक युद्ध में शामिल नहीं हुआ। जिस समय फ्रांस पराजय तथा आत्मसमर्पण के कगार पर था, इटली फ्रांस तथा मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध जर्मनी के पक्ष की ओर से युद्ध में शामिल हो गया। सोवियत संघ युद्ध में शामिल नहीं हुआ, लेकिन पोलैण्ड पर आक्रमण द्वारा जर्मनी की मदद कर रहा था। बाद में सोवियत संघ ने फिनलैण्ड पर आक्रमण किया और सोवियत संघ को लीग ऑफ नेशन्स की सदस्यता से निष्कासित कर दिया गया। स्टालिन हिटलर पर तब तक विश्वास करता रहा जब तक कि नाज़ी तानाशाही ने अधिकतर यूरोपीय पड़ोसियों को पराजित नहीं कर दिया और फिर 22 जून, 1941 को सोवियत संघ पर आक्रमण किया। इसी बीच स्टालिन ने तीन बालटिक राष्ट्रों, लेर्तिविया, लिथूनिया तथा इस्टोनिया को अपने संघ गणराज्यों के रूप में सोवियत संघ में सम्मिलित होने के लिए बाध्य किया। उन्होंने अपनी स्वतंत्रता को खो दिया था क्योंकि उनको स्टालिन ने बताया कि यदि वे सोवियत संघ में शामिल होने से इंकार करते हैं तो उनको जर्मनी द्वारा नष्ट कर दिया जायेगा। सोवियत संघ ने रूमानिया के सम्मुख भी शर्तें रखी और बेरूसेरबिया तथा बुकोविना को उससे ले लिया। इस तरह सोवियत संघ 1941 के मध्य तक युद्ध में न होने के बावजूद भी युद्ध की उपलब्धियों को प्रभावित करने में संलग्न था।

जून, 1940 में हिटलर ने फ्रांस के आत्मसमर्पण को प्राप्त कर लिया। लेकिन स्पेन के विषय में हिटलर भाग्यशाली न हो सका था। फ्रांको ने अपने देश को युद्ध से बाहर रखने का पक्का निश्चय किया हुआ था। हिटलर स्टालिन के साथ मिलकर युद्ध कर रहा था। इसलिए संपूर्ण युद्ध में स्पेन तटस्थ बना रहा।

संयुक्त राज्य अमरीका में बहुसंख्यक जनमत उसके युद्ध में उलझने का विरोधी था। 1937 में अमरीकी कांग्रेस ने तटस्थता अधिनियम को पारित कर भविष्य के युद्ध में हथियारों की बिक्री पर रोक लगा दी थी। जब वास्तव में युद्ध प्रारंभ हो गया और जर्मनी ने पश्चिमी लोकतंत्रों पर बम वर्षा तथा उनको नष्ट करना प्रारंभ कर दिया तब अमरीकियों ने अपनी तटस्थता के निर्णय को कमजोर करना शुरू कर दिया। नवम्बर, 1939 में कैश एवं कैरी अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा अमरीकी हथियारों को उन देशों को खरीदने की अनुमति थी जो युद्ध में शामिल थे, लेकिन उनका नकद भुगतान करना तथा अपने स्वयं के जहाजों द्वारा ले जाना था। जिस समय युद्ध निर्णायक स्थिति में प्रवेश कर गया तब अमरीकी कांग्रेस द्वारा मार्च, 1941 में भूमि एवं पट्टा (land and lease) अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा राष्ट्रपति को रक्षा की किसी भी वस्तु को बेचने, विनिमय करने, उधार देने या अन्य किसी प्रकार से देने की अनुमति प्रदान की गयी। इस प्रकार अमरीका ने ब्रिटेन तथा चीन जैसे अपने मित्र राष्ट्रों को हथियारों की आपूर्ति प्रारंभ कर दी। तीन माह बाद जिस समय सोवियत संघ पर जर्मनी द्वारा आक्रमण किया गया वह भी भूमि एवम् पट्टा अधिनियम के अंतर्गत आ गया।

1939 में किये गये सोवियत जर्मन गैर-आक्रामक समझौते का प्रारूप हिटलर द्वारा अपने वास्तविक लक्ष्यों के विषय में सोवियत संघ को अंधकार में रखते हुए तैयार किया गया था। जैसे ही जर्मनी ने अपने यूरोपीय महाद्वीप के शत्रुओं को पराजित किया वैसे ही उसने सोवियत संघ पर आक्रमण करने की तैयारियां शुरू कर दी। लेकिन स्टालिन का मानना था कि हिटलर सोवियत संघ पर आक्रमण नही करेगा। चर्चिल, टोकियो में अमरीकी दूतावास एवं स्टालिन के स्वयं के लोगों ने स्टालिन को नाज़ी आक्रमण की चेतावनी दी थी। लेकिन स्टालिन ने उस समय तक सुनने से इंकार कर दिया जब वास्तव में जर्मनी ने 22 जून, 1941 को सोवियत संघ पर आक्रमण किया। स्टालिन इस पर आश्चर्यचकित रह गया और सोवियत संघ ने मित्र राष्ट्रों की सहमति की मांग की। ब्रिटेन ने सोवियत संघ को मित्र राष्ट्रों के खेमे में स्वीकार कर लिया। जुलाई, 1941 में लंदन एवं मास्को के बीच एक सैनिक समझौते पर हस्ताक्षर किये गये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जिस समय सोवियत संघ विध्वंसकारी युद्ध का सामना कर रहा था, ठीक उस समय जापान ने अमरीकी नौसेना अड्डे पर्ल हार्बर पर आक्रमण किया और दिसम्बर, 1941 में बाध्य होकर संयुक्त राज्य अमरीका भी युद्ध में शामिल हो गया। जापान के साथ कभी भी अमरीकी रिश्ते सौहार्दपूर्ण नहीं रहे थे। अमरीका में लगी जापानी सम्पत्ति को पहले से ही जब्त कर लिया गया था। अगस्त, 1941 में अमरीका ने घोषणा की कि थाईलैण्ड के विरुद्ध जापान द्वारा की गयी कोई भी कार्यवाही उसके लिए अति चिंता का कारण होगी। सितंबर, 1941 में जापानी प्रधानमत्री कोनोय तथा अमरीकी राष्ट्रपति के बीच बैठक कराने के असफल प्रयास किये गये। अक्टूबर में कोनोय ने त्यागपत्र दे दिया और जनरल तोजो जापान के प्रधानमंत्री बन गये। उसने खुले रूप में संघर्ष को उत्साहित किया। 1 नवम्बर, 1941 में ब्रिटेन ने अमेरीका से वायदा किया कि यदि वह जापान के साथ युद्ध में उलझ जाता है तब ब्रिटेन अमरीका की ओर से जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करेगा। तनाव बड़ी तेजी के साथ बढ़ रहा था और युद्ध अनिवार्य हो गया था। 6 दिसम्बर, 1941 को राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने शांति बनाये रखने के लिए जापानी सम्राट से व्यक्तिगत आग्रह कर सहायता की मांग की। शांति के स्थान पर अमरीका में अगले ही दिन जापान द्वारा बमवर्षा की गई। 7 दिसम्बर, 1941 की प्रातः जापानियों द्वारा पर्ल हार्बर (हार्बर द्वीप) में स्थित अमरीकी नौसेना अड्डे पर भारी बमवर्षा की गयी। कुछ ही घंटे बाद जापान ने "संयुक्त राज्य अमरीका तथा ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।" इस प्रकार यह युद्ध विश्वव्यापी हो गया।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) द्वितीय विश्वयुद्ध के किन्हीं दो बड़े कारणों का वर्णन कीजिये।

....

....

....

....

2) द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने का सारांश लिखिये।

....

....

....

....

6.3 द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम

चूंकि हम एक इकाई के रूप में द्वितीय विश्वयुद्ध का वर्णन कर रहे हैं, इसलिए हम धुरी राष्ट्रों–इटली, जर्मनी तथा जापान के पतन एवं पराजय की यहाँ संक्षेप में चर्चा कर रहे हैं। लड़ाइ, विजय एवं पराजय का विस्तृत विवरण देना हमारा इस इकाई में हमारा विषय नहीं है। लेकिन हम संक्षेप में यह उद्धृत कर सकते हैं कि किस तरह धुरी राष्ट्रों की पराजय हुई और अन्ततः मित्र राष्ट्र कैसे विजय की ओर अग्रसर हुए।

DIKSHANT IAS

6.3.1 इटली और जर्मनी की पराजय

Call us @7428092240

यूरोप की इन दोनों फासीवादी ताकतों ने महाद्वीप के अधिकतर देशों पर विजय प्राप्त कर ली थी। ब्रिटेन लगातार आक्रमण की चपेट में था और तीन बाल्टिक गणराज्यों सहित सोवियत संघ के बड़े भू-भाग जर्मनी के अधीन हो गये थे। 1943 में मित्र राष्ट्रों ने तय किया कि अफ्रीका में विद्यमान इटली साम्राज्य को समाप्त कर धुरी शक्तियों के विरुद्ध आक्रमण किया जाये। इस उद्देश्य को मई, 1943 तक प्राप्त कर लिया गया। इटली की सेनाओं को बाधित किया जा चुका था और फासीवादी संरचना में दरार के चिह्न दिखायी दिये। मित्र राष्ट्रों ने इटली पर सिसली की ओर से आक्रमण कर "ऑपरेशन हंगकी" पर कार्यवाही करने का निर्णय किया। यह सभी कुछ न था क्योंकि इटली को एक अड्डे के रूप में जर्मनी तथा बाल्कान प्रदेशों पर बमवर्षा करने के लिए इस्तेमाल करने का विचार था। जुलाई, 1943 में भारी हवाई हमलों के कारण इटली की सेनाओं ने सिसली में आत्मसमर्पण कर दिया। जर्मनी द्वीप की रक्षा न कर सके। सिसली पर प्रथम आक्रमण होने के कुछ दिन बाद मुसोलिनी ने हिटलर से भेंट की तथा और अधिक जर्मनी सहायता की मांग की, लेकिन इसको मानने से इंकार कर दिया गया। मुसोलिनी ने फासीवादी ग्राण्ड कोंसिल की बैठक बुलायी और इस कौंसिल ने राजा से प्रत्यक्ष नेतृत्व करने के लिए कहा। 25 जुलाई, 1943 को किंग विक्टर एम्मेन्यूल-III ने मुसोलिनी को हटा दिया और मार्शल बोडोलिओ को नयी सरकार का प्रधान नियुक्त किया। मुसोलिनी को गिरफ्तार कर लिया गया। इटली ने अन्ततः 3 सितम्बर, 1943 को बगैर किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया। ठीक उसी दिन जर्मन सेनाओं ने रोम में प्रवेश किया और कई महीनों तक इसको अपने अधीन बनाये रखा। मित्र राष्ट्रों की सेनायें केवल 4 जून, 1944 को रोम पर अधिकार कर सकी।

मित्र राष्ट्रों ने ज़र्मनी के विरुद्ध दो मोर्चे खोलकर उसे पराजित करने का निर्णय किया। पूरब की ओर से सोवियत संघ उसको धकेल रहा था, पश्चिम की ओर से फ्रांस को स्वतंत्र कराने के लिए इंग्लैण्ड, अमरीका तथा उनके दूसरे मित्र राष्ट्रों ने नॉरमण्डी पर हमला शुरू किया। मार्च, 1944 तक उक्रेन तथा सोवियत संघ के दूसरे भागों से धुरी सेनाओं को बाहर खदेड़ दिया गया। वर्ष के अंत तक जर्मनी सेनाओं से सोवियत संघ की भूमि को खाली करा लिया गया। 6 जून, 1944 को जर्मनी के विरुद्ध पश्चिमी मोर्चा खोला गया। इसको इंगलिश चैनल से खोला गया और इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक माह 1,50,000 अमरीकी सिपाहियों को लाया जाता था। मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने फ्रांस को मुक्त करा लिया तथा अपने आक्रमण के 97 दिनों के बाद 11 सितम्बर, 1944

को जर्मनी में प्रवेश किया। जैसे ही जर्मन सेनायें पराजित होने लगीं वैसे ही हिटलर को खत्म करने के लिए षडयंत्र होने लगे। फरवरी, 1945 में माल्टा सम्मेलन में जर्मनी पर अंतिम प्रहार करने की योजना तैयार की गयी। जर्मनी पर ब्रिटेन, कनाडा, फ्रास तथा अमरीका की सेनाओं ने चारों ओर से हमला किया। इसी बीच सोवियत संघ का आक्रमण बगैर किसी बाधा के आगे बढ़ता जा रहा था। जर्मनी चांसलेरी पर सबसे अधिक घमासान युद्ध हुआ क्योंकि अपने अंतिम मुख्यालय पर हिटलर ने भूमिगत सुरक्षा व्यवस्था कायम की थी। जब एक बार सब कुछ नष्ट हो गया तो नाजी तानाशाह ने, जिसने संपूर्ण विश्व पर शासन करने का स्वप्न देखा था, 30 अप्रैल 1945 को आत्महत्या कर ली। हिटलर ने डॉकनित्ज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया लेकिन देश को बचाने के लिए वह भी कुछ न कर सका। उत्तर पूर्वी जर्मनी, नीदरलैण्ड तथा डेनमार्क में 5 मई 1945 को जर्मन कमाण्डरों ने बगैर किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया। अगले दिन आस्ट्रिया में जर्मन सेनाओं ने आत्मसमर्पण किया। अंत में 7 मई, 1945 को डॉकनित्ज की सरकार ने बगैर किसी शर्त के "राइक (Reich) की सभी थल, जल एवं वायु सेनाओं के साथ आत्मसमर्पण कर दिया। 8 मई, 1945 को यूरोप में युद्ध समाप्त हो गया।

6.3.2 जापान की पराजय

मित्र राष्ट्रों की सेनायें सुदूर पूर्व में जापान के विरुद्ध विजय के लिए कडा संघर्ष कर रही थी। इस क्षेत्र में मुख्य उत्तरदायित्व संयुक्त राज्य अमरीका पर था और ब्रिटेन, चीन, नीदरलैण्ड, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड द्वारा उसकी सहायता की जा रही थी। चीन को आधार बनाकर मित्र राष्ट्रों के जापान विरोधी आक्रमण को संगठित किया गया था। मैक आर्थर इन कार्यवाहियों को निर्देशित कर रहा था। 1944 की शरद् ऋतु में एक साथ दो अभियान शुरू किए गये। एक को माउंटबेटन के नेतृत्व में बर्मा को पुनः विजित करने के लक्ष्य से शुरू किया गया और दूसरा जनरल मैक ऑर्थर की कमाण्ड में फिलीपीन द्वीपों को मुक्त कराने के लिए। दोनों लक्ष्यों को जून, 1945 तक प्राप्त कर लिया गया। इन कार्यवाहियों का यहाँ पर विस्तृत विवरण करना हमारा विषय नहीं है। पोट्सडम सम्मेलन में पराजित जर्मनी तथा दूसरे संबंधित प्रश्नों पर निर्णय किया जाता था। इस सम्मेलन में जुलाई, 1945 में जापान का आह्वान किया गया, सभी जापानी सेनाओं को बगैर किसी शर्त के आत्मसमर्पण की उद्घोषणा करनी चाहिये . . . अन्यथा जापान के लिए शीघ्र एवं भयकर विध्वंस के अलावा कोई और विकल्प न बचेगा।" सोवियत सेनाएँ जापान के साथ युद्ध नहीं कर रही थी इसलिए उसने इस घोषणा पर हस्ताक्षर नहीं किये। जापान ने इस चेतावनी को अनदेखा किया और युद्ध को जारी रखा। इस स्थिति में अमरीका ने अणु बम का प्रयोग करने का निर्णय किया और बिना शर्त जापान का आत्मसमर्पण करा लिया। 6 अगस्त, 1945 को अमरीकी वायु सेना ने सबसे प्रथम अणु बम को जापान के महत्वपूर्ण नगर हिरोशिमा पर गिराया जिसमें इस नगर की आधी जनसंख्या मारी गयी। दो दिन पश्चात 8 अगस्त, 1945 को सोवियत संघ ने भी जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और मंचूरिया तथा दक्षिणी सरवलिन (दोनों जापानी नियंत्रण के अधीन थे) में आक्रमण शुरू हो गया। सोवियत संघ की सेनायें तेजी के साथ आगे बढ़ी। 9 अगस्त, 1945 को दूसरा अणु बम नागासाकी पर गिरा दिया गया, जिसने भयंकर प्रलयंकारी विध्वंस किया। अगले दिन जापान शांति के लिए तैयार हो गया। युद्ध रुक गया लेकिन आत्मसमर्पण के दस्तावेजों पर अमरीका युद्धपोत मिसोरी पर 2 सितम्बर, 1945 को हस्ताक्षर किये गये। जापान का अमरीका के अधीन हो जाने पर अंततः द्वितीय विश्वयुद्ध का अंत हो गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार युद्ध का परिणाम धुरी राष्ट्रों की पूर्ण पराजय तथा मित्र राष्ट्रों की विजय के रूप में हुआ। इसका यह भी अभिप्राय था कि लोकतंत्र की विजय और फासीवाद तथा तानाशाही की हार हुई।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) जर्मनी में कैसे नाजी तानाशाही का अंत हुआ ?

....

....

....

2) उन घटनाओं का वर्णन कीजिये जिनके कारण जापान को बिना शर्त आत्मसमर्पण करना पड़ा।

....

....

....

....

3) द्वितीय विश्वयुद्ध के मुख्य परिणामों को संक्षेप में लिखिये।

....

....

....

....

6.4 द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् शांति की स्थापना

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् शांति संधियों को संपन्न करना बड़ा मुश्किल कार्य था। विश्वयुद्ध के समाप्त होने के दो वर्षों के बाद तक केवल पाँच पराजित राष्ट्रों के साथ संधियाँ की जा सकी। वे इटली, रूमानिया, बुल्गारिया, हंगरी तथा फिनलैण्ड थे। आस्ट्रियां के साथ शांति संधि केवल 1955 में और जापान के साथ 1952 में हो सकी। जर्मनी का पुनः एकीकरण नही किया जा सका। यह पश्चिमी समर्थक फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी (पश्चिमी जर्मनी तथा सोवियत संघ के प्रभाव के अधीन डेमोक्रेटिक जर्मन रिपब्लिक (पूर्वी जर्मनी) के बीच विभाजित बना रहा। तब से जर्मनी का न तो एकीकरण किया गया और न ही उसके साथ कोई संधि की गयी। दोनों जर्मनी देशों का एक जर्मनी में एकीकरण अंततः 1990 में हो पाया। हम संक्षेप में पोट्सडम सम्मेलन तथा अन्य पराजित राष्ट्रों के साथ होने वाली शांति संधियों का विवरण दे रहे हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.4.1 पोट्सडम सम्मेलन

पोट्सडम (बर्लिन) सम्मेलन जुलाई-अगस्त, 1945 में हुआ। जर्मनी ने मित्र राष्ट्रों के सम्मुख बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण किया था। जर्मनी और दूसरे पूर्वी यूरोपीय देशों के भविष्य के संदर्भ में युद्ध के समय विभिन्न सम्मेलनों में बहुत से निर्णय किये गये थे। इन निर्णयों को सम्मुख रखते हुए अब एक औपचारिक व्यवस्था को तैयार करना था। पोट्सडम सम्मेलन में स्टालिन, चर्चिल, च्यांग काई-शेक तथा अमरीकी राष्ट्रपति हेरी ट्मैन ने भाग लिया। उनकी सहायता उच्च शक्ति प्राप्त प्रतिनिधिमंडलों द्वारा की गयी। सम्मेलन ने औपचारिक शांति संधि करने के मामले को छोड़कर जर्मनी की भविष्य व्यवस्था के विषय में महत्वपूर्ण निर्णय किया। अन्य पराजित राष्ट्रों के साथ की जाने वाली शांति संधियों की तैयारियाँ भी प्रारंभ हो चुकी थी। जापान को अभी पराजित करना शेष था।

ऐसे कई दिशानिर्देशक सिद्धांतों को तैयार किया गया जो जर्मनी के साथ शांति संधि का आधार बनने वाले थे। इनमें शामिल थे 10 राजनीतिक सिद्धांत, 9 आर्थिक सिद्धांत, युद्ध हर्जाने को निर्धारित करने वाले 10 सिद्धांत, जर्मन नौसेना के विभाजन को संचालित करने वाले 6 सिद्धांत, जर्मनी के व्यापारिक समुद्री जहाजों का वितरण करने वाले 5 सिद्धांत। जर्मनी के प्रदेशों पर सैनिक नियंत्रण के लिए चार बड़ी शक्तियों के प्रतिनिधियों की एक समिति का गठन किया गया। यह भी निर्णय हुआ कि जर्मनी को हथियारविहीन कर दिया जायेगा, नाजी संगठन तथा नाजी कानूनों को समाप्त कर दिया जायेगा। युद्ध अपराधियों पर मुकदमा चलाया जायेगा और उनको कड़ा दंड दिया जायेगा। अत में, जर्मनी में एक लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना की जायेगी तथा जनता के अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं को पुनः स्थापित किया जायेगा।

पोलैण्ड की पश्चिमी सीमाओं को बिना सुलझाएँ, दक्षिण पूर्वी प्रशिया तथा पूर्वी नदियों की व्यवस्था

के क्षेत्रों और नैशे इस देश के पश्चिमी भागों का निर्णय करेंगे। यह भी सहमति हुई कि जितनी जल्दी सम्भव हो पोलैण्ड स्वतंत्र एवं उचित लोकतांत्रिक चुनाव कराए।

पोट्सडम सम्मेलन में तय किया गया कि मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को ईरान से तुरंत वापस बुलाया जाये। तांजियर को एक अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र घोषित किया गया। आस्ट्रिया से कोई युद्ध हर्जाना वसूल न किया जाये।

सम्मेलन में जापान के आत्मसमर्पण के आधारों का भी निर्णय लिया गया। साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को खत्म किया जायेगा और जापान को हथियार विहीन कर दिया जायेगा। जापान के युद्ध अपराधियों को दंडित किया जाये। उसके आत्मसमर्पण के तुरंत बाद जापान में मित्र सेना के नियंत्रण को स्थापित किया जाये और तत्काल एक लोकतांत्रिक सरकार का गठन हो। जापान की सार्वभौमिकता उसके बड़े प्रांतों तथा कुछ छोटे द्वीपों तक सीमित होगी। युद्ध से पूर्व तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जापान द्वारा अधीन किये गये सभी विदेशी क्षेत्रों को मुक्त कराकर उन देशों को सौंप दिया जायेगा जो कानूनी तौर से उनसे संबंधित थे।

पोट्सडम सम्मेलन द्वारा जापान के आत्मसमर्पण के लिए जो शर्तें पारित की गयी थी वे जापान को माननीय न थी। संयुक्त राज्य अमरीका ने सोवियत संघ को विश्वास में लिये बगैर अगस्त, 1945 के प्रारंभ में जापान के दो शहरों पर अणु बमों को गिराया जिससे उसे 10 अगस्त, 1945 को बिना शर्त आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया जा सका। इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध का अंत हो गया। यह एक तथ्य है कि संयुक्त राज्य अमरीका ने सोवियत संघ की जानकारी के बगैर अणु बम का विकास एवं उसका इस्तेमाल किये जाने के कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त हो जाने के तुरन्त पश्चात् शीतयुद्ध का उद्गम हुआ।

6.4.2 शांति संधियाँ

1919 के पेरिस शांति सम्मेलन से भिन्न प्रकार की विदेश मंत्रियों की बैठक 1 सितम्बर से 3 अक्टूबर, 1945 तक लंदन में हुई। लेकिन इस समय तक एक ओर पश्चिमी शक्तियों तथा दूसरी ओर सोवियत संघ के बीच गंभीर मतभेद उत्पन्न हो गये। लंदन सम्मेलन में बहुत कम प्रगति हुई। इसके बाद होने वाली लगातार तीन बैठकों में भी कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी। इटली, रूमानिया, बुल्गारिया, हंगरी एवं फिनलैण्ड जैसे पाँच देशों के साथ होने वाली संधियों के प्रारूप इन तीन बैठकों में तैयार किये गये। इसके पश्चात 19 जुलाई, 1945 से 15 अक्टूबर, 1945 तक पेरिस में 12 राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ। इसके बाद विदेश मंत्रियों की समिति की दूसरी बैठकें हुई और 12 दिसम्बर, 1946 को न्यूयार्क में संधियों को समिति द्वारा अनुमोदित कर दिया गया। अंत में इन संधियों पर एक पक्ष के रूप में मित्र राष्ट्रों द्वारा हस्ताक्षर किये गये और दूसरे पक्ष की ओर से इन पर उद्धृत पाँच देशों द्वारा हस्ताक्षर किये गये। उनमें से प्रत्येक के साथ अलग से संधियाँ की गयीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन शांति संधियों की मुख्य धाराओं को यहां संक्षेप में उद्धृत किया जा सकता है। इटली के साथ की गयी संधि द्वारा उससे कई क्षेत्रों को ले लिया गया। इटली के कई क्षेत्रों को फ्रांस, यूनान तथा युगोस्लोवाकिया को दे दिया गया। संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा सभा द्वारा नियुक्त गवर्नर के अधीन ट्रियास्ते एक स्वतंत्र बंदरगाह बन गया। अलबेनिया तथा इथोपिया ने अपनी स्वतंत्रताएँ प्राप्त की। वे एक बार फिर सार्वभौमिक राज्य बन गये। इटली को लीबिया, सोमालिया तथा ऐरिट्रेया जैसे अपने उपनिवेशों को छोड़ना पड़ा। इटली की रक्षा सेनाओं में काफी मात्रा में कटौती की गयी और सात वर्षों के अंदर उसे हर्जाने के रूप में एक बड़ी धनराशि अदा करनी थी।

रूमानिया के साथ की गयी संधि की शर्तों के अनुसार उसे बेस्सरबिया, तथा बुकोबिना जैसे क्षेत्रों को सोवियत संघ और डोबरूज को बुल्गारिया को हस्तांतरित करना था। उसे युद्ध हर्जाने को सोवियत संघ को अदा करना था तथा उसकी सैनिक बलों की शक्ति पर भी एक सीमा लागू की गयी।

हंगरी को डेन्यूब नदी के दक्षिण में विद्यमान उन गाँवों को चैकोस्लोवाकिया को लौटाना था जिन पर उसने 1938 में अधिकार कर लिया था। हंगरी ने ट्रांसिल्वानिया प्रदेश रूमानिया को वापस किया उसेको भी युद्ध हर्जाना देना पड़ा तथा उसे हथियार विहीन कर दिया गया।

बुल्गारिया ने कोई प्रदेश नहीं खोया। उसने वास्तव में रूमानिया से डोबरूज के क्षेत्र को प्राप्त किया। अन्य दूसरे देशों की भांति बुल्गारिया से भी हर्जाना अदा करने को कहा गया और उसकी सशस्त्र सेनाओं में भी कटौती कर दी गयी।

फिनलैण्ड को बहुत से छोटे छोटे क्षेत्रों से वंचित कर दिया गया और ये सभी सोवियत संघ को दे दिये गये। उसका सल्ला का क्षेत्र पेसेमो का प्रदेश तथा पोर्क्काला उड्ड का नौसैनिक अड्डा भी सोवियत संघ को दे दिया गया। अन्य पराजित राष्ट्रों की भांति फिनलैण्ड पर भी युद्ध का हर्जाना थोपा गया। उसकी सशस्त्र बलों में काफी कमी की गयी और उनको सीमित कर दिया गया। इन पाँच संधियों से सोवियत संघ को सबसे अधिक लाभ पहुँचा। जिस देश को पर्याप्त मात्रा में क्षेत्र, ताकत एवं सम्मान प्राप्त हुआ वह युगोस्लोवाकिया था। बालकान क्षेत्र में वह सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र एवं इटली का विरोधी बन गया।

आस्ट्रिया 1938 में जर्मन सेना ने आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया था और तभी से उसको पराजित जर्मनी के अधीनस्थ भाग के रूप में माना गया। आस्ट्रिया को मुक्त क्षेत्र समझा गया। 1943 के मास्को सम्मेलन में आस्ट्रिया को एक सार्वभौमिक देश बनाने का वचन दिया गया था। लेकिन युद्ध समाप्त होने के बाद शीघ्र ही मित्र राष्ट्रों के बीच मतभेद उत्पन्न हो गये। सोवियत संघ आस्ट्रिया पर भी कड़े आर्थिक प्रतिबंध लगाना चाहता था। यह पश्चिमी शक्तियों को स्वीकार्य न था। लगभग 10 वर्षों तक गतिरोध बना रहा। अंततः आस्ट्रिया स्वयं को एक तटस्थ देश घोषित करने तथा सोवियत संघ को कुछ क्षतिपूर्ति देने को सहमत हो गया। इसपर सोवियत संघ जर्मनी की समस्या से आस्ट्रिया के सवाल को अलग करने पर सहमत हो गया। 15 मई, 1955 को आस्ट्रिया ने शांति संधि पर हस्ताक्षर कर दिये और वह एक तटस्थ राष्ट्र बन गया।

जापान शीतयुद्ध तथा सोवियत संघ एवं संयुक्त राज्य अमरीका के बीच मतभेदों के कारण जापान के साथ होने वाली शांति संधि में देरी हुई। किंतु जर्मनी एवं आस्ट्रिया से भिन्न जापान केवल अमरीकी सेनाओं के अधिकार में था। 10 अगस्त, 1945 को जापानियों के आत्मसमर्पण के बाद अमरीकियों ने वहाँ पर अन्तरिम सैनिक प्रशासन की स्थापना की थी। संपूर्ण सत्ता मित्र राष्ट्रों के सर्वोच्च कमाण्डर के हाथों में निहित थी। जनरल मैकआर्थर को सर्वोच्च कमाण्डर एवं जापान का प्रशासक नियुक्त किया गया। शांति संधि करने के लिये संयुक्त राज्य अमरीका ने सेन फ्रांसिस्को में 1951 में एक बैठक बुलायी। इस बैठक में 52 देशों ने भाग लिया। इसमें सोवियत संघ तथा दूसरे समाजवादी देशों ने भी भाग लिया। लेकिन भारत तथा बर्मा ने इसमें भाग लेने से इंकार कर दिया। कुछ प्रस्तावित शांति की शर्तें भारत को स्वीकार्य न थी। सोवियत संघ को भी इस संधि के प्रारूप पर हस्ताक्षर करना असंभव प्रतीत हुआ। इस संधि को अमरीका के प्रभाव में किया गया था और इसपर 49 देशों ने 28 अप्रैल, 1952 को हस्ताक्षर किये। भारत ने जापान के साथ अलग से एक शांति संधि पर जून, 1952 में हस्ताक्षर किये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संयुक्त राज्य अमरीका तथा 48 अन्य देशों के साथ जापान द्वारा हस्ताक्षर किये गये। शांति संधि में 27 धारायें थी। इसने कोरिया की स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान की। यह याद रखा जाना चाहिये कि युद्ध के बाद कोरिया को उत्तर कोरिया (साम्यवादी) तथा दक्षिणी कोरिया (उदार लोकतंत्र) में विभाजित किया जा चुका था। जापान ने फारमोसा, सखालिन तथा कुरील द्वीपों पर से अपने अधिकारों का परित्याग कर दिया था। बोनिन तथा रियुक्यू (ओकिनावा) अमरीकी ट्रस्टीशिप के अधीन कर दिया गया था। जापान की सार्वभौमिकता को कुछ छोटे द्वीपों तथा चार प्रांतों तक सीमित किया गया। दूसरे, जापान चीन पर अपने सभी प्रकार के अधिकारों को छोड़ने के लिए सहमत हुआ। तीसरे, जापान ने युद्ध के उत्तरदायित्व तथा युद्ध हर्जाने को अदा करना स्वीकार किया किन्तु उसके आर्थिक हालात को देखते हुए उसे युद्ध हर्जाना देने से मुक्त कर दिया गया। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि यह संधि युद्ध की गर्मी काफी कम हो जाने के बाद की गयी तथा दूसरे, अब यह अमरीका का घनिष्ठ सहयोगी था। अंतिम, इसपर सैद्धांतिक रूप में सहमति हुई कि जापान से विदेशी सेनाओं को हटा लिया जायेगा लेकिन जापान तथा संयुक्त राज्य अमरीका के बीच हुए आपसी समझौते के अनुसार अमरीकी सेनायें जापान में बनी रहेंगी लेकिन ऐसा एक नये एवं स्वैच्छिक समझौते के अंतर्गत होगा। जापान पर उसके हथियारों के संदर्भ में कोई सीमा थोपी नहीं गयी।

जर्मनी हम ऊपर बता चुके हैं कि जर्मनी के आत्मसमर्पण के तुरन्त पश्चात् उसको चार अधीनस्थ क्षेत्रों में विभाजित किया गया। पश्चिमी देशों ने आरोप लगाया कि पहले हुई सहमति का उल्लंघन करते हुए सोवियत संघ पूर्वी जर्मनी के अपने अधीन क्षेत्र को एक साम्यवादी राज्य में परिवर्तित कर रहा है। इसने न केवल जर्मनी के एकीकरण में बाधा

उत्पन्न की अपितु शांति संघ भी इस कारण सम्पन्न न हो सकी। इन सबके बावजूद भी सोवियत संघ तथा पश्चिमी राष्ट्रों ने जर्मनी के संदर्भ में एकतरफा कई निर्णय किये। ऐसा पहला निर्णय ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका ने अपने प्रभाव क्षेत्रों को एक ही प्रभाव क्षेत्र में एकीकृत करने का निर्णय 1 जनवरी, 1947 को किया। बाद में, फ्रांस ने भी अपने प्रभाव क्षेत्र को एकीकृत पश्चिमी क्षेत्र में मिल जाने की अनुमति प्रदान कर दी। इसके बाद तीनों शक्तियों ने पश्चिमी जर्मनी में एक मुक्त, स्वतंत्र एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करने का निर्णय किया। पूर्ववर्ती पश्चिमी क्षेत्रों को मिलाकर 21 सितम्बर, 1949 को औपचारिक तौर पर फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी (एफ आर जी) को स्थापित किया गया। पश्चिमी शक्तियों ने 1951 में फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी के साथ युद्ध की स्थिति को रद्द कर दिया।

फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी की स्थापना के तुरंत बाद सोवियत संघ ने भी पूर्वी जर्मनी को एक स्वतंत्र राज्य के रूप में गठित करने की प्रक्रिया शुरू कर दी। इसको जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक कहा गया और इसको सोवियत संघ की समाजवादी व्यवस्था की भांति संगठित किया गया। पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा पश्चिमी जर्मनी की सार्वभौमिकता को मान्यता प्रदान किये जाने के एक वर्ष पश्चात् सोवियत संघ ने सितम्बर, 1955 को जी डी आर के साथ संधि कर उसे सार्वभौमिकता प्रदान कर दी। इस प्रकार जर्मनी दो शत्रुतापूर्ण देशों के बीच 1990 में तब तक विभाजित बना रहा जब तक पूर्वी जर्मनी का पश्चिमी जर्मनी में विलय नहीं हो गया। पश्चिमी जर्मनी में पूँजीवादी व्यवस्था कायम हुई थी और उसने बड़ी तेजी से औद्योगिक प्रगति की। पूर्वी जर्मनी सोवियत संघ का सहयोगी बना तथा उसकी अर्थव्यवस्था समाजवाद पर आधारित थी तथा राजनीतिक व्यवस्था सोवियत संघ के प्रतिमानों पर। दोनों जर्मनियों – पूर्वी एवं पश्चिमी जर्मनी के एकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ 1989 में हुआ। एकीकृत जर्मनी का जन्म केवल अक्टूबर, 1990 में पूरा हुआ।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर को मिलाइए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) 1946 में विजयी राष्ट्रों तथा इटली के साथ सम्पन्न हुई शांति संधि की धाराओं का संक्षेप में विवरण दीजिए।

....

....

....

....

2) 1952 में जापान द्वारा हस्ताक्षरित शांति संधि की धाराओं का सारांश लिखें।

....

....

....

....

6.5 महाशक्तियों का उद्गम

महाशक्ति की अवधारणा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उस समय विकसित हुई जबकि दो देशों अर्थात् संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ शक्ति के दृष्टिकोण से (दूसरे राज्यों के विचारों तथा कार्यों को प्रभावित करने की क्षमता) कुछ पूर्ववर्ती शक्तियों से आगे निकल गये। द्वितीय विश्वयुद्ध की पूर्व संध्या पर ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रांस, इटली तथा जापान कुछ मान्यताप्राप्त बड़ी शक्तियों में से थे। जब युद्ध का अंत हुआ तब न केवल जर्मनी अपितु इटली तथा जापान भी पराजित हुए। हम

ऊपर देख चुके हैं कि जर्मनी पर चार शक्तियों का अधिकार हो गया और अणु बम के हमलों ने जापान को बर्बाद कर दिया। पराजित देश सैनिक रूप में कमजोर, राजनीतिक तौर पर महत्वहीन तथा आर्थिक रूप में दरिद्र हो गये। विजयी राष्ट्रों में 1947 तक ब्रिटेन इतना कमजोर हो गया था कि साम्यवाद के विरुद्ध यूनान एवं टर्की में उनकी सुरक्षा के लिये अपनी सेनाओं को रखने में असक्षम था। ब्रिटिश साम्राज्य को जारी न रखा जा सकता था। 1947 में जब भारत एक बार स्वतंत्र हो गया तब उपनिवेशवाद के टूटने की प्रक्रिया तीव्र हो गयी। ब्रिटेन को अभी भी एक बड़ी शक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त थी और संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा सभा का वह एक स्थायी सदस्य भी था, लेकिन उसकी ताकत में काफी कमी आ चुकी थी। फ्रांस उस समय तक जर्मनी की अधीनता का शिकार बना रहा जब तक दूसरा मोर्चा खोला गया और वह सितम्बर, 1944 में मुक्त हो पाया। यद्यपि फ्रांस विजयी रहा था और उसको सुरक्षा सभा का स्थायी सदस्य भी बनाया गया लेकिन युद्ध के बाद कई वर्षों तक वह एक शक्तिशाली राष्ट्र बनने से काफी दूर रहा। इस प्रकार केवल दो मुख्य विजयी शेष रहे अर्थात् सोवियत संघ एवं संयुक्त राज्य अमरीका। ये ऐसे राष्ट्र थे जिन्होंने सैन्य शक्ति तथा राजनीतिक स्तर को प्राप्त किया। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध का महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि इन दो विजयी राष्ट्रों का महाशक्तियों के रूप में उद्‌गम हुआ। ब्रिटेन, फ्रांस तथा चीन नाभिकीय हथियारों को प्राप्त करने के बाद भी संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ के महाशक्ति के स्तर को चुनौती न दे सके।

6.5.1 संयुक्त राज्य अमरीका का नाभिकीय शक्ति बनना

युद्ध के अंत में नाभिकीय हथियार केवल एक देश के पास थे, किसी दूसरे देश के पास नहीं। जुलाई, 1945 में मानव इतिहास में पहली बार अमरीकियों द्वारा नाभिकीय बम का परीक्षण किया गया। अगस्त में उन्होंने दो अणु बमों को हिरोशिमा तथा नागासाकी पर गिरा दिया। इसने जापान प्रतिरोध को समाप्त कर दिया और उसने बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया। विश्व आश्चर्यचकित हो गया और सोवियत संघ विरक्त हुआ क्योंकि दोनों देश युद्ध में एक दूसरे के सहयोगी थे लेकिन संयुक्त राज्य अमरीका ने उसे ऐसा कोई संकेत न दिया जिससे सोवियत संघ यह जान पाता कि वह अणु बम को विकसित कर रहा है। जिस समय अमरीका ने जापान में अणु बम के प्रयोग का निर्णय कर लिया तब भी अन्य मित्र राष्ट्रों को इसके वास्तविक प्रयोग तक अंधेरे में रखा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर गया और अमरीका की इस विजय ने सोवियत संघ को "सुदूर पूर्व की उत्तर-युद्ध-व्यवस्था में सभी कुछ होने के बावजूद प्रतीकात्मक हिस्सा प्राप्त हुआ। आगामी पांच वर्षों में तब तक सोवियत संघ की बहुत अधिक कमजोर स्थिति बनी रही जब तक 1949 में उसने अपने स्वयं के नाभिकीय बम को विकसित नहीं कर लिया। सोवियत संघ की स्थिति काफी कमजोर बनी हुई थी क्योंकि शीतयुद्ध का प्रारंभ हो चुका था और जिसके लिए खुल्लम-खुल्ला पश्चिमी देश सोवियत संघ को दोष दे रहे थे। शीतयुद्ध की तीव्रता के दौर में कोई यह नहीं जानता था कि अमरीका के पास तीसरा अणु बम था या नहीं। यदि अमरीका के पास तीसरा बम था या वह उसको कम से कम समय में बना सकता तब तक अमरीका उसको मास्को पर गिरा कर सोवियत संघ को बर्बाद कर सकता था। इसने एक अजीबो-गरीब स्थिति को उत्पन्न कर दिया जैसा कि पीटर कालवोकोरेसी कहता है– "अमरीकी जो कुछ हिरोशिमा तथा नागासाकी पर कर चुके थे यदि वे ऐसा मास्को तथा लेनिनग्राद पर करने की इच्छा करते तब सोवियत संघ एक बहुत कमजोर राष्ट्र से अधिक कुछ न था, वह बिल्कुल ही उनकी दया पर था।" लेकिन अमरीका शायद कभी भी ऐसा करने की इच्छा नहीं रखता था, लेकिन इसने उसको निश्चय ही सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया था। वह कम से कम पांच वर्षों तक अकेला महाशक्ति बना रहा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अमरीका के नाभिकीय हथियारों के अतिरिक्त दूसरी चीज क्या थी जिसने उसे महाशक्ति बनने में सहायता की, संपूर्ण युद्ध के दौरान कोई भी युद्ध उसकी अपनी भूमि पर नहीं लड़ा गया। पर्ल हार्बर के पश्चात अमरीकी एक जबरदस्त युद्ध में व्यस्त थे, लेकिन नागरिकों के जीवन एवं सम्पत्ति को किसी भी प्रकार का कोई नुकसान नहीं हुआ। इसने अमरीका को एक अतिरिक्त लाभ प्रदान किया क्योंकि अन्य मित्र राष्ट्रों को युद्ध में नागरिकों के भारी नुकसान को उठाना पड़ा। ब्रिटेन पर भारी बमबारी की गयी, फ्रांस चार वर्षों तक अधीन बना रहा और सोवियत संघ जर्मनी का निशाना तब तक बना रहा जब तक जर्मनी के विरुद्ध दूसरा मोर्चा न खोला गया।

1949 में सोवियत संघ ने जब तक नाभिकीय बम का परीक्षण किया तब तक नाभिकीय शक्ति पर अमरीका का एकाधिकार बना रहा। 1949 के बाद भी संयुक्त राज्य अमरीका तकनीकी क्षेत्र में सोवियत संघ से आगे था और 1953 तक सैनिक एवं राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में वह सोवियत संघ

के विरुद्ध वर्चस्व बनाये रहा। अमरीका के पास विश्व की सबसे अधिक शक्तिशाली हवाई सेना एवं अग्रिम नौसेना थी। युद्ध के अंत में सोवियत संघ तथा अमरीका दोनों के पास सशस्त्र सेनाओं में प्रत्येक के पास लगभग 1 करोड़ 20 लाख सैनिक थे।

6.5.2 संयुक्त राज्य अमरीका को सोवियत संघ की चुनौती

सोवियत संघ के शक्ति आधार की संयुक्त राज्य अमरीका के साथ कोई तुलना नहीं थी। सोवियत संघ ने पोलैण्ड तथा दूसरे कई पूर्वी देशों में साम्यवादी शासन की स्थापना में सफलता प्राप्त की थी। इन देशों को नाजी सेना के नियंत्रण से सोवियत संघ की सेना ने मुक्त कराया था। लेकिन 1949 में उसके पास उस समय तक नाभिकीय हथियार उपलब्ध नहीं थे, जब तक कि उसने पहली बार इसका परीक्षण किया। युद्ध के दौरान सोवियत संघ को भारी नुकसान उठाना पड़ा था। न केवल उसकी सेनायें भारी संख्या में मारी गयी और घायल हुई अपितु उसकी नागरिक आबादी की भी भारी क्षति हुई। सोवियत संघ की जनसंख्या में लगभग 2 करोड़ की कमी आयी। युद्ध के दौरान जहाँ संयुक्त राज्य अमरीका के स्टील उत्पादन में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई वहीं सोवियत संघ का स्टील उत्पादन आधा रह गया। यही स्थिति कृषि और औद्योगिक उत्पादन में थी। उदाहरण के तौर पर, अमरीका में सत्तर लाख कारों का उत्पादन प्रतिवर्ष हो रहा था वहीं सोवियत संघ में मात्र 65 हज़ार कारों का उत्पादन प्रतिवर्ष होता था।

संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ के बीच आर्थिक स्थिति में भारी भिन्नताएँ होने के बावजूद भी, द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत में सोवियत संघ विश्व की दूसरी महाशक्ति हो गया था। कई सामरिक क्षेत्रों में सोवियत संघ का प्रभाव दृढ़ता से स्थापित था। जैसा कि गैर लुण्डेस्टड कहते हैं: "इस देश ने अपने क्षेत्र में बाल्टिक देशों, पूर्वी क़ारेलिया तथा पेटसामों युद्ध से पूर्व के पोलैण्ड के पूर्वी भागों तथा पूर्वी एशिया के उत्तरी भागों, कारपेथियन, उक्रेन, बस्सरेबिया, तथा उत्तरी बुकोबिना, दक्षिण सखालिन और कुरील द्वीपों को मिलाकर काफी वृद्धि की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सोवियत संघ 1949 में नाभिकीय शक्ति बना यद्यपि 1953 तक छोड़ने की प्रणाली जैसे क्षेत्रों में अमरीका की सर्वोच्चता बनी रही। लेकिन जब सोवियत संघ एक बार नाभिकीय हथियारों को धारण करने वाला देश बन गया उसके स्तर में सुधार आया और उसको भी एक महाशक्ति मान लिया गया। 1949 में चीन में साम्यवादी शक्तियों के बीच 30 वर्षों के लिए शांति संधि हो जाने से सोवियत संघ की ताकत में और वृद्धि हुई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के तत्काल बाद सोवियत संघ ने अमरीका से विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा करने के भरपूर प्रयास किये। सैन्य तकनीकी में अमरीका की बराबरी करने के लिए सोवियत संघ ने उत्तर युद्ध पुनर्निर्माण सहित सभी कार्यों को अधीन किया। जब एक बार सोवियत संघ ने नाभिकीय हथियारों को विकसित कर लिया तब वह संयुक्त राज्य अमरीका का प्रतिद्वंद्वी बन गया और दोनों को महाशक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त हो गयी। प्रत्येक ने अपने-अपने शक्ति गुटों का निर्माण किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य अमरीका का विश्व के विभिन्न भागों में प्रत्यक्ष तौर पर एक दूसरे का मुकाबला हुआ। लुण्डेस्टड के अनुसार, "अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वे दो मुख्य किरदार थे, जो भोगौलिक दूरी उनको अलग करती थी वह समाप्त हो चुकी थी और राजनीतिक दूरी शीघ्र ही इतनी व्यापक होने वाली थी जो इससे पूर्व कभी भी न थी।"

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में संयुक्त राज्य अमरीका के उद्भव का विवरण कीजिए।

....

....

....

....

2) 1945 के बाद सोवियत संघ ने किस प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका की सर्वोच्चता को चुनौती दी ?

....

....

....

....

3) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद महाशक्तियों के उद्गम का संक्षिप्त विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

6.6 सारांश

द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारंभ उस समय हुआ जबकि 1 सितम्बर, 1939 को जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया। दो दिन बाद फ्रांस तथा इंग्लैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इससे पूर्व दो कड़े प्रतिद्वन्दियों, जर्मनी तथा सोवियत संघ ने एक गैर आक्रामक समझौते पर हस्ताक्षर किये। आलोचकों ने इस समझौते को दो देशों के बीच पोलैण्ड के विभाजन का समझौता कहा। द्वितीय विश्वयुद्ध के मुख्य कारण थे : प्रथम विश्वयुद्ध का अंत करने वाली वारसा संधि, इस संधि की शर्तों ने जर्मनी का अपमान किया और जर्मनियों के द्वारा इसे डिक्टेट (Dicktat) एवं अनुचित बताया गया, उस निरस्त्रीकरण की असफलता जिसे युद्ध टालने की निश्चित गारंटी समझा गया, विश्व आर्थिक संकट जिसने जापान जैसे देशों में सैन्य एवं आक्रामक कार्यवाहियों को प्रोत्साहित किया, विश्व व्यवस्था को विध्वंस करने के दृढ़ निश्चय के कारण तीन फासीवादी शक्तियों के गठबंधन द्वारा रोम बर्लिन-टोकियो धुरी का निर्माण किया जाना, अल्पसंख्यकों के असंतोष की समस्या, फासीवादी एवं नाजी तानाशाहों की कृपा प्राप्त करने के लिए ब्रिटेन द्वारा उनके प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाना और फ्रांस द्वारा इसका समर्थन करना, और अंततः जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया जो युद्ध का तात्कालिक कारण बन गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युद्ध प्रारंभ होने पर ब्रिटेन और उसके सहयोगी राष्ट्रों की ओर कई देश भी इसमें शामिल हो गये। लेकिन अमरीका इस युद्ध से उस समय तक बाहर रहा जब तक जापान ने पर्ल हार्बर पर आक्रमण नहीं किया। जापान की इस कार्यवाही ने अमरीका को मित्र राष्ट्रों की ओर दिसम्बर, 1941 में युद्ध में शामिल होने के लिए बाध्य कर दिया। सोवियत संघ ने तुरन्त ब्रिटेन के साथ गठबंधन कर लिया। इसी बीच इटली ने फ्रांस के विरुद्ध घोषणा करते हुए जून, 1940 में जर्मनी की ओर से युद्ध में प्रवेश किया। जब 1943 में इटली पर पहला आक्रमण किया गया तब धुरी राष्ट्रों को बड़ा आघात पहुँचा। मुसोलिनी को इटली के राजा द्वारा पदच्यूत कर दिया गया और बाद में इटली ने बगैर किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर गया। यद्यपि रोम पर कुछ समय तक जर्मन सेनाओं का अधिकार बना रहा। पूर्वी यूरोप को मुक्त कराने के लिए सोवियत संघ जर्मनी के विरुद्ध कड़ा संघर्ष कर रहा था। ब्रिटेन तथा अमरीका द्वारा दूसरा मोर्चा खोले जाने के बाद जर्मनी को न केवल फ्रांस को खोना पड़ा अपितु उसने मई, 1945 में आत्मसमर्पण कर दिया। जापान प्रशान्त क्षेत्र में उस समय युद्ध करता रहा जब तक अमरीका ने अगस्त, 1945 में उस पर न केवल दो अणु बमों को गिराया बल्कि उसे आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य भी कर दिया। इस प्रकार युद्ध का अंत तीन फासीवादी शक्तियों की पराजय तथा मित्र राष्ट्रों की विजय के रूप में हुआ।

युद्ध के उपरांत शांति प्रयासों को चलाना बड़ा मुश्किल साबित हुआ। मित्र राष्ट्रों ने 1945 में पोट्सडम सम्मेलन को जर्मनी के साथ शांति संधि करने के लिए बुलाया। युद्ध के तुरन्त बाद किसी भी पराजित राष्ट्र के साथ कोई शांति संधि न हो सकी। लेकिन लंबी कूटनीतिक गतिविधियों के

पश्चात इटली, रूमानिया, हंगरी तथा फिनलैण्ड और बाद में आस्ट्रिया एवं जापान के साथ शांति संधियाँ सम्पन्न की जा सकी। कई वर्षों तक जर्मनी अधीन बना रहा और स्वाभाविक था कि बहुत से वर्षों तक उसके साथ शांति संधि नही हो सकी।

युद्ध का महत्वपूर्ण परिणाम जर्मनी का चार अधीनस्थ क्षेत्रों में विभाजन होना था। बाद में तीन पश्चिमी क्षेत्र एक सार्वभौमिक देश बन गये, और पूरब में सोवियत संघ समर्थित सरकार को स्थापित किया गया। क्योंकि पूर्वी यूरोप के देशों को सोवियत संघ की सेना द्वारा मुक्त किया गया था, इसलिए उनमें साम्यवादी सरकारों की स्थापना की गयी। शीतयुद्ध उन शक्ति गुटों के बीच शुरू हुआ जिनके बीच विश्व विभाजित था।

संयुक्त राज्य अमरीका सौभाग्यशाली था कि कोई भी युद्ध उसकी भूमि पर नहीं हुआ था और नागरिक नुकसान नगण्य था। वह ऐसा प्रथम देश था जिसने अणु बम का विकास एवं प्रयोग सर्वप्रथम किया। सोवियत संघ ने इस शक्ति को पांच वर्ष बाद प्राप्त किया। जैसे दूसरी बड़ी शक्तियों ने अपनी अधिकतर क्षमता को खोया वैसे ही संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ का दो महाशक्तियों के रूप में उद्गम हुआ और शक्ति के दो गुटों का निर्माण हुआ।

6.7 शब्दावली

युद्ध क्षतिपूर्ति : (युद्ध हर्जाना) वह दण्ड जिसको पराजित देशों पर नागरिक आबादी एवं सम्पति को किये गये नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में थोपा गया।

अनुशास्ति : एक आक्रामक या अंतर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करने वाले देश के विरुद्ध दण्डात्मक प्रतिबंध लगाना। अनुशास्ति आर्थिक या सैनिक या दोनों प्रकार की होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

धुरी राष्ट्र : इस शब्द का प्रयोग तीन फासीवादी शक्तियों अर्थात जर्मनी, इटली, एवं जापान के लिये किया गया है और द्वितीय विश्वयुद्ध की पूर्व संध्या पर इन तीनों ने गठबंधन किया।

गैर आक्रामक समझौता : यह एक ऐसा समझौता है, जिसके अंतर्गत एक देश दूसरे पर एक निश्चित अवधि के लिए आक्रमण नहीं करता।

शीत युद्ध : दो शक्ति गुटों के बीच गहरे तनाव की स्थिति लेकिन इसमें एक दूसरे के विरुद्ध किसी भी प्रकार के हथियार का प्रयोग नहीं होता।

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लगसाम, डब्ल्यू सी तथा मितशैल, **दि वर्ल्ड सिंस 1919**, न्यूयार्क, दि मैकमिलन पब्लिशिंग कम्पनी।

अलब्रेश्त कैरी : **ए डिप्लोमैटिक हिस्ट्री ऑफ यूरोप सिंस दि कांग्रेस ऑफ वियना**, न्यूयार्क, मार्थर एण्ड रॉ।

जॉन्सन, पौल, **ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न वर्ल्ड फ्रोम 1917 टू 1980**, लंदन, वैडनफिल्ड एण्ड निकल्सन।

धर, एस एन, **इंटरनेशनल रिलेशन्स एण्ड वर्ल्ड, पॉलिटिक्स, सिंस 1919**, नई दिल्ली, कल्याणी प्रकाशन।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) वारसा संधि की अनुचित एवं अन्यायपूर्ण शर्तों क़ो थोपना, सामूहिक सुरक्षा की असफलता,

2) एंग्लो सोवियत वार्ताओं की असफ़लता और सोवियत जर्मन गैर आक्रामक समझौते ने सितम्बर, 1939 में पोलैण्ड पर जर्मन आक्रमण के मार्ग को प्रशस्त किया। ब्रिटेन तथा फ्रांस ने पोलैण्ड को दी गयी गारन्टी को पूरा किया तथा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। सोवियत संघ (जून, 1941) तथा संयुक्त राज्य अमरीका (दिसम्बर, 1941) पर धुरी शक्तियों ने आक्रमण किया और वे भी युद्ध में शामिल हो गये।

बोध प्रश्न 2

1) युद्ध में अमरीकी प्रवेश ने मित्र राष्ट्रों की शक्ति में वृद्धि की। जर्मनी दो मोर्चों पर लड़ने में असक्षम था, सोवियत संघ ने पूर्वी यूरोपीय देशों को मुक्त कराया और ब्रिटेन तथा अमरीका ने पश्चिमी यूरोप को मुक्त किया, पराजित होने के कारण, हिटलर ने 30 अप्रैल 1945 को आत्महत्या कर ली।

2) मित्र राष्ट्रों की विजय ने उन्हें लड़ने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया तथा जापान को पराजित करने के लिए अमरीका ने अगस्त, 1945 में दो अणु बम गिराये जिससे जापान को बाध्य होकर बगैर किसी शर्त के आत्मसमर्पण करना पड़ा।

3) धुरी राष्ट्रों की पूर्ण पराजय तथा मित्र राष्ट्रों की विजय अर्थात् जिसका अभिप्राय था कि फासीवाद तथा तानाशाही की पराजय एवं लोकतंत्र की विजय।

बोध प्रश्न 3

1) फ्रांस, यूनान एवं युगोस्लोवाकिया के लिये क्षेत्रों की प्राप्ति, ट्रिस्टे स्वतंत्र हो गया, अलबेनिया तथा अबिलिनिया (इथोपिया) ने पुनः स्वतंत्रता प्राप्त की, सशस्त्र बलों में कटौती।

2) कोरिया की स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान कर दी गयी, जापान ने फारमोसा, सखालिन तथा कुरील द्वीपों पर अपने अधिकारों का परित्याग कर दिया, चीन के सभी क्षेत्र मुक्त हो गये, जापान ने युद्ध के लिए अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार किया, लेकिन उसको युद्ध क्षतिपूर्ति नहीं देनी पड़ी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

1) संयुक्त राज्य अमरीका विश्व का पहला देश था जिसने अणु बम का निर्माण किया और उसका प्रयोग भी उसने जापानियों को आत्मसमर्पण करने के लिए किया। संयुक्त राज्य अमरीका की प्रारंभिक भूमिका जर्मनी तथा इटली की पराजय के लिए उत्तरदायी थी। अमरीका की भूमि पर कोई युद्ध नहीं लड़ा गया। 1945 में अमरीका के पास विश्व की सबसे शक्तिशाली वायु सेना एवं अग्रिम नौसेना थी।

2) सोवियत संघ नाभिकीय हथियारों को प्राप्त करने से पूर्व ही विश्व का दूसरा सबसे अधिक शक्तिशाली देश बन चुका था। उसकी सेना ने पोलैण्ड तथा दूसरे पूर्वी यूरोपीय देशों में साम्यवादी सरकारों की स्थापना की। उसका वैचारिक प्रभाव संयुक्त राज्य अमरीका के लिए एक चुनौती था।

3) अन्य विजयी राष्ट्रों की तुलना में अमरीका तथा सोवियत संघ बेहतर स्थिति मे थे। संयुक्त राज्य अमरीका को नगण्य नागरिक नुकसान हुआ था, सोवियत संघ के विशाल भू-भाग तथा विचारधारात्मक प्रतिबद्धता ने उसे बेहतर स्थिति में रखा। संयुक्त राज्य अमरीका ने पूँजीवादी विश्व का नेतृत्व किया और सोवियत संघ विश्व साम्यवाद का केन्द्रबिंदु बन गया।

इकाई 7 शीतयुद्ध : अभिप्राय, प्रतिमान और आयाम

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 शीतयुद्ध का अर्थ

7.3 शीतयुद्ध का उद्गम

7.4 शीतयुद्ध का प्रसार

7.5 सुदूर पूरब में शीतयुद्ध

7.6 शीतयुद्ध में कमी

7.7 शीतयुद्ध का पुनर्जन्म

7.8 शीतयुद्ध का ढाँचा एवं आयाम

7.9 शीतयुद्ध का अंत

7.10 सारांश

7.11 शब्दावली

7.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.0 उद्देश्य

यह इकाई शीत युद्ध, इसके अभिप्राय एवं आयामों के विषय में विवेचना करती है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- शीतयुद्ध की अवधारणा की परिभाषा के विषय में जान सकेंगे;
- इस गैर-सैनिक संघर्ष के उद्गम की पहचान कर सकेंगे;
- शीतयुद्ध के प्रतिमानों तथा आयामों को समझ सकेंगे;
- शीतयुद्ध के अंत के कारणों की पहचान को समझ सकेंगे; और
- शीतयुद्ध के प्रभाव एवं परिणाम का अनुमान कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्वयुद्ध (1914-18) के अंत के साथ ही दुनिया में एक नयी व्यवस्था का उदय हुआ जिसे समाजवादी व्यवस्था के नाम से जाना गया है। लगते ही हाथ, इस विश्वयुद्ध ने दूसरे विश्वयुद्ध के बीज भी बो दिये थे। इन दोनों घटनाओं ने आगामी दसकों को व्यापक रूप में प्रभावित किया। और संभावनाओं के अनुसार 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया। द्वितीय विश्वयुद्ध मित्र राष्ट्रों तथा धुरी राष्ट्रों के नाम से बने दो गुटों के बीच लड़ा गया। समाजवादी गुट मित्र राष्ट्रों के गुट में सम्मिलित हो गया। इससे मित्र राष्ट्रों की शक्ति दुगनी हो गई और मित्र राष्ट्रों ने युद्ध में विजय प्राप्त की। इस युद्ध में पुराने पूँजीवादी साम्राज्यवादी व्यवस्था का अंत हुआ जिसका विश्व पर व्यापक प्रभाव था। युद्ध के अंत में विश्व दो गुटों में विभाजित हो गया – पश्चिमी या पूँजीवादी गुट जिसका नेतृत्व नव उपनिवेशवादी शक्ति संयुक्त राज्य अमरीका करता था तथा दूसरा समाजवादी

गुट और यह सोवियत संघ समाजवादी गणतंत्रों या सोवियत संघ के नेतृत्व में था। इस तरह से संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ जैसी दो महाशक्तियों के रूप में उद्‌गम हुआ। ये दोनों गुट दो विरोधाभासपूर्ण व्यवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करते थे। इसलिए उनके बीच टकराव का होना स्वाभाविक था। यह टकराव या संघर्षशील की अवस्था शीतयुद्ध में परिवर्तित हो गयी क्योंकि इसी दौरान विश्व ने एक गुणात्मक परिवर्तन का अनुभव किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध की विभिषिका तथा उसमें हुए असीम जान-माल के नुकसान ने विश्व को शांति और सुरक्षा स्थापित करने के लिए प्रेरित किया तथा विश्व में फिर से ऐसी स्थिति फिर से न हो इसको पुनिश्चित एवं सुरक्षित बनाने हेतु एक विश्व संगठन की स्थापना की गयी। इस विश्व संगठन को संयुक्त राष्ट्र संगठन या संयुक्त राष्ट्र का नाम दिया गया। दोनों महाशक्तियों ने उच्च परिष्कृत विध्वंसात्मक हथियारों को प्राप्त किया। यूरोप संयुक्त राज्य अमरीका पर निर्भर हो गया। उपनिवेशवाद का विखंडन एक वास्तविकता में बदल गया। इन सबसे ऊपर जनमत किसी भी प्रकार के विश्वव्यापी विध्वंस के पक्ष में न था। लेकिन ये परिवर्तन स्थानीय या विभिन्न देशों में गृहयुद्ध तथा दोनों महाशक्तियों को विश्व पर सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए तनावग्रस्त प्रतियोगिता से रोकने में असफल रहे। इस तरह से यह शत्रुतापूर्ण प्रतियोगिता शीतयुद्ध में बदल गई।

7.2 शीतयुद्ध का अर्थ

"शीतयुद्ध" शब्द की उत्पत्ति अभी हाल में हुई है। इस शब्द का प्रयोग संयुक्त राज्य अमरीका तथा भूतपूर्व सोवियत संघ की गैर-सैनिक शत्रुता को दर्शाने के लिए किया गया है जो द्वितीय विश्व युद्ध से ही चला आ रहा है। समय व्यतीत होने के साथ इसका प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में एक अवधारणा के रूप में होने लगा है। "शीतयुद्ध" शब्द का अर्थ या अभिप्राय यह है कि राष्ट्रों के बीच वास्तविक युद्ध (अर्थात् गैर-सैनिक शत्रुता) के बगैर ही शत्रुता की स्थिति का बने रहना है। यह अवधारणा ऐसे संघर्ष के लिए है जिसको राष्ट्रों या राज्यों द्वारा कुप्रचार, आर्थिक उपायों, राजनीतिक चालों आदि के माध्यम से अपनी सर्वोच्चता को स्थापित करने के लिए एक दूसरे को नष्ट करने की मनसा से चलाया जाता है। शीतयुद्ध में व्यस्त राष्ट्र या राज्य वास्तविक युद्ध (सैनिक कार्यवाही) नहीं करते। यद्यपि यह गला काट प्रतियोगिता की स्थिति होती है लेकिन प्रतियोगी दल अपने बीच सशस्त्र संघर्ष से काफी दूर रहते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) शीतयुद्ध शब्द से आप क्या समझते हैं ?

7.3 शीतयुद्ध का उद्‌गम

शीतयुद्ध का उद्‌गम 1917 की उस रूसी क्रांति से माना जा सकता है जिसने एक नयी व्यवस्था को जन्म दिया। इस व्यवस्था को एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था के रूप में जाना गया जो शोषणात्मक पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध करती थी। संपूर्ण पूँजीवादी विश्व भयभीत हो उठा तथा

सोवियत संघ के नये राज्य को नष्ट करने के लिए एकजुट हो गया। ऐसा कर पाने में असफल होकर उन्होंने जर्मनी में नाजी शक्ति के उद्भव को प्रोत्साहित किया जिससे इसका इस्तेमाल सोवियत संघ के विरुद्ध किया जा सके। सोवियत संघ ने नाजी जर्मनी के तीव्र उत्थान को रोकने के लिए पश्चिमी शक्तियों को सम्मिलित करने के गंभीर प्रयास किये। लेकिन पश्चिमी देशों ने सोवियत संघ के प्रयासों पर कोई ध्यान नहीं दिया। इसी दौरान 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारंभ हो गया। जर्मनी ने जर्मनी तथा सोवियत संघ के बीच हुए गैर आक्रामक संधि अर्थात् शांति संधि का उल्लंध करते हुए सोवियत संघ पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में सोवियत संघ मित्र शक्तियों के साथ शामिल हो गया तथा धुरी राष्ट्रों की पराजय में उसका महान योगदान रहा। धुरी राष्ट्रों को कुचलने में सोवियत संघ ने गंभीर प्रयास किए थे, किन्तु, इसके बावजूद पश्चिम ने सदैव सोवियत संघ को हमेशा ही संदेह की दृष्टि से देखा। नाजियों के अधीन शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष के दौरान पश्चिम पर सोवियत संघ को समाप्त करने के आरोप लगाये गये। संभवतः यही कारण था कि पूर्वी यूरोप में जर्मनी के विरुद्ध दूसरा मोर्चा खोलने के लिये सोवियत संघ के लगातार अनुरोध का उत्तर मित्र राष्ट्रों ने नहीं दिया। युद्ध के उपरांत मित्र राष्ट्रों ने सोवियत संघ के विरुद्ध अपने भय एवं घृणा को नहीं छिपाया जिसका अब विश्व में एक महाशक्ति के रूप में उदगम हो गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत में संयुक्त राज्य अमरीका भी एक दूसरी महाशक्ति के रूप में उभर कर विश्व के सामने आया। सोवियत संघ सहित युद्ध के समय संगठित हुए मित्र राष्ट्रों ने शांति बनाए रखने के लिए पृथ्वी को सुरक्षित बनाने के लिए विश्व संगठन संयुक्त राष्ट्र की स्थापना की। लेकिन फिर भी ये स्थानीय युद्धों को रोकने में असफल रहे क्योंकि संयुक्त राष्ट्र के पास इन महा या बड़ी शक्तियों के आपसी संघर्षों को रोकने के लिए अथवा किसी तरह का दबाव बनाए रखने के लिए किसी तरह की आवश्यक शक्तियाँ न थी। परिणामस्वरूप वे अपने स्वयं के स्वार्थों एवं हितों को पूरा करने के लिए मनमानी करते रहे। उन्होंने अपने द्वन्दी रक्षा संगठनों को संगठित किया और प्रत्येक संकट के समय अपने हितों के अनुकूल अपने कार्य और संघर्ष करते चले गए। इसके साथ ही उन्होंने अपने दबदबे से विश्व संगठन का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए किया या फिर उसकी अवहेलना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्व द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने से पहले शीतयुद्ध की चपेट में आ गया और उसका अंत तब ही हुआ जब विश्व में दूसरे विश्वयुद्ध की आग थमी। इस प्रकार महाशक्तियों के दबाव, भेदभाव से विश्व संगठन का कमजोर होना आदि सभी मार्गों दुनिया को दूसरे विश्वयुद्ध की आग में धकेल दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) शीतयुद्ध का प्रारंभ करने वाली परिस्थितियों का आलोचनात्मक विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

7.4 शीतयुद्ध का प्रसार

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ को जर्मनी से 10 अरब डॉलर की राशि क्षतिपूर्ति के रूप में प्राप्त करनी थी। ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमरीका ने मिलकर जुलाई, 1945 की पोट्सडम सम्मेलन के निर्णय का उल्लंघन करते हुए क्षतिपूर्ति की राशि की अदायगी को रोक दिया। इस घटना से एक भयंकर संकट उत्पन्न हो गया जिसका नाम जर्मन संकट के नाम से जाना गया है।

इस संकट का समाधान ढूँढने के लिए 1947 के प्रारंभ में एक सम्मेलन आयोजित किया गया। जिसमें चार बड़ी शक्तियाँ सोवियत संघ, अमरीका, ब्रिटेन तथा फ्रांस शामिल थी। इसमें ब्रिटेन तथा अमरीका ने जर्मनी के आर्थिक एकीकरण पर बल दिया। परन्तु सोवियत संघ तथा फ्रांस ने इस प्रस्ताव का कड़ा विरोध किया। इस तरह से संकट का समाधान ढूँढे बगैर ही यह सम्मेलन समाप्त हो गया। इसी बीच संयुक्त राज्य अमरीका ने सभी नियमों का उल्लंघन करते हुए मार्च, 1947 में यूनान के गृहयुद्ध में हस्तक्षेप किया। इस हस्तक्षेप को जायज ठहराते हुए अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने 12 मार्च, 1947 को अमरीकी कांग्रेस को सम्बोधित करते हुए अपना पक्ष स्पष्ट किया और यूनान में हस्तक्षेप को उचित ठहराया तथा यूनान एवं टर्की में साम्यवादियों के नेतृत्व में लड़े जा रहे गृहयुद्ध का दमन करने के लिए इन देशों को वित्तीय सहायता देने हेतु कांग्रेस में जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन ट्रूमैन ने किया उनको ट्रूमैन सिद्धांत के नाम से जाना गया और इसको उचित ठहराने के लिए यह मूल तर्क दिया कि साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए संयुक्त राज्य अमरीका को कहीं भी हस्तक्षेप करने का अधिकार था। ट्रूमैन सिद्धांत शीतयुद्ध को फैलाने के लिए एक नंगा दस्तावेज था जिसमें यह स्पष्ट अभिव्यक्ति की गई थी। 1950 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में शीतयुद्ध और गहरा हो गया। अमरीका ने दिसम्बर 1951 में यूरोप के पुनर्विकास का कार्यक्रम रखा। इसको मार्शल योजना के नाम से जाना जाता है और यह ट्रूमैन के सिद्धांत का आर्थिक प्रतिपक्ष था क्योंकि ट्रूमैन का सिद्धांत मौलिक तौर पर एक राजनीतिक योजना थी। यद्यपि संयुक्त राज्य अमरीका ने घोषणा की थी कि इस योजना का लक्ष्य केवल युद्ध द्वारा बर्बाद किये गए यूरोप का पुनर्निर्माण करना है, लेकिन सामान्यतः यह साम्यवादियों के बढ़ते प्रभाव से यूरोप को सुरक्षित करने का एक-मात्र प्रयास था, क्योंकि द्वितीय विश्वयुद्ध के तत्काल बाद संपूर्ण यूरोप में साम्यवादी आंदोलनों का एक व्यापक उभार आ गया था। पश्चिमी यूरोप के सभी देश मार्शल योजना के अंतर्गत अमरीकी सहायता को स्वीकार करने के लिए तैयार थे। इसके साथ ही पूर्वी यूरोप के देशों पर यह आरोप लगाया गया कि सोवियत संघ के राजनीतिक तंत्र के कारण उन्होंने इस सहायता को स्वीकार करने से इंकार कर दिया। सोवियत संघ ने तुरन्त कौंसिल फार म्यूचल इकॉनामिक एसीसटेंट की स्थापना कर दी। जिसको मोलोतोब योजना के नाम से जाना गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि यूरोप दो गुटों में विभाजित हो गया और इन गुटों ने उस समय औपचारिक स्वरूप प्राप्त कर लिया जब सुरक्षा संधियों के होते हुए ये दोनों गुट खुल कर सामने आये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संपूर्ण यूरोप में साम्यवादी आंदोलन के उभार के कारण जहाँ सोवियत संघ तथा अमरीका के मध्य तनाव में वृद्धि हुई वहीं अमरीका ने पश्चिमी शक्तियों के साथ सुरक्षात्मक गठबंधन करने का प्रस्ताव किया। इस प्रकार अप्रैल, 1949 में नॉर्थ अटलांटिक संधि पर हस्ताक्षर कर नॉर्ट अटलांटिक ट्रिटी आर्गेनाइजेशन (नाटो) की स्थापना की। इस संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देश थे – संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, फ्रांस, ब्रिटेन, बेल्जियम, नीदरलैंड, लुक्जेम्बर्ग, इटली, पुर्तगाल, डेनमार्क, आइसलैंड तथा नार्वे। आगे चलकर पश्चिमी जर्मनी, यूनान तथा टर्की भी इस संधि में शामिल हो गये। इस संधि के अनुसार, यदि संधि पर हस्ताक्षर करने वाले एक या एक से अधिक यूरोप, उत्तरी अफ्रीका या उत्तरी अमरीका के देशों पर सशस्त्र आक्रमण होता है तब उसको सभी हस्ताक्षर करने वाले देशों के विरुद्ध उपक्रमण माना जायेगा। नाटो के उत्तर में सोवियत संघ ने भी पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों के साथ वार्सा संधि की। इसकी शर्तें एवं धाराएं नाटों के समान ही थी। इन घटनाक्रमों (अर्थात् यूरोप का आर्थिक एवं सैन्य दो गुटों में विभाजन) ने शीतयुद्ध को और तीव्र कर दिया था।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखें।
   अ) जर्मन संकट
   ब) ट्रूमैन सिद्धांत
   स) मार्शल योजना
   द) नाटो

....

....

....

....

....

....

....

....

7.5 सुदूर पूरब में शीतयुद्ध

यद्यपि शीतयुद्ध का उद्‌गम यूरोप में हुआ था किंतु यह यूरोप तक सीमित न रह कर उसके बाहर भी फैल गया था। यूरोप के तुरंत बाद इसका प्रचार-प्रसार सुदूर पूरब में भी हुआ। चीन में साम्यवादी क्रांति 1949 में सफल हुई। हालांकि च्यांग काई शेक ने संयुक्त राज्य अमरीका का पूरा समर्थन प्राप्त किया था लेकिन वह साम्यवादी आक्रमण को रोकने में बिल्कुल असफल रहा। साम्यवादियों ने च्यांग काई शेक की बदनाम राष्ट्रवादी सेनाओं को जबरदस्त शिकस्त दी और च्यांग को चीन की मुख्य भूमि से बाहर खदेड़ दिया। चीन में साम्यवादियों की सफलता की घटना ने अमरीका को झकझोर दिया उसके लिए यह एक भारी आघात था क्योंकि वह संपूर्ण विश्व में साम्यवाद को रोकने की नीति की घोषणा कर चुका था और उसका अनुसरण कर रहा था। अमरीका ने इसी दौरान अपने पश्चिमी सहयोगियों सहित जापान के साथ एक शांति संधि की इससे सोवियत संघ का क्रोध और अधिक बढ़ गया। इस संधि ने जापान को अमरीका पर निर्भर बना दिया और सुदूर पूरब जापान में अमरीका ने मुख्य सैनिक अड्डे को निर्मित करने की स्वीकृति प्रदान करके उसे बनाये रखने के लिए विशाल धनराशि खर्च की। इसी दौरान कोरिया में शीतयुद्ध प्रारंभ हो गया। साम्यवादियों द्वारा समर्थित सेना ने उत्तरी कोरिया में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लिया और साम्यवाद विरोधी तथा पश्चिम समर्थक सेनाओं ने दक्षिण कोरिया पर अधिकार कर लिया। कोरिया की 38वीं समांतर रेखा के साथ तथा कोरिया को चीन से अलग करने वाली बहती नदी तक विभाजन हो गया। सोवियत संघ द्वारा समर्थित चीन भी साम्यवादियों के समर्थन वाले संघर्ष में शामिल हो गया। उत्तरी कोरिया की सेनाओं ने तत्काल आक्रमणकारियों को खदेड़ दिया। आगामी दो वर्षों तक यह युद्ध जारी रहा। जुलाई, 1953 में युद्ध विराम पर हस्ताक्षर हो जाने से युद्ध का अंत तो हो गया लेकिन दोनों महाशक्तियों में कोरिया को लेकर अब तक भी तनाव चला आ रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) सुदूर पूरब में शीतयुद्ध कैसे प्रसारित हुआ। इसकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

7.6 शीतयुद्ध में कमी

1952 में हैरी एस ट्रूमैन के स्थान पर डिवाइट आइजनावर सत्ता में आ गये। ट्रूमैन के सिद्धांत की

अवहेलना करते हुए आइजनावर ने कोरिया युद्ध को समाप्त करने के लिए कई प्रभावकारी कदम उठाये। इसके बाद अप्रैल 1953 में जोजेफ स्टालिन की मृत्यु हो गई। सोवियत संघ में स्टालिन के स्थान पर और अधिक उदारवादी एवं युवा नेतृत्व सत्ता में आया। किसी सीमा तक उन्होंने सोवियत संघ की गृह एवं विदेशी नीतियों का उदारीकरण किया। इसी दौरान सोवियत संघ ने हाइड्रोजन बम का निर्माण कर लिया और यह बम हिरोशिमा पर इस्तेमाल किये गये अणु बम से लगभग 800 गुणा ताकतवर था। हाइड्रोजन बम क्षमता को प्राप्त करने से सोवियत संघ ने संयुक्त राज्य अमरीका की बराबरी प्राप्त कर ली। अब विश्व नेतागण और अधिक भयभीत हुए और युद्ध की अपेक्षा शांति की अधिक आवश्यकता को मानने लगे।

कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि यदि दोनों महाशक्तियों के पास हाइड्रोजन बम न होते तो हो सकता है आगामी वर्षों में दोनों के बीच विध्वंसकारी स्थिति उत्पन्न हो गयी होती। उससे दोनों महाशक्तियों के बीच वास्तविकता में युद्ध शुरू हो सकता था। इस प्रसंग में वे क्यूबा संकट का दृष्टांत देते हैं। 1960 के दशक के प्रारंभ में क्यूबा में साम्यवादी सरकार की स्थापना हो गई थी जिसके कारण एक संकटकालीन स्थिति पैदा हुई। साम्यवादी क्यूबा को डेमोक्लेस की तलवार के रूप में समझा गया जो अमरीका के हृदय में चुभी जा रही थी इसलिए अमरीका इस शीशु साम्यवादी राज्य का दमन करना चाहता था। लेकिन सोवियत संघ ने क्यूबा की रक्षा के लिए मिसाइलों को भेजकर जो तुरन्त कार्यवाही की उससे अमरीका के आक्रामक रूप में कमी आयी। इस संकट ने दोनों महाशक्तियों को युद्ध के कगार पर ला खड़ा किया था, किन्तु रूस के कड़े रुख ने युद्ध को पनपने नहीं दिया। इसलिए क्यूबा के प्रति संयुक्त राज्य अमरीका के दृष्टिकोण में कुछ नम्रता आयी थी। तब सोवियत संघ ने अपने मिसाइलों को वापस बुला लिया। इस प्रकार क्यूबा के संकट को रूस ने शांति से हल करने में अपनी शक्ति का उपयोग किया था।

क्यूबा के संकट के अंत का अनुसरण करते हुए दोनों महाशक्तियों ने नाभिकीय हथियारों के उत्पादन को कम करने के लिए कई समझौते किये। 1963 में जिन देशों के पास पहले से ही नाभिकीय हथियार थे उनको छोड़ कर आगे नाभिकीय हथियारों का उत्पादन न करने के लिए संधि पर हस्ताक्षर किये गये। समुद्र तथा दूसरी जगहों पर नाभिकीय हथियारों के अभिस्थापन तथा जैविक हथियारों के प्रयोग पर 1971 में संधियों के हस्ताक्षर पर रोक लगायी गयी। इस तरह से हम कह सकते हैं कि सामूहिक रूप में इन समझौतों ने शीतयुद्ध के तनावों में कमी की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी दौरान यूरोप ने स्वयं को युद्ध के खतरों से अपने आपको उबार लिया। पुनर्स्थापित यूरोप ने अमरीकी अर्थव्यवस्था से प्रतियोगिता प्रारंभ कर दी। इसी दौरान फ्रांस ने चार्ल्स डीगॉल के नेतृत्व में अमरीका पर निर्भर बने रहने से इंकार कर दिया। जर्मनी भी शीघ्र संभल गया। अखंड अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन को विभाजन का सामना करना पड़ा। चीन तथा सोवियत संघ एक प्रकार के शीतयुद्ध में फंस गये। इन घटनाओं के कारण शीतयुद्ध के तनावों में काफी कमी आयी।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिएं नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) उन कारणों का उल्लेख कीजिए जो शीत युद्ध में कमी करने के लिए उत्तरदायी हैं।

....

....

....

....

....

....

....

7.7 शीतयुद्ध का पुनर्जन्म

1980 के दशक के अंतिम वर्षों में अफगानिस्तान में एक प्रकार की क्रांति हुई। इसके बाद एक साम्यवादी सरकार सत्ता में आ गयी। लेकिन धार्मिक कट्टरवादियों के सहयोग से साम्यवाद विरोधी शक्तियों ने इस नयी सरकार का विरोध किया। परिणामस्वरूप अफगानिस्तान कभी अंत न होने वाले गृहयुद्ध की चपेट में आ गया। इस गृहयुद्ध में अमरीका ने पाकिस्तान के माध्यम से साम्यवाद विरोधी तथा धार्मिक कट्टरतावादी ताकतों का समर्थन किया। साम्यवादी सरकार ने गृहयुद्ध का सामना करने के लिए सोवियत संघ से सैनिक एवं आर्थिक सहायता की मांग की और सोवियत संघ ने तुरन्त दिसम्बर, 1979 में एक बड़ी सशस्त्र सेना सहित अन्य सैनिक एवं आर्थिक सहायता भेजी। अमरीका ने अफगानिस्तान में सोवियत संघ की सेना की उपस्थिति को एक आक्रमण की संज्ञा दी। अमरीका के इस दृष्टिकोण ने सोवियत संघ, अमरीका के पहले से ही चले आ रहे तनावपूर्ण रिश्तों में और तनाव पैदा किया। दोनों महाशक्तियों के बीच इस नए संघर्ष को नये शीतयुद्ध के पुनर्जन्म या प्रारंभ का नाम दिया गया। शीतयुद्ध तब और गहरा हो गया जब 1981 में पोलैण्ड में लोकतंत्र समर्थित आंदोलन का दमन करने के लिए मार्शल कानून लागू किया गया। अमरीका ने इस कार्यवाही को पोलैण्ड में सोवियत संघ का हस्तक्षेप कहा। अमरीका तथा सोवियत संघ के आपसी संबंध उस समय टूटने के कगार पर पहुँच गये जबकि 1983 में सोवियत संघ ने दक्षिण कोरिया के एक नागरिक विमान को यह कहते हुए मार गिराया कि उसका उद्देश्य जासूसी करना था। अमरीका ने इस नागरिक विमान के गिराये जाने की भर्त्सना की और तुरन्त अमरीका ने यूरोप में मध्यम दूरी तक मार करने वाली मिज़ाइलों को लगा दिया। सोवियत संघ ने जवाबी कार्यवाही करते हुए अमरीका के साथ हथियारों पर चल रही वार्ता को तोड़ दिया। इसी दौरान संयुक्त राज्य अमरीका ने 1983 में ग्रेनेडा पर आक्रमण कर दिया, निकारगुआ में लोकप्रिय सेन्डस्टा सरकार के विरुद्ध अप्रत्यक्ष युद्ध छेड़ दिया और स्ट्रेटजिक डिफेन्सिव इनिशियेटिव (एस डी आई) या स्टार युद्धों के विकास के कार्यक्रमों को आगे बढ़ाना शुरू कर दिया। इस तरह विश्व भर में नवीन शीतयुद्ध का फिर से प्रसार हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 6

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) वे कौन-कौन सी घटनाएँ थी जो नए अथवा द्वितीय शीतयुद्ध के प्रांरभ होने के लिए उत्तरदायी हैं।

....

....

....

....

....

....

....

....

7.8 शीतयुद्ध का ढाँचा एवं आयाम

शीतयुद्ध के दौरान विश्व मूल रूप से वैचारिक आधारों पर दो गुटों में विभाजित हो गया था। 1917 में रूसी क्रांति ने विश्व में एक नयी व्यवस्था को जन्म दिया था, पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी शक्तियों ने सोवियत संघ के नए राज्य और शासन के विरुद्ध अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध घोषित कर दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के तुरन्त बाद शीतयुद्ध का जन्म यूरोप तथा विश्व के अन्य

भागों में हुआ जिसका मुख्य उद्देश्य साम्यवादी शक्तियों के प्रसार को रोकना था। साम्यवादी आंदोलन तथा राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष, दोनों ने एक दूसरे का सहयोग करके एशिया, अफ्रीका; लेटिन अमेरीका के देशों में चल रहे पुराने साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध कई क्षेत्रों में मिलकर संघर्ष किया। संयुक्त राज्य अमरीका तथा दूसरे साम्राज्यवादी देशों के लिए रूस के विस्तार को रोकने के लिए असमर्थ नजर आ रहे थे। क्योंकि साम्यवादी आंदोलन को अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन द्वारा समर्थन प्राप्त था इसलिए अमरीका के लिए इस उभरते मुक्ति संघर्ष के उफान का दमन करना मुश्किल हो गया था। इसलिए उन्होंने विश्वभर में साम्यवादी दुनिया की घेरेबंदी एवं गठबंधनों को विकसित करना आरंभ कर दिया था।

लेकिन शीतयुद्ध के लिए साम्यवाद एकमात्र मुद्दा न था। संघर्षरत राष्ट्रों के राष्ट्रीय हितों ने भी शीतयुद्ध को फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। चीन, सोवियत संघ के टकराव में राष्ट्रीय हितों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसमें धर्म भी एक मुद्दा बना था। शिया और सुन्नी के झगड़ों, हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक मुददों ने क्रमशः ईरान-इराक तथा भारत पाकिस्तान के बीच तनाव पैदा करके शीतयुद्ध में वृद्धि की। दक्षिण एशिया में भारत-पाकिस्तान के मध्य शीतयुद्ध के प्रसार में धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र तथा राष्ट्रवाद जैसे मुद्दों का विशेषकर योगदान रहा है। काश्मीर के सवाल को लेकर भारत-पाकिस्तान के मध्य अंतविहीन संघर्ष जारी है। भारत का दावा है कि वह एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है इसलिए इस देश में विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ सद्भावपूर्ण वातावरण में रह सकते हैं। काश्मीर भारतीय धर्मनिरपेक्षता के लिए एक परीक्षण मैदान है।

यह शीतयुद्ध केवल महाशक्तियों तक ही सीमित न था। शीतयुद्ध के बहुत से आयाम थे। एक ओर यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दो महाशक्तियों के मध्य संघर्ष था। दूसरी ओर क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय शक्तियों के बीच शीतयुद्ध लड़ा जा रहा था। 1970 के दशक में, ईरान तथा इराक के बीच शीतयुद्ध चला था, सीमा के प्रश्नों को लेकर चीन तथा सोवियत संघ के बीच शीतयुद्ध शुरू हो गया। काश्मीर के प्रश्न पर भारत तथा पाकिस्तान के बीच शीतयुद्ध चल रहा है। पाकिस्तान ने इस समस्या का सैनिक बल से समाधान करना चाहा था किन्तु उसे असफलता हाथ लगी और मुंह की खानी पड़ी। इस तरह से यह क्षेत्र शीतयुद्ध की चपेट में आ गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यद्यपि द्वितीय विश्वयुद्ध के समापन से लेकर सोवियत संघ के विखंडन तक के समय को शीतयुद्ध का युग कहा गया है, लेकिन यह एक सतत विशेषता नहीं थी और न ही समस्याएँ समान थी। शीतयुद्ध ने विश्व शांति को अनेक चरणों में भंग किया, जो सामयिक रूप से चलती रही है। इस तरह हम कह सकते हैं कि पूरे शीतयुद्ध के दौरान न समस्याएँ ही समान थी और न ही समय और काल समान था। प्रथम जर्मन संकट एक समस्या थी, फिर कोरिया का युद्ध अफगान संकट सामने आया, स्टार युद्ध एक भयानक कार्यक्रम था जो इस दिशा में संयुक्त राज्य अमरीका का निर्णय आदि ने शीतयुद्ध की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने एवं उसको गति देने में विशेषरूप से सहायता की थी।

इस प्रकार शीतयुद्ध का ढाँचा एवं आयाम विभिन्न प्रकार के थे जिनके प्रभाव बहुमुखी थे।

बोध प्रश्न 7

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए **गए** स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) शीतयुद्ध के ढाँचे एवं आयामों की विवेचना कीजिये।

....
....
....
....
....
....

7.9 शीतयुद्ध का अंत

1980 के दशक के अंत में शीतयुद्ध की व्यापकता में कमी आने लगी थी। अमरीका तथा सोवियत संघ सभी प्रकार के नाभिकीय हथियारों को समाप्त करने के लिए सहमत हो गए थे। इंटरमीडिएट रेंज न्यूक्लियर फोर्सेज (आई एन एफ) के नाम से प्रचलित इस संधि को प्रभावकारी बनाने के लिए दोनों ओर से हस्ताक्षर किये गये। यद्यपि इस संधि को पूर्णरूप से लागू न किया जा सका किन्तु इसने सामरिक महत्व के हथियारों को नष्ट करने के लिए 30 प्रतिशत की कटौती की गई। इसी दौरान, इन सब घटनाओं के कारण दुनिया भर के तनाव में भी कमी आई। 1988 में एक दशक पुराना ईरान-इराक युद्ध समाप्त हो गया। गोर्बाचोव के नेतृत्व में सोवियत संघ ने पुरानी ब्रेजनेव व्यवस्था के उलट निर्णय लिए गए। उसने अफ़गानिस्तान से अपनी सेनाओं को वापस बुला लिया। वियतनाम जोकि 1970 के दशक के अंत से गृहयुद्ध का अंत करने के लिए कम्बोडियाई सरकार की सैनिक मदद कर रहा था, उसने भी अपनी सेनाओं को कम्बोडिया से वापस बुला लिया। क्यूबा ने अपनी सेनाओं को अंगोला में भेजा था, उन्हें वापस बुला लिया। दक्षिण अफ्रीका को नाम्बिया की स्वतंत्रता का समझौता करने के लिए बाध्य किया गया। ये सभी घटनाएँ विश्व में शांति स्थापित करने के लिए सकारात्मक निर्णय लिए गए थे।

लेकिन 20वीं सदी के 9वें दशक के अंत से तथा 10वें दशक के प्रांरभ से स्थिति में परिवर्तन आना शुरू हुआ। मध्य अमरीका में सेण्डिनिस्ता सरकार का पतन हो गया। 1980 के दशक के मध्य में पूर्वी यूरोप तथा सोवियत संघ जिस आर्थिक संकट की चपेट में आये उसका समाधान राजनीतिक उदारीकरण एवं बाज़ार अर्थव्यवस्था की नीतियों को अपनाकर खोजने की कोशिश की गयी। सोवियत संघ में पेरीस्ट्रोयिका तथा ग्लासनोस्ट ने गोर्बाचोव की नीतियों को लागू किया। सोवियत संघ की गृह एवं विदेश, दोनों नीतियों में क्रांतिकारी बदलाव आया। इन सब नीतियों के परिणामस्वरूप पूर्वी यूरोप में एक-एक कर साम्यवादी सरकारों का पतन होने लगा। पूर्वी जर्मनी के राज्य का अंत हो गया तथा संपूर्ण जर्मनी का एकीकरण हो गया। बदनाम बर्लिन दीवार को गिरा दिया गया। और इस तरह से सोवियत संघ का बिखराव हो गया। एक महाशक्ति के पतन के साथ शीतयुद्ध का अन्त हुआ। सोवियत संघ के बिखराव के साथ ही रूस ने अपने महाशक्ति के स्तर को खो दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शीतयुद्ध के खंडहरों पर बनी संयुक्त राज्य अमरीका की बेलगाम सर्वोच्चता स्थापित हो चुकी है। अब विश्व एक ध्रुवीय बन चुका है। शीत युद्ध किसी न किसी रूप में चार दशकों तक जारी रहा, लेकिन विश्व दो महाशक्तियों के प्रत्यक्ष विश्वव्यापी संघर्ष से मुक्त बना रहा परन्तु दीर्घकालिक गृहयुद्धों या क्षेत्रीय युद्धों को रोकने में ये असफल हो गए। शीतयुद्ध के दौरान अधिकतर स्थानीय क्षेत्र या गृहयुद्ध राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के लिए थे। शीतयुद्ध काल में विश्व का गैर-औपनिवेशीकरण हुआ। अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमरीका के दो देश सदियों से यूरोपीय औपनिवेशिक शासन से पीड़ित थे, शीतयुद्ध के अंत ने स्थानीय या गृहयुद्धों को समाप्त नहीं किया। लेकिन अब स्थानीय या गृहयुद्ध राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन नहीं रह गये हैं। वे अधिकतर ऐसे भ्रातघातक युद्ध हैं जो संकीर्ण उपलब्धियों के लिए लड़े जा रहे हैं।

बोध प्रश्न 8

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) शीतयुद्ध के कारणों का विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

2) उत्तर शीतयुद्ध के दौरान विश्व की क्या विशेषताएँ हैं।

....

....

....

....

7.10 सारांश

शीतयुद्ध का अर्थ है गैर-सैनिक अर्थात् इसमें सेनाएँ आमने-सामने होकर युद्ध नहीं करती हैं बल्कि चोरी छुपे कूट चालों से किसी, देश की शांति को भंग किया जाता है। यद्यपि इसका उद्गम प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हुआ था (समाजवादी व्यवस्था के जन्म के साथ) किन्तु इसकी तीव्रता को द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के समय में महसूस किया गया। 1940 के दशक के अंत में शीतयुद्ध की उत्पत्ति यूरोप में हुई। लेकिन आगामी दशकों में विश्व के अन्य भागों में भी इसका प्रसार हुआ। यद्यपि विचारधारा इसका मुख्य विषय बनी रही लेकिन यदा-कदा गैर-वैचारिक मुद्दे भी छाये रहे। शीतयुद्ध का प्रारंभ सोवियत संघ की स्थापना के साथ हुआ था तथा उसका अंत भी सोवियत संघ के विखंडन के साथ ही हुआ है। शीतयुद्ध के दौरान विश्व ने उपनिवेशवाद के विखंडन की प्रक्रिया को अनुभव किया। विश्वभर में एक महाशक्ति के प्रभुत्व ने शीतयुद्ध का स्थान ग्रहण किया और कुछ क्षेत्रों का प्रांतों के रूप में उद्भव हुआ। उत्तर शीतयुद्ध काल में संकीर्ण एवं जातीय प्रश्नों को लेकर स्थानीय या गृहयुद्ध हो रहे हैं जबकि शीतयुद्ध के दौरान इस प्रकार के युद्ध उपनिवेशवाद के विखण्डन तथा दलित जनता की मुक्ति जैसे व्यापक मुद्दों को लेकर लड़े गये थे।

DIKSHANT IAS

7.11 शब्दावली

Call us @7428092240

मित्र राष्ट्र : वे राष्ट्र जो धुरी राष्ट्रों से संघर्ष करने के लिए एक दूसरे के समीप आये। बड़े मित्र राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरीका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, फ्रांस तथा चीन थे। इस गुट में पचास देश थे।

धुरी राष्ट्र : फासीवादी देशों – जर्मनी, इटली तथा जापान ने एक गुट का गठन किया जिसमें कई अन्य छोटे देश भी शामिल हुए।

ग्लासनोस्ट : मुक्त राजनीति तथा बहु–दलीय लोकतंत्र। यह एक रूसी शब्द है।

पेरीस्ट्रोयिका : यह एक रूसी शब्द है जो बाज़ार अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। इसके द्वारा रूसी अर्थव्यवस्था में बाज़ार की शक्तियों को और अधिक भूमिका प्रदान की जिसको योजनाबद्ध या नियंत्रित अर्थव्यवस्था कहा जाता था।

स्टार युद्ध : नाभिकीय युद्ध को रोकने की यह एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा तकनीकी ज्ञान तथा साधनों को उपलब्ध करा कर अपने लक्ष्य पर गिरने से पूर्व आते हुए मिसाइलों को हवा में ही रोक देना है।

7.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एल एस स्टाब्रियनस, 1983, **एग्लोबल हिस्ट्री, दि ह्यूमैन हैरीटेज,** न्यूजर्सी।

जैम्स ली रे, 1992, **ग्लोबल पोलिटिक्स,** न्यू जर्सी।

डी एफ फलेमिंग, 1961, **दि कोल्ड वार एण्ड इटस आरिजन,** 1917-1960, 2 जिल्द, डबलडे।

डब्लयू ला फेबर, 1968, **अमरीका रसिया एण्ड दी कोल्डवार**, जौन विली।

7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

यहाँ पर केवल कुछ प्रसंगों की पहचान की गयी है। विस्तृत जानकारी के लिए विद्यार्थी इस इकाई तथा सुझायी गयी पुस्तकों का अध्ययन करें।

बोध प्रश्न 1

1) शीत युद्ध का अभिप्राय है, गैर-सैनिक संघर्ष। सर्वोच्चता के लिये आक्रामक प्रतियोगिता।

बोध प्रश्न 2

1) 1917 की रूसी क्रांति

   द्वितीय विश्वयुद्ध

   जर्मनी संकट

   यूनान का गृहयुद्ध

   सोवियत संघ के नेतृत्व में समाजवादी गुट का उदय

   संयुक्त राज्य अमरीका के नेतृत्व में नव उपनिवेशवाद का उदय।

बोध प्रश्न 3

1) क) महाशक्तियों द्वारा जर्मनी पर नियंत्रण करने के लिए संघर्ष।

   ख) साम्यवाद विरोधी आंदोलनों को संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा समर्थन देने की प्रतिज्ञा।

   ग) साम्यवादी शासन से दूरी बनाये रखने के लिए देशों की आर्थिक सहायता करना।

   घ) साम्यवादी शक्तियों को रोकने के लिए आक्रामक रक्षात्मक संगठन बनाना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

1) चीन पर साम्यवादियों का अधिकार होना।

   जापान में अमरीकी अड्डा।

   कोरिया युद्ध।

बोध प्रश्न 5

1) संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ में नया नेतृत्व। हाइड्रोजन बम में सोवियत संघ की सफलता। यूरोप का पुनरुत्थान। एकीकृत साम्यवादी बाज़ार में विघटन।

बोध प्रश्न 6

1) अफगान संकट, कोरिया के नागरिक विमान को मार गिराना, निकारागुआ में अप्रत्यक्ष अमरीका द्वारा युद्ध, अमरीका का स्टार युद्ध कार्यक्रम।

बोध प्रश्न 7

1) विचारधारा, समय-समय पर शीतयुद्ध,

   अंतर्राष्ट्रीय शीतयुद्ध

   क्षेत्रीय शीतयुद्ध

बोध प्रश्न 8

1) समाजवादी देशों में आर्थिक संकट, सोवियत संघ में उदारीकरण, सोवियत संघ का विखंडन।

2) एकमात्र शक्ति (संयुक्त राज्य अमरीका) की सर्वोच्चता, संकीर्ण एवं जातीय प्रश्नों पर स्थानीय एवं गृहयुद्ध।

इकाई 8 गुट निरपेक्षता

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्रसंग एवं आवश्यकताएँ

8.3 गुट निरपेक्षता की अवधारणा

8.4 गुट निरपेक्ष आंदोलन का विकास

8.5 गुट निरपेक्ष आंदोलन के उद्देश्य एवं उपलब्धियाँ

8.6 आज का गुट निरपेक्ष आंदोलन

8.6.1 बहस

8.6.2 गुट निरपेक्ष आंदोलन की प्रासंगिकता

8.7 सारांश

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप :

- गुट निरपेक्ष आंदोलन की अवधारणा तथा जिन कारणों से इसका उद्भव हुआ उनका विश्लेषण कर सकेंगे;
- गुट निरपेक्ष आंदोलन के विकास एवं कार्यशैली को जान सकेंगे; और
- उत्तर सोवियत संघ के साथ-साथ उत्तरशीत युद्ध के विश्व में गुट निरपेक्षता एवं गुट निरपेक्ष आंदोलन दोनों की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

"गुट निरपेक्षता" शब्द का प्रयोग उन राष्ट्रों की विदेश नीतियों का विवरण करने के लिए किया जाता है जिन्होंने दोनों महाशक्तियों अर्थात् संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ के नेतृत्व में बने किसी भी गुट के साथ स्वयं को संबंधित करने से इंकार कर दिया अपितु उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में स्वतंत्र रूप से कार्यवाही करने के मार्ग का चुनाव किया है। गुट निरपेक्ष आंदोलन का उद्भव उस समय हुआ जब व्यक्तिगत गुटनिरपेक्ष राष्ट्र एक दूसरे के साथ आये और अपने प्रयासों को एक सामूहिक मंच पर समन्वित किया। इसने एक देश के दूसरे देश के साथ संबंधों की प्रकृति को परिवर्तित किया और नवीन स्वतंत्र विकसित देशों को अंतर्राष्ट्रीय मामलों में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने के लिए सक्षम बनाया।

8.2 प्रसंग एवं आवश्यकताएं

एक समय में दो विश्व व्यापी परिवर्तनों के प्रसंग में गुट निरपेक्षता का उद्गम हुआ। ये दोनों परिवर्तन थे – एशिया तथा अफ्रीका देशों में उपनिवेशवाद के विरुद्ध उभरते नव जन आंदोलन औ

द्विध्रुवीय विश्व राजनीति अर्थात् दो महाशक्तियों–संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ के इर्दगिर्द विश्व राजनीति।

अफ्रीका तथा एशिया के राष्ट्रों में पुनर्जागरण ने औपनिवैशिक शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करने की अभिलाषा को प्रज्वलित किया और अपने भविष्य का स्वयं निर्धारण करने के लिए एक दृढ़ निश्चय को फूंका। इसने विश्व मामलों में सक्रिय एवं स्वतंत्र रूप से शामिल होने के एक विशिष्ट विचार को जन्म दिया और यह विचार राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय हितों के प्रति व्यक्तिगत देश की अपनी स्वयं की अवधारणाओं पर आधारित था। इस प्रकार नवोदित राष्ट्रों में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर एक स्वतंत्र दृष्टिकोण विकसित हुआ।

एशिया और अफ्रीका के देशों में उपनिवेशवाद के विरुद्ध नव जन आंदोलन तब उभरे जबकि विश्व दो विरोधी शत्रुतापूर्ण खेमों में विभाजित था। प्रत्येक खेमा या गुट दो विभिन्न विचारधाराओं तथा भिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं सहित दो भिन्न प्रकार की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता था। एक गुट का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमरीका तथा दूसरे गुट का भूतपूर्व सोवियत संघ। प्रत्येक गुट दूसरे राष्ट्रों के साथ सैनिक गठबंधनों के माध्यम से प्रभाव के और अधिक क्षेत्रों के लिए प्रेरित था। इस प्रसंग में नवोदित राष्ट्रों ने जो स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाया उसको गुट निरपेक्षता के नाम से जाना गया क्योंकि उन्होंने स्वयं को किसी गुट के साथ जोड़ने से इंकार कर दिया था।

गुट निरपेक्ष दृष्टिकोण की प्रेरणा कई स्रोतों से बंधी थी। इन राज्यों का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य अपना आर्थिक विकास करना था जिसके लिए उनको आर्थिक सहायता के साथ बढ़ते व्यापार जैसे संसाधनों की आवश्यकता थी। गुट निरपेक्षता के द्वारा वे सभी देशों के साथ आर्थिक संबंधों को बनाये रखने में सक्षम रह सकते थे। दूसरी आवश्यकता शांति को बनाये रखने की जरूरत थी जिसके बगैर वास्तविक विकास नहीं हो सकता था। तीसरा स्रोत था कि शीतयुद्ध राजनीति से उत्पन्न विश्वव्यापी खतरे की अवधारणाओं से सुरक्षित रखने की उनकी आवश्यकता। दूसरी ऐसी घरेलू आवश्यकताएँ विद्यमान थीं जो एक देश से दूसरे देश में भिन्न थी। उदाहरण के रूप में, भारत की आंतरिक राजनीतिक विविधताओं, इसकी राजनीतिक प्रक्रियाओं, इसकी ऐतिहासिक भूमिका एवं भोगौलिक स्थिति ने गुट निरपेक्षता के उद्‌गम के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.3 गुट निरपेक्षता की अवधारणा

गुट निरपेक्षता का अभिप्राय है कि शीतयुद्ध के दौर में दो महाशक्तियों के विद्यमान दो मुख्य विरोधी गुटों में से किसी एक में भी कुछ देशों द्वारा सम्मिलित होने से इंकार करना। गुट निरपेक्षता को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है कि किसी भी देश के साथ सैनिक गठबंधन में शामिल न होना फिर चाहे यह संयुक्त राज्य अमरीका के नेतृत्व वाला पश्चिमी देशों का गुट हो या सोवियत संघ के नेतृत्व में साम्यवादी गुट। विदेश नीति में यह एक स्वतंत्र निश्चित घोषणा है।

कुछ पश्चिमी विद्वान गुट निरपेक्षता को अलगाववाद, अनिश्चितता, तटस्थता, तथा संबंद्धविहीनता के साथ रखकर लगातार भ्रांति उत्पन्न करते रहे हैं। गुट निरपेक्षता तटस्थता नहीं है। गुट निरपेक्षत्ता एक राजनीतिक अवधारणा है जबकि तटस्थता एक वैधानिक। तटस्थता की भांति गुट निरपेक्षता देश के संविधान में लिखित एक कानून नहीं है। तटस्थता राज्य की नीति की एक स्थायी विशेषता होती है, जबकि गुट निरपेक्षता नहीं। तटस्थता की भांति गुट निरपेक्षता नकारात्मक बल्कि एक सकारात्मक अवधारणा है। यह समर्थक है (क) विश्व मामलों में एक सक्रिय भूमिका की (ख) सभी देशों के साथ मित्रता एवं सहयोग की। यह प्रत्येक प्रश्न के गुणों तथा राष्ट्रीय हित की आवश्यकताओं के आधार पर एक स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाने का समर्थन करती है। यह किसी भी विचारधारा के विरुद्ध निर्देशित नहीं होती अपितु वैचारिक मतभेदों के बावजूद विश्व में शांति एवं मित्रता को प्रोत्साहित करती है।

गुट निरपेक्ष राष्ट्रों ने लगातार शीतयुद्ध के टकरावों की राजनीति का लगातार विरोध किया। उन्होंने सुस्पष्ट दो सत्तात्मक केन्द्रों के विश्व में शांति तथा शांति क्षेत्रों को बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। गुट निरपेक्षता उस अवसरवादिता पर आधारित न थी जो एक शक्ति द्वारा दूसरी शक्ति के विरुद्ध किये गये कार्यों से लाभ उठाने की कोशिश करते।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) गुट निरपेक्षता के विकास के लिए किस प्रकार की ऐतिहासिक स्थिति उत्तरदायी थी ?

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में कौन-सा बयान सत्य है या असत्य है। (√) का या (×) का चिन्ह लगाएं।

क) नवीन स्वतंत्र राष्ट्रों ने गुट निरपेक्षता के मार्ग का अनुसरण इसलिए किया क्योंकि विश्व युद्ध के परिणामों, गठबंधनों के निर्माण तथा शस्त्रों के उत्पादन ने इन राज्यों की पिछड़ी अर्थव्यवस्था के लिए नव औपनिवैशिक नियंत्रण के साथ खतरा उत्पन्न किया। ( )

ख) गुट निरपेक्षता का दृष्टिकोण प्रवृत्ति से ही साम्राज्यवाद विरोधी है क्योकि यह बाहर से किसी भी देश को प्रभुत्व या नियंत्रण करने की अनुमति नहीं देता। ( )

ग) युगोस्लोवाकिया ने गुट निरपेक्षता के मार्ग का चुनाव इसलिए नहीं किया क्योंकि उसने सोवियत संघ द्वारा सर्वान्मुखी आधिपत्य की जाने वाली भूमिका से कोई खतरा महसूस किया था। ( )

DIKSHANT IAS

घ) गुट निरपेक्षता का अभिप्राय दो शक्ति गुटों से बराबर की दूरी बनाये रखना है अपितु विश्व राजनीति में एक ऐसा दृष्टिकोण है जो स्वतंत्र नीति अपनाने का दावा करता है। ( )

Call us @7428092240

ड.) तटस्थता गुट निरपेक्षता का दूसरा नाम हो सकता है। ( )

च) गुट निरपेक्ष गुट को तीसरा गुट नहीं कहा जा सकता। ( )

8.4 गुट निरपेक्ष आंदोलन का विकास

गुट निरपेक्ष आंदोलन का विकास व्यक्तिगत देशों द्वारा महाशक्ति तथा नव साम्राज्यवादीप्रभुत्व के विरुद्ध सामूहिक मोरचा बनाने के सतत प्रयासों से हुआ। भारत से जवाहरलाल नेहरू, मिस्र से गेमल अबदल नासर तथा युगोस्लोवाकिया से जोसिप ब्रॉज टीटो ने इस आंदोलन को संगठित करने का पहला निर्णय किया। इन प्रथम निर्माताओं में नेहरू को विशेष रूप से याद किया जायेगा। नव-साम्राज्यवाद के उद्‌भव के विषय में उसकी प्रारंभिक अवधारणा तथा परिणामी असुरक्षा जिसका सामना छोटे देशों द्वारा किया जाना था, ने इस आंदोलन के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। नेहरू का मानना था कि एशिया तथा अफ्रीका के देशों को नव–साम्राज्यवाद से संघर्ष करने के लिए एकबद्धता के गठबंधन का निर्माण करना चाहिए। प्रथम कदम के रूप में नेहरू ने 1940 के दशक में एशियाई मोर्चे को संगठित करने का प्रयास किया। 1947 में उन्होंने नई दिल्ली में एशियाई संबंधों पर एक सम्मेलन बुलाया। 1950 के दशक जब अफ्रीकी देशों ने उपनिवेशवादी शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करनी प्रारंभ कर दी तब इस मोर्चे के आधार का विस्तार करना आवश्यक हो गया। इसलिए नेहरू ने इंण्डोनेशिया, बर्मा, श्रीलंका तथा पाकिस्तान के दूसरे नेताओं के साथ अप्रैल, 1955 में इण्डोनेशिया के बाण्डुंग में अफ्रीका–एशिया का सम्मेलन आयोजित किया। इन दोनों सम्मेलनों ने उस राजनीतिक एवं आर्थिक असुरक्षा पर जोर दिया जो उस समय के नये स्वतंत्र राज्यों के लिए खतरा उत्पन्न कर रही थी। लेकिन बाण्डुंग सम्मेलन एकरूप एशियाई एवं अफ्रीकी मोर्चे का गठन करने में असफल रहा क्योंकि इनमें से बहुत से देश अपने विदेशी संबंधों को साम्राज्यवाद विरोधी झण्डे के अधीन संचालित करना नहीं चाहते थे। वे पहले से ही बहुत से पश्चिमी सैनिक गठबंधनों में शामिल हो चुके थे या फिर वे अपने हितों की पहचान पश्चिमी

शक्तियों के साथ घनिष्ठता से करने लगे थे। बाण्डुंग सम्मेलन में स्वयं ही दोनों गुटों के बीच मतभेद स्पष्ट तौर पर दिखायी पड़ने लगे। इस प्रकार उत्तर बाण्डुंग वर्षों में यह आवश्यक हो गया कि गुट निरपेक्ष देश पहचान को सिद्धांतों के आधार पर बनाये न कि क्षेत्र के आधार पर। इन देशों ने युगोस्लोवाकिया भी अंतर्राष्ट्रीय मामलों में एक पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील था। बाद के गुट निरपेक्ष सम्मेलनों का प्रारंभिक स्वरूप जून, 1956 में युगोस्लोवाकिया के ब्रियोनी में अस्तित्व में आया जहाँ पर टिटो ने नासार तथा नेहरू के साथ ऐसे वास्तविक गठबंधन के बनाने की संभावनाओं पर परामर्श किया जो उनको एकरूप कर सके। इन प्रयासों का अंततः परिणाम 1961 में बेलग्रेड में गुट निरपेक्ष सम्मेलन को बुलाने के रूप में हुआ। गुट निरपेक्ष आंदोलन का सदस्य बनने हेतु देशों के लिए पांच आधारों को निश्चित एवं लागू किया गया। जो देश इन पांच शर्तों को पूरा करते थे केवल उन्हीं को सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया। शर्तें ये थीं:

अ) विशेषकर शीतयुद्ध के प्रसंग में एक स्वतंत्र विदेश नीति।

ब) उपनिवेशवाद का इसके सभी स्वरूपों एवं अभिव्यक्तियों में विरोध।

स) किसी भी सैनिक गुट का सदस्य नहीं होना चाहिए।

द) दोनों महाशक्तियों में से किसी भी एक के साथ द्विपक्षीय संधि नहीं करनी चाहिए।

इ) किसी एक महाशक्ति को अपने क्षेत्र का सैनिक अड्डे के रूप में प्रयोग न करने दे। इन सभी शर्तों का पालन करने वाला देश बेलग्रेड शिक्षा सम्मेलन में भाग लेने योग्य होगा।

गुट निरपेक्ष आंदोलन के सम्मेलनों ने समय-समय पर बहुत से प्रश्नों एवं समस्याओं पर विचार विमर्श किया। प्रथम शिखर सम्मेलन (बेलग्रेड 1961) में जिन 25 देशों ने भाग लिया उन्होंने बर्लिन की स्थिति, संयुक्त राष्ट्र में जनवादी गणतांत्रिक चीन के प्रतिनिधित्व के प्रश्न, कांग्रों संकट, विश्व शांति के लिए साम्राज्यवाद एक सक्षम खतरा और रंगभेद जैसे प्रश्नों पर विचार विमर्श किया। सम्मेलन ने शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति में पूर्ण विश्वास व्यक्त किया। भारत का प्रतिनिधित्व जवाहरलाल नेहरू ने किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

काहिरा सम्मेलन 1964 में हुआ जिसमें 46 देशों ने भाग लिया। भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व लाल बहादुर शास्त्री द्वारा किया गया। इस सम्मेलन ने निरस्त्रीकरण की तुरन्त आवश्यकता पर बल दिया। सभी अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों के शांतिपूर्ण हल की वकालत की, सदस्य देशों की सरकारों से रोडेशिया में गोरों की अल्पसंख्यक सरकार को मान्यता न देने की विनती की तथा रंगभेद एवं उपनिवेशवाद के विरुद्ध गुट निरपेक्ष आंदोलन के पूर्व दृष्टिकोण को दोहराया। संयुक्त राष्ट्र में जनवादी चीन के प्रतिनिधित्व की माँग को भी दोहराया गया।

तीसरा महासम्मेलन 1970 में लुसाका में हुआ जिसमें 52 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन ने वियतनाम से विदेशी सेनाओं की वापसी की माँग की और सदस्य देशों से इज़राइल के बहिष्कार की भी विनती की गय़ी क्योंकि पड़ोसी अरब देशों के कुछ क्षेत्रों पर उसने अधिकार किया हुआ था। इसने सदस्य राष्ट्रों की सरकारों से रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष को और तेज करने की प्रार्थना की और दक्षिण अफ्रीका के वायुयानों को अपने क्षेत्र से गुजरने की अनुमति इस संघर्ष के भाग के रूप में प्रदान न करने की भी विनती की। इस शिखर सम्मेलन ने आर्थिक सहयोग को बढ़ाने का भी प्रस्ताव पारित किया। इसने आंदोलन के स्थायी सचिवालय की स्थापना के प्रस्ताव को मानने से इंकार कर दिया। भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा किया गया था।

अलजियर्स में होने वाले अगले शिखर सम्मेलन तक (यह सम्मेलन 1973 में हुआ और 75 देशों ने भाग लिया) शीतयुद्ध राजनीति में तनावशैथिल्य के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे थे। इस सम्मेलन ने अंतर्राष्ट्रीय तनाव में कमी का स्वागत किया, तनावशैथिल्य का समर्थन किया, इसने साम्राज्यवाद तथा रंगभेद के विरुद्ध गुट निरपेक्ष आंदोलन के ज्ञात दृष्टिकोण को दोहराया और सदस्य देशों के बीच व्यापार, आर्थिक तथा तकनीकी सहयोग को प्रोत्साहित करने के प्रस्ताव को अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन की माँग को क्योंकि यह समानता तथा न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करती है।

1976 में होने वाले कोलम्बो शिखर सम्मेलन में 85 देशों ने भाग लिया। संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने 1974 में नयी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के लिये आह्वान किया था। कोलम्बो सम्मेलन में गुट

निरपेक्ष आंदोलन ने न केवल इस माँग का हार्दिक समर्थन किया अपितु विश्व वित्तीय व्यवस्था एवं स्वरूप में मौलिक परिवर्तन की माँग की। यह भी प्रस्ताव किया कि हिन्द महासागर को एक शांति क्षेत्र घाषित किया जाये।

हवाना में होने वाले छठे शिखर सम्मेलन (1979) के समय भारत में काम चलाऊ सरकार कार्य कर रही थी। इसलिए उस समय के प्रधान मंत्री श्री चरण सिंह ने भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए उस समय के विदेश मंत्री को भेजा। भाग लेने वाले देशों की संख्या 92 तक पहुँच गयी। पाकिस्तान को गुट निरपेक्ष आंदोलन का सदस्य बना लिया गया किन्तु बर्मा ने इसे छोड़ दिया। क्यूबा के राष्ट्रपति फीडल कास्त्रों ने उस समय के सोवियत संघ को आंदोलन का स्वाभाविक मित्र बताया। शिखर सम्मेलन ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, नव उपनिवेशवाद तथा रंगभेद के विरुद्ध भली भांति ज्ञात दृष्टिकोण का अनुमोदन किया। सम्मेलन ने प्रस्ताव पारित कर दक्षिण अफ्रीका के स्वतंत्रता संघर्ष का समर्थन किया और इस देश को तेल आपूर्ति रोकने की माँग की। मिस्र इज़राइल के साथ अपने मतभेदों को दूरकर चुका था इसलिए कुछ इज़राइल विरोधी देशों ने मिस्र को निकालने की माँग की। सम्मेलन ने इस प्रस्ताव मात्र पर बहस की।

1982 में बगदाद में होने वाला सातवाँ शिखर सम्मेलन ईरान-इराक युद्ध के कारण न हो सका। यह सम्मेलन 1983 में नई दिल्ली में हुआ और इसमें 101 देशों ने इसमें भाग लिया। नई दिल्ली घोषणा ने बहुत से प्रश्नों पर गुट निरपेक्ष आंदोलन के भली भांति ज्ञात दृष्टिकोण का फिर एक बार अनुमोदन किया। इसने ईरान–इराक युद्ध के शीघ्र अंत तथा नामीबिया की स्वतंत्रता की आशा की। लेकिन यह सम्मेलन अफगानिस्तान में सोवियत संघ के हस्तेक्षप पर कोई निर्णय करने में असफल रहा। सोवियत आधिपत्य का वियतनाम, दक्षिणी यमन, सीरिया और इथोपिया ने खुले तौर पर समर्थन किया। सिंगापुर, नेपाल, पाकिस्तान, मिस्र तथा जैरे ने इसका कड़ा विरोध किया।

1986 के हरारे सम्मेलन ने हरारे घोषणा को पारित किया और इस घोषणा में इसके सदस्यों के बीच और अधिक आर्थिक सहयोग तथा दक्षिण में अधिक तेज गति से विकास के लिए उत्तर दक्षिण सहयोग पर बल दिया गया। इस सम्मेलन ने समाचारों के वितरण पर पश्चिमी एकाधिकार को समाप्त करने के लिए नयी अंतर्राष्ट्रीय सूचना तथा सम्पर्क व्यवस्था के लिए आहवान किया। यह समझते हुए कि दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद शासक उन अग्रिम पंक्ति के देशों के विरुद्ध जवाबी कार्यवाही करें जो उसके विरुद्ध प्रतिबंधों को लागू कर रहे थे, गुट निरपेक्ष आंदोलन ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंगभेद के विरुद्ध प्रतिरोधात्मक कार्यवाही करने के लिए एक कोष की स्थापना का निर्णय किया। इसको संक्षेप में अफ्रीका फण्ड (Action for resistance against imperialism, colonialism and aparglied) कहा गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1989 में आयोजित होने वाला बेलग्रेड शिखर सम्मेलन युगोस्लोवाकिया के टूटने से पूर्व का अंतिम सम्मेलन और जिस समय यह हुआ तब शीतयुद्ध का अंत निकट था। इसने अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, तस्करी एवं नशीली दवाइयों के अवैध व्यापार के विरुद्ध आह्वान किया। आत्मनिर्णय के सिद्धांत को दक्षिण अफ्रीका तथा नामीबिया में जारी उसके शासन के प्रसंग में पुनः दोहराया गया।

1992 में जकार्ता में होने वाला दसवाँ सम्मेलन शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद की गुट निरपेक्ष आंदोलन की प्रथम बैठक थी। सोवियत संघ के पतन तथा शीतयुद्ध के अंत के बाद इस शिखर सम्मेलन को यह समझाने में बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा कि नव उपनिवेशवाद तथा महाशक्ति के सभी प्रकार के हस्तक्षेप के विरूद्ध विकसित देशों के एक मंच के रूप में संघर्ष करने के लिए आंदोलन की उपयोगिता है। तनाव मुक्त विश्व में अपने सदस्य देशों का तीव्र गति से विकास करने के लिए एक साधन के रूप में गुट निरपेक्ष आंदोलन को बनाये रखना तथा उसकी पहचान को और मजबूत करना एक मुख्य प्रश्न था।

गुट निरपेक्ष आंदोलन का 11वाँ सम्मेलन अक्टूबर, 1995 में कार्टाजेना (कोलोम्बिया) में आयोजित किया गया। भारत का प्रतिनिधित्व एक उच्चस्तरीय प्रतिनिधि मंडल द्वारा किया गया जिसका नेतृत्व भारतीय प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हाराव ने किया। शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात निरपेक्ष आंदोलन के इस सम्मेलन ने गुट रहित विश्व की परिवर्तित परिस्थितियों में अपनी उपयुक्त भूमिका तलाश करने की कोशिश की। विदेश मंत्रियों के स्तर की बैठक में पाकिस्तान ने गुट निरपेक्ष आंदोलन पर एक ऐसी प्रणाली को विकसित करने के लिए दबाव डालने का प्रयास किया जिसके अंतर्गत आंदोलन द्वारा द्विपक्षीय झगड़ों का समाधान किया जा सके। गुट निरपेक्ष आंदोलन की कार्यसूची में काश्मीर को शामिल कराने के लिए यह एक चालाकीपूर्ण तरीका था। लेकिन पाकिस्तान अपने इन इरादों में सफल न हो सका। गुट निरपेक्ष आंदोलन के 122 सदस्यों के इस शिखर सम्मेलन द्वारा सामान्य एवं

सवव्यापी निरस्त्रीकरण करने का आह्वान कर एक महत्वपूर्ण निर्णय किया गया। भारत ने अणु हथियारों पर नाभिकीय शक्ति देशों के एकाधिकार के विरुद्ध अपने निर्जन संघर्ष में इस समय आश्चर्यजनक विजय प्राप्त की जबकि गुट निरपेक्ष आंदोलन ने प्रस्ताव पारित किया कि व्यापक विध्वंस के सभी हथियारों की पूर्ण समाप्ति के प्रस्ताव को वह संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रस्तुत करेगा। भारत द्वारा स्थिति का अनुमोदन किये जाने से भेदभावपूर्ण एन पी टी (non proliferation treaty) पर हस्ताक्षर करने के विरुद्ध भारत के संसुगत दृष्टिकोण को प्रोत्साहन मिला। गुट निरपेक्ष आंदोलन द्वारा एन पी टी पर भारत की स्थिति का अनुमोदन करने का महत्व इसलिए भी था क्योंकि गुट निरपेक्ष आंदोलन के 113 सदस्यों में से 111 पहले ही एन पी टी पर हस्ताक्षर कर चुके थे। 1995 में पहले ही वे एन पी टी के अनिश्चित प्रसार के लिए न्यूयार्क में मत दे चुके थे। पाकिस्तान लगातार एक क्षेत्रीय नाभिकीय व्यवस्था के पक्ष में रहा और उसे एन पी टी की मतभेदवादी प्रकृति के प्रति भारतीय चिंता से कोई सरोकार न था। अंतिम विज्ञप्ति में पाकिस्तान के विचारों को भी स्थान दिया गया। इस विज्ञप्ति में सदस्य देशों से उन स्थानों के लिए नाभिकीय हथियारमुक्त क्षेत्रों को बनाने के समझौते करने का आग्रह किया गया। जहाँ पर वे विद्यमान न थे। इस प्रकार के क्षेत्रों का निर्माण विचाराधीन होने के साथ–साथ इज़राइल से नाभिकीय हथियारों के परित्याग एन पी टी में शामिल होने और अंतर्राष्ट्रीय अणु ऊर्जा सुरक्षा उपायों के पूर्ण नियंत्रण के अंतर्गत अपने सभी नाभिकीय प्रतिष्ठानों को तुरन्त बन्द करने के लिए कहा गया। इस शिखर सम्मेलन ने नाभिकीय शक्ति से संबंधित उपकरण, सूचना, सामग्री एवं सुविधाओं पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने के लिए कहा।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) जवाहरलाल नेहरू ने किस प्रकार से गुट निरपेक्ष आंदोलन के विकास में योगदान किया ?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

....

8.5 गुट निरपेक्ष आंदोलन के उद्देश्य एवं उपलब्धियाँ

गुट निरपेक्ष आंदोलन का मुख्य उद्देश्य उपनिवेशवाद का अंत करना था। गुट निरपेक्ष आंदोलन के सम्मेलनों ने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों तथा संगठनों का समर्थन किया और इन आंदोलनों का नेतृत्व करने वालों को इन सम्मेलनों में पूर्ण सदस्यता का दर्ज़ा प्रदान किया। एशिया तथा अफ्रीका में औपनिवेशिक विखंडन की प्रक्रिया को इस समर्थन ने और तीव्र किया।

इसने रंग के आधार पर भेदभाव तथा अन्याय का कड़ा प्रतिवाद किया और दक्षिण अफ्रीका एवं नामीबिया में रंगभेद विरोधी आंदोलन को भरपूर समर्थन दिया। अब इन दोनों देशों में स्वतंत्रता तथा बहुसंख्यक शासन के साथ इस घृणित नीति का अंत हो गया है।

एक तीसरे क्षेत्र अर्थात् शांति एवं निरस्त्रीकरण को बनाये रखने की दिशा में भी गुट निरपेक्ष आंदोलन ने महत्वपूर्ण योगदान किया है। शांति, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व तथा मानवीय भ्रातृत्ववाद को इसके समर्थन और किसी भी प्रकार के युद्ध के विरोध ने शीतयुद्ध के तनावों को कम करने में योगदान किया। विश्व में शांति के क्षेत्रों में होने वाले प्रसार के कारण कम से कम देश सैनिक गठबंधनों में शामिल हुए। इसने लगातार निरस्त्रीकरण के लिये प्रयास किये तथा हथियारों की दौड़

के अंत के लिए कहा कि विश्वव्यापी शांति तथा सुरक्षा को तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण के अंतर्गत सामान्य एवं पूर्ण निरस्त्रीकरण हो। इसने यह भी समझाया कि हथियारों की दौड़ उन महत्वपूर्ण संसाधनों को बर्बाद करती है जिनका प्रयोग सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए किया जाना चाहिये। उन्होंने नाभिकीय परीक्षण पर स्थायी रोक लगाने की माँग की और बाद में सभी प्रकार के रासायनिक हथियारों के प्रयोग, उत्पादन, भण्डारण तथा विकास पर प्रतिबंध लगाने के लिए एक संधि करने की माँग की।

चौथे, गुट निरपेक्ष राज्यों ने संयुक्त राष्ट्र के चरित्र को परिवर्तित कराने में सफलता प्राप्त की और इसके फलस्वरूप इसके अवयवों के माध्यम से संचालित होने वाले अंतर्राज्य संबंधों की दिशा में भी परिवर्तन हुआ। 1940 तथा 1950 के दशकों में संयुक्त राष्ट्र के अवयवों में होने वाली कार्यवाहियों पर महाशक्तियों तथा उनके सहायक देशों का पूर्ण प्रभुत्व बना रहता था। गुट निरपेक्ष आंदोलन के उद्गम ने इस स्थिति को बदल दिया। इसने आम सभा में न केवल एक नवीन बहुसंख्यक मत प्रणाली को उत्पन्न किया अपितु एक ऐसे सामूहिक मंच का भी निर्माण किया। जिसके माध्यम से तीसरी दुनिया के देश अपने हितों को भी उठा सकते थे। इस मंच की अवहेलना करना अब संभव न था। आज तीसरी दुनिया के मत का संयुक्त राष्ट्र में प्रतिनिधित्व इतना प्रभावशाली ढंग से किया जाता है कि यह कई बार विकसित देशों के विचारों से कहीं अधिक प्रभावशाली हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुट निरपेक्ष आंदोलन ने विश्व राजनीति में तीसरी दुनिया की भूमिका को सुगम बनाने का महत्वपूर्ण योगदान किया है और इस प्रक्रिया के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का भी लोकतंत्रीकरण हुआ है।

पाँचवा, महत्वपूर्ण योगदान आर्थिक समानता के प्रसंग में था। यह गुट निरपेक्ष आंदोलन ही था जिसने नया अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (एन आई ई डी) के स्थापना की माँग की। अपनी राजनीतिक सार्वभौमिकता के बावजूद नये स्वतंत्र देश आर्थिक रूप से असमान बने रहे। वे पूर्व की भांति ही कच्चे माल के उत्पादक देश बने रहे जो अपनी वस्तुओं को विकसित देशों को कम से कम मूल्य पर बेचते तथा उत्पादित वस्तुओं को उनसे उच्च मूल्य पर खरीदते। दुःख इस विषय का था कि वे दमनात्मक आर्थिक व्यवस्था के न केवल अतीत में भाग थे अपितु यह स्थिति अभी भी जारी थी और इसी के अंतर्गत कार्य करना पड़ रहा था। इसके कारण उनको लगातार पूँजीगत सामानों, वित्तीय एवं तकनीकी के अंतर पर निर्भर रहना पड़ता है। इस आर्थिक शोषण का अंत करने के लिए जिसको नव उपनिवेशवाद भी कहा जाता है, गुट निरपेक्ष आंदोलन ने समानता, बगैर किसी दुराग्रह एवं सहयोग के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं वित्तीय व्यवस्थाओं को पुनः गठित करने की माँग की।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

आर्थिक न्याय के लिए गुट निरपेक्ष आंदोलन के संघर्ष ने स्पष्ट किया कि पूरब पश्चिम के बीच विश्व के विभाजन की अपेक्षा उत्तर तथा दक्षिण के बीच विश्व विभाजन कितना वास्तविक है। इसने सिद्ध किया कि बहुसंख्यक मानव जाति कि चिन्ताएँ पूँजीवाद तथा साम्यवाद के बीच चुनाव की नहीं बल्कि गरीबी एवं सम्पन्नता के बीच चुनाव की है। गुट निरपेक्ष आंदोलन के प्रचार ने विकसित विश्व को कुछ सीमा तक यह विचारने के लिए बाध्य किया कि तीसरे विश्व की हानि कभी उनकी सम्पन्नता पर भी विपरीत प्रभाव डाल सकती है। इसने बहुत सीमा तक उनको वार्तालाप करने के लिए बाध्य किया। तीसरी दुनिया की आर्थिक माँगों पर वार्तालाप करने की सामान्य सफलता के अतिरिक्त गुट निरपेक्ष आंदोलन ने कुछ अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं पर भी विजय प्राप्त की। उदाहरण के रूप में, प्राकृतिक संसाधनों पर आर्थिक संप्रभुता अब एक स्वीकार्य सिद्धांत है। गुट निरपेक्ष आंदोलन हस्तक्षेपीय व्यापार नीति को वैधता प्रदान कराने में भी सफलता प्राप्त कर चुका है। क्योंकि विकसित देश इसको जारी रखना चाहते हैं। इसने सफलतापूर्वक विश्व का ध्यान बहु राष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उत्पन्न की गयी समस्याओं विशेषकर तकनीकी हस्तांतरण के प्रसंग में आकृष्ट किया है। इसने क्षतिपूर्ति वित्तीय सहायता की व्यवस्था की स्थापना के लिए आई एम एफ (अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय कोष) सफलतापूर्वक दबाव डाला है। इसके द्वारा विकासशील देशों को उनकी अदायगी से संबंधित समस्याओं के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में समाचार एजेंसी निकाय की स्थापना को एक उपलब्धि समझा जाना चाहिए। ऐसा इतिहास में प्रथम बार हुआ है कि राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर राष्ट्र संचार व्यवस्था के बगैर सूचना को प्राप्त करने तथा बाह्य विश्व के साथ इसे संचारित करने में सफल हो पाये हैं।

गुट निरपेक्ष आंदोलन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि इस तथ्य में निहित है कि इसने विकासशील दुनिया को स्वतंत्र आर्थिक विकास को जारी रखना सिखाया यद्यपि यह विश्व भी उस

पूँजीवादी विश्व आर्थिक व्यवस्था का हिस्सा है जिसने उनको पूँजी एवं तकनीक के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर बनाया है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) निम्नलिखित में शांति बनाये रखने के लिए एक ऐसी कौन सी पूर्व शर्त नहीं है जिस पर गुट निरपेक्ष आंदोलन ने बल दिया :

क) सैनिक गुटों को समाप्त करना।

ख) शस्त्रीकरण।

ग) महाशक्तियों के बीच टकराव को टालना।

घ) अंतर्राज्य संबंधों का लोकतंत्रीकरण।

2) निम्नलिखित कथनों में कौन सा ठीक है :

क) राजनीतिक स्वतंत्रता गुट निरपेक्ष आंदोलन द्वारा समर्थित एक प्रकार का आत्म निर्णय है।

ख) गुट निरपेक्ष देशों ने विद्यमान आर्थिक व्यवस्था को पुनः गठित करने की माँग की क्योंकि औपनिवेशिक शोषण ने उनको असमान आर्थिक हिस्सेदार बना दिया था।

ग) गुट निरपेक्ष आंदोलन ने विकसित देशों की आर्थिक संप्रभुता पर बल नहीं दिया।

घ) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बेहतर व्यवहार को एक आर्थिक माँग के रूप में गुट निरपेक्ष आंदोलन ने आगे बढ़ाया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.6 आज का गुट निरपेक्ष आंदोलन

8.6.1 बहस

कुछ विद्वानों के अनुसार, गुट निरपेक्ष आंदोलन शीतयुद्ध तथा विश्व का दो शक्ति गुटों में विभाजन का परिणाम था। क्योंकि अब शीतयुद्ध का अंत हो गया है और सोवियत संघ का विखंडन, इसलिए गुट निरपेक्ष आंदोलन भी अपनी प्रासंगिकता को खो चुका है। जहाँ तक गुट निरपेक्ष आंदोलन के अन्य कार्यक्रमों का प्रश्न है जिनको उसने प्रारंभ में उठाया था, वे भी पूर किये जा चुके हैं। दृष्टांत के तौर पर, उपनिवेश स्वतंत्रता प्राप्त कर चुके हैं, रंगभेद टूट चुका है, विदेशी अड्डे अपने महत्व को खो चुके हैं, नाभिकीय हथियारों में कटौती का एक विनम्र प्रारंभ हो गया है और इन सभी से विशिष्ट तथ्य यह है कि जब गठबंधन टूट रहे हैं तब गुट निरपेक्षता के लिए महत्व कहाँ रह जाता है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानों का मानना है कि गुट निरपेक्ष आंदोलन को भंग कर देना चाहिये क्योंकि तत्कालिक खाड़ी संकट के समय इसकी भूमिका विशेषकर प्रभाव विहीन थी।

गुट निरपेक्षता के इन आलोचकों को याद रखना चाहिये कि यद्यपि गुट निरपेक्ष आंदोलन का उद्‌गम शीतयुद्ध तथा दो गुटों में विभाजित विश्व के वर्षों में एक अतिरिक्त विदेशी नीति के चुनाव के रूप में हुआ था, लेकिन इसकी सतत प्रासंगिकता का संबंध इन दोनों ही प्रसंगों में कोई विशिष्ट नहीं है। यह तो एक संयोग ही है कि इस नीति का उद्‌गम एवं विकास तब हुआ जब विश्व राजनीति में ये घटनाक्रम घटित हो रहा था। लेकिन उपनिवेशवाद का विखण्डन इस गुट निरपेक्ष आंदोलन का आधार था और शीतयुद्ध या विश्व के दो शक्ति गुटों में शीतयुद्ध के निवारण ने केवल आगामी वर्षों में इस आंदोलन के प्रसार में सहायता की।

यह भी याद रखा जाना चाहिए कि शीतयुद्ध के अंत ने गुट निरपेक्ष आंदोलन के सार को अप्रासंगिक नहीं किया है। यह सार है कि प्रत्येक प्रश्न को योग्यता के आधार पर विचार करने का अधिकार और किसी प्रश्न को गलत समझा जाता है उसके विरुद्ध जो भी उचित और व्यावहारिक

हो उसपर कार्यवाही करने का अधिकार। भले ही इस गलती को एक ध्रुवीय विश्व में एक महाशक्ति द्वारा जारी रखा जाये या द्विध्रुवीय विश्व में एक या दोनों महाशक्तियों द्वारा। जैसा कि नेहरू ने न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र को संबोधित करते हुए कहा था "जहाँ स्वतंत्रता को भय है या न्याय को खतरा है या जहाँ आक्रमण होता है, हम न तटस्थ हो सकते हैं और न होंगे।" इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है। गुट निरपेक्षता का सार विदेशनीति में स्वतंत्र नीति का अनुसरण करना है, गुट निरपेक्षता किसी भी समय में अप्रासंगिक नहीं होती है जिसपर विरोध किया जा रहा है। वह संभवतः इसका नाम है।

8.6.2 गुट निरपेक्ष आंदोलन की प्रासंगिकता

अब विश्व द्विध्रुवीय नहीं हैं लेकिन इसके संरूपण की प्रकृति पर भी कोई सहमति नहीं है। कुछ लेखकों का मानना है कि संयुक्त राज्य अमरीका के एकमात्र महाशक्ति होने के कारण यह एक ध्रुवीय है। दूसरे कुछ लेखकों का कहना है कि संयुक्त राज्य अमरीका के साथ यूरोपीय संघ, जापान, रूस तथा चीन के महत्वपूर्ण शक्ति केन्द्र होने के कारण विश्व बहु ध्रुवीय है। लेकिन कुछ लेखक इसको एक ध्रुवीय से बहु ध्रुवीय के रूप में मानते हैं। इसके लिए किसी भी शब्द का प्रयोग करें, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि संयुक्त राज्य अमरीका तथा जी–7 देश एक साथ सामंजस्य से काम करने तथा शेष विश्व का प्रबंधन करने की स्थिति में है। एक और शक्ति केन्द्र का उद्‌गम हुआ है। जिसको शक्तिशाली राष्ट्रों का नवीन उत्तरी सामंजस्य new northern concert of powers कहा गया है। विश्वव्यापी इस स्थिति में गुट निरपेक्ष आंदोलन का कार्य करना मुश्किल हो गया है क्योंकि न तो चालाकी से परिचालन करने के लिए अवसर शेष रहे हैं और न ही मध्यमार्गी भूमिका के लिए स्थान है। इसके बावजूद भी गुट निरपेक्षता के व्यवहार की व्यापक आवश्यकता है क्योंकि यदि उनको उत्तर के पूर्ण अभिभूत से बचाना है तब दक्षिण के विकासशील देशों को अपनी स्वतंत्रता का दावा तथा एक साथ मिलकर कार्य करना होगा।

गुट निरपेक्ष आंदोलन को पुनर्जीवित करने की आवश्यकताएँ बहुत से स्रोतों से उत्पन्न होती हैं। यह बहु ध्रुवीयता विकासशील देशों के लिए एक अनिश्चित जटिल एवं अंधकारमय वातावरण उपस्थित करती है जिसके अंतर्गत बहुत से नवीन अवसर नहीं हो सकते लेकिन असुरक्षा बढ़ी है। वर्तमान समय में विकासशील देशों के लिए ऐसे किसी परिवर्तन का आभास नहीं हो रहा है जिससे वे बड़ी आर्थिक शक्तियों के बीच प्रकट होने वाले मतभेदों से लाभ उठाने में सफल हो सकें। हालांकि लम्बे या मध्य अंतराल में स्थिति में कोई परिवर्तन हो सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तीसरी दुनिया के देशों पर बाज़ारों को खोलने तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के प्रश्न पर विकसित देशों की सभी माँगों को मानने के लिए दबाव डाला जा रहा है। लेकिन वास्तविकता यह है कि ऐसे समय में विकसित देशों में संरक्षणवाद की प्रवृत्ति बढ़ रही है। जबकि अधिकतर विकसित देश अपनी अर्थव्यवस्थाओं में तथा अनियंत्रित बाज़ार को उपलब्ध कराने के लिए गंभीर सुधारों को कर रहे हैं इसलिए इस प्रभाव को प्रोत्साहित किया जा रहा है कि तीसरी दुनिया के देश किसी न किसी प्रकार से पर्यावरण संबंधी प्रदूषण के लिए उत्तरदायी हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि उत्तरी विकसित देशों के द्वारा संसाधनों का बे–लगाम दोहन ही पर्यावरण संबंधी प्रदूषण का मुख्य स्रोत है। उत्तरी देशों की सरकारें अपने जारी न रख पाने वाले उत्पादन तथा उपभोक्ता व्यवस्थाओं को बनाये रखने पर निर्भर हैं। ऐसी स्थिति में वे दक्षिण के देशों से आशा करते हैं कि उत्तरी देशों के लिए एक सुरक्षित पर्यावरण को बनाये रखने के लिए सभी प्रकार के त्याग तथा समायोजन को करें। पर्यावरण के बहाने उत्तर के विकसित देश दक्षिण के विकासशील देशों पर प्रतिबंधों तथा दण्डात्मक उपायों को थोपने की कोशिश में है जिसकी अस्पष्ट झलक हमें दिखायी पड़ने लगी है।

तीसरे विकसित देशों की ओर से विकासशील देशों को हस्तांतरित की जाने वाली तकनीक पर कठोर प्रतिबंध लगाये जाने की प्रवृत्ति है। तथाकथित दोहरे उपयोग प्रतिबंधों के अंतर्गत आने वाली वस्तुओं की लगातार बढ़ती सूची के कारण बहुत से महत्वपूर्ण क्षेत्रों में तकनीकी प्रगति के परिणामों से विकासशील देशों को वंचित होने की प्रभावशाली आशंका है। इस प्रकार के प्रतिबंधों के घेरे में कम्प्यूटर से लेकर मशीनी औजार, विशिष्ट प्रकार के रासायनिक सम्मिश्रण तथा औषधि जैसी सामग्री तक आ गये हैं। इस प्रकार के प्रतिबंधों को पुनः उत्पादन को रोकने के बहाने थोपा गया है यद्यपि पुनः उत्पादन का मुख्य उत्तरदायित्व अक्सर उन्हीं देशों का है जो प्रतिबंधों को थोप रहे हैं। यह बहुत ही न्यायपूर्ण है।

चतुर्थ विश्व अभी भी नाभिकीय शक्ति से सम्पन्न एवं नाभिकीय शक्ति से वंचित देशों के बीच विभाजित है। नाभिकीय शक्ति से सम्पन्न देशों ने अपने नाभिकीय हथियारों के जखीरे को बनाये रखने का पक्का निश्चय किया हुआ है, यद्यपि इसमें कुछ कटौती कर तथा दूसरे देशों को इस प्रकार के हथियारों को प्राप्त करने से रोक कर भी वे ऐसा ही कर रहे हैं। विडम्बना यह है कि नाभिकीय हथियारों का लक्ष्य अब तीसरी दुनिया के देश हैं क्योंकि इन्हीं देशों को नाभिकीय हथियार वाले देशों की सुरक्षा के लिए मुख्य खतरा माना जा रहा है। शीतयुद्ध के समाप्त होने के बाद इनका परित्याग करने के स्थान पर, इनको भय निवारण के रूप में बनाये रखा गया है और तीसरी दुनिया के देशों के विरुद्ध भेदभावपूर्ण तरीके से इस्तेमाल करने के लिए तैयार रखा गया है। व्यापक विध्वंसकारी हथियारों को विकसित न करने तथा अत्यधिक सैन्य खर्च को कम करने के लिए तीसरी दुनिया के देश अब भारी दबाव में है। पाँचवे, संयुक्त राष्ट्र के अधीन बहुपक्षीयवाद को पुनर्जीवित करने के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र अमरीका के नेतृत्व में नया गठबंधन विश्व संस्था की कार्यसूची को परिवर्तित करने तथा कुछ निश्चित क्षेत्रों में इसकी कार्यशीलता के महत्व को कम करने के लिए इस संस्था के बहुपक्षीय चरित्र को सफलतापूर्वक व्यापक अभियान चलकर नष्ट करना चाहता है। गरीबी निवारण, विकासवादी योजनाएँ, व्यापार, धन, वित्त तथा कर्ज जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों को संयुक्त राष्ट्र की कार्यसूची से हटा दिया गया है और इनको अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा व्यापार एवं सीमा शुल्क पर आम समझौता जैसे संगठनों को हस्तांतरित किया गया है क्योंकि इन पर उनका अधिक नियंत्रण है ओर ये इनको पारगामी परिस्थितियों तथा पारगामी रिश्तों के रूप में इस्तेमाल करने की आज्ञा देते हैं। ऐसे संगठन जो संयुक्त राष्ट्र परिवार के भाग हैं उनकी वित्तीय सहायता बंद कर उनको बर्बाद होने के लिए छोड़ दिया गया है और संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य पारस्परिक घनिष्ट सहयोग के द्वारा विश्व शांति तथा सुरक्षा को प्रभावित करने वाले निर्णयों को करते हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ अस्थायी प्रतिबंध भी हैं जिनका उद्देश्य व्यापक विध्वंस वाले हथियारों के उत्पादन को रोकना है। इन प्रतिबंधों के अंतर्गत शामिल हैं—रासायनिक हथियार (दि आस्ट्रेलियन क्लब) नाभिकीय हथियार (दि सी ओ सी ओ एम व्यवस्थाएँ) तथा प्रक्षेपात्र (दि मिसाइल टेक्नॉलाजी कंट्रोल रीजम्स या एम टी सी आर) दोहरे उद्देशीय तकनीकियों की सूची अर्थात् ऐसे पदार्थ एवं सामग्रियाँ जिनका निर्यात तीसरी दुनिया के देशों को इन प्रतिबंधों के अंतर्गत नहीं किया जा सकता और ये इतनी व्यापक है कि कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विकासशील देशों का तकनीकी एवं औद्योगिक विकास को रोकने में प्रभावकारी होंगी। यह भी अनुमान कर पाना कठिन है कि किसी विशिष्ट मामले में इन प्रतिबंधों को लागू करने पर संबंधित देश को प्रतियोगी क्षमता के विकास से रोकने में व्यावसायिक दृष्टिकोण से प्रेरित है या फिर उसको पुनः उत्पादन करने से सुनिश्चित तौर पर रोकने के लिए ऐसा किया गया है। इस प्रकार के प्रतिबंधों के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून से कोई अनुमति नहीं ली गयी है। जैसा कि ये संयुक्त राष्ट्र की परिधि से बाहर हैं और इनकी सदस्यता सीमित है, और ये बहुपक्षीयवाद को कम करने में प्रभावशाली है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तीसरी दुनिया के सभी देश राष्ट्र राज्यों के बिखराव से भय का सामना कर रहे हैं। इसके उदाहरण चैकोस्लोवाकिया, इथोपिया, भूतपूर्व सोवियत संघ तथा यूगोस्लोवाकिया है। अपनी राष्ट्रीय एकता के प्रति विकसित देश सुनिश्चित हैं क्योंकि उनकी सैन्य शक्ति इस को सुदृढ़ आधार प्रदान करती है या फिर इस प्रकार का समर्थन उनको अपने मित्र राष्ट्रों से प्राप्त होता है। अपनी अपेक्षाकृत राजनीतिक स्थिरता तथा आर्थिक सम्पन्नता के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए नये गठबंधन के देशों ने ऐसे कारणों तथा सिद्धांतों का समर्थन प्रारंभ किया जो तीसरी दुनिया के देशों में विखण्डन को प्रोत्साहित करते हैं जहाँ तीसरी दुनिया के इन देशों में आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति स्थायित्व से बहुत दूर है। इसके कारण राष्ट्र राज्यों का बिखराव और बढ़ सकता है। आत्म निर्णय के लिए हाल में ही नये गठबंधन में उत्पन्न हुए उत्साह ने अपने राजनीतिक तथा आर्थिक उत्तोलक का इस्तेमाल दूसरे राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए किया है। ऐसा मानव अधिकारों तथा कुशल सरकार के बहाने किया जा रहा है तथा प्रतिबंध भी लगाये गये हैं। मानवीय आधारों पर दूसरे देशों में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप करने की तलाश, इस दिशा की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। पहले भी संप्रभुता कभी भी अपने में संपूर्ण न थी किन्तु इसे अब और काँट-छाँट तथा कम करने का विषय बनाया जा रहा है।

वर्तमान समय में व्यापार के क्षेत्र में भी एक पक्षीय और द्विपक्षीय उत्पीड़क तरीकों का प्रयोग बढ़ रहा है। इसकी पुष्टि संयुक्त राज्य अमरीका व्यापार एवं प्रतियोगात्मक अधिनियम के स्पेशल और सुपर 301 के लागू करने से होती है। इस अधिनियम के माध्यम से बाज़ारों में पारस्परिक पहुँच तथा स्थित संबंधों के इस्तेमाल करने के लिए बातचीत की जाती है। इस प्रवृत्ति को अप्रैल 1994

में अमरीका सहित 115 देशों द्वारा मारकेश में गैट संधि पर हस्ताक्षर कर दिये जाने के बाद भी नहीं रोका गया है। इन कार्यवाहियों के अतिरिक्त विकसित देशों द्वारा ऐसे नये प्रश्नों को उठाया जा रहा है जो प्रत्यक्ष रूप में व्यापार से संबंधित नहीं है, जैसेकि श्रम मानकों, सामाजिक पारिस्थितियों और पर्यावरण से जुड़े प्रश्नों को अभी हाल में संपन्न हुई गैट संधि के समय उठाया गया। इनसे स्पष्ट तौर पर सिद्ध होता है कि नयी तैयार की गयी व्यापार व्यवस्था विकासशील देशों के हितों को ठीक प्रकार से पूरा करने वाली नहीं है।.

उपर्युक्त विश्लेषण दर्शाता है कि गुट निरपेक्ष देशों की स्वतंत्रता के लिए खतरा एवं दबाव नये स्वरूपों को ग्रहण कर चुका है। विश्व में वर्तमान नकारात्मक प्रवृत्तियाँ न्यायोचित, सामयिक तथा लोकतांत्रिक विश्व व्यवस्था के लिए गुट निरपेक्ष आंदोलन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के विपरीत है। गुट निरपेक्ष आंदोलन का कोई भी देश या देशों का समूह फिर चाहे यह बड़ा या धनी हो, इन नवीन वास्तविकताओं का अकेला सामना नहीं कर सकता। इसलिए गुट निरपेक्ष आंदोलन के देशों को सामूहिक विचार एवं कार्य के लिए एक साथ संगठित रहकर कार्य करना चाहिए। लेकिन अब प्रश्न यह है कि बिल्ली के गले में घंटी कैसे बांधी जाये। इसका उत्तर यह है कि गुट निरपेक्ष देश तीन महत्वपूर्ण तरीकों को अपनाकर इस उपरोक्त नकारात्मक प्रवृत्ति को बदल सकते हैं और तीन महत्वपूर्ण तरीके हैं :

क) संयुक्त राष्ट्र को सुधार कर एवं मजबूत बनाकर।

ख) दक्षिण-दक्षिण सहयोग को प्रोत्साहित कर, और

ग) जरूरी सुधारों के द्वारा आंदोलन को और अधिक दृढ़ कर।

इस प्रकार वर्तमान विश्व की राजनीतिक वास्तविकताएँ विश्व के विकासशील देशों के लिए गुट निरपेक्षता उसी तरीके से प्रासंगिक है जैसाकि शीतयुद्ध के वर्षों के दौरान था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जबकि गुट निरपेक्षता की प्रासंगिकता विद्यमान है किन्तु वर्तमान विश्व मामलों में गुट निरपेक्ष आंदोलन की भूमिका में कुछ गिरावट आई है। प्रथम गुट निरपेक्ष आंदोलन अपने दो सदस्यों इराक तथा कुवैत के बीच संघर्ष को रोकने में असफल रहा और न ही इसके बाद घटित खाड़ी संकट में कोई प्रभावकारी भूमिका अदा कर सका। न ही यह अपने एक महत्वपूर्ण सदस्य युगोस्लोवाकिया में गृहयुद्ध को रोक सका।

इसकी अक्षमता का एक कारण यह है कि आज का गुट निरपेक्ष आंदोलन गंभीर आंतरिक समस्याओं का सामना कर रहा है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं, इसकी सदस्यता की योग्यता इतनी अधिक उदार है कि अक्सर उसकी अवहेलना की जाती है, इसके सदस्यों के बीच आत्म अनुशासन की कमी है। सहमति के तरीके की कमजोरियां और विश्वव्यापी घटनाओं पर मानीटर करने के लिए किसी भी प्रकार की प्रणाली का अभाव।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) गुट निरपेक्ष आंदोलन की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

2) क्या भविष्य में गुट निरपेक्ष आंदोलन किसी उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है ?

....

....

....

8.7 सारांश

गुट निरपेक्षता का उद्‌गम दो विश्वव्यापी परिवर्तनों के प्रसंग में हुआ था, उपनिवेशों राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष तथा संयुक्त राज्य अमरीका एवं सोवियत संघ के बीच शीतयुद्ध जिसके कारण दो सैनिक गुटों तथा गठबंधनों का उद्‌गम हुआ। राजनीतिक स्वतंत्रता के बावजूद, नये राज्य आर्थिक रूप से अविकसित थे तथा वे नवीन साम्राज्यवादी दबाव में आ सकते थे।

गुट निरपेक्षता शब्द उन राज्यों के दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करता है जो गठबंधनों की इस व्यवस्था से बाहर रहने के इच्छुक थे तथा विदेश नीति एवं संबंधों में एक स्वतंत्र नीति का अनुसरण करना चाहते थे। गुट निरपेक्षता की आवश्यकता आर्थिक राजनीतिक, सामरिक तथा आंतरिक या स्वदेशी स्रोतों से उत्पन्न हुई थी।

ये राज्य एक सामूहिक मंच पर एकत्रित हुए और गुट निरपेक्ष आंदोलन का निर्माण किया। इसने दक्षिण के विकसित देशों की सामूहिक समस्याओं पर बहस करने के लिए एक महत्वपूर्ण मंच उपलब्ध कराया जिससे ये देश समान उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सामूहिक कार्यवाही करने के लिए तैयार हुए। इसने उन सिद्धांतों को बनाये रखा है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राजनीतिक तथा आर्थिक न्याय को प्रोत्साहित करने की तलाश करते हैं। इसकी उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण थी। अब शीत युद्ध या द्विध्रुवीयता विहिन विश्व में गुट निरपेक्षता की प्रांसगिकता के विषय में वाद-विवाद है। यद्यपि शीतयुद्ध का प्रसंग परिवर्तित हो सकता है परन्तु विश्व गरीब एवं धनी राष्ट्रों के बीच अभी भी विभाजित है। विकासशील देश जो विश्व जनसंख्या तीन चौथाई है, अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की परिधि पर ही विद्यमान है। गुट निरपेक्ष नीति उस समय तक वैध बनी रहेगी जब तक व्यवस्था ईमानदारी से समानता नहीं करने लगती। गुट निरपेक्ष आंदोलन को पुनः सक्रिय करने की शीघ्र आवश्यकता है जिससे कि और अधिक समतावादी विश्व व्यवस्था की ठोस रूप में स्थापना की जा सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

विल्लेट्टस, पीटर, 1978 : **दि नॉन एलाइन मुवमेंट, दि ओरिजन ऑफ ए थर्ड वर्ल्ड एलायंस,** पॉपुलर प्रकाशन, बंबई।

राणा, ए पी, 1976 : **दि इम्पेरेटिवाज ऑफ नॉन एलाइन मूवमेंट।**

अप्पादोराय एण्ड राजन, 1985 : **इंडियाज फॉरेन पॉलिसी एण्ड रिलेशन्स।**

बन्दोपाध्याय, जे, 1970 : **दि मैकिंग ऑफ इण्डियाज फॉरेन पॉलिसी : डीटरमीनेन्टस इंस्टीट्यूशन्स, प्रोसेज, पर्स नेलीटीस**

राजन एम एस, 1990 : **नॉन एलाइनमेंट एण्ड नॉन एलाइन्ड मूवमेंट।**

राजन एम एस, 1990 : **दि फ्यूचर ऑफ नॉन एलाइमुवमेण्ट एण्ड नॉन एलाइन्ड मुवमेंट।**

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) शीतयुद्ध प्रतिद्वन्दिता ने संयुक्त राज्य अमरीका को साम्यवाद के विरुद्ध विश्वव्यापी लड़ाई छेड़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

ख) इस खोज में इसने एशियाई देशों को अपने मित्र बनाने के लिए कोशिश की।

ग) उन राज्यों की स्वतंत्रता को भयभीत किया।

घ) इन राज्यों ने अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण बनाये रखने के लिए गुट निरपेक्ष होने का निर्णय किया।

2) (क) (ख)

(ग) (घ)

(ङ) (च)

बोध प्रश्न 2

1) क) प्रथम नेहरू ने एशियाई संबंधों का सम्मेलन तथा एशियाई – अफ्रीका सम्मेलन बुलाकर एक विश्वव्यापी मोर्चा बनाने का प्रयास किया।

ख) बाद में, युगोस्लोवाकिया तथा दूसरे समान विचारों वाले देशों के साथ मिलकर एक विश्वव्यापी मोर्चा बनाया।

बोध प्रश्न 3

1) क)

2) क) ख) ग)

बोध प्रश्न 4

1) आंदोलन ने उपनिवेशवाद के विखंडन में सहायता पहुंचायी, शांति को प्रापत करने की संभावनाओं को प्रोत्साहित किया, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लोकतंत्रीकरण में सहायता की, आर्थिक न्याय की समस्या की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ठ किया और कुछ सीमा तक आर्थिक अधिकारों की लड़ाई में विजय प्राप्त की तथा पश्चिम के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को विमुख किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) हाँ। क्योंकि आर्थिक विभाजन है और भविष्य में भी राज्यों के बीच सबसे अधिक महत्वपूर्ण विभाजन के रूप में बना रहेगा इसलिए तीसरी दुनिया के देशों की आर्थिक मांगों के लिए संघर्ष करने के महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने हेतु गुट निरपेक्ष आंदोलन की आवश्यकता बनी रहेगी।

इकाई 9 हथियारों की दौड़ और नाभिकीय खतरा

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 नाभिकीय हथियारों के दौड़ की पृष्ठभूमि

- 9.2.1 प्रारंभ नाभिकीय हथियारों की दौड़ का जन्म
- 9.2.2 मैन हत्तेन की परियोजना
- 9.2.3 उत्तर युद्ध काल में हथियारों की दौड़ का औचित्य

9.3 नाभिकीय हथियारों की दौड़ : इतिहास में पूर्ववर्ती हथियारों की दौड़ से यह किस प्रकार भिन्न है ?

- 9.3.1 त्रित्व परीक्षण
- 9.3.2 हिरोशिमा तथा नागासाकी की बमवर्षा
- 9.3.3 न्यूयार्क टाइम्स और त्रित्व परीक्षण

9.4 उत्तर युद्ध काल में नाभिकीय हथियारों की दौड़ में विभिन्न चरण

- 9.4.1 सोवियत संघ तथा साम्यवाद का भय
- 9.4.2 1945 से 1953 : अमरीकी एकाधिकारवाद का काल
- 9.4.3 1957 से 1968 : प्रक्षेपात्र संकट का काल और आई सी बी एम दौड़
- 9.4.4 1968 से 1970 : के दशक के अंत तक एम आई आर बी तथा आई सी बी एम की दौड़
- 9.4.5 1981: रीगन का सामरिक महत्व आधुनिकीकरण की योजना
- 9.4.6 1983 : अंतरिक्ष का सैन्यकरण – रीगन का स्टार युद्ध कार्यक्रम
- 9.4.7 1984 से 1997 : गोर्बाचोव के युग में नाभिकीय हथियारों की दौड़ और सोवियत संघ के पतन का अंतिम दिन
- 9.4.8 1991 से 1997 : तक सोवियत संघ के पतन के बाद नाभिकीय हथियारों की दौड़

9.5 तीसरी दुनिया और दक्षिण एशिया में हथियारों दौड़

- 9.5.1 चीन द्वारा नाभिकीय क्षमता को प्राप्त करना और दक्षिण एशिया में हथियारों की दौड़
- 9.5.2 भारत, पाकिस्तान तथा नाभिकीय हथियारों की दौड़
- 9.5.3 दक्षिण एशिया में और प्रभुत्व का सिद्धांत
- 9.5.4 दक्षिण एशिया में हथियारों की दौड़ में सामान्य जटिलताएँ

9.6 सारांश

9.7 शब्दावली

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.0 उद्देश्य

यह इकाई वर्तमान विश्व में हथियारों की दौड़ तथा नाभिकीय खतरे का विवरण प्रस्तुत करती है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- नाभिकीय हथियारों की दौड़ की पृष्ठभूमि जान सकेंगे;
- नाभिकीय हथियारों की दौड़ से किस प्रकार भिन्न है इसका पता कर सकेंगे;
- उत्तर युद्धकाल में नाभिकीय हथियारों की दौड़ के विभिन्न चरणों के विषय में चर्चा कर सकेंगे; और

- तीसरे तथा विशेषकर दक्षिण एशिया में नाभिकीय हथियारों की दौड़ के परिक्षण के बारे में अध्ययन कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

'हथियारों की दौड़ और नामिकीय खतरे की यह इकाई उस खंड 3 का भाग है जिसको शीतयुद्ध का काल कहा गया है अर्थात द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद और सर्वोच्च शक्ति के प्रभुत्व के उद्‌भव का काल। इकाई 6 में द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण और परिणाम (सर्वोच्च शक्तियों का उद्‌भव) का आप अध्ययन कर चुके हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् किस प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका एवं सोवियत संघ का अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सर्वोच्च शक्तियों के रूप में उद्‌भव हुआ।

इकाई 7 में शीतयुद्ध भावार्थ प्रतिमान और आयाम, आपने पढ़ा है कि 1945 में किस प्रकार से जर्मनी तथा उसके सहयोगी देशों का पतन हुआ था और जिसके फलस्वरूप 1945 के बाद ही अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में मुख्य शक्तियों अर्थात संयुक्त राज्य अमरीका एवं सोवियत संघ के मध्य शीतयुद्ध का उद्‌भव हुआ। गुट निरपेक्ष आंदोलन जिसका विवरण इस खंड की इकाई 8 में किया गया है शीतयुद्ध शक्ति गुट राजनीति का परिणाम था।

उत्तर 1945 की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था तथा 1945 के पूर्ववर्ती विश्व में हथियारों की दौड़ समान रूप से थी। जिस समय आप विश्वयुद्ध प्रथम तथा द्वितीय युद्ध का अध्ययन करते हैं तब आप गुणात्मकता तथा व्यापकता दोनों विशेषताओं को हथियारों की दौड़ में पायेंगे। यह भी देखा गया है कि दोनों विश्वयुद्धों में हथियारों की दौड़ में गुणात्मक विशेषता दोनों युद्धों का अति महत्वपूर्ण कारण था। प्रथम विश्वयुद्ध में नोबेल इंडस्ट्रीज के सर अलफ्रेड की खोज प्रध्वंसक से द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी द्वारा रॉकेट की खोज ने अंतत ऐसे हथियारों को जन्म दिया जिनके द्वारा सभी युद्धों को विजयी करना सम्भव हो सका और जिसने सबसे अधिक तीव्र हथियारों की दौड़ को उत्पन्न किया। इस पागलपन के वैज्ञानिक राष्ट्र, जनता, सिपाही, तथा राजनीतिक सभी शिकार हो गये और जिसका अंत नागरिकों की अथाह संख्या की हत्याओं से हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस वर्तमान इकाई में हम अपना ध्यान उत्तर 1945 की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में हथियारों की दौड़ पर केन्द्रित करेंगे। जैसा कि पहले भी कहा गया है कि गुणात्मक और अधिक संहारक हथियारों की इस तलाश ने विश्व को युद्ध के और करीब लाने में सबसे अधिक प्रेरित करने का कार्य किया था फिर चाहे यह प्रथम विश्वयुद्ध रहा हो या फिर द्वितीय विश्वयुद्ध। 1945 के पूर्ववर्ती युग--अर्थात अंतर्युद्ध काल तथा 1945 के पश्चात् के काल में हथियारों की दौड़ में मुख्य विभेद नाभिकीय आयाम था। 1945 से पूर्व मानव इतिहास में सभी प्रकार के हथियारों की दौड़ को कभी भी उस खतरे का सामना करना नहीं पड़ा था जिसको अब लोकप्रिय रूप में नाभिकीय खतरे के नाम से जाना जाता है। 1945 के पश्चात् इन हथियारों की दौड़ के कारण मानव जाति एक ऐसे जीवित खतरे की चपेट में आ गयी है जिससे इस भूमंडल पर जीवन को ही एक बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया है। हथियारों की दौड़ में गुणात्मक अंतर तब हुआ जब 1945 में अणु या नाभिकीय बम का निर्माण किया गया। 1945 से इस इकाई में उल्लेखित की गयी हथियारों की दौड़ परम्परागत न रह कर अपितु उसने नाभिकीय विशिष्टता को प्राप्त कर लिया था और तब से आज तक मानव एक इस प्रकार के हथियारों की दौड़ में व्यस्त है जिसने उन दोनों के लिए एक स्थायी नाभिकीय खतरा उत्पन्न कर दिया जो इसमें व्यस्त है और जो नहीं भी।

9.2 नाभिकीय हथियारों की दौड़ की पृष्ठभूमि

9.2.1 प्रारंभ नाभिकीय हथियारों की दौड़ का जन्म

नाभिकीय हथियारों की दौड़ का प्रारंभ बड़ी ताकतों के बीच द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व जर्मनी तथा मित्र राष्ट्रों के मध्य हुआ था। इस संघर्ष का प्रारंभ द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व 1938 में उस समय हुआ था जबकि जर्मनी के सर विलियम संस्थान में ऑटो हॉन तथा डॉ. फ्रित्स स्टीर्समैन ने प्रथम बार अणु का विभाजन किया। बाद में लाइस मैटनर तथा ऑटो हॉन ने अणु को सफलतापूर्वक अणु

को तोड़कर उसे नाभिकीय विखण्डन में प्राप्त करने की घोषणा की। इतिहास के इस मोड़ पर यह एक संयोग ही था कि अणु की समस्या पर कार्य करने वाले महानतम मस्तिष्क यहूदी थे और जर्मन भी। हिटलर यहूदीवाद का घोर विरोधी था जिसके कारण इस समय में जर्मनी के इन वैज्ञानिकों ने संयुक्त राज्य अमरीका की ओर पलायन किया और वहाँ पर उनका स्वागत किया गया। इन भगौड़े वैज्ञानिकों ने अमरीकी उस सेना को सूचनाएँ प्रदान की जो यूरोप के घटनाक्रम पर समीप से दृष्टि लगाये हुए थी। यह पहले से ही माना जा रहा था कि नाभिकीय बम का निर्माण करने वाला जर्मनी प्रथम देश होगा क्योंकि अणु को विखंडित करने की विधि का वह पहले ही ज्ञान प्राप्त कर चुका था। इन भगोड़े वैज्ञानिकों में एलबर्ट आइस्टलीन भी एक था और इस अन्वेषण के महत्व की उसे पूर्ण जानकारी थी। उसी ने ही पहली बार आधुनिक विश्व को अणु की रहस्यमय शक्ति का ज्ञान कराया था। उसने संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति को इसके विषय में चेतावनी भी दी।

9.2.2 मैन हत्तेन की परियोजना

राष्ट्रपति रूजवेल्ट के शासन के दौरान अमरीकी अणु बम के अंतर्राष्ट्रीय परिणामों से भलीभांति परिचित थे। इसलिये उन्होंने अणु बम बनाने की दौड़ का सबसे पहले प्रारंभ किया। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अति गुप्त तरीके से मैन हत्तेन परियोजना का प्रारंभ किया। यह अब तक का सबसे अधिक महंगा वैज्ञानिक प्रयास था जिसकी लागत 20 खरब डालर थी और जिसको मेजर जनरल लेसलाई ग्रोवेज के अधीन एक निश्चित समय में नाभिकीय बम का निर्माण करने के लिए शुरू किया गया था। प्रथम तीन नाभिकीय बमों को निर्माण करने हेतु रॉबर्ट ओपेनहीमर, ऐनरिको फरमी, हरबर्ट मार्क, एडवर्ड टेलर ए हंस बेथ जैसे वैज्ञानिकों के साथ अन्य महत्वपूर्ण वैज्ञानिकों को भी शामिल किया गया।

इस बम निर्माण का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी था कि यद्यपि प्रारंभिक शत्रु जर्मनी था किन्तु शनै-शनै सोवियत संघ मुख्य शत्रु बनता गया और उसी के विरुद्ध इन बमों का निर्माण होने लगा। वास्तव में लेसलाई ग्रोवज ने यह कहा भी था कि उसे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सोवियत संघ ही उनका मुख्य शत्रु है। उत्तर 1945 के विश्व को समझने के लिए यह तथ्य निर्णायक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.2.3 उत्तर युद्ध काल में हथियारों की दौड़ का औचित्य

जर्मनी ऐसा पहला राष्ट्र था जिसके विरुद्ध संयुक्त राज्य अमरीका ने नाभिकीय हथियारों की दौड़ का प्रारंभ किया था किन्तु जर्मनी ने मई, 1945 में आत्मसमर्पण कर दिया था और उसकी सभी प्रकार की नाभिकीय सुविधाओं को नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार प्रारंभिक नाभिकीय हथियारों की दौड़ का प्रथम चरण समाप्त हो गया। इसके बावजूद भी एक बार हथियारों का निर्माण हो जाने पर हथियारों की यह दौड़ जारी रही। साम्यवादी सोवियत संघ को क्षितिज के उस पार एक शत्रु के तौर पर खोज लिया गया। एक विचारधारा के रूप में साम्यवाद के भय ने अणु बम के निर्माण की तीव्रता को और ऊर्जा प्रदान की। इस दृष्टिकोण में अमरीकी सैन्य औद्योगिक समष्टि का उत्थान गलत न था।

जर्मनी के पतन के बाद संयुक्त राज्य अमरीका एवं उसके मित्रों के साथ टकराने वाली साम्यवादी सोवियत संघ निश्चय ही सबसे अधिक ताकतवर शक्ति थी। विश्व निश्चित तौर पर पूँजीवादी तथा समाजवादी दो गुटों में विभाजित होने लगा और जर्मनी सहित यूरोप इसका प्रथम शिकार हुआ। मित्र राष्ट्र इसके लिए कुछ न कर सके। ऐसे किसी अंतिम हथियार की तलाश की जाने लगी जो साम्यवाद के बढ़ते आंदोलन को नष्ट करने में सक्षम हो। प्रारंभ में जिस हथियार का निर्माण फासीवादी जर्मनी के लिए किया गया था प्रयोग के तौर पर उसका इस्तेमाल समाजवादी सोवियत संघ के विरुद्ध भी किया जा सकता था। अमरीकी शासकों ने इसे एक वैचारिक युद्ध का नाम दिया और उत्तर द्वितीय-विश्व युद्ध युग में हथियारों की दौड़ का यह एक महत्वपूर्ण कारण बन गया।

अणु विखंडन की खोज ने अमरीकियों में एक ऐसे विश्वास को उत्पन्न किया जिसके द्वारा शीत-युद्ध या लौह परदे (Iron Curtain) से लड़ा जा सकता था। जिसके विषय में विंसटन चर्चिल ने कहा था कि इसका प्रभाव यूरोप पर छा चुका था। यह उस ओर भी संकेत था कि 1945 के पश्चात नवीन युद्ध सोवियत संघ के विरुद्ध लड़ा जायेगा।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) नाभिकीय हथियारों की दौड़ की पृष्ठभूमि का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

2) उत्तर युद्ध काल में हथियारों की दौड़ के लिए क्या औचित्य था ?

....

....

....

....

9.3 नाभिकीय हथियारों की दौड़ : इतिहास में पूर्ववर्ती हथियारों की दौड़ से यह किस प्रकार भिन्न है ?

9.3.1 त्रित्व परीक्षण

तीन निर्मित अणु बमों में से पहले का परीक्षण 16 जुलाई, 1945 को न्यू मैक्सिको के आलमगोर्दो में किया गया। इसको त्रित्व परीक्षण के नाम से जाना गया। मानव इतिहास में सफलतापूर्वक त्रित्व परीक्षण नाभिकीय बम के जन्म का अग्रदूत और नाभिकीय युग का उद्‌भव था। डच के प्रसिद्ध भौतिकी शास्त्री सनीलस बोहर ने भविष्यवक्ता की भांति अवलोकन करते हुए कहा था कि इससे न केवल हथियारों की दौड़ का प्रारंभ होगा अपितु यह एक गुणात्मक स्थिति को भी उत्पन्न करेगा। 3 जुलाई, 1944 को राष्ट्रपति रूजवेल्ट को पत्र लिखते हुए उसने उद्‌धृत किया कि एक ऐसे असीमित शक्ति वाले हथियार का निर्माण किया जा रहा है जो युद्ध प्रणाली की भविष्य की परिस्थितियों को पूर्णतः परिवर्तित कर देगा। कुछ वैज्ञानिकों ने संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ के मध्य हथियारों की दौड़ का अनुमान करते हुए अमरीका सरकार से अनुरोध किया कि वह नाभिकीय रहस्यों की सोवियत संघ के साथ हिस्सेदारी करे और इस प्रकार से हथियारों की दौड़ को रोके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

फिर भी इससे यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक राजनीतिक खेल के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की गहनता के विषय में काफी सहज थे। इस प्रकार की सलाह पर कभी भी ध्यान न दिया गया और विजय की आशा में हथियारों की दौड़ जारी रही। जहां सेना जर्मनियों, जापानियों और अंततः सोवियत संघ को पराजित करने के लिये निराशापूर्ण प्रयासों में व्यस्त थी वहीं त्रित्व परीक्षण ने उनमें आशा का यह संचार प्रवाहित किया कि वे विजयी हो सकते थे।

9.3.2 हिरोशिमा तथा नागासाकी पर बम वर्षा

दो ऐतिहासिक घटनाओं ने अंततः मानव जाति के भाग्य को अवरुद्ध कर दिया। यह घटना थी, परीक्षण न किये गये शेष दो नाभिकीय बमों का गिराया जाना अर्थात पाँच टन यूरेनियम से युक्त बमों को 6 अगस्त तथा 8 अगस्त, 1945 को क्रमशः हिरोशिमा तथा नागासाकी पर गिराना। इन दोनों शहरों में 250,000 से भी अधिक लोग मारे गये और जो जीवित बचे उनको लगातार रक्त रिसाव होता रहा तथा उनकी त्वचा काली पड़ कर शरीर पर टुकडों में लटक गयी और उनके बाल जड़ों तक झुलस गये। वे अधिकतर नंगे हो गये क्योंकि उनके कपड़े जल गये थे। बर्नाड शॉ ने 'मैन एण्ड सुपरमैन में हत्या की कला के विषय में अवलोकन करते हुए लिखा है कि जब मनुष्य हत्या करने निकलता है ...., अब वह एक ऐसी आश्चर्यचकित मशीन का इस्तेमाल करता है जिस पर उसकी अंगुली मात्र का स्पर्श हो जाने से संपूर्ण गुप्त आण्विक ऊर्जा निकल पड़ती है और इस प्रकार उसने अपने पूर्वजों के भाला, तीर तथा फूंकनी को काफी पीछे छोड़ दिया है। हिरोशिमा तथा नागासाकी इसका सुस्पष्ट दृष्टांत है।

9.3.3 न्यूयार्क टाइम्स और त्रित्व परीक्षण

नाभिकीय हथियारों की दौड़ के गुणात्मक महत्व को समझना सरल होगा यदि हम त्रित्व परीक्षण के समय पर किये गये दो अवलोकनों पर दृष्टि डालें। न्यूयार्क टाइम्स के संवाददाता जोकि इस परीक्षण का साक्षी था, लिखा है कि " ..... एक ही प्रकाश में बहुत से सूर्यों का प्रकाश हुआ जो इस दुनिया का न था। यह एक ऐसा आश्चर्य था जिसको विश्व ने कभी न देखा था, एक अथाह हरा प्रकाश पुंज कुछ ही क्षणों में 8000 फुट की ऊँचाई तक पहुँच गया और यह तब तक ऊपर की ओर बढ़ता रहा जब तक कि इसने बादलों को न छू लिया तथा पृथ्वी एवं आसमान को चारों ओर से चकाचौंध करने वाली ज्योति से प्रकाशमय कर दिया जैसे यह ऊपर की ओर अग्रसर होता है वैसे ही एक मील की परिधि में आग का एक विशाल गेंद बन गया जिसके रंगों में परिवर्तन होता जाता है। जैसे-जैसे यह ऊपर की ओर बढ़ता, वैसे ही इसके रंग गहरे बैंगनी से नारंगी में परिवर्तित होते, इसका विस्तार होता, यह और विशालकाय होता जाता और ऐसा प्रतीत होता कि खरबों वर्षों की पराधीनता से एक तात्विक शक्ति ने इसको मुक्त कर दिया हो। एक क्षण के लिए उनका रंग अपार्थिव हरा हो गया और यह दृश्य पूर्ण ग्रहण के समय सूर्य के प्रभामंडल के समरूप था। इस दृश्य को देखने वाले को वही विशिष्टता प्राप्त हो चुकी थी जैसे सृष्टि के जन्म के समय ईश्वर ने स्वयं उपस्थित होकर कहा था कि यहाँ पर प्रकाश हो।

राबर्ट ओपेहेयर ने आधुनिक मानव के भाग्य की दुर्दशा जिसका रचियता वह स्वयं है गीता से उद्धृत इस एक वाक्य में अभिव्यक्त करते हुए कहा। विश्व का नाश करने वाला मैं मृत्युं बन चुका हूँ। आलमगोर्दो में किये गये विस्फोट की गरजना 50 मील दूर तक सुनी गयी और जैसा कि न्यूयार्क टाइम्स के संवाददाता द्वारा सूचना दी गयी थी आग का स्तंभ आकाश में 6 मील ऊँचाई तक उठा। त्रित्व परीक्षण तथा हिरोशिमा एवं नागासाकी पर गिराये गये बमों के अवलोकन से स्पष्ट है कि 1945 के पश्चात् मानव जाति जिन हथियारों की दौड़ की चपेट में आ गयी थी वह मानव इतिहास में पूर्ववर्ती हथियारों की दौड़ से अपने आकार एवं स्वभाव में पूर्णतः भिन्न प्रकार की थी। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के किसी भी आदर्शवादी विद्वान के लिए यह दुख का विषय है कि नाश के इन साक्ष्यों के बावजूद भी हथियारों की यह दौड़ और अधिक गहनता एवं प्रतिशोध के साथ जारी रही।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) त्रित्व परीक्षण क्या है ?

....

....

....

....

9.4 उत्तर युद्ध काल में नाभिकीय हथियारों की दौड़ के विभिन्न चरण

9.4.1 सोवियत संघ तथा साम्यवाद का भय

16 जुलाई, 1945 को किये गये त्रित्व परीक्षण ने वास्तव में संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ के बीच नाभिकीय हथियारों की दौड़ का प्रारंभ किया। हिरोशिमा तथा नागासाकी की विभिषिका के बावजूद यह दौड़ कभी भी न रुक सकी। नाभिकीय हथियारों को ऊर्जा प्रदान करने वाला दूसरा तथा साम्यवादी सोवियत संघ शत्रु माना जाना था। वास्तव में इस तथ्य की पुष्टि जनरल लेसलाय ग्रोवज के उस बयान से भी होती है जिसमें उसने कहा था कि उसको इसमें कोई संदेह नहीं है कि बम को किसके विरुद्ध अर्थात् सोवियत संघ के विरुद्ध बनाया गया था। उदयमान साम्यवाद से पूँजीवाद को वैचारिक, राजनीतिक एवं सैन्य खतरा था इसलिए वह इससे निबटना चाहता था। वास्तव में नाभिकीय बम की खोज ने हथियारों की दौड़ को सबसे अधिक तीव्रता प्रदान

की। ब्रिटेन ने सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य अमरीका का अनुसरण करते हुए 1952 में नाभिकीय बम को बनाने की क्षमता को प्राप्त किया, फ्रांस ने 1960 में तथा चीन ने 1964 में नाभिकीय हथियारों की दौड़ निम्नलिखित चरणों से होकर गुजरी, किन्तु उनको एक दूसरे से स्पष्ट तरीके से अलग नहीं किया जा सकता।

9.4.2 1945 से 1953 : अमरीकी एकाधिकारवाद का काल

इस समय में 1953 तक अमरीका ने पहले अपने पूर्ण एकाधिकार को बनाये रखा और बाद में नाभिकीय सर्वोच्चता को। इस काल में संयुक्त राज्य अमरीका के क्षेत्र को अभेद समझा जाता था क्योंकि सोवियत संघ के पास सोवियत संघ से अमरीकी ठिकानों पर मार करने वाले पारस्परिक क्षमता के हथियारों का अभाव था। लेकिन संयुक्त राज्य अमरीका पश्चिमी यूरोप में विद्यमान अमरीकी ठिकानों से सोवियत संघ के ठिकानों पर आक्रमण कर सकता था।

9.4.3 1957 से 1968 : प्रक्षेपात्र संकट का काल और आई सी बी एम की दौड़

प्रथम चरण में अमरीका को जो एकाधिकार प्राप्त था वह उस समय टूटा जबकि सोवियत संघ ने 1957 में आई सी बी एम का सफलतापूर्वक परीक्षण किया। इसको अमरीका में प्रक्षेपात्र संकट (Missile crisis) का नाम दिया गया। आई सी बी एम की खोज ने नाभिकीय हथियारों की दौड़ का केन्द्र सामरिक महत्व के हथियारों को बना दिया अर्थात् अंतर महाद्विपीय बिलास्टिक प्रक्षेपास्त्र. आई सी बी एम समुद्र से दागे जाने वाले बिलास्टिक प्रक्षेपास्त्र एस एल बी एम और सामरिक या अंतर महाद्विपीय बमवर्षक जैसे हथियारों का निर्माण किया गया और जिन्होंने सामरिक तिपाई को उपलब्ध कराया। 1967 में सोवियत संघ ने फ्रेंक्सनल ओर्बिटल बोम्बार्डमेन्ट सिस्टम Fractional Orbital Bombardment system का परीक्षण किया। इसने आगे अंतरिक्ष में नाभिकीय हथियारों की दौड़ में गुणात्मक आयाम के साथ वृद्धि की।

DIKSHANT IAS

9.4.4 1968 से 1970 के दशक के अंत तक एम आई आर बी तथा आई सी बी एम की दौड़

Call us @7428092240

नाभिकीय हथियारों की दौड़ में तीसरा चरण उस समय प्रारंभ हुआ जबकि 1968 में अपनी आई सी बी एम की क्षमता में अमरीकी तकनीक को लागू किया गया और उसने एक विशिष्टता को प्राप्त कर लिया तथा इस नवीन तकनीक को बहुमुखी अंतर महाद्विपीय पुनः प्रवेश वाहन एम आई आर बी कहा गया। इसका अभिप्राय था कि अब एक आई सी बी एम प्रक्षेपास्त्रों से लैस कई ऐसे नाभिकीय हथियारों को ले जा सकता था जो सोवियत संघ की वायु सीमा के अंदर प्रवेश कर कई दिशाओं में जाते हुए कई ठिकानों पर मार कर सकते थे। एम आई आर बी हथियारों की दौड़ में अपार घातीय सुधार का प्रतीक थी। इस युद्ध तकनीक ने सोवियत संघ की स्थिति को भयावह कर दिया, लेकिन सोवियत संघ ने भी इस युद्ध तकनीक को 1974 में प्राप्त कर लिया। इस काल के दौरान सोवियत संघ ने दो अन्य हथियार प्रणाली को विकसित किया। प्रथम 1968 में एण्टी बिलास्टिक मिसाइल Anti Ballistic Missile ABM की और दूसरी, एण्टी सेटेलाइट मिसाइल Anti Satellite Missile ASAT तथा विस्फोटक को विकसित किया और इस प्रकार हथियारों की दौड़ जारी रहने को सुनिश्चित किया।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गये स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) हथियारों की दौड़ में संयुक्त राज्य अमरीका के एकाधिकार की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

2) हथियारों की दौड़ में संयुक्त राज्य अमरीका के एकाधिकार को तोड़ने के लिए उस समय के सोवियत संघ द्वारा किये गये प्रयासों का विवरण दीजिए।

....

....

....

....

9.4.5 1981 : रीगन की सामरिक महत्व की आधुनिकीकरण की योजना

दोनों सर्वोच्च शक्तियों के बीच अगला बड़ा तकनीकी टकराव एम एक्स प्रक्षेपास्त्र पर हुआ। 2 अक्टूबर, 1981 को राष्ट्रपति रीगन ने 160 खरब डालर की अनुमानित लागत वाली सामरिकी आधुनिकीकरण योजना की घोषणा की। हथियारों की इस योजना के अंतर्गत शामिल थे:

i) प्रक्षेपास्त्र परीक्षण या एम एक्स प्रक्षेपात्र इनमें से 100 को निर्मित करना पड़ा।

ii) बी, 1बी बमवर्षक इनमें से 100 का निर्माण किया जाना था,

iii) 1990 के दशक में दुराव बमवर्षकों का निर्माण,

iv) त्रिशूल II D-5 प्रक्षेपास्त्रों का 1983 से 1987 तक प्रत्येक वर्ष एक का निर्माण करना,

v) समादेश नियंत्रण तथा बौद्धिक व्यवस्था सी-1 का आधुनिकीकरण करना,

vi) नवस्टार उपग्रह विश्वव्यापी व्यवस्था का स्थापन,

vii) बंद शिथिल प्रक्षेपास्त्रों का स्थापन,

viii) क्रुज मिसाइल को सूक्ष्मता से निर्देशित करने हेतु टेरकॉम (TERCOM) स्थापित करना। यह संचार व्यवस्था की उन्नत प्रणाली है,

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ix) संकट काल के दौरान आई सी बी एम को निर्देशित करने के लिए विश्वव्यापी स्थापन व्यवस्था जी पी एस को लागू करना,

x) प्रक्षेपास्त्रों या छोडनें वालों के लिए पूर्ण गुप्त मार्ग संचार प्रणाली को स्थापित करना,

xi) पनडुब्बियों द्वारा ढीले तार उत्प्लावक रेडियो को प्राप्त करना,

xii) ईंधन-सैल प्रणोदन करना

9.4.6 1983 : अंतरिक्ष का सैन्यकरण — रीगन का स्टारयुद्ध कार्यक्रम

अंतरिक्ष का सैन्यकरण 1958 से प्रारंभ हुआ और तभी से 2219 सैनिक एवं नागरिक उपग्रहों को सर्वोच्च शक्तियों तथा अन्य राष्ट्रों द्वारा छोड़ा जा चुका है। इनमें 75 प्रतिशत उपग्रहों को जासूसी एवं सैन्य उपयोग के लिए छोड़ा गया है। इस तरह यह 1967 की अंतरिक्ष संधि का स्पष्ट उल्लंघन है। 23 मार्च, 1983 को राष्ट्रपति रीगन के द्वारा सामरिक सुरक्षा प्रणाली (SDA) की घोषणा की गयी जिसको लोकप्रिय रूप में स्टार युद्ध कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है जिसकी लागत 10 खरब डालर थी और जिसके द्वारा अंतरिक्ष का सैन्यकरण गुणात्मक रूप से नवीन बिंदुओं तक करना था। इसका उद्देश्य भूमि तथा अंतरिक्ष दोनों पर आधारित ऐसी बिलास्टिक प्रक्षेपास्त्र सुरक्षा बी एम डी व्यवस्था को निर्मित करना था जिससे सोवियत संघ के सामरिक प्रक्षेपास्त्र आक्रमणों के विरुद्ध अमरीकी क्षेत्र को सुरक्षित किया जा सके।

सिद्धांत : एम डी आई कार्यक्रम को आपसी आश्वस्त विध्वंस या एम ए डी सिद्धांत का विकल्प माना गया क्योंकि आपसी आश्वस्त जीवन (Mutual Assumed Survival) को उपलब्ध कराएगा। यह भी सोचा गया है कि गैर नाभिकीय हथियार व्यवस्थाओं की तीन नवीन प्रणालियों को अपनाकर अप्रचलित नाभिकीय हथियारों को त्याग दिया जाए। ये थीं:

i) गतिज ऊर्जा हथियार

ii) निर्देशित ऊर्जा हथियार, और

iii) [illegible] ऊर्जा हथियार

ये हथियार विभिन्न प्रकार के रसायनों विद्युत तरंगों की शक्ति, एक्सरे किरण तथा लैसर्स पर आधारित थे। एस डी आई का कार्यक्रम कई कारणों से प्रारंभ न हो सका, जो इस प्रकार थे:

क) यह बहुत खर्चीली थी।

ख) यह तकनीकी रूप में सुनिश्चित न थी क्योंकि यह बहुत अधिक जटिल थी इसलिए व्यावहारिक न थी।

ग) सोवियत संघ एक प्रतिद्वन्दी एस डी आई का निर्माण कर इसको सहजता से प्रभाव विहीन कर सकता था।

घ) रीगन ने कभी भी अपने यूरोपीय नाटो मित्रों से विचार-विमर्श न किया था और उसकी घोषणा ने उनको आश्चर्यचकित कर दिया था जिसके कारण इस कार्यक्रम का यूरोप में विरोध हुआ।

ड.) रीगन ने इण्टरमीडिएट रेंज नाभिकीय फोर्सिज संधि आई एन एफ पर हस्ताक्षर कर एस डी आई कार्यक्रम के राजनीतिक औचित्य का पूर्णतः अंत कर दिया था।

च) स्वयं संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस और सीनेट की विदेशी रिश्तों की समिति, जिसमें रिपब्लिकन एवं डेमोक्रेटिक दोनों सम्मिलित थे, का विचार था कि वे किसी भी मूल्य पर एस डी आई को पारित न होने देंगे और न ही 1972 की एण्टी बिलास्टिक मिसाइल ए बी एम संधि को नुकसान पहुंचाने की अनुमति देंगे।

इस प्रकार उन्होंने एस डी आई को रद्द कर दिया अन्यथा एस ए एल टी I तथा II के साथ ए बी एम संधि प्रभावविहीन हो जाती। यही दिशा एस टी ए आर टी बातचीत की होती। इस प्रकार हथियारों के नियंत्रण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं और उन्मुक्त नाभिकीय हथियारों की दौड़ प्रारंभ हो जाती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संयुक्त राज्य अमरीका के बहुत से वैज्ञानिकों, जेम्स स्यलेजिंजर जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों, भूतपूर्व रक्षा मंत्री मैक जॉर्ज बुण्डी, जॉर्ज एफ केन्नन तथा रॉबर्ट मैकनेमर जैसे शीत युद्ध के योद्धाओं, भूतपूर्व रक्षा मंत्री हेराल्ड ब्राउफन और उनके अन्य लोगों ने एस डी आई के मौलिक तर्क का यह कहते हुए विरोध किया कि दोनों बड़ी शक्तियों की एम ए डी क्षमता द्वारा उपलब्ध कराये गये स्थायित्व को हटाकर संयुक्त राज्य अमरीका के विश्व सुरक्षित हो जायेगा। बाद में मिखाइल गोर्बाचोब द्वारा ग्लासनोष्ट तथा पेरीस्ट्रिका के माध्यम से सोवियत संघ के भीतर क्रांतिकारी परिवर्तनों तथा पूर्वी यूरोप में लोकतंत्र की अनुमति ने एस डी आई के संपूर्ण औचित्य का अंत कर दिया।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) संयुक्त राज्य अमेरीका के राष्ट्रपति रीगन की सामरिक आधुनिकीकरण योजना के क्या मुख्य तत्व थे ?

....

....

....

....

2) रीगन के एस डी आई कार्यक्रम की आलोचना के क्या कारण थे ?

....

....

....

....

9.4.7 1984 से 1991 गोर्बाचोव युग में नाभिकीय हथियारों की दौड़ और सोवियत संघ के पतन के अंतिम दिन

रोनाल्ड रीगन के एस डी आई कार्यक्रम द्वारा जनवरी, 1985 तक किये गये नुकसान के कारण दोनों पक्षों की ओर से विशाल पुनरस्त्रीकरण जारी था और हथियारों की दौड़ की भविष्य की दिशा दोनों बड़ी शक्तियों पर निर्भर करती थी।

हथियारों की दौड़ नाभिकीय हथियारों के तीन स्तरों पर थी, अर्थात अंतरिक्ष हथियार अंतरमहाद्वीपीय हथियार और माध्यमिकी नाभिकीय हथियार।

एस डी आई कार्यक्रम के माध्यम से अंतरिक्ष का सैन्यकरण पर अमरीकी दृष्टिकोण ने हथियारों पर बातचीत को एक मुश्किल स्थिति में कर दिया था। सोवियत संघ के विदेश मंत्री आन्द्रे ग्रोमिको ने अपना तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा – यदि बाह्य अंतरिक्ष के मामले पर कोई प्रगति नहीं होती है तब तक सामरिक हथियारों के भण्डार में कमी करने की संभावना पर बातचीत करना सही होगा।'

1984 में संयुक्त राज्य अमरीका के पास हथियार प्रणालियों की कई प्रकार की पुनरस्त्रीकरण की विशाल योजना थी। संयुक्त राज्य अमरीका के पुनरस्त्रीकरण कार्यक्रम में अधिकतर समुद्र से छोड़े जाने वाली बलास्टिक मिसाइल एल एल बी एम समुद्र पर लगभग 800 नाभिकीय विस्फोटकों को स्थापित करना और हवा से हवा में मार करने वाली प्रणाली MX मिसाइल परीक्षण मिडगेट्समैन मिसाइलें, अधिक पूर्णता वाली एस एल बी एम और 100-B-1B बमों से लैस आठ त्रिशूल पनडुब्बियाँ शामिल थीं। सोवियत संघ की ओर से 1984-1985 में हथियारों के पुनरस्त्रीकरण का अभिप्राय था कि एस एस 17, एस एस 18 और एस एस 19 को एम आई आर वी प्रारूप में रखना, एक नवीन टाईफून वर्ग की पनडुब्बी और अधिक परिशुद्ध एस एल बी एम की नवीन प्रकार का परीक्षण जैसे नाभिकीय हथियारों का पुनरस्त्रीकरण करना। यह भी समाचार था कि विद्यमान 25 प्रतिशत के स्थान पर सोवियत आई सी बी एम्स के 40 प्रतिशत को गतिशील बनाने का प्रयास करना और 243 इण्टरमीडियेट रेंज के बलास्टिक मिसाइलों आई आर बी एम्स को पुनरस्थापित करना। कहने का अभिप्राय यह है कि 1984-1985 का काल सभी प्रकार की आयुद्ध प्रणालियों के विशाल शस्त्रीकरण का समय था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1985-1986 तक भी हथियारों की दौड़ की स्थिति ऐसी ही बनी हुई थी। उसमें कोई शिथिलता न आयी। राष्ट्रपति रीगन तथा महासचिव गोर्बाचोव के बीच नवम्बर, 1985 में जेनेवा में सम्पन्न हुई शिखर बैठक से हथियारों पर नियंत्रण करने की कुछ आशा पैदा हुई और वहाँ पर दोनों नेताओं ने संयुक्त बयान में कहा कि दोनों पक्ष इस बात के लिए सहमत हुए हैं कि नाभिकीय युद्ध को विजयी नहीं किया जा सकता और इसलिए इसको कभी नहीं लड़ा जाना चाहिए। वे 1987 तथा 1988 में शिखर स्तर की बैठकों को आयोजित करने के लिए भी सहमत हुए। इस उपर्युक्त बयान द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका ने यह स्वीकार किया कि एस डी आई द्वारा एम ए डी के सिद्धांत को हटाया जा सकता था और अंतरिक्ष के सैन्यकरण द्वारा एक सीमित नाभिकीय युद्ध का संचालन हो सकता था किन्तु इसको अव्यावहारिक माना गया। इसके अतिरिक्त यूरोप में हथियारों को कम करने के विषय पर बातचीत में बहुत कम प्रगति हुई।

1986-89 में भी नाभिकीय हथियारों की दौड़ की लगभग पूर्ववर्ती स्थिति बनी रही यद्यपि हथियारों के नियंत्रण की दिशा में मामूली प्रगति हुई थी। अमरीका ने अपने प्रथम MX आई सी बी एम और B-B1 को चौबीस घंटे चौकन्ना रखते हुए कार्यवाही के लिए स्थापित किया। पर्शिंग 11 मिसाइलों तथा SS-208 को यूरोप में लगाना जारी रहा। लेकिन इन उपर्युक्त कार्यवाहियों के बावजूद भी कुछ ऐसे सकारात्मक परिवर्तन हो रहे थे जिन्होंने निश्चित तौर पर दीर्घकाल में हथियारों की दौड़ पर अंकुश लगाया।

प्रथम, 27 वी सी पी एस यू कांग्रेस ने फरवरी, 1986 में पेरीस्ट्रोइका (अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण करना) और ग्लासनोस्ट (खुलापन एवं लोकतंत्रीकरण) तथा यूरोप में सैनिक टकराव को रोकने और पूर्वी यूरोप को खोलने का निर्णय लिया। दूसरे 11 तथा 12 अक्टूबर, 1986 को होने वाले रायकियाजाविक शिखर सम्मेलन ने घोषित किया कि नाभिकीय युद्ध को कभी भी विजय नहीं किया जा सकता और कभी भी नहीं लड़ा जाना चाहिए। तीसरे, स्वयं अमरीका के अंदर रीगन की जर्जर अर्थव्यवस्था और सीनेट के द्वारा एस डी आई कार्यक्रम के विरोध के कारण अमरीका के हथियारों की दौड़ योजनाओं को धक्का लगा। चतुर्थ, अमरीका तथा नाटो मित्र राष्ट्रों के साथ एस डी आई कार्यक्रम पर कभी भी सलाह मशविरा नहीं किया गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि 1986-1987 में हथियारों की दौड़ जारी थी, लेकिन निश्चय ही इसका अंत भी होने वाला था।

लेकिन 8 दिसम्बर, 1987 को इण्टरमीडिएट रेंज न्यूक्लियर फोर्सेज संधि, आई एन एफ पर सभी प्रकार के मध्यम एवं कम दूरी तक मार करने वाली मिसाइलों को समाप्त करने हेतु हस्ताक्षर किये गये। इस समझौते के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ को 1,000 से 5000 किलोमीटर तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों सहित 2695 मध्यम.दूरी वाले GLMMs को हटाना था। कम दूरी वाले अर्थात् 500 से 1000 किलोमीटर की दूरी तक मार करने वाली मिसाइलों को हटाने पर भी विचार किया गया। सोवियत संघ 1836 मिसाइलों को हटाने पर सहमत हुआ जबकि संयुक्त राज्य अमरीका 867 मिसाइलों को। आई एन एफ संधि ने ए बी एम संधि को एस डी आई द्वारा प्रभावविहीन करने से बचा लिया क्योंकि इस संधि द्वारा एस डी आई कार्यक्रम के औचित्य को और कमजोर किया गया और रीगन को इस कार्यक्रम को कांग्रेस तथा अमरीकी जनता में जारी रखना बहुत मुश्किल हो गया था। इस प्रकार इसने विश्व को हथियारों की दौड़ के एक और भयानक आयाम अर्थात् अंतरिक्ष में होने वाली इस दौड़ से बचा लिया गया।

1988-89 का वर्ष भी महत्वपूर्ण था क्योंकि शांति की दिशा में इसमें कुछ कार्य किया गया। 1988-89 के वर्ष की विशेषता अफगानिस्तान, नामीबिया, इराक-ईरान युद्ध इजराइल पी एल ओ तथा दक्षिण अफ्रीका में झगड़ों को तय करने के रूप में समझा जा सकता है। यह वह वर्ष भी था, जिसके दौरान गोर्बाचोव ने एक तरफा यूरोप में सोवियत सेनाओं तथा शस्त्रों में कटौती, सोवियत टेक डिविजनों में 40% कटौती और पूर्वी जर्मनी, चैकोस्लोवाकिया एवं हंगरी में सोवियत टैंको में 50% कटौती, करने की संयुक्त राष्ट्र में घोषणा की। इस प्रकार यूरोप में परम्परागत एवं नाभिकीय हथियारों की दौड़ के संदर्भ में यह बहुत महत्वपूर्ण राजनीतिक तथा सैनिक निर्णय था।

1980-90 के वर्ष को यूरोप के वर्ष की विशेषता के रूप में माना जा सकता है। 1989 के अंत तक पूर्वी तथा मध्य यूरोप में रूमानियाँ एवं अलबेनिया को छोड़कर लगभग सभी सोवियत मित्र देश स्वतंत्र हो चुके थे। अगस्त, 1989 में पोलैण्ड में प्रथम गैर साम्यवादी सरकार का निर्वाचन हुआ। 9 नवम्बर, 1989 को बर्लिन की दीवार को ध्वस्त कर दिया गया। हंगरी, पूर्वी जर्मनी तथा चैकोस्लोवाकिया में चुनाव कराये गये। 29 दिसम्बर, 1989 को वाकलाक हेवेल ने चैकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति के रूप में पद ग्रहण किया। दिसम्बर, 1989 में माल्टा शिखर सम्मेलन में राष्ट्रपति गोर्बाचोव ने स्टार्ट START कार्यक्रम को पुनर्गठित करने तथ उस पर आगे बढने के प्रति अपनी उत्सुकता को प्रदर्शित किया। अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने कुछ संकोच के साथ रासायनिक हथियारों पर प्रतिबंध लगाने तथा भविष्य में इस पर समझौता करने के प्रति उसने अमरीका को प्रतिबद्ध कर दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1990 का वर्ष घटनाओं से भरपूर था। जबकि यूरोप तथा दो बड़ी शक्तियाँ शांति स्थापित करने की ओर अग्रसर थे उसी समय 2 अगस्त, 1990 को इराक द्वारा कुवैत पर आक्रमण करने से खाड़ी युद्ध की चपेट में था। इसके अतिरिक्त 3 मार्च, 1990 को वारसा समझौते को रद्द कर दिया गया, था। 1 जून, 1990 को अमरीका तथा सोवियत संघ ने रासायनिक हथियारों का नष्ट करने एवं उनका उत्पादन न करने और सैन्य उपाय करने के रूप में रासायनिक हथियारों पर प्रतिबंध लगाने के लिये संधि पर हस्ताक्षर किये। यह निर्णय भी किया गया कि विश्व में 31 दिसम्बर, 1992 तक सभी रायायनिक हथियारों को नष्ट कर दिया जाएगा और केवल 5000 टन कारक को अक्षुण रखा जाएगा। फिर मिसाइल तकनीकी नियंत्रण शासन MTCR की सदस्यता का विस्तार किया जाएगा। 20 नवम्बर, 1990 को यूरोप में सदैव के लिए नाभिकीय खतरे को कम करने हेतु एक संधि एवं परम्परागत सशस्त्र सेनाओं पर एक संयुक्त घोषणा की गयी।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) गोर्बाचोव युग में नाभिकीय हथियारों की दौड़ की क्या मुख्य विशेषताएँ थीं ?

....

....

....

....

9.4.8 1991 से 1997 : सोवियत संघ के पतन के बाद नाभिकीय हथियारों की दौड़

सोवियत संघ के पतन के कारण 1991-92 का वर्ष एक ऐतिहासिक वर्ष था। वह एक ऐसा शत्रु था जिसने अमरीकी सैन्यवादियों को हथियारों की दौड़ के लिए ऊर्जा प्रदान की और उसका 14 नये राज्यों में विखण्डन हो गया। युगोस्लोवाकिया भी टूट गया और एक झटके में ही उस शत्रु का अंत हो गया जिसके कारण अमरीकी चिन्ता तथा नाभिकीय हथियारों की दौड़ के संपूर्ण राजनीतिक वैचारिक आधार का अंत हो गया।

2 अगस्त, 1990 को इराक द्वारा कुवैत पर आक्रमण करने के कारण अमरीका तथा मित्र राष्ट्रों के संयुक्त मोर्चे ने संयुक्त राष्ट्र के अधीन 17 जनवरी, 1991 को इराक पर आक्रमण किया। 28 फरवरी, 1991 को इस युद्ध का अंत इराक की पूर्ण पराजय के रूप में हुआ। परिणामस्वरूप हथियारों के व्यापार में गिरावट आयी। 1991 में हथियारों के विश्व व्यापार का मूल्य 22,114 करोड़ डालर था। यह वर्ष 1990 की तुलना में 20% प्रतिशत कम था।

1992-93 में, रूसी फेडरेशन, फ्रांस ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका R&D के अलावा नाभिकीय हथियारों की दौड़ को पूर्णतः रोकने के लिए सहमत हुए। क्षेत्रीय स्तर पर यूरोप का पूर्ण सैन्यकरण करने की ओर ठोस कदमों को उठाया गया और ऐसा सभी पूर्वी तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों द्वारा हेलेसिंकी दस्तावेज पर हस्ताक्षर करके किया गया। इसको और कारगर बनाने के लिये रिओ में पर्यावरण पर विश्व शिखर सम्मेलन हुआ और संयुक्त राज्य राष्ट्र के महासचिव ने शांति के लिये कार्यसूची की घोषणा की।

1993 तथा 1997 के बीच नाभिकीय हथियारों की दौड़ में दो अन्य महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई। प्रथम 1995 में एन पी टी का अनिश्चित विस्तार करने के लिए एन पी टी पुनार्वलोकन सम्मेलन हुआ और 24 सितम्बर, 1996 को सी टी बी टी (Comprehensive Test Van Treaty) हस्ताक्षर के लिए तैयार की गयी। संयुक्त राज्य अमरीका तथा नाभिकीय हथियारों से लैस राष्ट्रों एवं दूसरे 60 देशों ने सी टी बी टी पर हस्ताक्षर किये, किन्तु भारत ने न तो एन पी टी और न ही सी टी बी टी पर हस्ताक्षर किये। भारत सरकार का तर्क था कि उसने ऐसा नाभिकीय हथियारों के विकल्प को खुला रखने के लिए किया। भारत ने इस संदर्भ में जिस नीति का अनुसरण किया है वह हमें तीसरी दुनिया में नाभिकीय हथियारों की दौड़ के प्रश्न पर ला खड़ा करती है। आगामी भाग में इस विषय पर विवेचना की गयी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 6

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) सोवियत संघ के पतन के पश्चात नाभिकीय हथियारों की दौड़ का परीक्षण कीजिए।

....

....

....

....

9.5 तीसरी दुनिया और दक्षिण एशिया में नाभिकीय हथियारों की दौड़

नाभिकीय हथियारों की दौड़ जो शीतयुद्ध के दौरान प्रथम दुनिया में जारी रही, ने निश्चित रूप से तीसरी दुनिया पर अपना प्रभाव डाला। प्रारंभ में जर्मन ने बम की खोज की। खोज ने अमरीकी मैन हेतनपरियोजना को गति प्रदार की और जैसे ही द्वितीय विश्वयुद्ध का अंत होने को आया वैस ही सोवियत संघ की वैचारिक एवं सैनिक शक्ति के रूप में पूर्वी यूरोप में व्यस्तता ने अमरीकियों को नाभिकीय बम के निर्माण के लिये प्रेरित किया।

लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान फासीवादी जर्मनी, इटली एवं जापान को नष्ट करने के लिए साम्यवादी सोवियत संघ की आवश्यकता थी। स्टालिन की गुप्तचर एजेंसियों को अमरीका के गुप्त

नाभिकीय कार्यक्रम की जानकारी थी और पोस्टडम में स्टालिन का सन्देह उस समय सत्य साबित हुआ जब राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने स्टालिन को एक गुप्त हथियार की जानकारी प्रदान की। इस जानकारी ने बम बनाने की सोवियत इच्छा को प्रज्ज्वलित कर दिया जिससे कि वह पश्चिम के पूँजीवाद की चुनौती का मुकाबला कर सके। हिरोशिमा तथा नागासाकी पर गिराये गये बम, यद्यपि ऐसा करना वास्तव में आवश्यक न था, अमरीकी दृढता की सोवियत संघ को एक गुप्त चुनौती थी। एक प्रकार से इन घटनाओं के कारण नाभिकीय हथियारों की दौड़ का प्रारंभ हुआ। 1949 के बाद साम्यवादी चीन का माओ के नेतृत्व में उद्‌भव हुआ और ऐसा विश्वास किया जाता है कि सोवियत संघ की सहायता से चीन सोवियत मतभेद से पूर्व, नाभिकीय क्षमता को प्राप्त कर 1964 में इसका परीक्षण किया। चीन को तीसरी दुनिया का देश समझा गया और कोई भी यह देख सकता है कि किस प्रकार के राष्ट्रों की वैचारिक क्षमता को विकसित करने के लिए उनके निर्णयों को गहराई से प्रभावित किया।

9.5.1 चीन द्वारा नाभिकीय क्षमता को प्राप्त करना और दक्षिण एशिया में हथियारों की दौड़

इस प्रकार 1964 में चीन द्वारा नाभिकीय क्षमता को प्राप्त कर लेने के कारण दक्षिण एशिया में नाभिकीय हथियारों की दौड़ का प्रारंभ हुआ। जैसा कि कुछ विद्वानों का दावा है कि भारत पाक संघर्ष के कारण ही भारत नाभिकीय क्षमता को प्राप्त करने का इच्छुक है। यद्यपि यह कारक बाद के समय में शामिल हुआ। काश्मीर संघर्ष, विभाजन और फिर 1948, 1965 तथा 1971 के लगातार तीन युद्धों ने परम्परागत हथियारों की दौड़ को और तीव्र किया।

9.5.2 भारत, पाकिस्तान और नाभिकीय हथियारों की दौड़

दक्षिण एशिया में नाभिकीय हथियारों की दौड़ का जन्मदाता भारत न था। इसका प्रारंभ 1962 में चीन द्वारा भारत की भारी पराजय के बाद हुआ। इस पराजय ने हमारी सम्पूर्ण रक्षा एंव विदेश नीति पर कुठाराघात किया। इसका प्रारंभ 1964 में चीन द्वारा नाभिकीय विस्फोट करने के समाचार के साथ हुआ और भारतीय राजनीतिक एवं सैनिक व्यवस्था को इससे भारी आघात लगा। उन्होंने भारत की नाभिकीय क्षमता को विकसित करने का निर्णय किया। इस निर्णय का संभवतः 1962 की लड़ाई से पूर्व 1950 के दशक में चीन द्वारा पाकिस्तान के साथ मित्रता करने को भी प्रभावित किया। भारत के नीति निर्धारणकर्ताओं ने महसूस किया कि पाकिस्तान चीन की मित्रता संभवतः भारत के विरुद्ध होगी। 1962 के बाद फिर पीछे लौट कर न देखा गया और दक्षिण एशिया में भी नाभिकीय हथियारों की दौड़ प्रारंभ हो गयी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1974 में जब भारत ने शांतिपूर्ण नाभिकीय विस्फोटक (PNE) का परीक्षण किया फिर पाकिस्तान ने भी नाभिकीय कार्यक्रम को अपनाने का निर्णय किया। सोवियत संघ द्वारा 1979 में अफगानिस्तान पर आक्रमण करने पर द्वितीय शीतयुद्ध के प्रारंभ के साथ अमरीका ने साम्यवाद के विरुद्ध अपना संघर्ष करने के लिए पाकिस्तानी क्षेत्र को उच्च प्राथमिकता प्रदान की। इससे गहन सैनिक सहयोग और पाकिस्तान को सहायता प्रदान करने के नवीन दौर का प्रारंभ हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि पाकिस्तान के नवीन नाभिकीय हथियारों के कार्यक्रम को कुछ सहायता प्रदान करने का भी प्रारंभ हुआ।

अब दक्षिण एशिया क्षेत्र भारत द्वारा जानबूजकर अपने खुले विकल्प रखने के साथ निश्चित तौर पर नाभिकीय प्रतियोगिता का क्षेत्र बना हुआ है और भारत अपनी नाभिकीय क्षमता का प्रयोग नहीं कर रहा है। इसकी अभिव्यक्ति भारत द्वारा 1995 में पुनार्वलोकन सम्मेलन में एन पी टी तथा 24 सितम्बर, 1996 को सी टी बी टी पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर देने में भी हुई।

9.5.3 दक्षिण एशिया में प्रभुत्व का सिद्धांत

दक्षिण एशिया का मामला स्पष्ट तौर पर उस प्रभुत्व के सिद्धांत को प्रदर्शित करता है जो नाभिकीय हथियारों की दौड़ या हथियारों की दौड़ को गति प्रदान करता है। प्रथम यह यूरोप को जर्मनी की धमकी थी जिसने अमरीका को बम बनाने के लिये प्रेरित किया। इसके बाद सोवियत संघ के खतरे ने पुनः अमरीका को बम बनाने के लिए प्रेरित किया। हिरोशिमा तथा नागासाकी पर बम गिराये जाने से सोवियत संघ बम बनाने के लिए उत्सुक हुआ। साम्यवादी दुनिया को सामूहिक खतरे के कारण सोवियत संघ ने 1949 में उदित नवीन साम्यवादी राष्ट्र चीन को 1964 में परीक्षण करने के

लिए सहायता प्रदान की। 1962 में भारत की पराजय तथा चीन के साथ पाकिस्तान की मित्रता के कारण भारत को 1974 में नाभिकीय क्षमता को विकसित करना पड़ा। भारतीय परीक्षण के साथ भारत द्वारा लगातार पाकिस्तान को पराजित करने से पाकिस्तान ने भी नाभिकीय क्षमता को प्राप्त करने के लिए प्रयास प्रारंभ कर दिये। तीसरी दुनिया के अन्य देशों द्वारा नाभिकीय बम प्राप्त करने के दृष्टांत भी इसी प्रकार के थे जैसे कि ईरान एवं इराक के नाभिकीय कार्यक्रम जीवित खतरों के कारण अफ्रीका ने भी इस कार्यक्रम को अपनाया। लैटिन अमरीका दो बड़े देशो अर्जेनटिना तथा ब्राजील भी नाभिकीय क्षमता वाले दूसरे अन्य राज्य हैं।

9.5.4 दक्षिण एशिया में हथियारों की दौड़ में सामान्य जटिलताएं

पूर्णतः यह कहा जा सकता है कि तीसरी दुनिया की नाभिकीय हथियारों की दौड़ निश्चित तौर पर प्रथम दुनिया की नाभिकीय हथियारों की दौड़ की देन है और तीसरी दुनिया में होने वाले आंतरिक संघर्षों ने इसे जारी रखा। शीतयुद्ध के सैनिक गुटों की व्यवस्था ने इस प्रक्रिया की सहायता की। सोवियत संघ के पतन के पश्चात् तथा इसके पूर्व एवं बाद में पश्चिम के नाभिकीय शस्त्रों में भारी कटौती के कारण विश्व में इस दृष्टिकोण के अनुसार नाभिकीय शांत स्थापित हो चुकी है कि हम सदैव नाभिकीय सर्वनाश की धार पर नहीं रहे हैं। लेकिन इसके बावजूद भी तीसरी दुनिया में संघर्षों के समापन न होने तक अर्थात् भारत-पाक संघर्ष-इजराइल संघर्ष, तीसरी दुनिया में नाभिकीय हथियारों की दौड़ के निश्चित कारण है।

बोध प्रश्न 7

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) दक्षिण एशिया के हथियारों की दौड़ को आगे बढ़ाने में क्या कारक है ?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2) नाभिकीय हथियारों में वृद्धि के विषय पर भारत के दृष्टिकोण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

9.6 सारांश

इस इकाई के सारांश की कुछ मुख्य विशेषताओं के रूप में लिखा जा सकता है, जो इस प्रकार हैं :

क) सर्जनात्मक तथा विध्वंसक अपने इन दोनों रूपों में अणु की शक्ति की खोज 20वीं शताब्दी के इतिहास की संभवतः महानतम घटना थी। अमरीका द्वारा नाभिकीय बम के सर्जन एवं विस्फोट ने व्यापक प्रभाव के साथ इसकी शक्ति को प्रदर्शित किया।

ख) पूंजीवादी पश्चिम एवं समाजवादी पूर्व के मध्य विचारधारात्मक संघर्ष 1991 में एक पक्ष या सोवियत संघ के पतन तक नाभिकीय हथियारों की दौड़ को प्रोत्साहित करने वाला एकमात्र महत्वपूर्ण कारक था।

ग) समाजवादी सोवियत संघ के पतन के बावजूद भी नाभिकीय शस्त्र सैन्य शक्ति का आधार बना हुआ है और भारत, पाकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, इजराईल, ईरान, इराक और उत्तर कोरिया

घ) आज भी मानवजाति के लिए नाभिकीय खतरा बना हुआ है और पूर्ण निरस्त्रीकरण की आशा बहुत क्षीण है। एकमात्र संभावित मार्ग यह है कि हथियारों की संख्या में कटौती की जाये तथा इस तकनीक को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत राष्ट्रों को अपने झगड़ों को सुलझाना चाहिए।

9.7 शब्दावली

ए बी एम : एण्टी ब्लास्टिक मिसाइल सिस्टम : यह एक ऐसी हथियार प्रणाली है, जिसको अवरोधक द्वारा प्राक्षेपिक आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा करने तथा ब्लास्टिक मिसाइलों एवं हवा में उनके विस्फोटकों को नष्ट करने के लिए बनाया गया है।

बी डी एम : ब्लास्टिक मिसाइल डिफेन्स : ऐसी हथियार व्यवस्था जो अवरोध करने में सक्षम हो और प्राक्षेपिक मिसाइल आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा के लिए हवा में ही नाभिकीय हथियारों को नष्ट कर सकती हो।

सी एफ ई संधि : यूरोप में परम्परागत सशस्त्र सेनाओं पर संधि दी ट्रीटी ऑन कन्वेन्शनल आर्म्ड फोर्सेज इन यूरोप, यूरोप में सुरक्षा तथा सहयोग पर सी एस सी ई बातचीत हुई। इस प्रक्रिया का प्रारंभ 1973 में हुआ और नाटों तथा वीटो देशों द्वारा 1990 में हस्ताक्षर किये गये तथा 9 नवम्बर, 1972 को लागू हुई।

नाटो : उत्तर अटलांटिक संधि संगठन : दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद सोवियत संघ का विरोध करने के लिए अमरीका और पश्चिमी यूरोप में उसके मित्रों ने इसको बनाया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वोटो : वारसा संधि संगठन : नाटो सैनिक गठबंधन का मुकाबला करने के लिए 1955 में सोवियत संघ ने वोटो संगठित किया। 1991 में यह समाप्त हो गयी।

आई सी बी एम एम : इण्टर कॉन्टिनेटल ब्लास्टिक मिसाइल : भूमि से दागे जाने वाली ब्लास्टिक मिसाइल। यह 5500 किलोमीटर से अधिक दूरी तक निशाने पर विस्फोटक के साथ मार करने में सक्षम है।

आई एन एफ : इण्टरमीडिएट रेंज न्यूक्लियर फोर्सेज : यह नाभिकीय हथियारों से लैस होकर 1000 किलोमीटर से 5500 किलोमीटर की दूरी तक मार कर सकती है।

एम आई आर बी : मल्टीपल इनडेपेंडेंटली टारगेटऐबल री : एण्टरी व्हीकल्स : री एण्टरी व्हीकल्स को नाभिकीय प्राक्षेपिक मिसाइलों द्वारा ले जाया जाता है और इनको प्रक्षेप पथों के साथ अलग-अलग निशानों की ओर निर्देशित किया जा सकता है, एम आर बीज से ये विशिष्ट होते हैं। एक मिसाइल दो या अधिक आर बीज को ले जा सकता है।

एम आर वी : मल्टीपल री एण्टरी व्हीकल्स : री एण्टरी व्हीकल्स को नाभिकीय मिसाइल द्वारा ले जाया जाता है इसको उसी समान निशाने की ओर निर्देशित किया जाता है जैसे कि मिसाइल के दूसरे आर बीज को।

एम ए डी : आपसी सुनिश्चित विध्वंस (Mutual Assumed Destruction) : यह ऐसी पारस्परिक निवारक की अवधारणा है जो नाभिकीय हथियारों की शक्ति की क्षमता पर आधारित है। नाभिकीय आक्रमण होने के बाद एक दूसरे को असहनीय नुकसान पहुँचाने की क्षमता रखता है।

मुक्त आकाश संधि	:	इस संधि पर 1992 में 25 सी एस सी ई देशों ने हस्ताक्षर किये। इस संधि द्वारा वानकोवेर से ब्लादिवोस्तोक तक के हस्ताक्षर राज्यों के क्षेत्र पर हथियार विहीन सैनिक या नागरिक जासूसी करने वाले हवाई जहाजों को उड़ान भरने की अनुमति प्रदान की गयी।
एस एल बी एम	:	सबमैरिन लॉन्यड ब्लास्टिक मिसाइल : 5500 किलोमीटर से अधिक दूरी तक पनडुब्बी से छोड़े जाने वाली ब्लाटिक मिसाइल।
स्टार्ट : I संधि	:	सामरिक शस्त्रों में कटौती संधि : संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ के बीच सामरिक नाभिकीय हथियारों में कटौती के लिए होने वाली संधि।
सामरिक नाभिकीय हथियार	:	आई सी बी एम एस एल बी एम और बमवर्षक हवाई जहाज इस श्रेणी में आते हैं और अंतर्महाद्वीपीय क्षेत्र सामान्यत : 5500 किलोमीटर से अधिक दूरी तक मार करने वाले नाभिकीय हथियारों से लैस होते हैं।
भय दिखाकर निवारण का सिद्धांत	:	सैद्धांतिक तौर पर इसका अभिप्राय है कि जिस आपके शत्रु ने आपके विरुद्ध आणविक हथियारों को लगाया हो आप भी आणविक बमों को प्राप्त कर उसके विरुद्ध खतरा पैदा कर दो।
व्यापक प्रतिकार का सिद्धांत	:	यह नाभिकीय हथियारों को लागू करने की एक सामरिक नीति थी। 1959 में राष्ट्रपति ट्रूमैन के पश्चात् राष्ट्रपति आइजनआवर के द्वारा पद ग्रहण करने पर अमरीकी विदेश मंत्री जॉन फास्टर डुलेज ने तैयार की थी। व्यापक प्रतिकार का सिद्धांत किसी भी साम्यवादी से प्रेरित आक्रमण के प्रति उत्तर देने पर आधारित था। भले ही यह आक्रमण छोटा हो किन्तु इसका जवाब सोवियत संघ तथा चीन के बड़े केन्द्रों पर एक व्यापक नाभिकीय आक्रमण से दिया जाना था।
सीमित युद्ध का सिद्धांत	:	सीमित युद्ध के सिद्धांत का प्रतिपादन 1940 के दशक के अंत में कैप्टन बसील लिडडेल हार्ट द्वारा किया गया था। 1946 में प्रकाशित उसने अपनी पुस्तक *दी रिवोल्यूशन इन वारफेयर* में तर्क प्रस्तुत किया कि जिस समय दोनों पक्षों के पास आणविक हथियार हों तब पूर्ण युद्ध करना मूर्खता है .... आणविक ताकत के साथ किसी भी प्रकार के असीमित युद्ध को लड़ना मूर्खता से भी बदतर है, यह पारस्परिक आत्महत्या होगा। उसका कहना था कि इसलिए युद्ध एक नियंत्रित कार्य तथा बगैर बर्बरतापूर्ण अत्याचारों के होना चाहिए। लेकिन फिर भी अमरीका के कई सामरिक नीति निर्धारणकर्ताओं उसके सीमित युद्ध की अवधारणा की यह कहते हुए आलोचना की कि यह व्यावहारिक रूप में असम्भव है।
लचीले जवाब का सिद्धांत	:	इसको 1967 में नाटो द्वारा धारण किया गया और यह सभी प्रकार के आक्रमण या खतरों के लिए एक लचीला तथा उचित जवाबों के संतुलित क्षेत्र, परम्परागत तथा नाभिकीय हथियारों के प्रयोग पर आधारित था। इन जवाबी कार्यवाहियों को उचित राजनीतिक नियंत्रण के अंतर्गत किया जाना था। इनको पहले आक्रमण का निवारण करने हेतु तैयार किया गया और फिर शांति को बनाये रखना और यदि आक्रमण हो जाता है तब आगे की रक्षा की अवधारणा के अंतर्गत नाटो क्षेत्र में सुरक्षा बनाये रखना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लारेन्स फ्रीडमैन : *दी इवोलूशन ऑफ न्यूक्लियर स्ट्रेटजी*

पी एम एस ब्लैकेट्ट : *एटामिक वेपन्स एण्ड ईस्ट वेस्ट रिलेशन्स*

हेडली बुल : *दि कन्ट्रोल ऑफ दि आर्म्स रेस*

मोरटॉन हेल्पेरिन : *लिमिटेड वार इन दि न्यूक्लियर ऐज*

फ्रेड ईकल : *कैन न्यूक्लियर डिटेरेन्स लास्ट आउट दि कन्ट्री*

राबर्ट जेरविस : *परसेप्सनल एण्ड मिस पर सेप्सन्स इन इण्टरनेशनल पॉलिटिक्स*

हरमैन कहन : *ऑन ऐसकेलेशन मेटाफर्स एण्ड सीनियरिओज*

हेनरी कीसिंजर : *न्यूक्लियर वेपन्स एण्ड फ़ोरेन पॉलिसी*

थामस शैलिंग : *आर्म्स एण्ड इन्फलूयन्स*

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

DIKSHANT IAS

1) भाग 9.2 देखें।

2) भाग 9.2 देखें एवं उपभाग 9.2.3 देखें।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) भाग 9.3 देखें।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 9.4 देखें तथा उपभाग 9.4.1 से 9.4.4 तक देखें।

2) भाग 9.4 तथा उपभाग 9.4.3 देखें।

बोध प्रश्न 4

1) उपभाग 9.4.5 तथा 9.4.6 को देखें।

2) भाग 9.4.6 देखें।

बोध प्रश्न 5

1) उपभाग 9.4.7 को देखें।

बोध प्रश्न 6

1) उपभाग 9.4.8 को देखें।

बोध प्रश्न 7

1) भाग 9.5 को देखें।

2) उपभाग 9.5 तथा उपभाग 9.5.2 को देखें।

इकाई 10 निरस्त्रीकरण और शांति आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 निरस्त्रीकरण का तर्क

10.3 निरस्त्रीकरण का संक्षिप्त इतिहास

10.4 निरस्त्रीकरण के समझौते और संधियाँ

10.5 शांति की अवधारणा

10.6 शांति आंदोलन

10.7 भारत, शांति आंदोलन और निरस्त्रीकरण

10.7.1 भारत और एन पी टी

10.7.2 भारत और सी टी बी टी

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS

Call us @7428092240

निरस्त्रीकरण और शांति मानव जाति के वांछित उद्देश्य हैं। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- निरस्त्रीकरण और शांति की अवधारणाओं को परिभाषित कर सकेंगे;
- दुनिया में निरस्त्रीकरण और शांति के आंदोलनों का इतिहास खोज सकेंगे; और
- अभी तक की निरस्त्रीकरण संधियों पर भारत की भूमिका और विचार के बारे में चर्चा कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

किसी राज्य द्वारा सैन्य शक्ति तथा हथियारों में कटौती करने की प्रक्रिया को निरस्त्रीकरण कहते हैं। निरस्त्रीकरण के रास्ते का चुनाव कोई राज्य या तो स्वेच्छा से करता है या फिर बाह्य शक्तियों के दबाव में आकर करता है अथवा क्षेत्रीय या अंतर्राष्ट्रीय संधियों के तहत करता है। निरस्त्रीकरण आंशिक रूप से हो सकता है या फिर व्यापक रूप से भी हो सकता है। आंशिक निरस्त्रीकरण का अभिप्राय ज्यादा खतरनाक समझे जाने वाले विशेष प्रकार के हथियारों में कटौती करना है। समग्र या व्यापक निरस्त्रीकरण का अभिप्राय है सभी प्रकार के हथियारों की समाप्ति करना है। समग्र निरस्त्रीकरण एक आदर्श स्थिति है और आंशिक निरस्त्रीकरण एक व्यावहारिक उपाय है जिसका अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के मौजूदा संदर्भ में निरस्त्रीकरण के हिमायती देश आंशिक निरस्त्रीकरण की ही बात करते हैं। घोषित अंतिम लक्ष्य तो सामान्य या संपूर्ण निरस्त्रीकरण ही है लेकिन तात्कालिक मूलभूत चिंता विध्वंसक हथियारों में कटौती करने की है।

10.2 निरस्त्रीकरण का तर्क

निरस्त्रीकरण की अवधारणा इस समझ पर आधारित है कि अस्त्र-शस्त्रों की उपस्थिति या भण्डारण से तनाव पैदा होता है और जिसकी परिणति युद्ध में बदल सकती है। हथियारों के भंडारण से

राज्यों के आपसी संबंधों में संदेह, कटुता और शत्रुता की भावना पैदा होती है। राज्यों के बीच पारस्परिक विश्वास पैदा करने और शत्रुता एवं युद्धों की समाप्ति के लिए निरस्त्रीकरण के तर्क के अनुसार, अस्त्र-शस्त्रों की समाप्ति की जरूरत होती है, क्योंकि वे ही इन सब बुराइयों की जड़ हैं।

मानव सभ्यता को शांतिपूर्ण बनाए रखने और उसकी प्रगति के लिए निरस्त्रीकरण अत्यंक आवश्यक है। हथियारों की बढती हुई होड़, सैन्य शक्ति में बढोत्तरी और अस्त्र-शस्त्रों की तकनीक और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास पर बढ़ते निवेश से मानव जाति की प्रगति और शांति के लिए नया खतरा पैदा हो गया है। नाभिकीय (परमाणु) अस्त्रों के आविष्कार से एक और विश्वयुद्ध की स्थिति में दुनिया में प्रलय और मनुष्य जाति की समाप्ति का खतरा पैदा हो गया है। निरस्त्रीकरण से ही दुनिया में प्रलय के भय को समाप्त करके तनाव मुक्त वातावरण बनाया जा सकता है। इसलिए लोगों में निरस्त्रीकरण की चेतना प्रबल हुई है। परिष्कृत सैन्य प्रौद्योगिकी के आविष्कार और विकास से सभी देश असुरक्षित महसूस करते हैं। सैन्य सुरक्षा के मामले में किसी भी देश का पूरी तरह आत्म निर्भर होना असंभव हो गया है। इसलिए निरस्त्रीकरण ही दुनिया को सुरक्षित रखने का एकमात्र रास्ता है।

सैन्य उद्योग में अंधाधुंध निवेश की प्रवृत्ति के चलते बहुत सा धन और उपयोगी संसाधन, जिन्हें विकास कार्यों में लगाया जा सकता है, हथियारों की होड़ में खप जाते हैं। सैन्य उद्योग में निवेश में बढोत्तरी के परिणामस्वरूप दुनिया के एक बड़े हिस्से में बढ़ती हुई गरीबी और भी तेजी से बढ़ने लगेगी तथा सभी देशों में सामाजिक तनाव विस्फोटक स्थिति में पहुँच जाएगा। सुरक्षा में होने वाले भारी खर्चों में कमी तभी संभव है जब कम से कम आंशिक निरस्त्रीकरण का लक्ष्य पूरा हो सकेगा।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

DIKSHANT IAS

1) निरस्त्रीकरण के तर्क की व्याख्या कीजिए।

Call us @7428092240

....

....

....

....

10.3 निरस्त्रीकण का संक्षिप्त इतिहास

निरस्त्रीकरण की अवधारणा बहुत पुरानी है। बहुत पहले से ही यह अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा का औजार रहा है। इसका इतिहास 546 ई. पू. में खोजा जा सकता है जब आपस में युद्धरत चीन के रजवाड़ों ने एक सम्मेलन में निरस्त्रीकरण की एक संधि पर हस्ताक्षर करके लंबे समय से चले आ रहे आपसी युद्धों के अंत की घोषणा की थी।

आधुनिक काल में निरस्त्रीकरण के सरोकार में वृद्धि हुई है। इस दिशा में पश्चिमी देशों और एक दूसरे के प्रति गहरी बैठी आशंका और अविश्वास के चलते सारे प्रयास असफल रहे। इस संबंध में पश्चिमी शक्तियाँ और रूस ने विशेष रूप से प्रयास किए किन्तु, निरस्त्रीकरण के जो प्रस्ताव पेश किए जाते रहे हैं इनमें प्रस्तावक के हितों की रक्षा पर विशेष जोर रहता है। लेकिन ऐसा नहीं है कि इस युग में सफल और स्थाई निरस्त्रीकरण की संधियाँ ही नहीं हुई। 1817 में अमरीका और इंग्लैंड ने अमरीका कनाडा सीमा क्षेत्र को सैन्य बल से मुक्त रखने का समझौता किया था। रूस-बगौट समझौते के नाम से जाना जाने वाला यह समझौता आज भी जारी है।

पहला अंतर्राष्ट्रीय निरस्त्रीकरण सम्मेलन 1899 में हेग में आयोजित हुआ था। इसमें लगभग सभी प्रमुख यूरोपीय देशों ने हिस्सा लिया था। सम्मेलन बिना किसी खास सफलता के समाप्त हो गया था। लेकिन फिर भी सम्मेलन में कुछ घातक हथियारों की पाबंदी के प्रस्ताव पारित हुए जिसमें राज्यों से सैन्य खर्चों में कटौती करने को कहा गया था जिससे उस धन को विकास कार्यों में लगाया जा सके।

हेग में ही, दूसरा अंतर्राष्ट्रीय निरस्त्रीकरण सम्मेलन 1907 में हुआ। यह सम्मेलन भी विभिन्न देशों के बीच हथियारों की बढ़ती होड़ को रोकने में असफल रहा। 1914 में जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया तो युद्ध में शरीक सभी देशों ने विभिन्न सम्मेलनों और बैठकों में दिए आश्वासनों और प्रतिबद्धताओं को भूलकर सभी ने समझौतों को तोड़ डाला था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद, 1920 में "लीग ऑफ नेशन्स्" (राष्ट्र संघ) नाम से पहले अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई। यह दरअसल, निरस्त्रीकरण से संबंधित मुद्दों पर बहस के लिए मंच के रूप में काम करने लगा। लीग के घोषित उद्देश्यों में निरस्त्रीकरण प्रमुख मुद्दा था। लीग के तत्वाधान में निरस्त्रीकरण पर अध्ययन हुए तथा सम्मेलन आयोजित किए गए। 1932 में लीग ऑफ नेशन्स ने प्रथम निरस्त्रीकरण सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन में निरस्त्रीकरण के बारे में प्रक्रिया संबंधी चर्चा की गई थी।

लीग ऑफ नेशन्स के अलावा भी निरस्त्रीकरण पर सम्मेलन होते थे। अमरीका ने 1922 में वाशिंगटन में एक नौसेना सम्मेलन का आयोजन किया था। वाशिंगटन सम्मेलन में युद्धपोतों के आकार और उनकी क्षमता को सीमित रखने का प्रस्ताव पारित हुआ। सम्मेलन ने अगले दस सालों के लिए युद्धपोतों के निर्माण पर प्रतिबंध लागू करने का भी प्रस्ताव पारित किया। वाशिंगटन संधि के तहत प्रशांत महासागर में जहाँ तहाँ नौसैनिक अड्डे बनाने पर भी पाबंदी लग गई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हुए व्यापक विनाश और जापान में अमरीका द्वारा गिराये गये परमाणु बमों के विस्फोट के तत्कालीन और दूरगामी भयावह परिणामों से लोगों में शांति और निरस्त्रीकरण की चेतना बढ़ी। युद्ध की समाप्ति पर एक विश्व संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। संयुक्त राष्ट्र संघ की पहली ही आम सभा में संयुक्त राष्ट्र परमाणु ऊर्जा आयोग (यू एन ए ई सी) का गठन किया गया। इस आयोग का काम है, हथियारों की होड़ खत्म करने की दिशा में विशिष्ट संस्तुतियाँ पेश करना। संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने इस आयोग को विकास कार्यों में शातिपूर्ण उपयोग की योजना बनाने की भी जिम्मेदारी सौंपी है।

बोध प्रश्न 2

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) प्रथम निरस्त्रीकरण समझौता कब हुआ और इस पर हस्ताक्षर करने वाले कौन-कौन से देश थे ?

....

....

....

....

2) निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

क) रूस-बगौट समझौता

....

....

....

....

ख) हेग निरस्त्रीकरण सम्मेलन

....

....

....

....

ग) प्रथम विश्व निरस्त्रीकरण अधिवेशन

....

....

....

....

घ) संयुक्त राष्ट्र परमाणु ऊर्जा आयोग (यू एन ए ई सी)

....

....

....

....

10.4 निरस्त्रीकरण समझौते और संधियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह परिणामों को देखते हुए निरस्त्रीकरण के प्रयासों में तेजी आई। युद्ध के तुरन्त बाद अमरीका ने एक प्रस्ताव रखा जिसे बरूच योजना के नाम से जाना जाता है। अमरीकी योजना के प्रत्युत्तर में सोवियत संघ ने भी एक योजना प्रस्तावित की जिसे ग्रामिको योजना के नाम से जाना जाता है। ग्रोमिको योजना के प्रावधान बरूच योजना के प्रावधानों के विपरीत थे। इन योजनाओं की असफलता के बाद दोनों पक्षों ने कई अन्य प्रस्ताव प्रस्तुत किए। 1955 में अमरीका ने मुक्त आकाश योजना (ओपन स्काई प्लान) प्रस्तावित की। यह योजना भी नामंजूर हो गई। इन प्रस्तावों के स्वरूप ऐसे बनाए गए थे कि प्रस्तावक पक्ष का अपने हथियारों के भंडार पर एकाधिकार अनिश्चित काल के लिए बना रहे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1960 के दशक की शुरूआत से निरस्त्रीकरण आंदोलन में तेजी आने लगी। 1950 के दशक में अमरीका और सोवियत संघ दोनों ही देशों की सरकारों में बदलाव आया। अमरीका में 1952 के चुनाव से आइजन हावर अमरीका के राष्ट्रपति बने और स्टालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ के नेतृत्व में परिवर्तन हुआ। इसके अलावा अब तक सोवियत संघ ने भी नाभिकीय अस्त्रों की क्षमता हासिल कर ली थी। अमरीका की तरह सोवियत संघ भी परमाणु शक्ति बन गया। इन घटनाओं ने निरस्त्रीकरण का पथ प्रशस्त किया।

1963 में निरस्त्रीकरण के एक समझौते पर हस्ताक्षर हुआ। इस समझौते के तहत वातावरण (आकाश और जल) में परमाणु परीक्षण प्रतिबंध कर दिया गया। अंतरिक्ष में परमाणु अस्त्रों की तैनातगी रोकने के लिए 1967 में एक और संधि पर हस्ताक्षर हुए। 1968 में परमाणु अप्रसार संधि (एन पी टी पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि ने किसी नए देश को परमाणु शक्ति हासिल करने पर पाबंदी लगा दी। भारत समेत कई देशों ने इस संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए। भारत इस संधि को भेदभावपूर्ण मानता है। 1971 में एक अन्य संधि हुई जिसके तहत समुद्र तटों और सागार की तलहटी में परमाणु अस्त्र तैनात करने पर पाबंदी लगा दी गई। 1972 में जैविक हथियारों को प्रतिबंधित करने के लिए एक सम्मेलन आयोजित हुआ। सामरिक अस्त्र परिसीमन संधि के लिए, अमरीका और सोवियत संघ के बीच 1970 के दशक की शुरूआत से ही वार्ताओं का दौर प्रारंभ हो गया। पहली सामरिक अस्त्र परिसीमन संधि (साल्ट-1 पर 1972 में और साल्ट-2 पर 1979 में दोनों देशों ने हस्ताक्षर किए। पहले साल्ट समझौते का प्रमुख सरोकार प्रक्षेपास्त्र निरस्त्रीकरण (ए बी एम – एंटी बैलिस्टिक मिसाइल) प्रणाली के भंडारण का परिसीमन करना है। इसी सामरिक अस्त्र परिसीमन संधि – साल्ट-2 की वार्ता की शुरूआत 1974 में हुई और 1979 में अमरीका और सोवियत संघ ने संधि को अंतिम रूप देते हुए उस पर हस्ताक्षर किए। इस संधि की शर्तों के अनुसार संधि के दोनों पक्षों को अपने सामरिक हथियारों का एक हिस्सा नष्ट करना था। लेकिन इस संधि की अभिपुष्टि अभी तक नहीं हो पाई है। अमरीकी सीनेट ने संधि की अभिपुष्टि नहीं की। इसे बिना अधिकारिक सम्मति के ही लागू किया गया। अमरीका और सोवियत संघ ने 150 किलो टन से ज्यादा के विस्फोट के परीक्षणों पर प्रतिबंध लगाने वाली एक संधि पर 1974 में हस्ताक्षर किए थे। यह संधि भी अभिपुष्ट नहीं हो

पाई है। 1987 में अमरीका और सोवियत संघ ने मध्यम दूरी परमाणु शक्ति (आई एन एफ) संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि में दोनों देशों द्वारा जमीन पर तैनाव मध्यम दूरी के प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करने का अनुमोदन किया गया था। इन समझौतों से विश्व को घातक हथियारों से मुक्ति तो नहीं मिल पाई है, फिर भी निरस्त्रीकरण के उद्‌देश्यों की प्राप्ति की दिशा में कुछ प्रगति तो अवश्य हुई है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

क) एन पी टी

....

....

....

....

ख) साल्ट

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.5 शांति की अवधारणा

शांति मानव जाति की शाश्वत अभिलाषा है। इसे जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यों की सूची में रखा जाता है। "हर कीमत पर शांति", "सबसे बेकार किस्म की शांति भी सबसे न्यायपूर्ण युद्ध से अच्छी होती है", "युद्ध कभी अच्छा नहीं होता न शांति कभी बुरी"। उपर्युक्त उद्धरणों से शांति का महत्व रेखांकित होता है। शांति की नई परिभाषा है युद्ध और तनाव की अनुपस्थिति। शांति दो या अधिक देशों के बीच सौहार्द, सामंजस्य और समझौते के रूप में भी परिभाषित की जाती है। शत्रुता, हिंसा या युद्ध का विलोम है, शांति। शांति युद्ध से मुक्ति की अवस्था है।

मनुष्य के शाश्वत स्वप्न, शांति की स्थापना के लिए बहुत से प्रस्ताव पारित हुए हैं, और योजनाएँ बनी हैं। इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए राज्यों के संघ बनाने, लोगों और देशों के बीच संधियों, वैधानिक प्रणालियों में सुधार करने जैसे उपायों पर बहस चलती रही है।

इस संदर्भ में परिवर्तन से शांति की अवधारणा भी बदल जाती है। मध्यकालीन यूरोप में शांति का मतलब था "काफिरों" के विरुद्ध ईशाइयत वाले राज्यों की एकता स्थापित करना। यह शांति की सांप्रदायिक अवधारणा थी। इस काल में भी कुछ विद्वान ऐसे थे जो वस्तुगत शांति की अवधारणा को ज्यादा वस्तुगत बनाने पर जोर दे रहे थे और इस तरह से यह सार्वभौमिक होती गयी। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के दौर में शांति की माँग बढी, क्योंकि इसे पूँजीवादी विकास में सहायक माना जाता था। फ्रांसीसी क्रांति के दिनों में क्रांतिकारियों ने शांति की एक नई अवधारणा प्रस्तुत की। इस नई अवधारणा के अनुसार, विवेक, तर्क और मूलभूत मानवधिकार शांति के घटक हैं। राष्ट्र राज्यों के संघ या अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में मध्यस्थता की व्यवस्था जैसे मुद्‌दों पर बहस में तेजी आई। देशभक्ति के नाम पर युद्धों के लिए लोगों को लामबंद किया जाता रहा है लेकिन लोग शांति की आवश्यकता के प्रति ज्यादा जागरूक होने लगे हैं। शांति जन सामान्य का सरोकार बन गई।

19वीं शताब्दी में शांति संगठनों एवं आंदोलनों की उपस्थिति तीव्रता से महसूस की जाने लगी।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहली बार शांति संगठनों का गठन हुआ और सम्मेलन आयोजित किए गए। 19वीं शताब्दी में ही मार्क्सवाद और मार्क्सवादी आंदोलनों के चलते शांति आंदोलन को एक नया आयाम मिला। शांति की इस नई अवधारणा के अनुसार शांति की स्थापना सामाजिक परिवर्तन के जरिए ही की जा सकती है। वर्गविहीन समाज में ही शांति की स्थापना संभव है। शांति की अब दो परस्पर विरोधी अवधारणाएँ हैं : पूँजीवादी और मार्क्सवादी।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) लोग शांति की कामना क्यों करते हैं ?

....

....

....

....

....

10.6 शांति आंदोलन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सेंट साइमन की पुस्तक "रिआर्गनाइजेशन ऑफ यूरोपियन सोसाइटी" (यूरोपीय समाज का पुनर्गठन) के प्रकाशन के साथ-साथ शांति संगठनों का गठन शुरू हो गया। पहले शांति संगठन की स्थापना अमरीका में हुई। शुरूआती दौर के शांति संगठनों के बहस के मुद्दे थे : उचित और अनुचित युद्ध, हिंसा की आवश्यकता और उपनिवेशवाद आदि। धीरे-धीरे दासता, नारी मुक्ति, सार्वजनिक शिक्षा एवं मानवाधिकार जैसे सामाजिक मुद्दे शांति संगठनों की बहस का विषय बनते गए। धीरे-धीरे राष्ट्रीय शांति संगठनों को एक अंतर्राष्ट्रीय शांति संगठन की आवश्यकता महसूस होने लगी। 19वीं शताब्दी के मध्य के आसपास अंतर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलनों में राष्ट्रों के एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के गठन और झगड़ों के निपटारे के लिए अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना पर बहसें होती रहीं थी। इन सम्मेलनों में औपनिवेशिक लोगों की आजादी पर भी चर्चाएं हुई। व्यक्तिवादियों ने इस बात की हिमायत शुरू की कि राज्यों के बीच मुक्त व्यापार के सिद्धांत के आधार पर शांति की स्थापना की जा सकती है। इन संगठनों पर ज्यादातर जनतांत्रिक उदारवादियों का वर्चस्व था जिन्होंने बहुत से क्रांतिकारी फैसले लिए किंतु उन्हें लागू करने में असफल रहे।

1870 में मार्क्सवाद के अनुयायियों ने "फस्ट इंटरनेशनल" इंटरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसिएशन (कामगारों की अंतर्राष्ट्रीय परिषद की स्थापना की। फर्स्ट इंटरनेशनल की मान्यता में मजदूर वर्ग के आंदोलन का उद्देश्य नीहित है, सामाजिक परिवर्तन जो कि विश्व शांति स्थापना की अनिवार्य शर्त है। फर्स्ट इंटरनेशनल ने एक ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित किया, जिसके अनुसार :

"युद्ध का भार मुख्य रूप से मजदूर वर्ग पर पड़ता है। युद्ध मजदूरों को उनकी आजीविका के साधन से ही नहीं बेदखल करता बल्कि एक दूसरे का खून बहाने को भी बाध्य करता है। सशस्त्र क्रांति से उत्पादन शक्तियाँ कमजोर होती है। यह मजदूरों से शांति के लिए व्यर्थ श्रम की माँग करती है जो कि आम जन की भलाई की आवश्यक शर्त है। इसे नई व्यवस्था में नए तरीके से संपादित करना होगा। एक ऐसी व्यवस्था में जिसमें एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण का सिलसिला समाप्त हो जाए। मार्क्सवादी शांति आंदोलनों ने शांति आंदोलन में एक नया आयाम और जोड़ा और आंदोलन के नेतृत्व से आदर्शवादियों को हटाकर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया।"

20वीं शताब्दी की शुरूआत के साथ अंतर्राष्ट्रीय मंच पर शांति संगठनों की भरमार हो गई। लेकिन ये संगठन 1914 में प्रथम विश्व युद्ध को रोकने में असफल रहे। युद्ध के दौरान इनमें से कई संगठनों ने अपना आदर्शवादी सार्वभौमिक सिद्धांत छोड़ कर राष्ट्रीय युद्ध के पक्ष में जुट गए। युद्ध के बाद शांति, लेनिन के शांति के सूत्र और राष्ट्रपति विल्सन के 14 सूत्र आदि प्रस्ताव दुनिया के

...प्रश किए गए। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध को नहीं रोका जा सका। यह युद्ध अत्यंत भयावह था। इस युद्ध में पहली बार परमाणु बम जैसे भयंकर प्रलयंकारी हथियारों का उपयोग हुआ। इस युद्ध का दुनिया पर भयंकर प्रभाव पड़ा। युद्ध की समाप्ति के साथ एक नए युग की शुरूआत हुई – परमाणु युग की। नए युग ने नई आशंकाओं को जन्म दिया। यदि परमाणु युद्ध छिड़ा तो मानव सभ्यता का विनाश अवश्यंभावी है, ऐसा डर लोगों के मन में बैठ गया है। परमाणु युद्ध की आशंका के भय ने शांति की नई अवधारणाओं को जन्म दिया और शांति आंदोलन में नई बहसें चल पड़ी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तो शांति आंदोलन ने विश्व शांति संगठन (वर्ल्ड पीस कौंसिल) के तत्वाधान में एक जनांदोलन का रूप ले लिया। दुनिया के तमाम देशों में संगठन ने अपना सांगठनिक जाल फैलाया। ये संगठन विश्व शांति के आदर्शों का प्रचार करते थे। इस आंदोलन में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखक, दार्शनिक और कलाकार शरीक हुए। दार्शनिक लेखक बट्रांड रसेल भी आंदोलन के सदस्य थे। लेकिन अमरीका ने इन शांति आंदोलनों को सोवियत संघ और साम्यवाद की चाल बताकर इनकी भर्त्सना करना शुरू कर दिया। अमरीकी विरोध के बावजूद आंदोलन दुनिया के तमाम हिस्सों में फैल गया। आज दुनिया में तमाम शांति संगठन हैं। ये शांति संगठन विश्व शांति की हिमायत करते हैं और शांति के मुद्दों और इससे जुड़े विषयों पर शोध को प्रोत्साहित करते हैं। बहुत से संगठन शांति संगठनों के परामर्शदाता की हैसियत से सक्रिय हैं।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) शांति की मार्क्सवादी अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.7 भारत, शांति आंदोलन और निरस्त्रीकरण

भारत एक शांतिप्रिय देश है। इसने शताब्दियों पुराने औपनिवेशिक शासन से मुक्ति शांतिपूर्ण–अहिंसक तरीकों से प्राप्त की। भारत में शांति और युद्ध के प्रति वितृष्णा की एक लंबी परंपरा रही है। प्राचीन काल में सम्राट अशोक ने शस्त्रों एवं युद्ध के सिद्धांत का त्याग किया था। यह निरस्त्रीकरण का एक प्राचीनतम उदाहरण है। भारत में ब्रिटिश के आगमन के पहले यहाँ के राजे-रजवाड़े आपसी युद्धों में फंसे रहते थे। लेकिन इन युद्धों का जनसाधारण के जीवन और संपत्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। शांति की परंपराओं का पालन करते हुए आजादी के बाद भारत ने शांति को एक प्रमुख राजनीतिक नीति के रूप में स्वीकार किया। 1954 में भारत ने परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबंध लगाने की मुहिम की पहल की। भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त राष्ट्र संघ में परमाणु परीक्षणों के मामले में यथास्थिति बनाए रखने का प्रस्ताव किया। वे जानते थे, कि परमाणु हथियारों को पूरी तरह नष्ट करना संभव नहीं था इसलिए वे परमाणु परीक्षणों पर आगे प्रतिबंध लगाना चाहते थे जिससे परमाणु अस्त्रों की होड़ रोकी जा सके। दुनिया के तमाम देशों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया किंतु महाशक्तियों ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस प्रस्ताव ने निरस्त्रीकरण की चर्चा को आगे बढ़ाया और संयुक्त राष्ट्र संघ में कई देश शांति और निरस्त्रीकरण की मुखर रूप में हिमायत करने लगे। परिणामस्वरूप 1960 के दशक की शुरूआत से शांति और निरस्त्रीकरण की दिशा में नए प्रयास शुरू हो गए।

10.7.1 भारत और परमाणु अप्रसार संधि (एन पी टी)

परमाणु अप्रसार संधि (एन पी टी) 1967 में संपन्न हुई और 1960 तक इसे देशों द्वारा हस्ताक्षर के लिए खुला रखा गया तथा 1970 में 25 सालों के लिए इसे लागू किया गया। 17 अप्रैल से 12 मई,

1995 तक न्यूयार्क में इसकी समीक्षा के लिए एक सम्मेलन हुआ जिसमें एन पी टी की अवधि बिना किसी शर्त के अनिश्चित काल तक के लिए बढ़ा दी गई। 1995 के सम्मेलन में इसके प्रावधानों में कोई सुधार या परिवर्तन नहीं किया गया। सम्मेलन में कोई समीक्षा दस्तावेज भी जारी नहीं किया। 178 देशों ने इस पर हस्ताक्षर किये लेकिन भारत समेत 13 देशों ने इस पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया।

एन पी टी परमाणु प्रसार रोकने का एक उत्तम एवं विश्व कल्याणकारी प्रयास लगाता है। लेकिन संधि की शर्तों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के पाँचों स्थाई सदस्य (अमरीका, फ्रांस, इंग्लैंड, सोवियत संघ और चीन) जिन्हें वीटो का अधिकार प्राप्त है, परमाणु तकनीक पर एकाधिकार स्थापित करके विश्व पर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहते हैं। एन पी टी के प्रावधानों के अनुसार, परमाणु शक्ति रहित देश और ऐसे देश जो परमाणु शक्ति हासिल करने के कगार पर हैं, परमाणु अस्त्रों पर शोध और उनका निर्माण बंद कर दें। चूंकि संधि भेदभावपूर्ण है इसलिए भारत ने अपनी आपत्ति जताते हुए इस पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। भारत ने स्पष्ट कर दिया है कि वह इस संधि के मौजूदा स्वरूप पर हस्ताक्षर नहीं करेगा। भारत के अनुसार, संधि के मौजूदा स्वरूप में इसे अनिश्चित काल के लिए स्वीकार करने से भेदभाव वाले पहलू को बल मिलेगा और परमाणु शक्ति वाले देशों और इससे वंचित देशों के बीच की विभाजक रेखा और गहरी होती जाएगी। भारत चाहता है कि संधि के प्रावधान सभी राष्ट्रों पर समान रूप से लागू हों।

10.7.2 भारत और समग्र परीक्षण प्रतिबंध संधि (सी टी बी टी)

एन पी टी में ही समग्र परीक्षण प्रतिबंध संधि (सी टी बी टी) का उल्लेख था। इस संधि का उद्देश्य सामान्य और पूर्ण परमाणु निरस्त्रीकरण है। लेकिन अपने मौजूदा स्वरूप में सी टी बी टी विश्व को परमाणु अस्त्रों से मुक्त करने में अक्षम है। इससे न तो परमाणु अस्त्रों की संख्या घटेगी न ही परमाणु हथियारों वाले देशों की मौजूदा आक्रमण क्षमता। एन पी टी की भांति सी टी बी टी भी भेदभावपूर्ण है। इसमें भी परमाणु शक्तियों के लिए अलग तरह के प्रावधान हैं और बाकी देशों के लिए अलग। भारत ने इसके भेदभावपूर्ण चरित्र के कारण इस संधि पर भी हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। सी टी बी टी के बाद अब जनवरी, 1997 से एक अन्य संधि विस्फोट पदार्थ उत्पादन विच्छेद संधि (एफ एम सी टी) फिसाइल मैटेरियल प्रोडक्शन कट ऑफ ट्रीटी की वार्ता शुरू हो गई है। प्रस्तावित संधि का उद्देश्य विस्फोटक पदार्थों की सीमा रेखा तय करना है। भारत ने इस संधि की वार्ता में शामिल होने से इंकार कर दिया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दरअसल, उपर्युक्त तीनों संधियों का प्रारूप इस तरह से तैयार किया गया है कि जिससे परमाणु तकनीकों पर परमाणु शक्तियों का एकाधिकार बना रहे और विश्व पर उनका वर्चस्व कायम हो सके। इन संधियों से परमाणु शक्तियों का एकाधिकार बना रहे और विश्व पर उनका वर्चस्व कायम हो सके। इन संधियों से परमाणु शक्तियों द्वारा अपने हथियारों को ज्यादा परिष्कृत करने और परमाणु तकनीक में सुधार करने पर कोई रोक नहीं लग पाएगी। परमाणु शक्ति से संपन्न देश ऐसी स्थिति में पहुँच गए हैं कि कंप्यूटर और बंद जगहों पर परीक्षण की मदद से अपनी परमाणु तकनीक में सुधार का कार्यक्रम जारी रख सकते हैं। इन संधियों में इन उपायों पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

इन संधियों में परमाणु शक्तियों द्वारा एक निश्चित अवधि में मौजूदा परमाणु अस्त्रों को नष्ट करने का भी कोई प्रावधान नहीं है और न ही परमाणु शक्तियां इसके लिए तैयार होंगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये संधियाँ विश्व को हथियारों की होड़ से मुक्त रखने में सक्षम हैं और न ही ये सामान्य और पूर्ण निरस्त्रीकरण की दिशा में सहायक हैं।

बोध प्रश्न 6

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) भारत ने एन पी टी, सी टी बी टी और एफ एम सी टी पर हस्ताक्षर करने से क्यों इंकार किया।

....

....

....

....

....

10.8 सारांश

यद्यपि हथियारों की होड़ ही वास्तव में तनाव और युद्ध के कारण हैं। लेकिन कोई भी देश हथियारों पर पूरी तरह प्रतिबंध लगाने को राजी नहीं है। हथियारों का भंडार बढ़ाना राज्यों की राजनीतिक और आर्थिक मजबूरी है। परिणामस्वरूप निरस्त्रीकरण प्रस्ताव प्रभावहीन साबित हो रहे हैं।

दोनों विश्व युद्धों के बीच और शीतयुद्ध के दौरान शांति स्थापना के लिए निरस्त्रीकरण के प्रयास हथियारों की होड़ या ज्यादा परिष्कृत और घातक हथियारों के उत्पादन को रोकने में असफल रहे हैं। निरस्त्रीकरण अभियान की पहल करने वाला देश होने के बावजूद एन पी टी, सी टी बी टी आदि संधियों पर इनके भेदभावपूर्ण चरित्र के चलते भारत ने इन पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं।

10.9 शब्दावली

प्रक्षेपास्त्र निरस्त्रीकरण प्रणाली : एंटी बैलेस्टिक मिसाइल सिस्टम प्रक्षेपास्त्र ऐसा परमाणु हथियार है, जिसे स्वतः या दूर नियंत्रण (रिमोट कंट्रोल) से परिचालित किया जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रक्षेपास्त्र : बैलेस्टिक मिसाइल : एक ऐसा प्रक्षेपास्त्र है जिसे शुरूआती स्थिति में बल और दिशा प्रदान की जाती है लेकिन अंतिम स्थिति में यह अपने लक्ष्य पर अपने गुरुत्व से स्वयं गिरता है।

विस्फोटक : ऐसा पदार्थ जो नाभिकीय विघटन में सक्षम हो। विघटन का मतलब है पदार्थ का दो या अधिक भागों में टूटना।

एन पी टी : परमाणु हथियारों को हासिल करने और उन्हें बढ़ाने पर रोक लगाने वाली संधि।

10.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एफ एच हिसले, 1963 *पावर एंड परसूट ऑफ पीस कैब्रीज*।

इस्तवान केंडे, *दि हिस्ट्री ऑफ पीस : कांसेप्ट एंड आर्गेनाइजेशन्स फ्राम द लेट मिडिल एजेज टू द नाइन्टीन सेवंटीज*, जर्नल ऑफ पीस रिसर्च खंड 26, अंक 3, 1989.

घनश्याम परदेशी (संपादित, 1982 कंटेंपरेरी पीस रिसर्च, नई दिल्ली, एस जे आर बिलग्रामी, दि आर्म्स रेस एंड डिसार्मामेंट, नई दिल्ली।

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) हथियारों के आविष्कार, युद्धों में विनाश, द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में जापान ने परमाणु बम के विस्फोट के प्रभाव, विकासशील विश्व में सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अधिक संसाधनों की जरूरत आदि निरस्त्रीकरण की आवश्यकता के प्रमुख आधार हैं।

बोध प्रश्न 2

1) 546 ईसा पूर्व विभिन्न चीनी शासकों के सम्मेलन।

2) क) 1817 में अमरीका-कनाडा सीमा को सैन्य मुक्त रखने के लिए अमरीका और इंग्लैंड के बीच हुआ यह समझौता आज भी लागू है।

   ख) हेग, निरस्त्रीकरण सम्मेलन पहली बार 1899 में हुआ और दूसरी बार 1909 में। पहले सम्मेलन ने कुछ घातक हथियारों पर पाबांदी लगाई, सैन्य बजट में कमी और विकास बजट में बढोत्तरी पर जोर दिया। दूसरा सम्मेलन हथियारों की होड़ रोकने में असफल रहा।

   ग) लीग ऑफ नेशन्स के तत्वाधान में पहला निरस्त्रीकरण सम्मेलन 1932 में हुआ। इसमें कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए।

   घ) संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1946 में संयुक्त राष्ट्र परमाणु आयोग (यू एन ए ई सी) का गठन किया। इसका उद्देश्य परमाणु शक्ति के शांतिपूर्ण उपयोग की योजना बनाना था।

बोध प्रश्न 3

1) क) परमाणु अप्रसार संधि 1968 में संपन्न हुई। इसकी अवधि 25 वर्ष तय की गई थी।

   ख) साल्ट-1 और साल्ट-2 अमरीका और सोवियत संघ के बीच हुई संधि है। यह सामारिक अस्त्र परिसीमन संधि है।

बोध प्रश्न 4

1) शांति में मानव विकास संभव होता है। अशांति में विकास रुक जाता है और जान माल की हानि होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 5

1) वर्ग विहीन समाज में ही शांति की स्थापना संभव है।

बोध प्रश्न 6

1) क्योंकि ये संधियां भेदभावपूर्ण है। यह दुनिया को परमाणु शक्ति संपन्न होने और इससे वंचित देशों के दो खेमों में बांटती है।

इकाई 11 उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 विऔपनिवेशीकरण के कारण
11.3 विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया
  11.3.1 लैटिन अमरीका
  11.3.2 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विऔपनिवेशीकरण
  11.3.3 दक्षिण अफ्रीका
11.4 विऔपनिवेशीकरण के प्रभाव
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

विऔपनिवेशीकरण की वजह से उपनिवेशों में स्वतंत्रता का सूत्रपात हुआ और विश्व इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण दौर के रूप में जाना जाता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- विऔपनिवेशीकरण के कारणों के बारे में जान सकेंगे,
- आजादी पाने के लिए जो संघर्ष किये गये उनका स्वरूप क्या था बता सकेंगे, और
- विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका क्या रही है, उसे समझ सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

विश्व के राजनीतिक क्षितिज पर उपनिवेशवाद का उदय तब हुआ जब ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन व हालैंड जैसे यूरोपीय देश एशिया अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका में अपने साम्राज्य स्थापित कर चुके थे। यूरोपीय ताकतों ने तीसरी दुनिया के देशों के संसाधनों का दोहन किया तथा वहां के लोगों को करीब चार सदियों तक साम्राज्यवादी नीतियों के जोर पर गुलाम बनाये रखा। और जैसा कि स्वाभाविक था, इस शोषण के अपने अंतर्विरोध भी पैदा हुए। राष्ट्रीय मुक्ति एवं लोकतांत्रिक आंदोलन इसी अंतर्विरोध के नतीजे थे। दो विश्वयुद्धों के बीच की अवधि अर्थात् 1919-1939 के बीच उपनिवेशों द्वारा औपनिवेशिक सत्ता के उस अधिकार को चुनौती दी गयी जिसके जरिये वह तीसरी दुनिया के लोगों को गुलाम बनाती थी और उन पर दमन करती थी। द्वितीय विश्वयुद्ध तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में और तेजी आयी।

हालांकि आर्थिक शोषण एवं राजनीतिक अधीनता ही औपनिवेशिक नीतियों का सामान्य गुण था, तथापि प्रत्येक औपनिवेशिक ताकत अपने उपनिवेशों में खास नीतियों का ही अनुसरण करती थी। इसी तरह, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन तो सभी उपनिवेशों में प्रकट हुए, किंतु प्रत्येक उपनिवेश में उसका स्वरूप अलग-अलग था। कुछ उपनिवेशों ने संवैधानिक तरीके से आजादी हासिल की तो कुछ में आंदोलन का स्वरूप उग्रवादी था। कुछ ने उदारवादी लोकतांत्रिक तरीके को अपनाया तो कुछ ने मार्क्सवादी विचारधारा को दिशा निर्देशक दर्शन के रूप में अंगीकार किया। इन संबद्ध देशों में उपनिवेशवाद के खात्मे के बाद जो राजनीतिक प्रक्रियाएं प्रकट हुईं वे भी मुक्ति आंदोलनों की प्रकृति व विचारधारा के अनुरूप अलग-अलग किस्म की थी।

11.2 विऔपनिवेशीकण के कारण

द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले भी, आधुनिक राष्ट्रवाद विभिन्न उपनिवेशों में साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलनों के रूप में प्रकट

हो गया था। यह राष्ट्र राज्य में और उसके साथ गहरे परिचय की भावना थी और वह शक्ति व राष्ट्रीय आत्मपूर्णता का अन्वेषण भी था। उपनिवेशों में विविध राष्ट्रीय संगठनों के उदय से आजादी के लिए शुरू किये गये राष्ट्रीय आंदोलनों की जमीन और भी पुख्ता हुई। राष्ट्रवाद के उदय के मनोवैज्ञानिक आधार की पहचान इस बात में की जा सकती है कि यूरोपीय सत्ता एवं संस्कृति के आगमन ने उपनिवेशों के पारंपरिक जीवन व उनकी संस्थाओं को तहस-नहस कर दिया था। पाश्चात्य शिक्षा पाने वाले जो देशज (जैसा कि गौरे प्रभु उन्हें कहा करते थे)। अपनी सांस्कृतिक विरासत से अलग-थलग पड़ गये थे, वे कभी भी वास्तव में गोरे व्यक्ति के समान व्यवहार और दर्ज़ा न पा सके। इन्हीं वजहों से राष्ट्रीय विद्रोह की पहली चिंगारी पैदा हुई थी। यूरोप के लोगों की बेहतर आर्थिक एवं सामाजिक हैसियत को देखकर उपनिवेशों में रहने वाले पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त अभिजात वर्ग में विद्रोह की भावना का जन्म हुआ। उपनिवेशों में सबसे पहले इसी अभिजात वर्ग ने विद्रोह का झंडा उठाया और राष्ट्रीय आंदोलनों का नेतृत्व किया।

कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट ईसाई मिशिनरियों ने साम्राज्यवादी झंडे के तले ईसाइयत का प्रचार करते हुए विश्वबंधुत्व तथा सार्वभौमिक प्रेम का संदेश दिया। मिशनरियों में शिक्षा प्राप्त करने वाले देशजों ने औपनिवेशिक साम्राज्यवादियों के उस अधिकार को चुनौती दी जो उन्हें देशजों के साथ निम्न स्तर का व्यहार करने की इजाजत देता था। फ्रांसीसी क्रांति के आदर्शों से देशी अभिजात वर्ग प्रभावित था ओर वह लोकतंत्र व स्वतंत्रता के मूल्यों को आत्मसात कर चुका था।

उपनिवेशों के पीड़ित लोगों को जिस दूसरी विचारधारा ने विशेष रूप से प्रभावित किया था, वह मार्क्सवाद की विचारधारा थी। कम्युनिस्ट विभिन्न उपनिवेशों में राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित कर रहे थे और उन्हें कम्युनिस्ट आंदोलन में तबदील करने का प्रयास भी कर रहे थे। समाजवादी खेमा यूरोपीय देशों को साम्राज्यवादी एवं शोषक के रूप में प्रचारित कर रहा था। नतीजतन उपनिवेशों में स्वतंत्रता आंदोलन को बल मिला। अब ज्यादा से ज्यादा उपनिवेश समाजवादी खेमे की ओर आकर्षित हो गये क्योंकि उसमें उन्हें एक हमदर्द और रक्षक की छवि दिखाई पड़ी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की बढ़ती हुई शक्ति ने साम्राज्यवादी ताकतों को उपनिवेशों से हटने के लिए बाध्य कर दिया। विऔपनिवेशीकरण और विश्व समुदाय के विस्तार का श्रेय संयुक्त राष्ट्रसंघ को जाता है। पराधीन लोगों की आकांक्षाओं में बढ़ोतरी करने में संयुक्त राष्ट्र संघ की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उसने ऐसे लक्ष्यों व प्रतिमानों को भी स्थापित किया जिससे आजादी हासिल करने के कार्य में सहायता मिली और आंदोलनों में विशेष तेजी आई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन बाह्य कारणों के अतिरिक्त, चिंतन या कहिये विचारधारा की तीन धाराएं थी जिनके माध्यम से अफ्रीकी एशियाई जनता की मुक्ति कामना अभिव्यक्त हो सकी। इनमें से एक इस्लाम का पुनरुत्थान था। गैर यूरोपीय धर्म होने के कारण जनता में इस्लाम की अपील जबरदस्त प्रभावशाली थी, साथ ही सहनशील एवं लोकतांत्रिक आस्था की वजह से वह प्रोपेगंडा कारगर सिद्ध हुआ क्योंकि यह इस्लामी देश व यूरोपीय लोगों के बीच फर्क करता था। इस्लामी आस्था के प्रति गर्व की भावना तथा काफिरों के खिलाफ जेहाद करने की इस्लामी सीख की वजह से मुस्लिम देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों में एक खास तरह की उग्रता का प्रवेश हो गया था। परिणाम के साथ संपर्क की वजह से बौद्धिक उद्वेलन, इस्लामी बंधुत्व और एकता का सूत्रपात हुआ।

इनमें से दूसरी धारा एशियावाद के रूप में प्रकट हुई। इंडोनेशिया में डचों और भारत में अंग्रेजों द्वारा सैकड़ों सालों के औपनिवेशिक दमन के कारण वहां के निवासियों में राष्ट्रीय चेतना एवं खास तरह की एकता पैदा हो गई थी। यह सब राष्ट्रीय चेतना व खास तरह की एकता पैदा करने में सहायक रहा। राष्ट्रीय आंदोलन की अगुआई करने के लिए सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। मलाया, इंडोनेशिया और बर्मा जैसे उपनिवेशों ने राजनीतिक दमन को अस्वीकार कर दिया। जापान एशियाई शक्ति एवं गर्व का प्रतीक बना। हालांकि जापान एक साम्राज्यवादी देश था, फिर भी उसने 'एशिया एशियाइयों के लिए' का नारा बुलंद किया। ऐसा वह अपनी साम्राज्यवादी मंशा को छुपाने तथा एशियाइयों की हमदर्दी बटोरने के लिए कर रहा था। चीन में 1911 में सन्यात सेन ने राष्ट्रीय विद्रोह की अगुआई की। उसके बाद वहां लंबा गृहयुद्ध चला जिसमें साम्यवादी ताकतों को अंततः विजय मिली।

इनमें से तीसरी धारा अखिल अफ्रीकावाद की धारा थी। 19वीं सदी के अंत तक अफ्रीका के लोग यूरोपीय आधिपत्य को चुनौती देने लगे थे। अफ्रीकी लोगों के आदेशों और उनकी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति प्रणेताओं में मार्क्स गार्वे अग्रणी था। दुबोई अखिल अफ्रीकावाद की अवधारणा का दूसरा महत्वपूर्ण हिमायती था। उसके प्रयासों का ही प्रतिफल था कि राष्ट्रकुल में अफ्रीकियों के लिए अलग से मानवाधिकारों का मसौदा स्वीकार किया जा सका। इसके बाद के वर्षों में घाना के नकरूमा ने अफ्रीकावाद की अवधारणा का नेतृत्व किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होने पर विजेता देशों ने अजीबोगरीब तरीके से औपनिवेशिक क्षेत्र को राष्ट्रकुल की अनिवार्य प्रणाली के हवाले कर दिया। वर्साव की संधि, 1919 की धारा 22 के मुताबिक इन क्षेत्रों का भविष्य तय किया जाना था। विकास स्तर, पर भौगोलिक कारक एवं आर्थिक स्थिति की भिन्नता का ख्याल रखते हुए इन क्षेत्रों को तीन श्रेणियों क, ख, ग में विभाजित किया गया है और उन्हें साझी शक्तियों के हवाले कर दिया गया। आम तौर पर इन क्षेत्रों को स्वनिर्णय का अधिकार भी दिया गया। इन क्षेत्रों के प्रशासन की देखरेख की जिम्मेवारी राष्ट्रकुल की आदेशकारी समिति को सौंपी गयी। 1917 में ब्रिटेन के विदेश सचिव ए. जे. बाल्फोर ने कहा कि राजनीति के जरिये यहूदी लोगों के लिए फिलीस्तीन में एक राष्ट्रीय स्थान ढूंढ लिया जाएगा। और इससे उन स्थानों पर पहले से निवास करने वाले गैर यहूदी समुदायों के नागरिक और धार्मिक अधिकारों को भी कोई क्षति नहीं पहुंचेगी। 1948 में इजराइल नामक राज्य की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना तथा अरब में उग्र राष्ट्रवाद के उदय की वजह से मध्यपूर्व और पश्चिम के विवाद के अतिसंवेदनशील इलाकों में से एक विशेष इलाका बन गया है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर मिलाइए

1) राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों के पनपने के क्या कारण रहे हैं ?

....

....

....

....

2) उस विचारधारात्मक दृष्टिकोण का वर्णन कीजिए जिससे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन संचालित होते रहे।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.3 विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया

विऔपनिवेशीकरण शब्द से संभव है किसी को यह लगे की आजादी हासिल करने की प्रक्रिया शांतिपूर्ण थी। किंतु वास्तव में यह एक हिंसक प्रक्रिया थी जिसमें औपनिवेशिक देशों ने कपट, युद्ध व सीधे अतिक्रमण जैसे तरीकों का इस्तेमाल किया था। विभिन्न तरह के जन संघर्षों की वजह से ही उपनिवेशों को भी आजादी मिली थी। हां, कुछ देशों में यह प्रक्रिया अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण जरूरी रही थी। उदाहरण के लिए अफ्रीका के सिनेगल, पश्चिम अफ्रीका के आइवरी कॉस्ट जैसे कुछ फ्रांसीसी तथा नाइजीरिया, घाना आदि जैसे कुछ ब्रिटिश उपनिवेशों में आजादी हासिल करने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण रही थी। कुछ देशों के मामले में यह आजादी राष्ट्रकुल तथा राष्ट्रसंघ जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के हस्तक्षेप का नतीजा थी।

सीरिया, फिलीस्तीन, लेबनान, ईराक, तंजानिया, खांडा, बुडी, कैमरून, प्रशांत क्षेत्र आदि जैसे इलाके जो राष्ट्रकुल के अंतर्गत आदेशकारी क्षेत्र घोषित किए गए थे बाद में या तो स्वतंत्र हो गये या फिर राष्ट्र संघ के ट्रस्टीशिप परिषद के हवाले कर दिए गए। इन संगठनों का उद्देश्य था कि धीरे-धीरे इन क्षेत्रों में स्वनिर्णय के अधिकार को लागू किया जाये तथा अंततः उन्हें स्वतंत्र घोषित कर दिया जाये। दक्षिण पश्चिम अफ्रीका (अब नामीबिया) के अलावा अधिकांश क्षेत्र स्वतंत्र हो चुके थे। नामीबिया को दक्षिण अफ्रीका जो रंगभेद नीति का अनुसरण करता था, के न्यास के हवाले कर दिया गया था।

पुर्तगाल के अफ्रीकी उपनिवेशों – अंगोला, मोंजाबिक, गायना बिसाऊ में लंबे समय तक सशस्त्र संघर्ष जारी रहा और वे 1974 से पहले स्वतंत्र नहीं हो सके। यह भी तब संभव हो सका जब पुर्तगाल खुद ही लोकतांत्रिक क्रांति की चपेट में आ गया था और जिससे सैनिक तानाशाह सालाजार का तख्तापलट हो गया था।

पूर्व फ्रांसीसी उपनिवेश अल्जीरिया को 1954 से लेकर 1961 तक यानी सात वर्षों तक सशस्त्र संघर्ष करना पड़ा था। जबकि दूसरी तरफ मोरक्को और टुनिशिया को अपेक्षाकृत आसानी से आजादी मिल गयी थी। फ्रांसीसी मूल के निवासियों ने बेन बेला की अगुआई में अल्जीरिया की स्वतंत्रता का विरोध किया था। उधर अल्जीरिया के लोग फरहत अब्बास की अगुआई में राष्ट्रीय मुक्ति फ्रंट के तले लामबंद थे और आजादी का समर्थन कर रहे

थे। नतीजतन, दोनों खेमों के बीच हिंसक संघर्ष की वारदातें हुई।

11.3.1 लैटिन अमरीका

लैटिन अमरीका के स्पेनिश और पुर्तगाली उपनिवेश एशिया एवं अफ्रीका के उपनिवेशों से बहुत पहले आजाद हो चुके थे। स्पेनिश उपनिवेश मेक्सिको तथा दूसरे स्थानों पर क्रांतिकारी आंदोलनों का सूत्रपात हुआ तो वेनेजुएला, अर्जेंटिना आदि देशों में उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में मुक्तियुद्ध का सूत्रपात हुआ। 1825 के आते-आते, स्पेन का साम्राज्य, क्यूबा व प्यूरेटोरिको को छोड़ कर समाप्त हो गया। जहां ब्रिटेन के खिलाफ उत्तरी अमरीका के संघर्ष का अंत तेरह उपनिवेशों द्वारा संयुक्त राज्य के निर्माण के रूप में हुआ, वहीं स्पेन के खिलाफ अमरीका विद्रोह का अंत 17 अलग-अलग गणराज्यों के उदय के रूप में हुआ।

क्यूबा एवं प्यूरेओरिको स्पेन के भ्रष्ट शासन के तले तब तक दबे रहे जब तक कि अमरीका स्पेन के खिलाफ क्यूबा के आंदोलन में खुद शामिल नहीं हो गया। आजादी के लिए क्यूबा को स्पेन के खिलाफ ही क्रांतिकारी युद्ध नहीं लड़ना पड़ा, अपितु अमरीकी आधिपत्य के खिलाफ भी लड़ना पड़ा। सही है कि 1989 में अमरीका ने स्पेन का क्यूबा से खदेड़ कर बाहर किया, किंतु अमरीकी निवेशकों ने इस द्वीप पर अपनी प्रभुता कायम कर ली। इस हद तक क्यूबा को अपने संसाधनों पर भी कोई नियंत्रण नहीं रह गया। फिइदेल कास्त्रो की अगुआई में क्यूबा ने बतिस्ता शासन के खिलाफ गुरिल्ला युद्ध छेड़ दिया। 1958 में बतिस्ता का तख्तापलट हो गया। बाद में कास्त्रों ने अमरीकी संपत्ति जब्त कर ली तथा शासन तंत्र की स्थापना की। अमरीका और क्यूबा के बीच विचारधारात्मक द्वंद्व आज भी, चल रहा हैं जबकि शीतयुद्ध समाप्त हो चुका है।

1823 में ही संयुक्त राज्य अमरीका, मशहूर मुनरो सिद्धांत के जरिये, नयी दुनिया में मध्यस्थ की भूमिका अपना चुका था। यह सिद्धांत यूरोपीय देशों के वर्तमान उपनिवेशों को तो स्वीकार करता था, किंतु वह उन्हें भावी औपनिवेशीकरण की इजाजत नहीं देता था। यह वास्तव में अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन की दुरभिसंधि थी ताकि लैटिन अमरीका में अपने अपने हितों का साध सकें।

DIKSHANT IAS

11.3.2 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विऔपनिवेशीकरण

Call us @7428092240

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। कुछ औपनिवेशिक क्षेत्रों जैसे फ्रेंच, इंडोचीन, डच, इंडोनेशिया, ब्रिटिश मलाया तथा इटालियन अफ्रीका (पूर्व) पर दुश्मन विजेताओं का कब्जा था तथा वे पूरी तरह औपनिवेशिक गवर्नरों की गिरफ्त से बाहर थे। दक्षिण पूर्व एशिया पर जापान का कब्जा होने से इस क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना और आंदोलन को बल मिला। धीरे-धीरे पाश्चात्य उपनिवेशवादियों को खदेड़ कर बाहर किया गया, उन्हें औपनिवेशिक प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों से हटाया गया तथा उनमें से कइयों की जगह स्थानीय निवासियों को पदों पर आसीन किया गया। अधिनायकवादी और दमनकारी जापान का जब अंततः पतन हुआ तो राष्ट्रवादियों को अपने संघर्षों को उग्रता प्रदान करने का अवसर मिला क्योंकि उन्हें पराजित सेना के छोड़े हुए हथियारों का जखीरा प्राप्त हो गया था। इंडोनेशिया और वियतनाम इसी तरह स्वतंत्र हुए थे। इंडोनेशिया राष्ट्रवादियों को चार सालों तक डचों के खिलाफ लड़ना पड़ा, तब जाकर उन्हें आजादी मिली। दोनों ही मामलों में, औपनिवेशिक सत्ता व राष्ट्रवादियों के बीच खुला युद्ध लड़ा गया था। वियतनाम में यह युद्ध वियतनाम के नेतृत्व में लड़ा गया था। 1954 के युद्ध विराम के बाद फ्रांसीसी देश के उत्तरी भाग से हट गये जबकि दक्षिण में एक गैर-साम्यवादी सरकार स्थापित कर दी गई। बाद में फ्रांसीसियों की जगह अमरीकी आ गये। अमरीका के खिलाफ वियतनाम का लंबा व साहसिक संघर्ष अपने आप में एक उदाहरण बन चुका है।

द्वितीय विश्वयुद्ध का सबसे दूरगामी ऐतिहासिक नतीजा निस्संदेह उन्नीसवीं सदी के साम्राज्यों का ढहकर विलीन हो जाना तथा यूरोप का सिकुड़ जाना था। इन सबमें महत्वपूर्ण घटना 1947 में प्राप्त भारत की आजादी थी। देश के विभिन्न हिस्सों में अंग्रेजों और जमींदारों के खिलाफ किसानों और वासियों के अनेकानेक विद्रोहों तथा 1857 के विप्लव का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से आंदोलन को संगठनात्मक शक्ति मिली थी।

भारतीय राष्ट्रवाद गांधी से अत्यधिक प्रभावित था। वे अहिंसा तथा असहयोग के सिद्धांत में विश्वास करते थे। गांधी के आगमन ने आंदोलन को जनआंदोलन के रूप में तबदील कर दिया था। भारत में सत्ता का हस्तांतरण तभी हो सका जब ब्रिटेन में लेबर पार्टी की सरकार बनी, फिर भी देश को पाकिस्तान तथा भारत में विभाजित होने से नहीं रोका जा सका। कैबिनेट मिशन ने समस्या का संवैधानिक हल ढूंढने का प्रयास किया था, किंतु देश का विभाजन अनिवार्य हो गया। हालांकि विभाजन शांतिपूर्ण नहीं था, फिर भी इससे संविधान की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ था।

ब्रिटेन के अफ्रीकी उपनिवेशों में गोल्ड कॉस्ट भी था। आजादी के बाद से घाना तथा नाइजीरिया आजादी के अग्रदूत बने। मार्च 1957 में गोल्ड कॉस्ट आदेशकारी क्षेत्र टोगों के साथ मिलकर स्वतंत्र राज्य बना। यह घाना के नाम से जाना गया तथा ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के तहत इसे डोमिनियन स्टेटस प्रदान किया गया। प्रधानमंत्री क्रुमो अफ्रीकी आजादी के प्रबल समर्थक तथा स्वांतत्र्योत्तर अफ्रीकावाद के प्रणेता थे। नाइजीरियाई संघ को पूर्ण आजादी 1960 में हासिल हुई।

11.3.3 दक्षिण अफ्रीका

विऔपनिवेशीकरण के इतिहास में दक्षिण अफ्रीका व नामीबिया के लोगों का संघर्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक रूप से दक्षिण अफ्रीका में सबसे पहले डचों का शासन स्थापित हुआ। वे 1652 में ही केपटाउन में बस चुके थे। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में श्वेत बस्तियों का तेजी से फैलाव हुआ। 1806 में जब केपटाउन छोड़कर ओरांग नदी के उत्तर की तरफ जाना पड़ा तब नतीजतन 1830 में ग्रेट ट्रेक में आबादी का बड़े पैमाने पर पलायन हुआ। आबादी का पलायन इतना विशाल था कि दो अलग अफ्रीकी गणराज्य – ओरांग फ्री स्टेट एवं ट्रांसवाल बन गये तथा नाटेल के रूप में एक ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना भी हो गयी। इन दोनों ही मामलों में नस्ल के आधार पर बंटे समाजों का उदय हुआ जिसमें गोरों का प्रभुत्व कायम हुआ जबकि अफ्रीकियों को लगभग गुलाम बना दिया गया। वास्तव में इन स्थानों पर भी केप उपनिवेश की पुनर्स्थापना की गयी। वैसे तो केप और नाटेल में अंग्रेजों की घोषित नीति भेदभाव को अस्वीकार करती थी, किंतु व्यवहार में ऐसा नहीं था। मताधिकार के साथ संपत्ति की अर्हता शर्त जोड़ देने से मताधिकार केवल गोरों तक ही सीमित रह गया था। अफ्रीका के डच उपनिवेशों में अफ्रीकियों को मताधिकार से वंचित कर दिया गया था, तथा उन्हें आरांग फ्री स्टेट में भूमि अधिग्रहण करने का अधिकार भी नहीं था। इतना ही नहीं, उन्हें ट्रांसवाल की श्वेत बस्तियों में पास लेकर आना जाना पड़ता था। उन्नीसवीं सदी के अंत में किम्बरले में हीरे की खानों तथा ट्रांसवाल में सोने की खानों का पता चला। नतीजतन इन क्षेत्रों पर अधिकार कायम करने के लिए डचों और अंग्रेजों में होड़ लग गयी। अंत में डचों को पराजय मिली और 1910 में यूनियन ऑफ साउथ अफ्रीका की स्थापना हो गयी। यह ओरांग फ्री स्टेट, ट्रांसवाल, केप बस्तियों और नाटेल जैसे अफ्रीकी उपनिवेशों को मिलाकर बना था। यूनियन ऑफ साउथ अफ्रीका को शुरू से डोमिनियन स्टेटस प्रदान किया तथा बाद में 1934 में यह ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत संप्रभुतासंपन्न स्वतंत्र राज्य बन गया। 1961 में इसने इंग्लैंड से अपना संबंध तोड़ लिया और राष्ट्रमंडल से भी बाहर आकर गणराज्य की घोषणा कर दी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दक्षिण अफ्रीका की नस्लवादी सरकार के रंगभेद शासन तंत्र में अफ्रीकियों को बुनियादी मानवाधिकार भी प्राप्त नहीं थे। इस शासन को अनेक पश्चिमी सरकारों का समर्थन प्राप्त था। वे दक्षिण अफ्रीका में अपने रणनीतिक और आर्थिक हितों को साधना चाहते थे। चूंकि अफ्रीकी जनता के पास न तो कोई वैधानिक अधिकार था और न ही आजादी थी। अत: विरोध भी चोरी छुपे तरीके से ही संभव था। जैसे-जैसे रंगभेदी शासन क्रूर से क्रूरतर होता गया, वैसे-वैसे उसका विरोध भी उग्र होता गया। अफ्रीका प्रतिरोध, जो गोरों के खिलाफ सांस्कृतिक प्रतिरोध के रूप में शुरू हुआ था वह 1923 के आते-आते अफ्रीकी राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में तबदील हो गया। नेल्सन मंडेला इसके पौराणिक नायक के रूप में उभरकर सामने आये। 1963 में रिवोनिया के मुकदमे में उन्हें आजीवन कारावास की सजा मिली। तीसरी दुनिया के देशों और गुटनिरपेक्ष आंदोलन के दबाव में दक्षिण अफ्रीका के सरोकारों को अंतर्राष्ट्रीय मंचों से पैरवी मिली। 80 एवं 90 के दशक की शुरुआत में दक्षिण अफ्रीकी शासन के खिलाफ लगातार बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय दबाव जो संयुक्त राष्ट्र संघ के अंदर भी और तीसरी दुनिया की तरफ से भी लगातार बना रहने के कारण पश्चिमी देशों को अफ्रीकी जनता की कुछ मांगों को स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा था इन सबके कारण ही मजबूर होकर रंगभेदी शासन को अफ्रीकी विपक्ष के साथ बातचीत के लिए तैयार होना पड़ा। 1993 में नेल्सन मंडेला को जेल से रिहा कर दिया गया। लंबे विचार-विमर्श के बाद 1994 में आम चुनाव कराए गए। इस तरह संसदीय चुनाव के जरिये सत्ता बहुसंख्यक अश्वेत समुदाय को हस्तांतरित हुई।

जर्मनी का पूर्व उपनिवेश दक्षिण पश्चिम अफ्रीका (नामीबिया) भी दक्षिण अफ्रीका के मैंडेंट के अंतर्गत शामिल कर लिया गया। जब राष्ट्रकुल की जगह राष्ट्रसंघ अस्तित्व में आया तब दक्षिण अफ्रीका ने दक्षिण पश्चिम अफ्रीका पर अपने ट्रस्टीशिप का दावा ठोक दिया। इस तरह यहां भी रंगभेदी शासन लागू हो गया। संयुक्त राष्ट्र द्वारा दक्षिण अफ्रीका का कब्जा गैरकानूनी घोषित कर दिया गया और 1967 में इस क्षेत्र के प्रशासन के लिए नामीबियाई परिषद का गठन किया गया। स्वापो (एस.डब्ल्यू.ए.पी.ओ.) की अगुआई में दक्षिण पश्चिम अफ्रीका के लोगों के लंबे संघर्ष द्वारा तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्तावों के कार्यान्वियन के

बाद यह क्षेत्र आजाद हुआ। आजादी के बाद से दक्षिण पश्चिम अफ्रीका नामीबिया के नाम से जाना जाता है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर को मिलाइए।

1. तीसरी दुनिया के विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलनों के बीच मौजूदा अंतर को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

2. दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद विरोधी आंदोलन के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

11.4 विऔपनिवेशीकरण के प्रभाव

विऔपनिवेशीकरण और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के विस्तार का एक नतीजा यह निकला कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का चरित्र वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय हो गया। विऔपनिवेशीकरण के बाद एशिया अफ्रीका एवं लैटिन अमरीका में नये तथा स्वायत्त राज्यों का उदय हुआ। ये राज्य विचारधारात्मक प्रतिस्पर्द्धा और शीतयुद्ध के युद्धक्षेत्र बन गये। निश्चय ही शीतयुद्ध के दौरान इस प्रतिस्पर्द्धा की वजह से उनकी अंतर्राष्ट्रीय महत्ता में वृद्धि हुई। नतीजतन, इस दौर में इन देशों ने तटस्थ विदेश नीति का समर्थन किया। गुटनिरपेक्षता उनके राष्ट्रीय सम्मान और प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया। अपनी विदेश नीतियों के जरिये वे एक नई पहचान बनाने की कोशिश कर रहे थे। दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यप्रणाली में व्यापक बदलाव आया। यह सब अफ्रीकी तथा एशियाई देशों की मौजूदगी से ही संभव हो सका। इस बीच संयुक्त राष्ट्र संघ की महत्ता में भी काफी ईजाफा हुआ। क्योंकि अब वह इन देशों की आकांक्षाओं की खुले तौर पर हिमायत करने लगा था। इन देशों ने संयुक्त राष्ट्र का इस्तेमाल आर्थिक मसलों से संबंधित अपनी मांगों पर जोर देने के लिए किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.5 सारांश

उपनिवेशवाद का उदय विश्व इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। इसकी वजह से ही दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों में व्यापक परिवर्तन हुए। विऔपनिवेशीकरण और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों की वजह से तीसरी दुनिया नाम की सत्ता अस्तित्व में आई। अपनी विशिष्टताओं में ये साम्राज्यवाद विरोधी और राष्ट्रीय आंदोलन एक दूसरे से भिन्न थे। ऐसा औपनिवेशिक नीतियों तथा उपनिवेशों के समाज पर पड़ने वाले उनके प्रभावों की वजह से हुआ। कुछ उपनिवेशों को आजादी अगर संवैधानिक तरीकों एवं सुधारों के जरिये मिली तो कुछ उपनिवेशों की आजादी अंतर्राष्ट्रीय दबाव का नतीजा थी। राष्ट्रकुल जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को इसके लिए कारगर हस्तक्षेप करना पड़ा था तो भी इन भिन्नताओं को ज्यादा तरजीह नहीं दी जानी चाहिए। व्यवहार में सभी उपनिवेशों को औपनिवेशिक सत्ता के हिंसक दमन का सामना करना पड़ा था। जिन उपनिवेशों को संवैधानिक तरीके से आजादी मिली थी, उनके मामले में यह कहना गलत होगा कि उनके संघर्ष सदैव शांतिपूर्ण थे। औपनिवेशिक सत्ता की हठधर्मिता की वजह से कई उपनिवेशों में सशस्त्र संघर्ष अनिवार्य हो गया था। फिर इन संघर्षों की वैचारिक पृष्ठभूमि अलग-अलग थी। यह अंतर विभिन्न उपनिवेशों के अभिजात वर्गों के चरित्र, उनके राष्ट्रीय नेताओं के रूख तथा आंदोलनों में जनभागीदारी का प्रतिफलन था।

11.6 शब्दावली

रंगभेद : प्रजातीय अलगाववाद की नीति। दक्षिण अफ्रीका के गौरे काले लोगों के साथ इस

नीति के अनुसार व्यवहार करते थे।

उपनिवेशवाद : विदेशी राज्य का अतिक्रमण कर उसे उपनिवेश के रूप में कायम रखने तथा औपनिवेशिक सत्ता के हित साधन के लिए उस उपनिवेश का उपभोग करने की नीति।

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

के वंदना, 1995, *थियरी ऑफ इंटरनेशनल पालिटिक्स*, विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली

हरिशरण छाबड़ा, मई 1992, *यू एन एण्ड डिकोलोनाइजेशन*, वर्ल्ड फोकस नं. 149

हैनरी ग्रीमाल, 1965, *डिकोलोनाइजेशन, दि ब्रिटिश, फ्रेंच, डच एण्ड बेल्जियन अम्पायर्स 1919-1963*, लंदन

इमैन्युल वालरटिन, 1961 *अफ्रीका दि पॉलिटिक्स ऑफ इंडीपेडेंस*, विन्टेज बॉडी, न्यूयार्क

रमा एस मालकोटे, 1992 *इंटरनेशनल रिलेसंस*, स्टर्लिंग पब्लिसर्स प्राईवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) विदेशी शासन के शोषणकारी चरित्र की टकराहट अंतराष्ट्रीय क्षेत्र में होने वाले प्रगतिकारी वकास के तत्वों से हो रही थी। और यही राष्ट्रीय मुक्ति के लिए बुनियादी रूप से जिम्मेवार भी थे।

2) उदारवार, मार्क्सवाद और कई दूसरी प्रगतिशील विचारधाराओं से इन संघर्षों की वैचारिक पृष्ठभूमि बनी थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) दुनिया में कहीं भी समरूप राष्ट्रीय आंदोलन नहीं रहे हैं। विभिन्न देशों में जो राष्ट्रीय आंदोलन पैदा हुए, वे संबद्ध राष्ट्र की जमीनी वास्तविकताओं से गहरे जुड़े हुए थे।

2) मूल रूप से यह एक अहिंसक आंदोलन था और इसे प्रगतिशील विश्व का समर्थन हासिल था।

इकाई 12 तीसरी दुनिया के राज्यों की विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 सैद्धांतिक दृष्टिकोण
12.2.1 उदारवादी दृष्टिकोण
12.2.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण
12.2.3 पराश्रयवादी दृष्टिकोण
12.3 राज्य की विशेषताएं
12.3.1 अतिविकसित राज्य
12.3.2 स्वायत्ता
12.3.3 राजधानी का नियंत्रण
12.4 सारांश
12.5 शब्दावली
12.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में तीसरी दुनिया के राज्यों की चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- तीसरी दुनिया का अभिप्राय समझ सकेंगे,
- तीसरी दुनिया के राज्यों की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे,
- तीसरी दुनिया के राज्यों की अनिवार्य विशेषताओं की पहचान कर सकेंगे, और
- विश्व राजनीति में तीसरी दुनिया की भूमिका का निर्धारण करने में समर्थ हो सकेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.1 प्रस्तावना

तीसरी दुनिया जिसका उल्लेख कभी-कभी राजनीतिक सिद्धांत एवं तुलनात्मक राजनीति में उत्तर औपनिवेशिक समाज के रूप में किया गया है। इस संदर्भ में राज्य की प्रकृति के सवाल को लेकर बहस होती रही है तीसरी दुनिया में राज्य की प्रकृति की समझ बहुत जरूरी है क्योंकि तभी हम विश्व राजनीति में तीसरी दुनिया की भूमिका का निर्धारण कर सकेंगे।

तीसरी दुनिया अनेक 'देशों का समूह'' है और इन देशों की कुछ खास सामान्य विशेषताएं हैं। कुछ लेखकों के अनुसार विकसित पूंजीवादी देशों का समूह प्रथम विश्व कहलाता है जबकि समाजवादी देशों का समूह द्वितीय विश्व के रूप में जाना जाता है। अफ्रीका, एशिया व लैटिन अमेरिका के अल्पविकसित देश तीसरी दुनिया के रूप में जाने जाते हैं। मालूम हो, ये देश औपनिवेशिक आधिपत्य के अधीन रहे थे। कुछ लेखक महाशक्तियों को प्रथम विश्व की कोटि में रखते हैं, जबकि यू.के. जर्मनी, आस्ट्रेलिया तथा कनाडा जैसे विकसित देशों को द्वितीय विश्व की कोटि में स्वीकार करते हैं। तीसरी दुनिया की कोटि में एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के अल्पविकसित देश आते हैं।

इन देशों की परिभाषाओं में कुछ बातें सामान्य हैं। दोनों ही वर्गीकरणों में तीसरी दुनिया की विशेषताएं एक जैसी ओर समान हैं। दोनों ही वर्गीकरणों में तीसरी दुनिया को विकसित देशों की तुलना में परिभाषित किया गया है। तीसरी दुनिया के देश आर्थिक रूप से निर्धन हैं और उनका एक औपनिवेशिक अतीत रहा है।

तीसरी दुनिया की आम विशेषताओं की पहचान करते समय हमें उनकी भिन्नताओं को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। तीसरी दुनिया के कुछ देश जैसे अरब के देश, काफी समृद्ध हैं तो कुछ जैसे बांग्ला देश, बहुत ही निर्धन हैं। कुछ देशों में लोकतांत्रिक संस्थाएं मौजूद हैं तो तीसरी दुनिया के कुछ देशों में सैनिक शासन भी है। तीसरी दुनिया के देशों में सामाजिक गठन के आधार पर भिन्नताएं हैं। उनमें से कुछ कबीलाई समाज हैं तो

कुछ पूंजीवादी देश हैं।

इन तमाम भिन्नताओं के बावजूद, तीसरी दुनिया कोई निरर्थक कोटि नहीं है क्योंकि इसके जरिये हमें उन देशों को वर्गीकृत करने में सहायता मिलती है जिन्हें अपने अस्तित्व के लिए औपनिवेशिक आधिपत्य के खिलाफ लड़ना पड़ा था। पृष्ठभूमि की समानता के कारण इन सभी देशों को आज भी समान समस्याओं से जुझना पड़ता है और इसलिए तीसरी दुनिया का अध्ययन करते समय हमारे लिए यह उपयोगी होगा कि हम उसकी तमाम समानताओं और असमानताओं का ध्यान रखें। किंतु ऐसा करते समय हमें एक की कीमत पर दूसरे को तरजीह नहीं देनी चाहिए। तीसरी दुनिया के राज्यों में जो आम विशेषताएं देखने को मिलती हैं, वे इस वजह से हैं कि वे किसी न किसी सत्ता के उपनिवेश थे और उपनिवेशवाद के कारण उनके समाजों में बुनियादी बदलाव आए थे। राज्य को समझने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण मौजूद हैं।

12.2 सैद्धांतिक दृष्टिकोण

तीसरी दुनिया के राज्यों के अध्ययन के लिए कई तरह के सैद्धांतिक दृष्टिकोण उपलब्ध हैं। अधिक उदारवादी और मार्क्सवादी दृष्टिकोण उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय हैं।

12.2.1 उदारवादी दृष्टिकोण

उदारवादियों की नजर में राज्य एक तटस्थ एजेंसी है जो समाज के संघर्षरत्त समूहों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। दूसरे शब्दों में, कह सकते हैं कि राज्य किसी भी समूह की बपौती नहीं होता है। समाज के विभिन्न समूह राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष अपनी मांगें रखते हैं। राज्य सत्ता इन तमाम मांगों पर विचार करती है तथा समाज के व्यापक हित में अपने निर्णय लेती है। उदारवादी खेमे के अंदर ही कुछ लेखकों की सम्मति है कि राज्यसत्ता पर अभिजात वर्गों का वर्चस्व रहता है। अभिजात वर्गों के वर्चस्व के पीछे उनकी कुछ खास वैयक्तिक विशेषताओं का हाथ होता है न कि आर्थिक संसाधनों पर उनके नियंत्रण का। उदारवादी सिद्धांत की मान्यता है कि लोकतंत्र में अभिजात वर्ग सत्ता का इस्तेमाल अपने वैयक्तिक अथवा सामूहिक हित में नहीं करते हैं। चुनावी बाध्यताएं उन्हें मजबूर कर देती हैं कि वे तमाम समूहों के कल्याण के लिए कार्य करें। तीसरी दुनिया का पश्चिमपरस्त अभिजात वर्ग राज्य सत्ता का नियंत्रण करता है। वह राज्य सत्ता का इस्तेमाल कर पारंपरिक कृषक समाज को आधुनिक औद्योगिक समाज में बदलना चाहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उदारवादी दृष्टिकोण की दो कमियां हैं। पहली तो यह कि यह नहीं मानता कि व्यक्तियों की राजनीतिक क्षमता का निर्धारण उनके आर्थिक संसाधनों से होता है। दूसरे यह इस बात की व्याख्या नहीं करता कि अभिजात वर्ग कैसे अपने संकीर्ण आर्थिक व सामाजिक हितों से ऊपर उठकर पूरे समाज के लिए निस्वार्थ कार्य करता है।

दूसरे शब्दों में, समाज के वर्गीय विभाजन की उपेक्षा करके की गयी राज्य की कोई भी व्याख्या सरलीकृत व्याख्या ही होगी। राज्य समाज में समाहित होता है और इसीलिए इसका अध्ययन समाज के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए।

12.2.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्क्स और एंजेल्स का मानना है कि राज्य न तो निरपेक्ष एजेंसी है और न ही साझा न्यास। इसमें समाज के शक्तिशाली वर्गों के हितों की अभिव्यक्ति होती है और यह उन्हीं के हितों की रक्षा भी करता है। दूसरे शब्दों में इसे यूं कहा जा सकता है। कि यह शक्तिशाली वर्गों के हाथ का हथियार भर है। राज्य सरकार का अनुसरण करता है न कि वह उसके पहले आता है।

इस तरह राज्य की प्रवृत्ति समाज में श्रम विभाजन के चरित्र पर निर्भर करती हैं। दुर्भाग्य से मार्क्स ने राज्य के बारे में विस्तार से चर्चा नहीं की है। उसने केवल छिटपुट टिप्पणियां ही की हैं। अलबत्ता उसके अनुयायियों ने राज्य के बारे में व्यापक ढंग से लिखा है। फिर भी अधिकांश लेखन विकसित पूंजीवादी देशों के बारे में ही है। ये व्याख्याएं तीसरी दुनिया के लिए सटीक नहीं हो सकतीं क्योंकि तीसरी दुनिया के देश पूंजीवादी देशों से भिन्न हैं। इन देशों का औपनिवेशिक अतीत है। अभी भी राजनीतिक आजादी हासिल करने के बावजूद ये देश पश्चिमी विकसित देशों के आर्थिक शोषण से मुक्त नहीं हो सकते हैं। तीसरी दुनिया के देशों की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन पर किसी एक वर्ग का आधिपत्य न होकर अनेक वर्गों का आधिपत्य है।

उपर्युक्त परिस्थितियों की वजह से तीसरी दुनिया की राज्य सत्ता की प्रकृति विशिष्ट होती है। तीसरी दुनिया

का राज्य कई नामों से जाना जाता है। कभी उसे परिधि राज्य कहा जाता है तो कभी उत्तर औपनिवेशिक राज्य तो कभी अतिविकसित राज्य के नाम से पहचानते हैं।

तीसरी दुनिया के देश औपनिवेशिक शोषण के शिकार थे। नतीजतन उनका विकास मार्ग बाधित हुआ तथा असंतुलित विकास का सूत्रपात हुआ। विऔपनिवेशीकरण के बाद भी साम्राज्यवादी ताकतों की पकड़ तीसरी दुनिया पर आज भी बनी हुई है। विकसित पश्चिमी देश व तीसरी दुनिया के संबंधों को लेकर लेखकों के बीच सहमति नहीं है।

12.2.3 पराश्रयवादी दृष्टिकोण

पराश्रयवादी दृष्टिकोण के कुछ प्रणेताओं का मानना है कि तीसरी दुनिया के देश आज भी राजनीतिक स्वतंत्रता से वंचित हैं तथा उन पर साम्राज्यवादी ताकतों की पकड़ आज भी बनी हुई है। इन लेखकों के अनुसार दुनिया एकल पूंजीवादी व्यवस्था में आबद्ध है।

विकसित पश्चिम देश इस विश्व व्यवस्था के केंद्र का निर्माण करते हैं। औपनिवेशिक काल में साम्राज्यवादी देशों ने तीसरी दुनिया को अपनी जरूरतों के अनुरूप ढालने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। इस प्रक्रिया में तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्था संरचनात्मक रूप से विकसित देशों की अर्थव्यवस्था से जुड़ गयी है और यही कारण है कि विकसित देशों पर उसकी निर्भरता आज भी बनी हुई है। विश्व पूंजीवाद से तीसरी दुनिया की हैसियत केंद्र से जुड़े अनुलग्नक जैसी है। केंद्र को महानगर/राजधानी भी कहते हैं। तीसरी दुनिया विश्व पूंजीवाद की परिधि पर स्थित है। इस दृष्टिकोण के अनुसार तीसरी दुनिया का राज्य केंद्र/राजधानी के हाथ का औजार भर है।

यह मानते हुए भी कि अल्पविकसित देशों पर विकसित पूंजीवादी देशों का वर्चस्व कायम है, पराश्रयवादी सिद्धांत के आलोचकों ने उस तर्क को खारिज कर दिया जिसके अंतर्गत कहा गया था कि तीसरी दुनिया के राज्य स्वायत्त नहीं होते। इन लेखकों का मानना है कि राजनीतिक आजादी से तीसरी दुनिया को राज्य का इस्तेमाल कर अपने हितों को संवर्द्धित करने का मौका मिला है, भले ही यह सब उसे नवऔपनिवेशिक प्रतिबंधों के तहत करना पड़ता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी प्रकार तीसरी दुनिया के प्रभु वर्गों की प्रवृत्ति के बारे में भी तरह-तरह के विचार व्यक्त किए गए हैं। कुछ लोगों का कहना है कि तीसरी दुनिया पर देसी पूंजीवादी वर्ग का वर्चस्व कायम है। किंतु प्रमुख विचार यही है कि तीसरी दुनिया में कोई सुगठित प्रभावशाली वर्ग नहीं है। वास्तव में तीसरी दुनिया में विभिन्न वर्गों का शिथिल गठबंधन ही प्रभुत्व की स्थिति में है।

तीसरी दुनिया के राज्य की व्याख्या प्रभावशाली वर्गों के साथ उसके संबंध के संदर्भ में भी की जाती है। तीसरी दुनिया के बारे में लिखने वाले अधिकांश लेखकों का मानना है कि राज्य शासक वर्गों का गुलाम न होकर स्वायत्त है और यह स्वायत्ता सामाजिक संरचना द्वारा सीमांकित की जाती है। तीसरी दुनिया के राज्यों के विशिष्ट चरित्र के पीछे कुछ खास ऐतिहासिक व्यक्तियों की मौजूदगी भी कारण रही है। उपनिवेशों पर अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए औपनिवेशिक शासकों ने अतिकेंद्रित राज्य तंत्र का निर्माण किया था। इस तरह तीसरी दुनिया में राज्य तंत्र ऊपर से थोपी हुई चीज है न कि आंतरिक सामाजिक गत्यात्मकता से स्वत: स्फूर्त चीज। और यही कारण है कि तीसरी दुनिया का राज्य अपने समाज से मेल नहीं खाता। यह अपने समाज की तुलना में काफी आगे अथवा अतिविकसित होता है।

तीसरी दुनिया पर विविध दृष्टियों से विचार करने के बाद यह कहा जा सकता है कि तीसरी दुनिया का राज्य अतिविकसित और उत्तर औपनिवेशिक राज्य है तथा यह शासक वर्गों से स्वायत्त है। दूसरे शब्दों में यह तीसरी दुनिया की जटिल सामाजिक बनावट का प्रतिफलन है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर मिलाइए।

1. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

क) उदारवादी दृष्टिकोण

....

....

....

....

ख) मार्क्सवादी दृष्टिकोण

....

....

....

....

ग) पराश्रयवादी दृष्टिकोण

....

....

....

....

12.3 राज्य की विशेषताएं

एक संस्था के रूप में राज्य का अस्तित्व ऐतिहासिक प्रक्रिया की देन है। तीसरी दुनिया के संदर्भ में बात करें तो राज्य सीधे तौर पर विऔपनिवेशीकरण का नतीजा है और इसी से उसका विशिष्ट चरित्र भी निर्धारित होता है। कुछ मामलों में अगर तत्कालीन औपनिवेशिक सीमाओं में परिवर्तन कर राज्य बनाये गए तो कुछ मामलों में सर्वथा नवीन राज्यों की स्थापना की गयी। राज्य की सीमा सदैव राष्ट्र की सीमा से मेल नहीं खाती थी। अक्सर विभिन्न नृजातीय समूहों व राष्ट्रीयताओं को मिलाकर राज्य का निर्माण कर लिया जाता था। फिर औपनिवेशिक जरूरतों के हिसाब से उपनिवेशों का सीमांकन कर लिया जाता था। राज्य निर्माण में कृत्रिमता की पहचान अफ्रीकी राज्यों के संदर्भ में आसानी से की जा सकती है। उदाहरण के लिए नाईजीरिया पूरी तरह से ब्रिटिश रचना है। तीसरी दुनिया के राज्य राष्ट्र बनने से पहले ही राज्य बन गये थे। बहुत हद तक यही उनके बीच सीमा विवाद के लिए भी जिम्मेवार है और उनकी राष्ट्रीय अखंडता की समस्या भी इसी वजह से है। उत्तर औपनिवेशिक काल में तीसरी दुनिया के ढेर सारे देशों को जातीय व अलगाववादी आंदोलनों का सामना करना पड़ रहा है। ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीतियों तथा राष्ट्रीय आंदोलन की आंतरिक गत्यात्मकता की वजह से पाकिस्तान का निर्माण हुआ था और यही बांग्लादेश के निर्माण के भी कारण बने। तीसरी दुनिया के राज्यों में जो जटिलता दिखलाई पड़ती है वह बहुत हद तक औपनिवेशिक सीमाओं के रेखांकन में कृत्रिमता, औपनिवेशिक विरासत के प्रभाव तथा विऔपनिवेशिकरण प्रक्रिया की गतिशीलता की वजह से है। तीसरी दुनिया के राज्य की विशिष्ट विशेषताएँ निम्नांकित हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) यह एक अतिविकसित राज्य होता है।

2) यह प्रभु वर्गों से स्वतंत्र होता है।

3) यह महानगरीय पूंजीपति वर्ग के हितों का संरक्षण भी करता है।

12.3.1 अतिविकसित राज्य

पश्चिमी पूंजीवादी देशों में आधुनिक राष्ट्र राज्य का उदय समाज की आंतरिक गत्यात्मकता का प्रतिफल रहा है। यह तब अस्तित्व में आया था जब वहां के समाज का पूंजीवादी व्यवस्था के रूप में ऐतिहासिक संक्रमण हो रहा था। उभरते हुए पूंजीपति वर्ग ने राष्ट्र राज्य की स्थापना की पहल की थी।

तीसरी दुनिया में राजनीतिक संस्थाओं में परिवर्तन बाह्य कारणों का नतीजा था। उपनिवेश काल में तीसरी दुनिया पर पश्चिमी पूंजीवादी देशों का वर्चस्व था। औपनिवेशिक शासकों ने जान बूझकर ऐसी राजनीतिक संस्थाएं स्थापित की थीं जिनसे देशी वर्गों पर उनका वर्चस्व भी कायम रह सके तथा उपनिवेशों का शोषण भी किया जा सके।

इन कार्यों को अंजाम देने के लिए औपनिवेशिक शासकों ने उपनिवेशों में जटिल कानूनी संस्थागत संरचना का

निर्माण किया था। उपनिवेशों पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए ऐसा करना जरूरी था। औपनिवेशिक शासकों के कार्यों के प्रबंध में सेना और नौकरशाही की प्रमुख भूमिका होती थी, क्योंकि वे ही इन संस्थाओं के असल कार्यकर्ता भी थे।

आजादी के बाद भी उपनिवेशों में यही संरचना कायम रही। तीसरी दुनिया के राज्य की दो महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं: प्रथमत: यह कि इसका निर्माण स्थानीय वर्गों ने नहीं किया है, न ही यह सामाजिक परिवर्तन का नतीजा है, दूसरे राज्य पर देशी शासक वर्गों का कोई नियंत्रण नहीं होता है।

ऐसा राज्य अपने देशकाल की सीमाओं से काफी आगे होता है। यही कारण है कि तीसरी दुनिया में सेना और नौकरशाही को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। पश्चिमी पूंजीवादी देशों में नौकरशाही सहायक भूमिका अदा करती है। वहां यह प्रभुत्वशाली वर्ग के हाथों का औजार है जबकि तीसरी दुनिया में इसे केंद्रीय भूमिका प्राप्त है और यहां यह प्रभावशाली वर्ग के नियंत्रण से मुक्त भी है।

अतिविकसित राज्य लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमजोर करता है। तीसरी दुनिया के उन देशों में भी जहां लोकतांत्रिक संस्थाएं मौजूद हैं तथा वहां चुने हुए प्रतिनिधि राज्यसत्ता का नियंत्रण करते हैं। राज्य सत्ता पर नौकरशाही की पकड़ बनी हुई है। यह अलग बात है कि राज्यसत्ता पर नियंत्रण राजनीतिज्ञों की मिलीभगत से ही होता है।

जिन देशों में लोकतांत्रिक नियंत्रण मौजूद है, वहां राजनीतिज्ञ केंद्रीय भूमिका में हैं। समर्थन हासिल करने की गरज से राजनीतिज्ञ जनता की मांगों को मुखर करते हैं। जनमांगों को पूरा करने के लिए वे नीतियों का निर्माण करते हैं। इस प्रक्रिया में राजनीतिज्ञ नीति संस्थाओं को वैधता प्रदान करते हैं। तथापि, वे नौकरशाही की प्रविधियां व नियंत्रण से इस सत्ता पर अंकुश लगाने का काम करते हैं। राजनीतिज्ञ राज्य व जनता के बीच दलाल बनकर रह जाते हैं।

DIKSHANT IAS

12.3.2 स्वायत्ता

Call us @7428092240

पश्चिमी देशों में राज्य सत्ता पर एकल प्रभावशाली वर्ग का वर्चस्व रहता है। तमाम पश्चिमी देशों में पूंजीपति वर्ग ही प्रभावशाली वर्ग के रूप में स्थापित है। तीसरी दुनिया के देशों में कई कई प्रभावशाली वर्ग मौजूद हैं। तीसरी दुनिया में स्थानीय जमींदार वर्ग यानी राजधानी से संबद्ध स्थानीय पूंजीपति वर्ग ही राज्यसत्ता पर नियंत्रण करता है। इन तमाम वर्गों का गठबंधन ही राज्य का नियंता होता है। यह गठबंधन ऐतिहासिक खेमे के नाम से जाना जाता है। इस ऐतिहासिक खेमे का उदय इसलिए होता है क्योंकि तीसरी दुनिया के गठन निर्माण की प्रक्रिया में पूंजीवादी व प्राक्पूंजीवादी दोनों ही तरह के सामाजिक संबंधों के तत्व शामिल होते हैं। पूंजीपति वर्ग कमजोर होता है और वह समाज के प्राक्पूंजीवादी संबंधों के खिलाफ लड़ाई लड़ने में असमर्थ है।

पूंजीपति वर्ग कमजोर होता है क्योंकि आर्थिक गतिविधियों पर उसका नियंत्रण सीमित होता है। आर्थिक उत्पादन के एक बड़े हिस्से का नियंत्रण या तो राजधानी के पूंजीपति कर लेते हैं या फिर स्थानीय भूस्वामी। यहां कोई भी वर्ग राज्यसत्ता पर अकेले नियंत्रण करने में समर्थ नहीं होता।

चूंकि कोई एकल प्रभावशाली वर्ग नहीं होता, इसलिए राज्य ऐतिहासिक खेमे के विभिन्न वर्गों के हिस्सों को संचालित करने के लिए स्वायत होता है। तीसरी दुनिया का राज्य स्थानीय प्रभावशाली तथा राजधानी के पूंजीपति वर्ग के हित में अपने विपुल आर्थिक संसाधनों का दोहन कर पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली स्थापित करता है और इस तरह अपनी स्वायत्तता बनाये रखता है।

12.3.3 राजधानी का नियंत्रण

तीसरी दुनिया का राज्य बाह्य शक्तियों से नियंत्रित होता है। एक तो अर्थव्यवस्था अल्पविकसित प्रकृति की होती है, दूसरे स्थानीय शासक वर्ग/अभिजात वर्ग की प्रकृति ऐसी होती है कि राज्य को सदैव विदेशी सहायता और पूंजी पर निर्भर रहना पड़ता है। राज्य व विदेशी पूंजी के बीच मध्यस्थता करनेवाला शासक वर्ग भारी लाभ कमाता है। एक तरफ शासक और शासित के बीच तो दूसरी तरफ धनी और निर्धन के बीच की खाई बढ़ती जाती है। फिर भी यह कहना गलत होगा कि तीसरी दुनिया का राज्य पूरी तरह से साम्राज्यवादी शासकों के नियंत्रण में होता है।

औपनिवेशिक दासता से उपनिवेशों की मुक्ति के बाद साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग के लिए यह संभव नहीं रह गया कि वे तीसरी दुनिया के राज्य पर सीधा नियंत्रण कायम रख सकें। तो भी तीसरी दुनिया के राज्य पर उसका

अप्रत्यक्ष नियंत्रण तो रहता ही है। अपनी राष्ट्रीय सीमाओं को मिटा कर तीसरी दुनिया का अतिविकसित राज्य विश्व बाज़ार को अपने घर में घुसने का मौका प्रदान करता है। प्रौद्योगिकी व पूंजीनिवेश के प्रवेश को छूट देकर राज्य तीसरी दुनिया को बाजार से जोड़ देता है। इस तरह हम देखते हैं कि तीसरी दुनिया का राज्य/शासक वर्ग बाहरी दुनिया से लेन देन करते समय कमजोर आधार पर खड़ा होता है। उसकी क्षमता भी समाप्त गई होती है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) स इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

1) तीसरी दुनिया की चारित्रिक विशेषताएं क्या हैं ?

....
....
....
....

2) पूर्व-औपनिवेशिक ताकतों का उपनिवेशों पर आज भी नियत्रण कायम है। संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

....
....
....
....

12.4 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तीसरी दुनिया के राज्य बहुत हद तक औपनिवेशिक रचनाएं हैं क्योंकि उनकी सीमाएं एवं उनके शासन का स्वरूप औपनिवेशिक नीतियों से गहरे रूप में प्रभावित हैं। उदार लोकतंत्रवादी, मार्क्सवादी और नवमार्क्सवादी दृष्टिकोणों से यह तीसरी दुनिया के राज्य का विश्लेषण किया जा सकता है। तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत है। यह अर्थव्यवस्था मुक्त बाजार के सिद्धांतों पर कार्य करती है और समाज के प्रभावशाली तबकों के हितों का प्रतिनिधित्व करती है।

यह सही है कि तीसरी दुनिया के प्रभावशाली वर्ग पूर्व औपनिवेशिक ताकतों पर आश्रित होते हैं लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि उन्हें किसी प्रकार की कोई स्वतंत्रता हासिल ही नहीं है। सच तो यह है कि उन्हें भी खास तरह की स्वतंत्रता हासिल है। वे राज्य व राजधानी के बीच मध्यस्थता का कार्य करते हैं। तीसरी दुनिया के राज्यों को अतिविकसित राज्य या स्वायत्ता प्राप्त राज्य या फिर पराश्रित राज्य सापेक्ष कहा जाता है।

12.5 शब्दावली

पूंजीपति वर्ग : वह वर्ग जिसका उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व होता है, जो श्रम का शोषण करता है तथा जो श्रम से पैदा हुए अतिरिक्त मूल्य लाभ का अधिग्रहण करता है।

लैटिन अमेरिका : केंद्र और दक्षिण अमरीका के वे क्षेत्र, जहां की मुख्य भाषा स्पेनिश अथवा पुर्तगाली है।

12.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

हम्ज़ा आल्वी तथा
डिमोडोर समीन (संपादित) *इंटरोडक्शन टू दि सोसियोलॉजी ऑफ डवेलपिंग सोसायटीज* - लांगमैन

हैरी गालबॉन, 1979 *पॉलिटिक्स एण्ड दि स्टेट इन दि थर्ड वर्ल्ड*, मैकमिलन

जेम्स मेनर, 1981 *थर्ड वर्ल्ड पॉलिटिक्स*, लांगमैन

पूल एण्ड टाइफ, 1981 *थर्ड वर्ल्ड पॉलिटिक्स : ए काम्परेटिव इंटरोडक्शन*, गामोश - मैकमिलन

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) उदारवादी लोकतंत्र व कानून के शासन में विश्वास करते हैं। वे इस विचार से सहमत नहीं होते कि व्यक्ति अपने आर्थिक हितों से निर्देशित होता है।

ख) चेतना पदार्थ का ही प्रतिफल होता है, बाह्य जगत की प्रतिध्वनि होती है। राज्य के मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, राज्य न तो निरपेक्ष होता है न ही समझा न्यास होता है। यह प्रभु के हाथों में औजार भर होता है।

ग) पराश्रयवादी सिद्धांत के अनुसार उत्तर औपनिवेशिक राज्य असल में स्वतंत्र नहीं हुए हैं, वे आज भी पूर्व औपनिवेशिक मालिकों पर आश्रित हैं।

बोध प्रश्न 2

1) तीसरी दुनिया के देशों का प्रधान गुण उनका आर्थिक पिछड़ापन है।

2) असमान व्यापारिक शर्तों तथा सहायता के जरिये भूतपूर्व औपनिवेशिक देश तथा पश्चिम के दूसरे विकसित देश तीसरी दुनिया के देशों पर अपना नियंत्रण बनाये हुए हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 13 खाड़ी युद्ध

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 खाड़ी युद्ध के कारण

13.2.1 संघर्ष की जड़ें

13.2.2 खाड़ी युद्ध के समय अंतर्राष्ट्रीय स्थिति

13.3 कुवैत के खिलाफ इराकी कार्रवाई

13.3.1 कुवैत पर विजय एवं कब्जा

13.4 कुवैत की मुक्ति

13.4.1 संयुक्त राज्य की अगुआई में 28 देशों का गठबंधन

13.4.2 इराक के खिलाफ प्रतिबंध और कुवैत की संप्रभुता की बहाली

13.5 खाड़ी युद्ध का प्रभाव

13.6 सारांश

13.7 शब्दावली

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई में शीतयुद्ध के अंत के बाद पश्चिम एशिया में भड़के पहले मुख्य संकट की चर्चा की गयी है। इराक द्वारा कुवैत पर कब्जा करने के साथ जिस खाड़ी युद्ध का आरंभ हुआ था, वह अंततः इराक की हार के साथ समाप्त हो गया। इस खंड के अध्ययन के पश्चात् आप:

- प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति से लेकर कुवैत के खिलाफ इराकी कार्रवाई करने के बीच घटनाक्रमों का पता लगा सकेंगे,
- कुवैत के खिलाफ कार्रवाई करने तथा अंततः उस पर कब्जा करने के इराकी फैसले का विश्लेषण कर सकेंगे,
- संयुक्त राज्य अमेरीका, सोवियत संघ व पश्चिमी एशियाई देशों की प्रतिक्रियाओं की व्याख्या कर सकेंगे,
- संक्षेप में खाड़ी युद्ध के घटनाक्रमों का पुनःस्मरण कर सकेंगे, और
- इराक के खिलाफ अमरीकी अगुआई में की गयी कार्रवाई के नतीजों का विवेचन कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

शीत युद्ध करीब 45 वर्षों तक चला। यह द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के साथ यानी 1945 में ही शुरू हो गया था। कोई भी नहीं जानता कि शीतयुद्ध की शुरुआत किस नियत तिथि से हुई थी। खंड 7 में आपको शीतयुद्ध के अर्थ, उसके ढाँचे तथा विविध आयामों के बारे में जानकारी दी गयी थी। वह राजनीतिक युद्ध दोनों खेमों के नेताओं के मानसिक स्तर पर लड़ा गया था। शीतयुद्ध में शामिल महाशक्तियों ने अपने राजनीतिक संबंध नहीं तोड़े न ही सैन्य शक्ति का इस्तेमाल किया। यह अलग बात है कि दोनों के बीच तीव्र तनाव तो कभी तनाव शैथिल्य की स्थितियाँ आती रहीं। शीतयुद्ध अंततः 1989 के उत्तरार्द्ध में समाप्त हुआ जब अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश और सोवियत राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाचेव ने मिलकर दुनिया को शांति व विकास के पथ पर नेतृत्व देने का संकल्प लिया। तथापि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में तनाव अपरिहार्य रूप से मौजूद रहते हैं। संघर्ष अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा है। इसे रोका नहीं जा सकता।

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद, 1990-91 में पश्चिम एशिया में पहला अंतर्राष्ट्रीय संकट उभरा। तेलसमृद्ध पड़ोसी राज्य कुवैत पर इराक का आक्रमण अंततः उस पर जीत के साथ इराक द्वारा उसे अपना उन्नीसवां राज्य घोषित करना इस संकट का प्रथम चरण था। कुवैत से इराक को हटाने के सभी प्रयास जब विफल

हो गये तथा संकट का शांतिपूर्णहल असंभव प्रतीत होने लगा तब सुरक्षा परिषद् द्वारा प्राधिकृत संयुक्त राज्य अमरीका की अगुआई में 28 देशों के गठबंधन ने इराक पर चढ़ाई कर कुवैत के मुक्त करा दिया। यह खाड़ी युद्ध का द्वितीय चरण था इसे खाड़ी युद्ध II की संज्ञा भी दी जा सकती है। 1980-88 के बीच हुए इराक-ईरान युद्ध को प्रथम खाड़ी युद्ध के नाम से जाना जाता है। वह दीर्घकालिक युद्ध बहुत हद तक अनिर्णित समाप्त हुआ था, यद्यपि इराक अंततः लाभ पाने का दावा करता रहा। चूंकि ईरान पहले ही अयातुल्ला खुमेनी के कठमुल्लावादी प्रशासन को अंगीकार कर चुका था, अंतः इस युद्ध में अमरीकियों ने मोटे तौर पर इराक का ही समर्थन किया था। हाँ, वह सीधे रूप में इस युद्ध में शामिल नहीं था। इस इकाई में इराक-इरान युद्ध की चर्चा करना मकसद नहीं है। वह 1990-91 का खाड़ी युद्ध ही था जिसने अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए खतरा पैदा कर दिया था। पूरे युद्ध को विचारधारात्मक रंग देने के लिए इराक ने इसे अरब-इजराइल युद्ध में तबदील करने का भी प्रयास किया था। इराक द्वारा उकसाये जाने के बावजूद इजराइल जवाबी कार्रवाई करने में संयम का सहारा लेता रहा। खाड़ी युद्ध के दौरान पूरब-पश्चिम के बीच अभूतपूर्व सहयोग देखा गया, यद्यपि सोवियत संघ ने इराक के खिलाफ अपनी सैन्य टुकड़ियाँ नहीं भेजी थी। इस खंड में 1990-91 के द्वितीय खाड़ी युद्ध की चर्चा की गई है।

13.2 खाड़ी युद्ध के कारण

पश्चिम एशिया (मध्यपूर्व) के फारस की खाड़ी क्षेत्र में कई तेलसमृद्ध राज्य हैं। इसमें अरब के अनेक देश जैसे, इराक, कुवैत, सीरिया, जोर्डन, साउदी अरबिया तथा संयुक्त अरब अमीरात शामिल है। कुछ गैर अरब देश भी हैं जिनमें ईरान, नवयहूदी राज्य इजरायल प्रमुख हैं। ईरान को छोड़कर इनमें से अधिकांश राज्य ऑटोमेन साम्राज्य के भाग थे। यह साम्राज्य प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान टर्की की पराजय के बाद ढह गया था। पश्चिम एशिया के अनेक गैरटर्की क्षेत्र टर्की से बाहर आ गये थे, किन्तु उन्हें आजादी नहीं दी गई थी। राष्ट्रकुल की मेडेट व्यवस्था के अंतर्गत वे या तो फ्रांस या ब्रिटेन के अधीन मेडेटड क्षेत्र घोषित कर दिए गए थे। ईराक उनमें से एक था जिसे ऑटोमेन साम्राज्य से अलग कर ब्रिटिश मेडेट घोषित कर दिया गाया था।

DIKSHANT IAS

13.2.1 संघर्ष की जड़ें

Call us @7428092240

संघर्ष की जड़ें प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ऑटोमेन साम्राज्य के पतन, 1920 में इराक के निर्माण (शुरू में ब्रिटिश मेडेट के रूप में) तथा ब्रिटिश प्रोटेक्टोरेट के रूप में कुवैत के गठन में ढूंढी जा सकती है। 1961 में कुवैत को आजादी दी गयी तथा अलसवा परिवार को सत्ता सौप दी गयी। 1990 में इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन को लगा कि वे अपने राज्य की सीमा का विस्तार **कुवैत** जैसे छोटे किन्तु अत्यंत समृद्द व सैन्य दृष्टि से कमजोर राज्य पर कब्जा जमाकर कर सकते हैं। जैसा कि माइकेल ब्रेचर ने टिप्पणी की थी, "यह राष्ट्रपति सद्दाम हुसेन के आकलन का नतीजा था। उन्हें लगा कि 1990 में यह अवसर उन्हें हासिल हो गया है जिससे वे अत्यंत धनी किन्तु सैन्य दृष्टि से कमजोर पड़ोसी को हड़पकर इराक के सपनों को पूरा कर सकते हैं। इराक के फैसले से शुरू में तो द्विपक्षीय अंतर्राष्ट्रीय संकट पैदा हुआ था, किन्तु बाद में वह वैश्विक संकट में तबदील हो गया। 1961 में ही इराक ने कुवैत को राज्य का दर्ज़ा दिए जाने पर आपत्ति की थी और तभी से वह कुवैत को इराक में शामिल करने की कोशिश करता रहा था।

इरान-इराक युद्ध के बाद, सद्दाम हुसैन के नेतृत्व में इराक ने हथियारों का बड़ा जखीरा जमा कर लिया था जिसमें 10 लाख सेना, उन्नत किस्म के सोवियत टैंक व लड़ाकू विमान तथा रासायनिक और जैविक हथियारों का जखीरा शामिल था। साथ ही, इराक ने युद्ध के लिए अरब देशों से भारी मात्रा में कर्ज़ भी लिए थे। उसके अर्थतंत्र का बुरा हाल था। अगर कुवैत उसके कब्जे में आ जाता, तो इराक की अर्थव्यवस्था को काफी सहारा मिल जाता। इराक और कुवैत के बीच सीमा विवाद काफी पुराना था, खासकर सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बुबियान व वार्बा क्षेत्रों तथा बहुमूल्य रूमैला तेल क्षेत्र को लेकर।

राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने हुसैन को अपना मुख्य निशाना बनाया। 17 जुलाई 1990 को राष्ट्रपति हुसैन ने आरोप लगाया कि कुवैत एवं संयुक्त अरब अमीरात ओपेक द्वारा निर्धारित कोटे से ज्यादा तेल का उत्पादन कर रहे हैं। इससे तेल की कीमतें घटी है तथा इराक को तेल राजस्व का भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है। इराक का कहना था कि उसे 14 खरब डालर का नुकसान हुआ है। अतः इराक ने कुवैत और संयुक्त अमीरात को तेल उत्पादन में कटौती करने के लिए कहा। फिर धमकी भी दी अगर वे ऐसा नहीं कर पाते तो उनके खिलाफ बल प्रयोग किया जाएगा। इराक ने कहा, "अगर शब्दों से हमें सुरक्षा नहीं मिलती तो हमारे पास सब कुछ ठीक करने के अलावा कोई और विकल्प नहीं रहेगा।" यह धमकी संकट पूर्व दी गयी थी जिसकी वजह से "बीसवीं सदी के सबसे अधिक नाटकीय और तीव्र सैन्यसुरक्षा संकटों में से एक का सामना करना पड़ा।" कुवैत एक विवश कमज़ोर पड़ोसी था। अगर अलसबा राज्य का विलयन सद्दाम हुसैन के इराक में हो जाता तो इसकी विपुल तेल संपदा इराक की संपत्ति हो सकती थी।

13.2.2 खाड़ी युद्ध के समय अंतर्राष्ट्रीय स्थिति

अंतर्राष्ट्रीय स्थिति इराक के अनुकूल प्रतीत हो रही थी। इराक की अधिकांश सेन्य जरूरतों की पूर्ती करने वाला सोवियत संघ खुद ही संकट में फंसा था। अंततः यह संकट इसके विघटन का कारण भी बना। इरान युद्ध के समय संयुक्त राज्य अमरीका का हमदर्द रहा था। सद्दाम हुसैन सोच रहे थे कि राष्ट्रपति बुश उनके मित्र बने रहेंगे। हालांकि 1990 के मई में सद्दाम हुसैन ने आशंका जाहिर की थी कि सोवियत संघ के पतन के बाद अमरीका मध्यपूर्व में अपना वर्चस्व कायम करने की कोशिश कर सकता है। उन्होंने कुवैत और संयुक्त अरब अमीरात पर आरोप लगाया था कि वे तेल की निर्धारित कोटे से ज्यादा उत्पादन कर रहे हैं जिससे तेल के अंतर्राष्ट्रीय मूल्य में कमी आयी है। वे इसे इराक के खिलाफ युद्ध की संज्ञा से अभिहीत कर रहे थे।

इराक और इरान के बीच हुए लंबे युद्ध की समाप्ति पर यह माना जा रहा था कि इराक विजयी रहा है, हालांकि प्रत्यक्षतः यह युद्ध हार-जीत के निर्णय के बगैर खत्म हुआ था। इराक पूरे खाड़ी क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम करने में विफल रहा, तथापि वह क्षेत्र भी दो महाशक्तियों में स्पष्ट रूप से एक था। इराक के पास 10 लाख सैनिकों की सेना थी, उन्नत किस्म के सोवियत टैंक व लड़ाकू विमान थे और रासायनिक व जैविक हथियारों का भारी जखीरा था। उसके पास भयानक सैन्य शस्त्रागार था। तथापि इराक को अरब देशों को भारी मात्रा में कर्ज़ लौटाना था। ये कर्ज़ उसने प्रथम खाड़ी युद्ध ईरान-इराक युद्ध 1980-88 के लिए, लिए थे। इराकी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए भारी पूंजी का निवेश जरूरी था। इसके अलावा, जैसा कि ब्रैचर का मत था, "इराक को उन्नत हथियारों की अदम्य लालसा थी। इसमें परमाणु क्षमता का विकास भी शामिल था।" शीत युद्ध अभी खत्म ही हुआ था। इराक का प्रमुख आश्रयदाता सोवियत संघ खुद आंतरिक संघर्षों व संकट के दौर से गुजर रहा था। वह विघटन के कगार पर था। राष्ट्रपति सद्दाम को अमरीका से किसी भी तरह की इराक विरोधी कार्रवाई की उम्मीद नहीं थी। 1990 के उत्तरार्द्ध में स्थिति ऐसी थी कि इराक-कुवैत से आर्थिक व सीमा संबंधी फायदे उठा सकता था। जरूरत पड़ने पर वह कुवैत पर कब्जा कायम कर अपने चिरप्रतीक्षित सपने यानी कुवैत को इराक का उन्नीसवां राज्य बनाने को साकार भी सकता था। खाड़ी युद्ध के घटनाक्रम का विश्लेषण करते हुए ब्रेचर का मानना है कि इस बात के काफी प्रमाण हैं कि इराक ने ही संकट लाने की पहल की थी और उसकी कार्रवाई कुवैत के खिलाफ थी। कुवैत पर वास्तविक आक्रमण करने से कई महीने पहले ही संकट की शुरुआत हो गयी थी। अरब सहयोग समिति की पहली सालगिरह 24 फरवरी, 1990 को मनाई गई थी। इसमें मिस्र, इराक, जोर्डन व यमन ने हिस्सेदारी की थी। अमन में आयोजित इस बैठक में राष्ट्रपति सद्दाम ने चेतावनी दी थी कि सोवियत संघ के अवश्यंभावी विघटन को देखते हुए अरबों को पश्चिम एशियाई क्षेत्र में अमरीकी वर्चस्व कायम करने की कोशिशों के प्रति सावधान रहना होगा। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, सद्दाम ने कुवैत व संयुक्त अरब अमीरात पर ओपेक के निर्धारित कोटे से ज्यादा तेल उत्पादित करने का आरोप लगाया था। 30 मई 1990 को उन्होंने कहा कि यह एक तरह से इराक के खिलाफ युद्ध है। इस तरह, 1990 के मई के अंत तक राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन कुवैत को हड़प लेने और तेल लाभ के लिए बेहतर मोल तोल करने का मन बना चुके थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) इराक ने कुवैत के खिलाफ सैन्य कार्रवाई का निर्णय क्यों लिया ?

....

....

....

....

2) खाड़ी युद्ध के समय अंतर्राष्ट्रीय स्थिति कैसी थी ?

....

....

....

....

13.3 कुवैत के खिलाफ इराकी कार्रवाई

1990 के जुलाई के उत्तरार्द्ध में बड़े पैमाने पर कुवैत पर आक्रमण करने की तैयारियाँ होने लगीं। इराक ने अपनी सेना के तीन विशेष डिविजनों को तैनात कर दिया जिसमें 35000 सैनिक, टैंक और रॉकेट शामिल थे। 18 जुलाई को इराक के विदेश मंत्री तारिक अजीज ने कुवैत पर विवादित रूपैला क्षेत्र से 24 खरब डालर मूल्य के तेल की चोरी करने का आरोप लगाया। कुछ दिनों बाद अमरीका ने संयुक्त अरब अमीरात के साथ साझे सैन्य अभ्यास की घोषणा की ओर दो अतिरिक्त युद्धपोतों को भेज दिया मानो सद्दाम हुसैन के लिए सीमा संकेत खींच दिया गया हो। दूसरे दिन इराक ने कुवैत को 2.4 खरब डालर की भरपाई करने की मांग कर दी। इराक के दबाव में तेल निर्यातक देशों के संघ ने 27 जुलाई को तेल की कीमत 18 डालर प्रति बैरल से बढ़ाकर 21 डालर प्रति बैरल कर दी। 1 अगस्त, 1990 को इराक और कुवैत के बीच दो दिवसीय वार्ता विफल हो गयी। अब इराक आक्रमण के लिए तैयार था किंतु कुवैत को संकट की गंभीरता का अहसास नहीं था। 27 जुलाई तक कुवैत ने अपनी सेना को सीमा पर नहीं भेजा था। कुवैत की सेना पूरी तरह मुस्तैद होकर दो कमांडरों के नेतृत्व में कुवैत सिटी के उत्तरी भाग में तैनात कर दी गयी थी। किन्तु कुवैत के अमीर को आक्रमण की आशा नहीं थी, नतीजतन उन्होंने सेना को छावनी में वापस जाने का निर्देश दे दिया। 1 अगस्त तक, संयुक्त राज्य अमरीका में कुवैत के राजनयिक ऐसी किसी भी संभावना से इंकार करते रहे। वास्तव में, कुवैती सेना की खुफियागिरी बहुत घटिया थी।

13.3.1 कुवैत पर विजय एवं कब्जा

2 अगस्त, 1990 को स्थानीय समय के अनुसार 2 बजे इराक ने कुवैत पर आक्रमण किया। इराकी टैंक इतनी तेज़ी से राजधानी में घुसे कि कुवैती सेना कोई प्रतिरोध न कर सकी। मात्र छह घंटों में इराक ने कुवैत अमीरात पर कब्जा कर लिया।

अमरीका का दोस्त सउदी अरबिया भी सकते में आ गया। इराकी आक्रमण की सूचना दिये जाने पर, सउदी अरबिया के शाह ने पूछा, "क्या आप सच कह रहे हो? आक्रमण से कुछ घंटों पहले तक अधिकांश अमरीकी अधिकारी आक्रमण की बहुत क्षीण संभावना देख रहे थे। इसके कारण भी थे। प्रथम तो यही कि कुवैत के अस्तित्व को खारिज करना कोई नई बात नहीं थी। ऐसा तो वह 1857 से लेकर प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति तक करता रहा था। कुवैत बसरा प्रांत का अंग था जबकि बसरा 1920 से ही इराक के कब्जे में बना रहा था। इराक द्वारा कुवैत की स्वतंत्रता को मान्यता दिए जाने के बावजूद दोनों के बीच दीर्घकालिक सीमा विवाद चलते रहे थे। लेकिन सैन्य कार्रवाई की आशंका कभी पैदा नहीं हुई। 1989 के फरवरी तक कई दौर में वार्ताएं हो चुकी थीं। दूसरे इराक-इरान युद्ध के वक्त कुवैत ने इराक का खुला समर्थन किया था और उसे 15 खरब डालर का ब्याज मुक्त कर्ज़ भी मुहैया कराया था। ऐसे में कुवैत आक्रमण की आशा कैसे कर सकता था? तीसरे, दोषकारी बयान जारी करना आंतरिक अरब राजनीति की राजनीतिक संस्कृति का बुनियादी तत्व भी रहा था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आक्रमण के छह घंटों के अंदर ही संयुक्त राज्य अमरीका ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी थी। व्हाइट हाउस ने इराक के आक्रमण की भर्त्सना की और इराक से शीघ्र और बिना शर्त कुवैत खाली करने की मांग की। फिर भी अमरीका ने तय नहीं किया था कि उसे कौन सी कार्रवाई करनी चाहिए। दूसरे दिन (3 अगस्त) (अमरीकी समय के अनुसार 2 अगस्त) राष्ट्रपति बुश ने कहा, "हम कोई विकल्प बंद नहीं कर रहे हैं, न ही कोई विकल्प तय कर रहे हैं।" बुश ने बल प्रयोग की बाबत कुछ भी नहीं कहा तो इसीलिए कि वे नहीं जानते थे कि उन्हें बल प्रयोग करना ही पड़ेगा। अमरीकी राष्ट्रपति ने घोषणा की "इराक पर फतह करना हमारा मकसद नहीं है। किन्तु एक महीने बाद बुश ने अपनी घोषणा को व्यक्तिगत आयाम देते हुए कहा, कि सद्दाम को हटाना ही उनका लक्ष्य है। उन्होंने यह भी कहा, "खून खराबा रोकने का एक और तरीका है, और वह यह है कि... इराकी जनता मामले को खुद अपने हाथों में ले ले तथा तानाशाह सद्दाम हुसैन को पदमुक्त होने तथा सयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों का अनुपालन करने के लिए मजबूर करे....।"

यहाँ राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के व्यक्तिगत चरित्र की चर्चा जरूर की जानी चाहिए। माइकेल ब्रेचर के अनुसार, "वह खालिस डर के आधार पर शासन करता था... उसकी महत्वाकांक्षा खाड़ी क्षेत्र में आधिपत्य स्थापित कर अंततः पूरी अरब दुनिया में अपनी महत्ता स्थापित करने की थी।" किसी तरह उसने मान लिया था कि प्रथम खाड़ी युद्ध में उसकी सफलता के बाद अमरीका और इजरायल की अगुआई में इराक के खिलाफ कोई साजिश चल रही है। इस साजिश में सउदी अरबिया और कुछ अन्य खाड़ी देश भी शामिल थे। सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाचोव के विशेष दूत को इस आशंका से अवगत कराया गया था और उसने कहा था, "इनमें से कुछ बातें सत्य हो सकती है।"

संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् ने इराकी हमले तथा कुवैत के कब्जे पर विचार विमर्श किया था। इसी बीच जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, इराक की रिवोल्युशनरी कमांड काउंसिल ने 8 अगस्त,

1990 को कुवैत के कब्जे पर अपना फरमान जारी करते हुए कहा, "इराक के साथ कुवैत का विलयन व्यापक शाश्वत व अविच्छन्न है।" कुवैत को इराक का उन्नीसवां प्रांत घोषित कर दिया गया।

इराक के लिहाज से कुवैत पर कब्जा उसके लिए काफी फायदेमंद साबित हो सका। इसमें दुनिया भर में फैली कुवैत की परिसंपत्तियां और बहुमूल्य तेल भंडार शामिल थे। इस लाभ से इराक को अपनी गंभीर आर्थिक परिस्थितियों से निजात पाने में सुविधा होती। इरान के साथ लंबे समय तक जारी युद्ध ने इराक की अर्थव्यवस्था को जर्जर बना दिया था। इसके अलावा कुवैत का 310 मील लम्बा समुद्र तट इराक को समुद्र तक पहुँचने में मददगार हो सकता था। इस तरह कुवैत पर कब्जा करने से इराक का खाड़ी क्षेत्र में वर्चस्ववादी सत्ता के रूप में स्थापित होने का स्वप्न पूरा हो सकता था। इससे अरब में इराक की सर्वोत्तम महत्ता भी कायम हो सकती थी। अमरीका की भर्त्सना सद्दाम हुसैन के लिए अचरज की बात थी क्योंकि 1982 से ही अमरीकियों ने "कठमुल्लावादी ईरान" के खिलाफ इराक की खुली पैरोकारी की थी।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) द्वितीय खाड़ी युद्ध के प्रथम चरण के दौरान कुवैत के खिलाफ इराकी हमले के परिणाम का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

13.4 कुवैत की मुक्ति

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जब से इराक ने कुवैत पर कब्जा किया तभी से इराक पर दबाव डालकर कुवैत से हटने के लिए ताबड़तोड़ राजनयिक और दूसरी कार्रवाइयों की पहल की जाती रही थी। सउदी अरबिया इराक का कटु और प्रधान आलोचक था। नतीजन इराक ने 3 अगस्त, 1990 को 60,000 की सैन्य टुकड़ी सउदी अरबिया की सीमा पर तैनात कर दी। दो दिनों बाद उसने इसमें 11 और डिवीजनों को जोड़ दिया। इसके जबाव में संयुक्त राज्य ने सउदी अरबिया में 6,000 से 15,000 की सैन्य टुकड़ी व चार लड़ाकू स्क्वैड्रनों को तैनात कर दिया। तय किया गया कि 11 अगस्त तक सउदी अरबिया में अमरीकी सेना की संख्या 2,00,000 कर दी जाएगी। 16 अगस्त को इराक ने हजारों विदेशियों को जिनमें ब्रिटिश, फ्रांसीसी, अमरीकी और जापानी शामिल थे बंधक बना लिया, 21 अगस्त, 1990 को इराकी रिवोल्युशनरी कमांड काउंसिल ने इराक की जनता की आह्वान किया कि वह "सभी युद्धों की जननी" के लिए तैयार हो जाए। उस समय तक दक्षिण और कुवैत में इराक के 1,30,000 सैनिक थे। जब संयुक्त राष्ट्र ने आर्थिक प्रतिबंध लगाने का फैसला किया तो इराक ने सउदी अरबिया, गैरमित्र अरब देशों व इजरायल के तेल क्षेत्रों को हड़प लेने की धमकी दे दी। इराक पर लगा प्रतिबंध आज भी यानी 1997 में भी लागू है। इराक के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्राधिकृत युद्ध के स्पष्ट संकेत 1990 के नवम्बर के मध्य में मिल गये थे। इसी दौरान सद्दाम हुसैन ने बंधकों को रिहा करने का प्रस्ताव किया बशर्ते संयुक्त राष्ट्र अमरीका की अगुआई में लड़ रही मित्रराष्ट्रों की तमाम सेनाओं को क्षेत्र से हटा लेने की गारंटी दे या फिर बुश लिखित रूप से मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं को क्षेत्र से हटा लेने तथा साथ ही "इराक पर लगी संयुक्त राष्ट्र की नाकेबंदी" को उठा लेने की 'स्पष्ट व असंदिग्ध प्रतिबद्धता" व्यक्त करे। संयुक्त राज्य अमरीका ने इन मांगों को तुरंत ही खारिज कर दिया और धमकी दी की जब तक इराक सुरक्षा परिषद् द्वारा पारित प्रस्ताव जिसमें कुवैत के अमीर के शासन की पुनर्बहाली की बात की गयी थी, मान नहीं लेता तथा सभी बंधकों को रिहा नहीं कर देता तब तक उस पर ये प्रतिबंध जारी रहेंगे। शुरू में इराक ने कुवैत संकट को अरब इजरायल संघर्ष में तबदील करने की कोशिश की थी। इराक ने इजरायल के कब्जे वाले वेस्टबैंक व गाजा, गोलन पहाड़ियों व दक्षिणी लेबनान के क्षेत्रों को मुक्त करने की मांग की। राष्ट्रपति बुश ने आमसभा को बताया अगर इराक कुवैत से बिना किसी शर्त के लौट जाता है, तो शीघ्र ही ऐसे अवसर पैदा होंगे जिनमें अरब व इजराइल को बाँटने वाले मुद्दों का समाधान ढूँढा जा सकता है।

13.4.1 संयुक्त राज्य की अगुआई में 28 देशों का गठबंधन

चूंकि ऐसे संकेत नहीं दिख रहे थे कि इराक सुरक्षा परिषद् के प्रस्तावों का अनुपालन करेगा, अतः अमरीका उन राष्ट्रों की गठबंधन बनाने का प्रयास करने लगा जो इरान द्वारा कुवैत के कब्जे के खिलाफ थे।

हालांकि यह आसान काम नहीं था तथापि संयुक्त राज्य की अगुआई में 28 राष्ट्रों का गठबंधन बना लिया गया। उसमें कुछ नाटो के सदस्य थे जो ज्यादा पश्चिम एशियाई क्षेत्र के ही देश थे। तथापि इन 28 देशों में से अधिकांश देशों ने संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव के समर्थन में इराक के खिलाफ सैन्य निर्माण में योगदान किया था, फिर भी इनमें से केवल छह देस ही असल में युद्ध में भाग ले सके। ये देश थे संयुक्त राज्य, सउदी अरब, ब्रिटेन, फ्रांस, मिस्र और सीरिया। इसके अलावा पाकिस्तान, बांग्लादेश, मोरक्को, नाइजीरिया और अमीरात के गैर लड़ाकू सैनिकों ने भी इस युद्ध में हिस्सा लिया था। 17 फरवरी से लेकर 28 फरवरी तक दो युद्ध लड़ा गया, वह वास्तव में इराक और संयुक्त राज्य के बीच जोर आजमाइश था। दूसरी तरफ जोर्डन, यमन व पी. एल. ओ. इराक का राजनयिक, राजनीतिक व आर्थिक समर्थन कर रहे थे किन्तु इराक की ओर से युद्ध में लड़ने कोई नहीं आया। इस तरह यह संयुक्त राज्य अमरीका की अगुआई में गठित 28 राष्ट्रों के गठबंधन व इराक के बीच एक गैरबराबरी का युद्ध था।

अमरीकी अगुआई वाले गठबंधन में 7,00,000 से ज्यादा सैनिक थे। इनमें सबसे बड़ा हिस्सा निश्चित ही संयुक्त राज्य का था। अमरीकी सेना में 5,27,000 सैनिक थे। उन्हें सहयोग देने के लिए 1500 लड़ाकू विमानों और 91 शक्तिशाली नौ सैनिक बेड़ों का दस्ता भी था।

अपने ही घर में परेशान सोवियत संघ भी गठबंदन में शामिल हुआ ता। उसने पूरे तौर पर संयुक्त राष्ट्र प्रस्तावों का समर्थन किया। उसने कुवैत से इराक को निकाल बाहर करने के अमरीकी संकल्प को भी सराहा था। लेकिन वह खाड़ी क्षेत्र में न तो सैन्य तैयारी में शामिल हुआ था न ही इराक के खिलाफ युद्ध में। उसनें दोनों पक्षों में समझौता कराने का भी प्रयास किया था। सोवियत संघ बखूबी जानता था कि अगर उसने युद्ध में हिस्सा लिया तो उसके मुस्लिम गणंतत्रों में भयंकर प्रतिक्रिया होगी। इसके अलावा, वह पिछले दो दशकों से ईरान को भारी मदद दे रहा था। खाड़ी क्षेत्र तब के सोवियत संग के सीमा क्षेत्र से इतना निकट है कि वह उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था।

अधिकांश अरब राष्ट्रों के लिए सद्दाम ने अपनी कार्रवाई से दुविधा की स्थिति पैदा कर दी थी। दुविधा यह थी कि वे किस तरह अरब लीग के एक राष्ट्र की राष्ट्रीय संप्रभुता को दूसरे राष्ट्र द्वारा बर्बाद होते देखने का गवाह बनें। अगर वे इराक की निंदा करते हैं तो इससे यह समझा जाएगा कि वे अमरीकी गठबंधन के साथ हैं। अरब देश अमरीका को साम्राज्यवादी ताकत मानते आए हैं, अतः ऐसा करना राजनीतिक दृष्टि से भी सही नहीं था और अगर इराक का समर्थन करते हैं तो यह माना जाएगा कि वे सीमा की अखंडता और राष्ट्रीय संप्रभुता के सिद्धांतों की परवाह नहीं करते। यही कारण था कि अधिकांश अरब देश तटस्थ बने रहे या फिर इराक अथवा गठबंधन की मौखिक सहानुभूति व्यक्त करते रहे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी बीच संकट के राजनयिक समाधान ढूँढने तथा कुवैत की मुक्ति के लिए सोवियत संघ के तमाम प्रयास विफल हो गये। वह सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव संख्या 678 का समर्थन करने पर राजी हो गया जिसमें इराक से 30 नवम्बर 1991 तक कुवैत से जाने के लिए कहा गया था। ऐसा नहीं करने पर इराक को धमकी दी गयी कि उसके खिलाफ फिर से सैनिक कार्रवाई शुरू कर दी जाएगी। संयुक्त राज्य इराक के खिलाफ सैनिक कार्रवाई की शुरुआत 1 जनवरी 1991 के दिन करना चाहता था। लेकिन सोवियत संघ ने एक संधि प्रस्ताव लाकर युद्द की तिथि को 15 जनवरी तक टाल दिया। इस संधि प्रस्ताव में गोर्बाचोव का मशहूर 'पॉज ऑफ गुडविल" भी शामिल था। सुरक्षा परिषद् का प्रस्ताव संख्या 678 के मुकाबले 12 मतों से पारित हुआ। क्यूबा व अमन ने प्रस्ताव के विरोध में मतदान किया था जबकि चीन ने अनुपस्थित रहने कता फैसला किया था। मालूम हो, अनुपस्थित रहना वीटो नहीं होता। प्रस्ताव ने संयुक्त राष्ट्र के तमाम सदस्यों को प्राधिकृत किया कि वे "... क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा बहाल करने के लिए ... हर संभव उपाय का सहारा ले सकते हैं।"

कुवैत की मुक्ति के लिए अमरीकी अगुआई में गठबंधन ने 17 जनवरी 1991 को सैनिक कार्रवाई की शुरुआत की। खाड़ी क्षेत्रों के समयानुसार उस समय अपराह्न में दो बजकर 40 मिनट हुए थे। द्वितीय खाड़ी युद्ध दो चरणों में लड़ा गया था। 1 जनवरी से 23 फरवरी तक यह युद्ध इराक व अधिकृत कुवैत के महत्त्वपूर्ण सामरिक ठिकानों पर हवाई बमबारी करने तक सीमित थी। हवाई हमले को सहायता धार देने के लिए नौसैनिक बेड़ों का दस्ता अलग से था। जमीनी कार्रवाई 24 फरवरी को शुरू हुई और 28 फरवरी तक इराक पूरी तरह पराजित हो गया तथा कुवैत को भी छुड़ा लिया गया।

नौसैनिक दस्ते के सहयोग से जो हवाई युद्ध खाड़ी और लाल सागर में छेड़ा गया था, उसका मकसद इराक के विविध लक्ष्यों पर लगातार बमबारी कर उन्हें तहस नहस करना था। सड़कों, रेलों, विमानपत्तनों, ऊर्जा स्रोतों, शस्त्रागारों व तेल संयंत्रों को लक्ष्य करके बमबारी की गयी। ये कार्रवाईयाँ इराकी सेना के खिलाफ की गई बमबारियों, स्कड मिसाइलों के प्रक्षेपण स्थलों और परमाणु रिएक्टरों पर किए गए हमलों के अलावा थी। इराक के 700 युद्ध विमान गठबंधन की वायु शक्ति का मुकाबला नहीं कर सकते थे। क्योंकि गठबंधन के पास लड़ाकू विमानों की संख्या तकरीबन दुगनी थी। फिर कुछ इराकी विमान बचाव की आशा में इरान में उतार दिए गए और वे युद्ध में भाग नहीं ले सके थे।

13.4.2. इराक के खिलाफ प्रतिबंध और कुवैत की संप्रभुता की बहाली

राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने बदहवास होकर खाड़ी युद्ध को अरब इजराइल युद्ध में तब्दील करने की कोशिश की, किन्तु वे इसमें पूरी तरह नाकामयाब रहे। हफ्तों तक इराक इजराइल पर स्कड मिसाइलों का हमला करता रहा। सोचा यह गया था कि अगर इजराइल बदले की कार्रवाई करता है तो सभी अरब देशों को यहूदी राज्य के खिलाफ युद्ध में लामबंद होने का आह्वान किया जाएगा। इस कार्रवाई से मिस्र और सउदी अरबिया की स्थिति अत्यंत मुश्किल हो जाती। लेकिन काफी उकसाने के बाद भी इजराइल ने बदले की कार्रवाई नहीं की। संयुक्त राज्य इजराइल से युद्ध में शामिल होने का बारबार आग्रह करता रहा था।

इस बीच गोर्बाचोव सुलह की नाकामयाब कोशिशें करत रहे। सद्दाम हुसैन ने कहा था कि जमीनी युद्ध के शुरू होते ही अमरीकी अपने ही खून में तैरते नज़र आएंगे। इस युद्ध के सामने वियतनाम युद्ध भी पिकनिक की तरह लगेगा। किंतु युद्ध शुरू होने के चार दिनों के अंदर ही कुवैत को मुक्त करा लिया गया। तथा अमीर अलसबा का शासन फिर से कायम हो गया। इस तरह कुवैत की संप्रभुता बहाल हुई तथा इराक को स्पष्ट पराजय मिली।

हालांकि युद्ध तो 1991 के शुरू में ही समाप्त हो गया, किन्तु इराक के खिलाफ लगाये गये संयुक्त राष्ट्र के प्रतिबंध 1997 में भी जारी है। चूंकि इराक अपने परमाणु प्रतिष्ठानों को खत्म करने में विफल साबित हुआ था अतः संयुक्त राज्य अमरीका इराक को किसी तरह की ढील देने के पक्ष में नहीं था। इस बीच 1995 में सद्दाम को एक और चुनौती का सामना करना पड़ा जब उनकी दो बेटियाँ अपने पतियों के साथ लेकर जॉर्डन में राजनीतिक शरण लेने के लिए चली गई। सद्दाम हुसैन के ये दोनों दामाद इराक में महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन रहे थे। खुफिया सूत्रों को धता बताते हुए उनका गुपचुप तरीके से पलायन कर जाना सद्दाम के लिए गहरा आघात था। जॉर्डन के शाह इराक के प्रबल समर्थक थे और इसीलिए जब उन्होंने सद्दाम के दामादों को जॉर्डन में शरण दी तब राष्ट्रपति सद्दाम को गहरा आघात पहुँचा।

कुछ महीनों (1996 की शुरुआत में) बाद सद्दाम की बेटियों व उनके दामादों को इराक लौटने की अनुमति दे दी गयी। सद्दाम की पहली बीवी ने उनसे वचन लिया कि उनके दामादों को वापस आने पर माफी दे दी जाएगी। तथापि आने के तुरंत बाद ही दामादों की हत्या कर दी गयी। 1991 में समाप्त हुआ द्वितीय खाड़ी युद्ध वास्तव में एक गहरा संकट था। यों तो सोवियत संघ का अस्तित्व अब भी कायम था किन्तु वह इराक का समर्थन नहीं कर सका। चूंकि इराक को समझा बुझाकर कुवैत से हटाने के संयुक्त राष्ट्र के तमाम प्रयास विफल हो गए थे, अतः अमरीकी अगुआई में सैन्य कार्रवाई करनी पड़ी। इस कार्रवाई को साझी सुरक्षा व्यवस्था का उदाहरण माना जा सकता है। इसने कुवैत को मुक्त कराने में अपनी उपयोगिता साबित कर दी थी। साझी सुरक्षा (यानी संयुक्त राष्ट्र पीड़ित राष्ट्र की सुरक्षा की गुहार सभी सदस्ट राष्ट्रों से करता है) के अर्थ के विपरीत, इस मामले में अमरीकी गठबंदन को आक्रांता के खदेड़ बाहर करने तथा कुवैत की आजादी और संप्रभुता को बहाल करनो के लिए प्राधिकृत कर दिया गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) कुवैत की मुक्ति में 28 राष्ट्रों के गठबंदन की भूमिका का वर्णन कीजिए।

2) खाड़ी संकट के दौरान सोवियत संघ और विभिन्न अरब देशों की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

....

....

3) उन घटनाक्रमों की व्याख्या कीजिए जिनसे कुवैत की संप्रभुता फिर से बहाल की जा सकी थी।

....

....

....

....

....

13.5 खाड़ी युद्ध का प्रभाव

इस अध्याय में खाड़ी युद्ध में शामिल होने वाले देशों पर पड़े उसके प्रभाव की चर्चा की कोशिश की जाएगी। इराक द्वारा कुवैत के खिलाफ सैन्य कार्रवाई से यह संकट पैदा हुआ था। इराक ने कुवैत पर कब्जा कर उसे अपना उन्नीसवां प्रदेश घोषित कर दिया था। अतः युद्ध का सीधा प्रभाव भी कुवैत पर पड़ा जिसे अपनी संप्रभुता से हाथ धोना पड़ा। अमरीकी हस्तक्षेप के बाद ही उसकी संप्रभुता फिर से कायम हो सकी। कुवैत करीब 7 महीनों तक इराक के कब्जे में रहा। अनुमान किया जाता है कि इस दौरान 2000से लेकर 5000 कुवैती नागरिक मारे गए थे, हजारों का अपहरण हुआ था। अन्य इतनी ही संख्या में लोग अंग भंग हुए थे और उनका घर बार उजड़ा था। बड़ी तादाद में लोग कुवैत छोड़कर भाग गये थे और कुवैत की अर्थव्यवस्था बुरी तरह तहसनहस हो गयी थी, खासकर तब जब इराक ने कुवैत के अधिकांश तेल भंडारों में आग लगा दी थी। कुवैत की संप्रभुता बहाल कर दिए जाने के बहुत दिनों बाद तक कुवैत के तकरीबन 100 तेल कुँओ में आग लगी रही। कुवैत के लोगों को इससे गहरा सदमा पहुँचा था और यही कारण था कि वे शक्तिशाली इराक के खिलाफ गुससे और कटुता से भर गए थे। युद्ध के बाद लोकतंत्रीकरण की मांग फिर जोर पकड़ने लगी। लोग 1962 के संविधान की बहाली की मांग करने लगे। इस संविधान में सीमित अधिकार प्राप्त चुनी हुई विधायिका तथा अलसबा परिवार की अधिनायकवादी शक्तियों पर अंकुश लगाने का प्रावधान शामिल था। 1986 में इस संविधान को दरकिनार कर दिया गया था। अमरीकी दबाव में कुवैत की सरकार ने 50 सदस्यीय राष्ट्रीय असेम्बली के गठन की घोषणा की। 1992 में हुए चुनाव में 312 सीटों पर लोकतंत्र समर्थकों ने जीत हासिल की थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सउदी अरब, युद्ध में शामिल दोनों प्रधान पक्षों का निकटवर्ती पड़ोसी देश है। सउदी अरब खाड़ी क्षेत्र का विशाल राजतंत्र है। यह कुवैत को मुक्त कराने के लिए 28 राष्ट्रों के गठबंधन के साथ शामिल हुआ था। इराकी आक्रमण ने सउदी अरब की सरकार व जनता को 6 हफ्तों तक भय के माहौल में रखा (मध्य जनवरी से लेकर मध्य फरवरी तक)। इराक ने सउदी अरबिया की सीमा पर भारी तादाद में सैनिकों को तो तैनात किया ही था, वह इजराइल पर भी लगातार स्कड मिसाइलों से हमला बोल रहा था। वह चाहता था कि किसी तरह उकताकर यहूदी राज्य अरब पर आक्रमण करें। फरवरी के शुरुआती दिनों में इराकी सेना सउदी अरबिया की सीमा में घुसने में कामयाब भी हो गई, किन्तु यह कामयाबी क्षणिक रही। काफ्जी नामक जगह पर गठबंधन और इराकी सेना के बीच भारी युद्ध हुआ। सउदी अरब इराक की सैन्य शक्ति और खाड़ी क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम करने के उसके इरादों से परिचित तो था किंतु उसे ऐसे आक्रमण की कतई आशा नहीं थी। ब्रेचर के अनुसार, "इराक ने सउदी अरबिया के प्रति ऐसी शत्रुता कभी नहीं दिखाई थी, अरब सीमाक्षेत्रों का ऐसा अपमान भी पहले कबी नहीं किया था. . . अरब राज्यों के खिलाफ ऐसा खुल्लमखुल्ला बल प्रयोग, ऐसा जोखिम भरा व्यवहार जिसमें अरब राज्य व्यवस्था के स्थापित नियमों की कोई परवाह नहीं की थी, पहली बार देखने को मिला।" नतीजन इराक से सउदी अरबिया के रिश्ते बुरी तरह बर्बाद हुए।

सउदी अरबिया ने उस अमरीकी नीति का पूरे तौर पर समर्थन किया कि जब तक सद्दाम हट नहीं जाते तब तक इराक के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र के प्रतिबंध जारी रखे जाएं, फिर भी सउदी अरबिया अपनी छोटी आबादी और लघु किन्तु सुसज्जित सैन्य शक्ति से परिचित था। खाड़ी युद्ध में सउदी अरबिया को 16 खरब डालर मूल्य के संसाधनों के हाथ धोना पड़ा था, किन्तु उसके तेल कुएं सुरक्षित बचे रह गए थे।

इजराइल ने बहादुरी के साथ स्कड मिसाइलों का सामना किया। वह इराक के उकसाने के बावजूद युद्ध में शामिल नहीं हुआ। वह अमरीकी सलाह मानकर इराक पर आक्रमण करने से बचता रहा था।

कुवैत की मुक्ति का कार्य, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, संयुक्त राज्य अमरीका की अगुआई में

सम्पन्न हुआ। फिर भी युद्ध में मारे गए अमरीकी सैनिकों की संख्या 10,000 से लेकर 20,000 तक आँकी गई थी। सेनानायकों के इस आकलन से अमरीकी नेतृत्व मुख्य रूप से संतुष्ट था। राष्ट्रपति सद्दाम ने कहा था कि अमरीकी सैनिक अपने ही रक्त में तैरते रहेंगे, किन्तु विजयी अमरीका ही हुआ। अमरीकी खेमे को कोई भौतिक क्षति नहीं हुई, न ही उसके शहरों पर स्कड मिसाइलों का कोई हमला हुआ। कुवैतियों की तरह उन्हें किसी सदमे का भी सामना नहीं करना पड़ा। न ही सउदी अरबिया की तरह वे किसी दीर्घकालिक खतरे के भंवर में फंसे। यही नहीं, गंठबंधन राष्ट्रों का वित्तीय अनुदान अमरीका द्वारा युद्ध में किए गए खर्चों से कही अधिक ही था। अमरीकी युद्ध का लुत्फ दूरदर्शन के पर्दे पर उठाते रहे। "ऑपरेशन डेजर्ट स्ट्रोम" उनके लिए किसी फिल्म थ्रिलर की तरह रोमांचकारी था। इसके अतिरिक्त द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह अमरीका की पहली भारी जीत थी। मालूम हो, कोरियाई युद्ध बिना हार जीत के फैसले के समाप्त हो गया था और वियतनाम युद्ध में अमरीका को मुँह की खानी पड़ी थी। सच तो यह है कि वियतनाम में अमरीका की कलंकपूर्ण हार हुई थी।

29 फरवरी 1991 को संयुक्त राज्य अमरीका ने एक तरफ युद्ध विराम का आदेश दिया। उसका मानना था कि ऐसा करने से इराकी जनता सद्दाम को सत्ता से बाहर कर देगी। यहाँ अमरीका गलत साबित हुआ। संयुक्त राज्य ने सुरक्षा परिषद के जरिये कार्रवाई की, इराक पर सख्त आर्थिक प्रतिबंध लगाए गए जिन्हें वर्षों तक उठाया नहीं गया था। इराक के भारी नुकसान पहुँचने वाले हथियारों को नष्ट करने की पूरी कोशिश की गई। गठबंधन की जीत संयुक्त राष्ट्र की भी जीत थी।

युद्ध के बाद भी इराक खाड़ी क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण ताकत बना रहा, क्योंकि उसके विशाल शस्त्रागार 38 दिनों के हवाई हमले में भी पूरी तरह नष्ट नहीं हुए थे। फिर भी खाड़ी क्षेत्र में इराक अपनी श्रेष्ठता नहीं बचा सका। आज इरान के पास यह श्रेष्ठता है तथा सउदी अरबिया क्षेत्रिय सैन्य ताकत के रूप में उभरा है। पूरी अरब दुनिया की बात करें तो युद्ध से मिस्र और सीरिया की ताकत में वृद्धि हुई है। संकट के पूरे दौर में इजराइल खामोश बना रहा तथा इजराइल फिलीस्तीन शांति प्रक्रिया तेज हुई। इराक को कुर्दों और शियाओं के विद्रोह से जूझना पड़ा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) सउदी अरबिया पर खाड़ी संकट का क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

....

13.6 सारांश

शीत युद्ध के अंत के बाद खाड़ी युद्ध सबसे बड़े संकट के रूप में प्रकट हुआ था। दीर्घकालिक ईरान इराक (1980-88 प्रथम खाड़ी युद्ध) युद्ध के समय कुवैत और संयुक्त राज्य ने इराक का पुरजोर समर्थन किया था। इसीलिए कुवेत को आशा नहीं थी कि इराक उस पर आक्रमण करेगा और उसे अपने कब्जे में लेगा। लेकिन इराक की मंशा अलग थी। वह इस छोटे किन्तु तेल समृद्ध राज्य राज्य को अपना उन्नीसवां प्रदेश बनाने की ठान चुका था। इरान की नयी सत्ता के प्रति संयुक्त राज्य की नापसंदी को देखते हुए इराक को इस बात की कतई आशा नहीं थी कि अमरीका कुवैत के खिलाफ उसके इस अभियान का विरोध करेगा।

1990 के अगस्त में जब इराक ने कुवैत के खिलाफ भारी हमला बोल दिया था तब कुवैत इसके लिए बिल्कुल ही तैयार नहीं था और यही कारण था कि वह मात्र छह घंटों में जीत लिया गया। बाद में कुवैत इराक का उन्नीसवां प्रदेश घोषित कर दिया गया। यह द्वितीय खाड़ी युद्ध का प्रथम दौर था।

संयुक्त राज्य की पहल पर संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् ने कुवैत के हितों की पैरोकारी की तथा इराक को कुवैत से हटने के लिए समझाया। सोवियत संघ खुद भी एक कठिन दौर से गुजर रहा था। अंततः उसका विघटन भी हुआ। शीत युद्ध समाप्त हो चुका था और इराक को सोवियत संघ से कोई मदद नहीं मिली।

सच तो यह है कि सोवियत संघ ने भी संयुक्त राज्य के दृष्टिकोण और संयुक्त राष्ट्र प्रस्तावों का समर्थन किया। चीन सुरक्षा परिषद द्वारा विभिन्न प्रस्तावों को पारित होने के समय मतदान से अलग तो हो गया था, किन्तु इसका मतलब यह नहीं था कि वह इराक का समर्थन कर रहा था।

जब इराक संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों के अनुपालन में विफल हो गया तथा संयुक्त राष्ट्र ने 28 राष्ट्रों के गठबंधन के गठन को मंजूरी दे दी तब अमरीका इसका अगुआ बना। यह गठबंधन कुवैत की मुक्ति के लिए युद्ध में शामिल हुआ था। इराक को भरोसा था कि उसे कुवैत से बाहर नहीं खदेड़ा जा सकता। किन्तु 38 दिनों के हवाई हमले और चार दिनों के जमीनी युद्ध के बाद इराक बुरी तरह पराजित हो गया मौजूदा संकट को इजराइल अरब युद्ध में तबदील करने का इराकी प्रयास भी विफल साबित हुआ और मिस्र, सीरिया और सउदी अरबिया जैसे अनेक अरब देश संयुक्त राज्य के साथ हो गये। अंततः इराक पराजित और कुवैत मुक्त हुआ। कुवैत की संप्रभुता बहाल हुई और अलसबा सत्ता में लौट आए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद खाड़ी युद्ध संयुक्त राज्य की पहली बड़ी उपलब्धि साबित हुआ। इस युद्ध से इराकी महत्वाकांक्षा को गहरा झटका लगा तथा संयुक्त राष्ट्र को विजय हासिल हुई। तथापि इस युद्ध मे कुवैत पूरी तरह सदमें में आ गया था सउदी अरबिया के मन में भी भारी भय व्याप्त हो गया था।

13.7 शब्दावली

मेडेट व्यवस्था : किसी सदस्य राज्य में सीमा प्रशासन की देखरेख करने वाला राष्ट्र कुल का आयोग।

खाड़ी : समुद्र का ऐसा विस्तार जिसमें अंतः क्षेत्र तो काफी बड़ा होता है किन्तु निकास अत्यंत छोटा होता है।

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

जेम्स ली रे : 1992, **ग्लोबल पोलिटिक्स**, न्यू जरसी एमएस. माल्कोटे तथा ए. नरसिंहराव : 1993, इंटरनेशनल रिलेशन्स

एल. ए. स्टावरियनस : 1983, **ए ग्लोबल हिस्ट्री** : दि ह्यूमन हेरिटेज, न्यू जरसी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इराक ने कुवैत पर कब्जा जमाने का निर्णय लिया क्योंकि :
   क) वह कुवैत को सदैव इराक के एक भाग के रूप में स्वीकार करता रहा था।
   ख) इराक युद्ध के बाद इराक की अर्थव्यवस्था कमजोर हो गयी थी, और
   ग) कुवैत उसका तेल समृद्ध छोटा पड़ोसी था।
   कुवैत को इराक का हिस्सा बना लेने से इराक को तेल से होने वाली आय के रूप में बहुत बड़ा धन प्राप्त हो जाता जिससे वह अपनी आर्थिक विपत्तियों से छुटकारा पा सकता था।
2) शीत युद्ध समाप्त हो चुका था। इराक का प्रमुख सैन्य आपूर्तिकर्त्ता सोवियत संघ कठिन दौर से गुजर रहा था। ईरान इराक युद्ध के समय कुवैत और संयुक्त राज्य दोनों ने इराक का समर्थन किया था। इस प्रकार से इराक को कहीं से भी विरोध की उम्मीद नहीं थी और वह अपनी सीमा विस्तार करने की ठान चुका था।

बोध प्रश्न 2

1) कुवैत पर इराक का आक्रमण कुवैत के लिए बिल्कुल ही अप्रत्याशित था। इराक की विशाल और ताकतवर सेना को अलसबा के पूरे साम्राज्य को रौंद डालने में कुल छह घंटों का समय लगा। अमरीकी चेतावनी को धता बताते हुए इराक ने कुवैत पर कब्जा कर उसे अपना उन्नीसवां राज्य घोषित कर दिया।

बोध प्रश्न 3

1) संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्राधिकृत किये जाने के बाद 28 राष्ट्रों का गठबंधन अमरीका की अगुआई में एकजुट हुआ। प्रमुख रूप से संयुक्त राज्य, सउदी अरबिया, ब्रिटेन, फ्रांस, मिस्र तथा सीरिया ने सशस्त्र सैनिक मुहैया कराए थे। 30 दिनों का हवाई हमला इराक को कुवैत खाली करने के लिए विवश नहीं कर

सका। तत्पश्चात् चार दिनों की जमीनी लड़ाई में गठबंधन ने इराक को बिना शर्त आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर कर दिया। कुवैत भी मुक्त करा लिया गया।

2) सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव का पूरे तौर पर समर्थन करते हुए इराक को कुवैत छोड़ने के लिए राजी करने का प्रयास किया था। लेकिन जब गठबंधन ने कार्रवाई शुरू की तो उसने न तो अपनी सेना भेजी, न ही हथियार दिए। इराक के खिलाफ सैनिक कार्रवाई में मिस्र और सउदी अरबिया ने सक्रिय हिस्सेदारी की थी। जॉर्डन जैसे अन्य देश न तो इराक के खिलाफ सैनिक कार्रवाई में शामिल हुए थे न ही उन्होंने कोई सैन्य समर्थन दिया था।

3) इराक के कब्जे से कुवैत को मुक्त कराने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने 28 राष्ट्रों के गठबंधन को बल प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत किया। इराक को समझाने का सोवियत संघ का अंतिम प्रयास विफल हो गया। इससे और कुछ तो नहीं हुआ किन्तु गठबंधन की कार्रवाई में विलंब अवश्य हुआ। इजराइल पर लगातार स्कड मिसाइलों से हमला कर इराक ने खाड़ी संकट को इजराइल अरब युद्ध में तब्दील करने की कोशिश की। लेकिन इजराइल उत्तेजित नहीं हुआ। हवाई हमले और उसके बाद चार दिनों की जमीनी लड़ाई में कुवैत मुक्त करा दिया गया। संयुक्त राष्ट्र ने इराक के खिलाफ प्रतिबंध लगाया जो वर्षों तक हटाया नहीं गया।

बोध प्रश्न 4

1) सउदी अरबिया कुवैत और इराक का पड़ोसी है। सउदी अरबिया पूरी तरह कुवैत पर इराकी हमले के खिलाफ था। चूंकि सउदी अरबिया ने इराक के शिलाफ की जाने वाली कार्रवाई का पूरा समर्थन किया था, अतः इराक ने उसकी सीमा पर भारी मात्रा में सैनिक तैनात कर दिए। सउदी अरबिया के लोग छह सप्ताहों तक इराकी हमले की आशंका में भयभीत रहे। इराक थोड़ी देर के लिए सउदी अरबिया की सीमा के अंदर घुसने में सफल भी हो गया जिसके चलते काफ्जी में युद्ध शुरू हुआ। इस युद्ध से सउदी अरबिया को 16 खरब डालर मूल्य के संसाधनों की बर्बादी उठानी पड़ी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 14 समाजवादी खेमे का विखंडन

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 विखंडन के आंतरिक कारण

- 14.2.1 ऐतिहासिक
- 14.2.2 सांस्कृतिक
- 14.2.3 राजनीतिक
- 14.2.4 आर्थिक

14.3 विखंडन के बाह्य कारण

- 14.3.1 सोवियत संघ की भूमिका
- 14.3.2 पश्चिम की भूमिका
- 14.3.3 प्रदर्शनकारी प्रभाव

14.4 विभिन्न देशों में कम्युनिस्ट पार्टी व सरकार का पतन

- 14.4.1 पोलैंड
- 14.4.2 हंगरी
- 14.4.3 पूर्वी जर्मनी
- 14.4.4 चेकोस्लोवाकिया
- 14.4.5 बुल्गारिया
- 14.4.6 रोमानिया

14.5 सारांश

14.6 शब्दावली

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य उन कारणों की जाँच-परख करना है जिनसे समाजवादी खेमें का बिखराव हुआ और उन घटनाओं पर प्रकाश डालना भी जिनकी वजह से विश्व व्यवस्था में द्वि-धुवीकरणों का अन्त हुआ है। इससे पहले विश्व सोवियत रूस और यू. एस. ए. के दो खंड़ों में बढ़ा हुआ था। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- आंतरिक और बाह्य घटकों के कारण समाजवादी खेमा छह गया, उन तत्त्वों एवं कारणों की पहचान कर सकेंगे, और
- समाजवादी खेमे के प्रत्येक देश का पतन और वहाँ पर शासित कम्युनिस्ट का गिरना आदि के तरीकों को स्पष्ट कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

विश्व राजनीति में 1989 की घटनाओं, को "भूकंप" की संज्ञा दी गयी है। इन घटनाओं से समाजवादी खेमा अंततः तितर बितर हो गया, सच्चाई तो यह है कि घटनाक्रम इतनी तेजी से बदले कि सभी सकते में आ गये—वे भी जो इन घटनाओं के महज तटस्थ दृष्टा थे और वे भी जो इसमें भागीदार बने हुए थे। जिस तेजी से समाजवादी खेमे के देशों का एक के बाद एक पतन हुआ, वह अपने आप परिवर्तन की प्रक्रिया का एक निर्णायक अंग बन गया। 1989 के मध्य खासकर अंतिम चौथाई में, तकरीबन हर रोज प्रदर्शन, हड़ताल, विरोध, नेताओं व सहकारों के पतन की खबरें सुनाई पड़ी। पूरा वातावरण उत्तेजना, प्रत्याशा और अति-नाटकियता से परिपूर्ण था। सच तो यह है कि इस माहौल का वर्णन एवं विश्लेषण

नहीं किया जा सकता। विखंडन का दूसरा पहलू यह था कि इन उपद्रवों का अंतिम नतीजा हर जगह एक था, वहीं विभिन्न देशों के पतन की कहानी अलग-अलग थी। उदाहरण के लिए अगर पोलैंड में इन क्रांतिकारी परिवर्तनों को चर्च समर्थित सोलैडेरिटी के कड़े प्रतिरोध से लम्बे समय तक जूझना पड़ा, वहीं हंगरी में यह परिवर्तन शासक वर्ग के सत्ता संघर्ष की कोख से पैदा हुआ। इसी तरह अगर पूर्वी जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया में शांतिपूर्ण जनआंदोलनों ने तख्तापलट दिया तो रोमानिया में चिचेस्कू शासन का अंत खूनी संघर्ष के जरिये हुआ। इन सबके बुल्गारिया में यह बदलाव धीरे-धीरे या यों कहें कि सुस्त तरीके से आया।

14.2 विखंडन के आंतरिक कारण

14.2.1 ऐतिहासिक

हालांकि समाजवादी खेमे का अंतिम विखंडन तो 1989 के उत्तरार्द्ध के कुछ महीनों के दरम्यान हुआ, किन्तु इसके बीज तब से चालीस साल पहले ही पड़ गये थे जब स्टालिन के शासनकाल में इन देशों में समाजवादी व्यवस्था को जबरन थोप दिया गया था। सरकार और विचारधारा का यह जबरन आरोपण, वह भी बिना किसी लोकतांत्रिक तरीके के इन देशों की जनता को अभी भी रास नहीं आया। सच तो यह है कि समय के साथ-साथ उनकी यह परिवर्तन की भावना और भी बलवती होती गयी।

14.2.2 सांस्कृतिक

समाजवादी खेमे के देश न तो उपभोक्ता संस्कृति, तृतीय औद्योगिक क्रांति तथा सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में टिक सके न ही वे कोई ऐसा वैकल्पिक खेमा तैयार कर सके जो उन्हें पूँजीवादी दुनिया से अलग थलग रख सके। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इतिहास में एक ऐसा समय आया था जब "लौह यवनिका" (Iron Curtain) के जरिये वे पूँजीवादी देशों से बिल्कुल अलग थलग हो गये थे। किन्तु बाद में ऐसा न हो सका। वे पिछड़ते गए और पश्चिम की नकल करते रहे। संचार के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में वे इतने और ऐसे बदलाव आ गये थे कि समाजवादी खेमे के देशों की जनता के लिए यह जानना देखना मुश्किल नहीं रह गया था कि बाहरी दुनिया में क्या हो रहा है। पूर्वी जर्मनी व चेकोस्लोवाकिया पर पश्चिमी जर्मनी के दूरदर्शन के प्रभाव को एक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। पॉप संगीत सीधे तौर पर समाजवादी खेमे के देशों के नवयुवकों को प्रभावित करने लगा। शिक्षा व यातायात के बढ़ते साधनों की वजह से दुनिया छोटी हो गयी थी नतीजन लोग समाजवादी देशों के जीवन स्तर व राजनीतिक स्थिति की तुलना उन्नत पूँजीवादी देशों के जीवन स्तर व राजनीतिक स्थिति से करने लगे। यह तुलना धीरे-धीरे बढ़ती ही गयी। यही तुलनात्मक विपुलता, न ही निरपेक्ष, समाजवादी खेमे के पतन का कारण भी बनी : इसने समाजवादी व्यवस्था के प्रति केवल असंतोष ही पैदा नहीं किया बल्कि उस धारणा को समाप्त कर दिया कि समाजवादी व्यवस्था पूँजीवादी पश्चिम को छू लेगी। उससे आगे निकल आने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.2.3 राजनीतिक

इस विफलता से उपजे असंतोष ने कम्युनिस्ट पार्टियों और नेताओं के प्रति व्यापक अविश्वसनीयता को जन्म दिया। नतीजन उनके शासन की वैधता में कमी आयी। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि इन देशों पर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद समाजवादी शासन जबरन थोप दिया गया था, न कि वे लोकतांत्रिक तरीके से चुनकर आये थे।

इस तथ्य ने अंततः जनता के असंतोष में उबाल ला दिया। धार्मिक विफलता ने इस असंतोष को और भी उजागर कर दिया। शासन के अधिनायकवादी चरित्र ने आग में घी का काम किया। लोग कम्युनिस्ट पार्टियों के शासन करने के अधिकार को ही चुनौती देने लगे। उन्हें शासन का निर्देश गवारा नहीं हो रहा था। आर्थिक विफलता से अधिकांश पूर्व यूरोपीय देशों में सामाजिक तनाव व विवोद न केवल और तेज हुए, अपितु पुख्ता भी हुए। अंततः इस विफलता से विभिन्न देशों में राष्ट्रवाद की लहर उमड़ पड़ी। इसने मजदूरों व बुद्धिजीवियों, नौजवानों व अनेक गुप्त संगठनों को एकजुट किया। यह एकता काफी प्रभावी साबित हुई तथा शासक वर्ग के लिए खतरा भी बनी। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि विभिन्न देशों में इन तबकों के बीच एकता की मात्रा अलग-अलग थी। कल तक जो साम्यवादी शासन का समर्थन कर रहे थे, वे समूह भी विरोधियों के साथ आ मिले।

कुछ देशों जैसे पूर्वी, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया व पोलैंड में, शासक दल का शासन करने का विश्वास डगमगाने लगा। उन पर उपर्युक्त दबाव तो थे ही, उन्हें समर्थन देने वाला भी कोई नहीं था। जिस पर आर्थिक संकट पहले से ही विकराल था। जहां छठे व सातवें दशक में, कम्युनिस्ट पार्टियाँ प्रदर्शनों और विरोध रैलियों को जबरन दबाने में हिचकती नहीं थी, वहीं अठवें दशक के अंत के आते आते अपनी

सत्ता कायम रखने में इन्हें कठिनाई होने लगी। बलप्रयोग करने की इस असमर्थता के आंतरिक व बाह्य दोनों कारण थे।

14.2.4 आर्थिक

उल्लेख किया जा चुका है, इन देशों की विफलता का सबसे बुनियादी व सर्वव्यापी कारण यह था कि वे अपने वायदे कि समाजवादी व्यवस्था राजनीतिक व आर्थिक रूप से शीघ्र ही "पूँजीवादी को छूलेगी अथवा उससे आगे निकल जाएगी" को साकार न कर सके। यह एक बहुआयामी विफलता थी जिसका सबसे निर्णायक पहलू व्यापक आर्थिक विफलता थी। ये देश पश्चिम को औद्योगिक उत्पादन, प्रौद्योगिकी विकास और खाद्यान्न और उत्पादन के मामले में तो नहीं पकड़ सके, वे जीवन स्तर को ऊंचा उठाने व जनता की बढ़ती आकांक्षाओं को भी पूरा न कर सके, उपभोक्तावाद व लोकप्रिय संस्कृति के क्षेत्र में, जहाँ पश्चिमी पूँजीवादी देशों व समाजवादी देशों के बीच गहरी खाई थी, यह विफलता और भी खुलकर सामने आई। कहने का मतलब यह कि समाजवादी व्यवस्था न केवल परिणात्मक रूप से अपितु गुणात्मक रूप से पश्चिमी देशोंकी बराबरी करने में विफल रही।

निस्संदेह, यह सबसे महत्त्वपूर्ण कारण था। अनेक विशेषज्ञों का कहना है कि अगर उग्र धार्मिक सुधार की पहल कर दी गयी होती तो दूसरी समस्याएँ बहुत हद तक नियंत्रित हो गयी होती। आर्थिक सफलता सामाजिक-सांस्कृतिक व राजनीतिक मसलों को इतना तीव्र नहीं होने देती और तब बढ़ते जनअसंतोष का प्रबंधन करना भी आसान हो गया होता।

अब तक हम घरेलू कारणों की चर्चा करते रहे हैं। अब हम बाह्य कारणों की ओर मुखातिब होंगे।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से कीजिए।

1) समाजवादी खेमे के विखंडन में सबसे महत्त्वपूर्ण आंतरिक कारक क्या था?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) सांस्कृतिक कारकों ने किस तरह पूर्वी यूरोप के देशों में विरोध पैदा किया और उसे तेज किया?

14.3 विखंडन के बाह्य कारण

14.3.1 सोवियत संघ की भूमिका

बाह्य कारकों में सबसे महत्त्वपूर्ण कारक पूर्व सोवियत संघ की भूमिका और राजनीति थी। समाजवादी खेमे के विखंडन के छह वर्षों बाद तथा सोवियत संघ के विखंडन के 5 वर्षों बाद, आज यह कहना संभव है कि गोर्बाचोव की "ग्लासनोस्त" और "प्रेस्त्रोइका" की नीतियों ने पूर्वी यूरोप में विपणन को संभव और सफल बनाया। अलबत्ता हम यह नहीं कह सकते कि गोर्बाचोव को भावी घटनाओं की जानकारी थी अथवा उन्हें उनका अनुमान था, फिर भी इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे भावी घटनाओं को रोक पाने अथवा नियंत्रित कर पाने में पूरी तरह असमर्थ थे। तीर वे चला चुके थे अब नतीजा सामने था। गोर्बाचोव समाजवाद में सुधार लाना चाहते थे और इस काम में उन्हें वाकई बहुत हद तक कामयाबी भी मिली क्योंकि सोवियत संघ में अनेक परिवर्तन देखे गये। सोवियत संघ और यूरोप के

देशों में राजनीतिक सुधार की प्रक्रिया व लोकतंत्र के सूत्रपात करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। एकतरफ लोकतंत्र ने पश्चिमी पूँजीवादी किस्म का—युवकों, विरोधी समूहों व संघों तथा राजनीतिक व सामाजिक समूहों के बीच सुधार की मांग करने वाले तबकों में उत्साह का संचार किया तो दूसरी तरफ पुरातनपंथियों को इससे गहरा झटका भी लगा। सुधार की यह मांग शीघ्र ही साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्था में आमूल चुल सुधार की मांग में बदल गयी।

अब इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह गयी है कि सोवियत नेतृत्व द्वारा लिए गए फैसलों का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग जिसका पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट शासनों पर नैतिक रूप से बहुत बुरा असर हुआ, ब्रेजनेव सिद्धान्त की वापसी था। निश्चय ही, समाजवादी खमे के शासकों का तख्ता पलट करने में अंतिम भूमिका शक्तिशाली जन आंदोलनों की रही थी, लेकिन अगर सोवियत संघ ने अपने उपग्रह राज्यों के प्रति अपनी नीतियों में परिवर्तन न किया होता तो वे कभी भी इस लक्ष्य को हासिल नहीं कर सकते थे। 1988 में गोर्बाचोव ने संयुक्त राष्ट्र में अपनी सैन्य शक्ति में घटोत्तरी करने तथा पूर्वी जर्मनी चेकोस्लोवाकिया तथा हंगरी से अपने 50,000 सैनिकों को हटा लेने की एकतरफा घोषणा की। इन देशों के कम्युनिस्ट शासन पर खतरा आने की स्थिति में भी सोवियत संघ अब हस्तक्षेप नहीं करेगा, इस आशाय की भी घोषणा की गयी। अब ये देश संकट की स्थित में बाह्य समर्थन का भरोसा नहीं कर सकते थे। गोर्बाचोव के नीतिगत बदलावों ने ही अन्य बदलावों की जमीन तैयार की थी क्योंकि न तो शासक अब पुराने तरीके से शासन कर सकते थे न ही विरोधी समूहों को बाहरी ताकत के इस्तेमाल का डर रह गया था।

ऊपर कही गई बातों का आशय यह नहीं कि गोर्बाचोव के 1988 के निर्णय से पहले पूर्वी यूरोप के साम्यवादी शासन के प्रति कोई विरोध नहीं था। विरोध था, लेकिन वह विरोध न तो मजबूती से संगठित था न ही एकजुट। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि कम्युनिस्टों का देश पर पूर्ण व दृढ़ नियंत्रण था। आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में इस विरोध ने अपना स्वरूप, उद्देश्य और संगठन हासिल कर लिया। और अंततः गोर्बाचोव की नीतियाँ ही बदलाव की ताकतों को मजबूती प्रदान करने उन्हें एकजुट करने में सहायक हुई। उनकी नीतियों ने व्यवस्था में क्रांतिकारी सुधार के लिए सुधारवादियों को प्रेरित किया। पोलैंड में विरोध आंदोलन की एक लम्बी परम्परा पहले से ही मौजूद थी। सोलिडेरिये इसकी अगुआ था। हंगरी में भी थोड़ा विरोध था किन्तु उसे महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। चेकोस्लोवाकिया व पूर्वी जर्मनी का विरोध मुख्यतः बुद्धिजीवियों तक सीमित रहा था और जनता से उसका जुड़ाव अत्यंत क्षीण था। बुल्गारिया व रोमानिया में जहाँ शासन सबसे अधिक दमनकारी था, विरोध का कहीं कोई खास अता पता नहीं था। किन्तु 1988 व 1989 के उत्तरार्द्ध में, विरोध सक्रिय होकर लगातार बढ़ने लगा और आश्चर्यजनक रूप से अल्प अवधि में ही ज्वार की तरह लहराने लगा। इस लहर में पुरानी व्यवस्था तेजी व निर्णायक ढंग से बढ़कर लुप्त हो गई। जैसाकि हमने पहले पैराग्राफ में उल्लेख किया था, सभी देशों में इन घटनाओं के घटित होने की कालावधि व उनके तरीके अलग अलग थे। पोलैंड व हंगरी में बदलाव की प्रक्रिया अगर एक साल में पूरी हुई तो पूर्वी जर्मनी में कुछ हफ्तों में, चेकोस्लोवाकिया में बिना खून बहाए यह प्रक्रिया कुछ दिनों में पूरी हुई तो रोमानिया में कुछ दिनों तक खून बहाना पड़ा। वहीं बुल्गारिया के पोंगापंथी कम्युनिस्ट शासक कुछ महीनों में चुपचाप सत्ता से बाहर आ गए। पीछे मुड़कर देखने पर हम पाते हैं कि कम्युनिस्ट पार्टी का तेजी से बहिष्कार व समाज में उसकी भूमिका की अस्वीकृति (इसकी भूमिका पूर्ण आधिपत्य पर आधारित थी) की बातें सभी देशों में समान कारक के रूप में मौजूद थीं और यही सबसे उल्लेखनीय कारक भी था। मालूम हो कि इन पार्टियों के कमजोर होने के साथ ही लोकप्रिय ताकतें व बहुलवादी तत्त्व मोर्चे पर आगे आ सके थे। कहना न होगा कि सोवियत सेना का समर्थन हटाकर, गोर्बाचोव ने शासक कम्युनिस्ट पार्टियों के कमजोर होने की प्रक्रिया रो बहुत हद तक आसान बना दिया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.3.2 पश्चिम की भूमिका

इससे भी एक और महत्त्वपूर्ण कारक पश्चिमी पूँजीवादी देशों ने समाजवादी खेमे के विखंडन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। जैसे जैसे पूर्वी यूरोप की जनता व्यवस्थागत सुधार की मांगों को लेकर अधिकाधिक संगठित होती गई, वैसे वैसे उन्हें पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरीका का प्रोत्साहन एवं शाबासी मिलती गई। जनता कम्युनिस्ट प्रशासन की जगह लोकतंत्र की बहाली की मांग कर रही थी। पूर्वी यूरोप के लोगों में यह आम धारणा थी कि उन्हें पूँजीवादी पश्चिम से वित्तीय, राजनीतिक यहां तक कि सैन्य समर्थन भी मिलेगा। इस तरह समर्थन की इस आशा ने विरोध को आगे बढ़ाने में प्रेरक का काम किया।

14.3.3 प्रदर्शनकारी प्रभाव

बाह्य कारकों में हम प्रदर्शनकारी प्रभाव की भी गणना कर सकते हैं। लोकतंत्र और सुधार के लिए विभिन्न देशों में चलने वाले आंदोलनों के प्रभाव और उनकी सफलता ने समाजवादी खेमे के देशों में चलने वाले

समान आंदोलनों व विरोधों पर काफी उत्साहवर्द्धक असर डाला था। इसे हम बाहरी प्रभाव कह सकते हैं। विभिन्न देशों की प्रत्येक सफलता समाजवादी खेमे के विखंडन की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण सहयोग देती रही थी। इस प्रकार लोगों को पहले हंगरी सरकार द्वारा उदारीकरण की दिशा में उठाए गए कदमों को देखने का मौका मिला और फिर पोलैंड में सोलिडेरिटी की सरकार के गठन का अवसर मिला और फिर अचानक 1989 के ग्रीष्म में पूर्व जर्मनी से भारी तादाद में लोग पलायन करने लगे। इस घटना ने लोगों को और अधिक संगठित किया और एक से बढ़कर एक विशाल जन समूह संगठित होता चला गया। अब घटनाक्रम तेजी से बदलने लगा था, चेकोस्लोवाकिया को विप्लव का सामना करना पड़ा और अचानक, हिंसक व खूनी संघर्ष के बाद रोमानिया के शासन का अंत हो गया।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से कीजिए।

1) समाजवादी खेमे में बदलाव की प्रक्रिया का सूत्रपात करने में गोर्बाचोव की क्या भूमिका थी?

....

....

....

....

....

14.4 विभिन्न देशों में कम्युनिस्ट पार्टी व सरकार का पतन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आइये, अब उन तरीकों की विस्तृत परीक्षा करें जिनके जरिये कम्युनिस्ट शासन का समाजवादी खेमे के देश विदेश में विरोध और तख्तापलट किया गया।

14.4.1 पोलैंड

1989 के उत्तरार्द्ध में, पोलैंड और हंगरी में सबसे पहले बदलाव आरंभ हुआ। अगस्त में जनरल जेरूजेलेस्की की अगुआई में पॉलिश यूनाइटेड वर्क्स पार्टी (कम्युनिस्ट पार्टी का आधिकारिक नाम यही था) सरकार नहीं बना सकी और लेक वालेसा की अगुआई में सोलिडेरिटी की सरकार बनी और वालेसा राष्ट्रपति नियुक्त किये गये।

14.4.2 हंगरी

सितंबर में हंगरी की सरकार ने अपनी विदेश नीति के संदर्भ में एक अप्रत्याशित फैसला किया। उसने अपनी सीमा खोलकर पूर्वी जर्मनी के हजारों नागरिकों को आस्ट्रिया और फिर वहां से पश्चिमी जर्मनी जाने का रास्ता मुहैया करा दिया। ये जर्मन नागरिक यूरोप में अपनी छुट्टियाँ बिता रहे थे और पूर्वी जर्मनी में वापस जाने के लिए तैयार नहीं थे। हालांकि हंगरी के इस फैसले को सोवियत संघ का अनुमोदन प्राप्त था, तथापि इसका मतलब यह भी था कि पहली बार समाजवादी खेमे के किसी देश ने पश्चिम को तवज्जो देने का फैसला किया। चूंकि यह संकट के वक्त लिया गया फैसला था। अतः इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता था कि समाजवादी खेमा अपनी समस्याओं के निदान के लिए पश्चिम की ओर आस लगाये बैठा है। इस घटना के बाद, जैसा कि चेक विदेश मंत्री ने कहा भी कि "इस कार्रवाई से समाजवादी खेमे के अंत का सूत्रपात भी हुआ।" फिर तो हंगरी की सरकार और विपक्षी दलों के बीच बहुदलीय सरकार के गठन को लेकर एक समझौता भी हुआ और अंततः 1989 में हंगरी की सोशलिस्ट वर्कर्स पार्टी (कम्युनिस्ट पार्टी इसी नाम से जानी जाती थी) ने अपना नाम बदल कर हंगरीयन सोशलिस्ट पार्टी कर लिया और लेनिनवाद की विचारधारा का परित्याग कर दिया। अब वह पीपुल्स रिपब्लिक की जगह केवल रिपब्लिक रह गया था। कहना न होगा कि रिपब्लिक में बुर्जुआ लोकतंत्र व लोकतांत्रिक समाजवाद दोनों ही समाहित हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि 1990 के चुनाव में कुल मिलाकर 51 दलों की भागीदारी उम्मीद की गयी थी।

14.4.3 पूर्वी जर्मनी

पूर्वी जर्मनी व चेकोस्लोवाकिया में कम्युनिस्ट शासन का अंत इसके बाद हुआ।1989 के अक्तूबर मास में एरिक होनेकर को पूर्वी जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी एवं सरकार के मुखिया पद से हटा दिया गया और

लोकतंत्र की बहाली के लिए व्यापक स्तर पर विशाल प्रदर्शन हुए। युवाओं और अन्य पेशेवर समूहों का देश छोड़कर बाहर जाना भी जारी रहा। अंततः पूर्वी जर्मनी ने अपने नागरिकों के लिए यात्रा प्रतिबंधों को उठा लेने की घोषणा कर दी। उसने पश्चिमी जर्मनी के साथ लगी अपनी सीमा को भी खोल दिया। इस तरह उसने अपने नागरिकों को पश्चिम जर्मनी जाने की खुली छुट दे दी। बर्लिन की दीवार जो पूरब और पश्चिम के बीच विभाजन का लंबे समय से प्रतीक बना हुआ था, देखते-देखते गिरा दी गयी। हजारों लोग सीमा पार कर पश्चिमी जर्मनी चले गए और फिर कभी लैटकर वापस नहीं आए। पूरी पोलितब्यूरों व सरकार ने इस्तीफा दे दिया। नतीजतन कम्युनिस्ट पार्टी की अगुआई की भूमिका भी खत्म हुई और उसका नाम भी बदल गया। 1990 के जनवरी महीने की शरुआत में पार्टी का आधिकारिक नाम कम्युनिस्ट डेमेक्रेटिक सोशलिज्म हो गया। इस पूरे दौर में लोगों का पूर्वी जर्मनी से पश्चिमी जर्मनी में जाना जारी रहा। 4000 से ज्यादा लोग रोज देश छोड़कर जा रहे थे। आजादी के इस संक्रमण से पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी दोनों की समस्याओं में लगातार इजाफा हो रहा था। यह लगातार स्पष्ट होता जा रहा था कि दोनों कि पुनर्एकता ही समस्या का अंतिम निदान है। पूर्वी जर्मनी की समस्याएँ लगातार बढ़ती जा रही थी। अंततः मास्को और युद्ध में शामिल मित्र शक्तियाँ—संयुक्त राज्य अमेरीका, ग्रेट ब्रिटेन व फ्रांस दोनों बैठकें व सम्मेलन करके जर्मनी की पुनर्एकता के तमाम पहलुओं की चर्चा करने में सहमत हो गये।

14.4.4 चेकोस्लोवाकिया

अक्तूबर के महीने में चेक सरकार ने लोकप्रिय प्रदर्शनों व विरोध को कुचलने की नाकामयाब कोशिश की। किंतु अंततः 1989 के नवम्बर मास में सरकार और पार्टी के नेतृत्व को उखाड़ फेंका गया। 27 नवम्बर को पूरे देश में महानगरों व शहरों में दो घंटे की हड़ताल की गयी जिसके परिणामस्वरूप कम्युनिस्ट पार्टी की अगुआई की भूमिका समाप्त हो गयी और 29 दिसम्बर को फेडरल एसेम्बली के विशेष सांयुक्त सत्र में वाक्लाव हावेल को एकमत से राष्ट्रपति चुन लिया गया। यह वही आदमी था जिसे मात्र 11 महीने पहले अपने 80 साथियों के साथ 1989 के जनवरी महीने में एक मानवाधिकार रैली के दौरान गिरफ्तार कर लिया गया था। अवेल 1958 के बाद पहला गैर कम्युनिस्ट राष्ट्रपति बना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.4.5 बुल्गारिया

इसके बाद बुल्गारिया की समस्या उभर कर सामने आई थी। 3 नवम्बर 1989 को पहली दफा 5000 से अधिक लोगों ने राष्ट्रीय एसेम्बली के बाहर स्वतंत्र प्रदर्शन किया गया और उसके एक सप्ताह बाद बुल्गारियन-सेंट्रल कमिटी ने 78 वर्षीय महासचिव जिन्कोव का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया। नयी बुल्गारियन पार्टी के पोलित ब्यूरो ने 1968 में सोवियत संघ की अगुआई में चेकोस्लोवाकिया के खिलाफ किए गए आक्रमण की भर्त्सना की और इस तरह उसने मौजूदा ऐतिहासिक दृष्टिकोण को बदलने की कोशिश की। दिसम्बर मास के शुरू में नौ स्वतंत्र संगठनों ने मिलकर बुल्गारिया में यूनियन आफ डेमोक्रेटिक फोर्सेज का गठन किया। बाद में उस संगठन ने घोषणा कि की वह राजनीतिक बहुलवाद, बाजार अर्थव्यवस्था और कानून के शासन के लिए अभियान शुरू करेगा। अंततः 1990 के जनवरी महीने में बुल्गारियन कम्युनिस्ट पार्टी के विशेष आहूत कांग्रेस में ऑर्थोडॉक्स कंजरवेटिव का पूरी तरह सफाया हो गया, केंद्रीय समिति भंग कर दी गयी और उसकी जगह 153 सदस्यीय सुप्रीम कौंसिल की स्थापना की गयी।

14.4.6 रोमानिया

रोमानिया में कम्युनिस्ट पार्टी लोकप्रिय विप्लवों का न केवल विरोध करती रही अपितु दूसरे समाजवादी देशों के साथ "साझी कार्रवाई" के जरिये विपक्षी आंदोलन को कुचलने का प्रायस भी करती रही थी। कुलीन शासक वर्ग का पतन यहाँ खूनी संघर्ष के बाद ही संभव हो सका। 1989 के नवम्बर महीने में आयोजित रोमानिया के कम्युनिस्ट पार्टी के 14वें कांग्रेस में निकोलाई चेचेस्कू ने सुधार की अनिवार्यता की धारणा का पुरजोर विरोध किया। जब पूरी दुनिया में समाजवादी खेमा हलचल के दौर से गुजर रहा था, तब रोमानिया का यह प्रतिरोध सचमुच अश्चर्यजनक था। हंगरी के मूल निवासियों के अधिकारों की रक्षा करने वाले एक पुजारी को पकड़ने की सरकारी कोशिश के साथ ही रोमानिया के राजनीतिक माहौल में भूचाल आ गया। विंशाल प्रदर्शनों की बाढ़ आ गयी। ये प्रदर्शन शीघ्र ही सरकार विरोधी आंदोलनों में तबदील हो गये। दो शहरों में सुरक्षा व सैन्य टुकड़ियों की भीड़ पर गोली चलाने के आदेश दिए गए और जब रक्षामंत्री ने निर्दोषों की हत्या में शामिल होना अस्वीकार कर दिया उसे फांसी दे दी गयी। इस कार्रवाई से सेना भी बौखला गई। वह प्रदर्शनकारियों के साथ आ मिली और अंततः सरकार का पतन हुआ। इसकी प्रतिक्रिया में वहाँ संक्षिप्त खूनी गृहयुद्ध का सूत्रपात हुआ। फिर निकोलाई चेचेस्कू व उनकी पत्नी को बंदी बनाया गया। सैनिक ट्रिब्युनल ने मामले की सुनवाई की और दोनों गोली से उड़ा दिए

गए। सोवियत सरकार ने नेशनल साल्वेशन फ्रंट, जिसका गठन पहले ही हो गया था, को मान्यता प्रदान कर दी। फ्रंट ने लोकतंत्र की बहाली का आश्वासन दिया।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से कीजिए।

1) पोलैंड व रोमानिया में कम्युनिस्ट पार्टी का पतन अलग-अलग तरीकों से हुआ। इसके क्या कारण थे?

....

....

....

....

....

2) पूर्वी जर्मनी व पश्चिमी जर्मनी के एकीकरण को संभव बनाने वाले घटनाक्रमों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.5 सारांश

इस तरह उस पुरानी व्यवस्था एंव शासन का, जो द्विध्रुवीय संरचना पर आधारित था, अंत हो गया। इसके बाद फिर नयी विश्व व्यवस्था तुरंत ही स्थापित नहीं हो गयी। वास्तव में हम कह सकते हैं कि वह अभी जन्मी भी नहीं है, हम संक्रमण-काल में जी रहे हैं। अनेक समस्याएँ अभी अपने हल की प्रक्रिया में हैं, अनेक समस्याएँ आने वाली सदी में भी मौजूद रहेंगी। हम यह भी कह सकते हैं कि समाजवादी खेमे के देशों की कम्युनिस्ट सरकारों का पतन तो सुधार व लोकतंत्र की दिशा में पहला कदम भर है। न केवल देश अपितु पूरा पश्चिमी खेमा तथा शेष दुनिया विश्व व्यवस्था के इस नाटकीय बदलाव के संभावित परिणामों को समझने की कोशिश कर रही है। हमारा मकसद केवल समाजवादी खेमे के विखंडन के कारणों और तरीकों की परीक्षा करना था। अलग-अलग देशों ने विखंडन से अपनी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक समस्याओं से निपटने के क्या तरीके अपनाये, यह दूसरे अध्याय का विषय होगा।

14.6 शब्दावली

विखंडन : वह प्रकिया जिसके अंतर्गत कोई तत्त्व खंड-खंड होता है, टूट जाता है।

जी. डी. आर. : जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक (पूर्वी जर्मनी)

एफ. आर. जी. : फेडरल रिपब्लिक आव जर्मनी (पश्चिमी जर्मनी)

बी. सी. पी. : बुल्गारियन कम्युनिस्ट पार्टी

समाजवादी खेमा : यह पद सोवियत खेमा अथवा वरसा संधि के देशों के लिए प्रयुक्त होता था।

ग्लासनोस्त : खुलेपन के लिए रूसी शब्द।

प्रेस्त्रोइका : पुनर्संरचना के लिए रूसी शब्द।

सोलिडेरिटी : लेक वालेसा के नेतृत्व में गठित पॉलिश वर्कर्स पार्टी।

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ब्राइन, जे. एफ., 1991, **सर्ज टू फ्रीडम: दि एंड ऑफ कम्युनिस्ट रूल इन इस्टर्न यूरोप**, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।

अर्नासन, जोहाल पी., 1993, **दि फयूचर बैट फेल्ड : ओरिजिन्स एंड दि डेस्टिनीज ऑव दि सेवियत मॉडल**, रूलीज, लंदन तथा न्यूयार्क।

आश, टिमोथी गार्ट, 1989, दि **यूज़ेन ऑव अडवर्सिटी** : एसेज ऑन दि फेट ऑव सेन्ट्रल यूरोप, रैण्डम हाउस, न्यूयार्क।

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) समाजवादी खेमे के विखंडन में आर्थिक कारण ही सबसे महत्वपूर्ण आंतरिक कारण था।
2) तकनीकी परिवर्तनों, संचार क्रांति, शिक्षा का उन्नत स्तर तथा बेहतर आवागमन और मेल जोल के साथ-साथ पूर्वी यूरोप के लोग बाहरी दुनिया की घटनाओं के अधिकाधिक संपर्क में आने लगे। टेलीविजन, पॉप संगीत और पश्चिमी जीवन शैली पश्चिमी जीवन शैली के प्रभाव से उपभोक्तावाद का प्रसार हुआ। नतीजतन पूर्वी यूरोप के लोग अपनी जीवन शैली के प्रति गहरे असंतोष से भर उठे।

बोध प्रश्न 2

1) गोर्बाचोव की ग्लासनोस्त व प्रोस्त्रोइका की नीतियों ने समाजवाद में सुधार का प्रयास कर बदलाव की प्रक्रिया का सूत्रपात किया। इन नीतियों के राजनीतिक सुधार, लोकतंत्र व आर्थिक सुधार की दिशा में पहल को जन्म दिया। इसने पुरातनपंथी तत्वों पर अंकुश लगाया और पूर्वी यूरोप में समान आंदोलनों को प्रेरणा दी। अंततः 1988 में ब्रजनेव सिद्धान्त की वापसी कर गोर्बाचोव ने बदलाव का मार्ग प्रशस्त किया क्योंकि निरंकुश शासकों को मुख्य समर्थन सोवियत संघ से ही प्राप्त होता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) पिछले एकाधिक दशकों में सोलिडेरिटी का पोलैंड में एक प्रभावी ताकत के रूप में उदय हुआ था। उसे कम्युनिस्ट सरकार से अनेक सहुलियतें हासिल करने में भारी कामयाबी मिली थी, किंतु रोमानिया में चेचेस्कू की सरकार ने कोई भी छूट देना नामंजूर कर दिया। इतना ही नहीं, उसने प्रदर्शनों को निर्दयता से कुचलने का भी प्रयास किया। नतीजतन लोगों ने बगावत कर दी।
2) लोगों का लगातार पलायन व पूर्वी जर्मनी में लौटने से इंकार जिससे भारी आर्थिक व ढांचागत समस्याएं पैदा हुई, बर्लिन की दीवार का गिरना तथा जर्मनी के लोगों में यह मनोवैज्ञानिक एहसास हुआ कि वे एक ही जाति के हैं— ये ही वें कारण थे जिनसे जर्मनी का एकीकरण संभव हुआ।

इकाई 15 बदलती विश्व व्यवस्था संबंधी दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 नयी विश्व व्यवस्था के अर्थ और आयाम
 15.2.1 विविध दृष्टिकोणों का सारांश
15.3 यर्थाथवादी दृष्टिकोण
15.4 उदारवादी दृष्टिकोण
15.5 मार्क्सवादी दृष्टिकोण
15.6 विभिन्न देशों के दृष्टिकोण
 15.6.1 अमरीकी दृष्टिकोण
 15.6.2 यूरोपीय दृष्टिकोण
 15.6.3 चीनी दृष्टिकोण
 15.6.4 रूसी दृष्टिकोण
 15.6.5 विकासशील देशों का दृष्टिकोण
15.7 मौजूदा हालात और भावी संभावनाएँ
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम समाजवादी गुट और सोवियत रूस के बिखराव होने तथा इसके कारण विश्व व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है। इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे और इसके साथ अब जो विश्व में एक नई व्यवस्था का जन्म हो रहा है उसकी विशेषताओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कौन से सिद्धान्त कार्य कर रहे हैं तथा विश्व स्तर पर इससे संबंधित लोग क्या सोचते हैं और कैसा महसूस करते हैं। इन सब विश्व व्यवस्थाओं के प्रभावों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में इन सब प्रश्नों के हल खोजने का प्रयास किया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- इस नई विश्व-व्यवस्था के अर्थ और आयामों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- इस नई विश्व-व्यवस्था पर यर्थाथवादी, उदारवादी तथा मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य की पहचान कर सकेंगे; और
- नई विश्व-व्यवस्थ पर महत्वपूर्ण कार्यकर्ताओं के व्यापक परिप्रेक्ष्य को मान्यता दे सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति जार्ज बुश ने ही पहली दफा "नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था" की बात की थी। यह खाड़ी युद्ध के सफल समापन के बाद का वक्त था। इस संदर्भ में कुछ सवाल भी खड़े हुए। ये हैं—विश्व-व्यवस्था है क्या और इसमें नया क्या है? सामान्य तौर पर एक विश्व व्यवस्था अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का संगठित रूप ही हो सकती है जिसके अंतर्गत इन संबंधों का कार्यान्वयन होता है। इसी तरह नयी विश्व व्यवस्था का अर्थ है एक ऐसी व्यवस्था जो पुरानी व्यवस्था की जगह स्थापित हुई है तथा उससे अलग है। विशेष अर्थ में जब हम कहते हैं कि मौजूदा दौर में नयी विश्व-व्यवस्था स्थापित हो रही है तब हमारा मतलब यह होता है द्विध्रुवीय विभाजन पर आधारित शीतयुद्ध कालीन विश्व व्यवस्था जो कल तक अंतर्राष्ट्रीय नियमों और राजनीति को नियंत्रित करती रही थी, खत्म हो चुकी है।

सच तो यह है कि 1989 में समाजवादी खेमे के विखंडन तथा तदन्तर सोवियत संघ के टूटने के साथ ही द्विध्रुवीय विश्व-व्यवस्था का औपचारिक व निर्णायक अंत हुआ। इन घटनाक्रमों के बाद ही हमें नयी विश्व व्यवस्था के बारे में और अधिक पढ़ने-समझने का मौका मिला। इस पद से यह अर्थ नहीं लगाया

जाना चाहिए कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में किसी नयी व्यवस्था का पदार्पण हुआ है। पुरानी विश्व व्यवस्था की तरह, नयी विश्व व्यवस्था भी संप्रभु राज्य व्यवस्था पर आधारित है। यह व्यवस्था 1648 की वेस्टफिलिया संधि के समय से ही कायम है। 1991 के आस-पास जो नयी विश्व व्यवस्था अस्तित्व में आई, वह किसी और चीज का ही संकेत देती है: वह यह कि विश्व के सत्ता संबंधों की संरचना में अत्यंक महत्त्वपूर्ण बदलाव आए हैं।

15.2 नयी विश्व व्यवस्था के अर्थ और आयाम

नयी विश्व व्यवस्था मूल रूप से यह संकेत देती है कि विश्व राजनीति के प्रमुख सूत्रधारों की भूमिका और इसीलिए विश्व में सत्ता वितरण की प्रणाली में महत्त्वपूर्ण बदलाव आए हैं। दूसरे शब्दों में विविध राज्यों की सापेक्षिक महत्ता का स्वरूप बदला है। कहने का मतलब यह कि मौजूदा अंतर्राष्ट्रीय संबंध में राज्यों की शक्तियों की न केवल निर्धारित स्थिति बदली है, अपितु कुछ पुराने राज्य लुप्त तो कुछ प्रकट भी हुए हैं। उदाहरण के लिए, सोवियत संघ का कोई अस्तित्व नहीं रहा, उसकी जगह 15 स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आए हैं, जर्मनी का एकीकरण हो चुका है तथा निकट भविष्य में दक्षिण व उत्तर कोरिया के एकीकरण की भी प्रबल संभावना दीख रही है, यूगोस्लाविया में भारी जातीय युद्ध प्रकट हुआ और ऐसा लग रहा है कि वह जल्दी टूटकर पाँच राज्यों में विभाजित हो जाएगा। इन घटनाक्रमों के अलावा, कुछ देशों में दूरगामी व्यवस्थागत परिवर्तन भी देखे गए हैं। उदाहरण के लिए समाजवादी खेमे के राज्यों में कम्युनिस्ट पार्टी के शासन का अंत हुआ है और उनकी जगह पश्चिमी शैली की बहुदलीय लोकतंत्री व्यवस्थाएँ स्थापित हुई हैं।

अनेक दूसरे कारणों से नयी विश्व व्यवस्था में सत्ता-समीकरणों में परिवर्तन आया है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध आज भी संप्रभु राज्यों की अवधारणा पर आधारित हैं, किंतु इन संप्रभु राज्यों को कई दूसरे कारकों के साथ समायोजन करना पड़ता है। नतीजतन उनके क्रियाकलापों की प्रकृति में भारी बदलाव आया है। इसके अलावा, कतिपय अतिक्रमणों को रोक-पाने में आज देश की सीमाएं कारगर नहीं रह गयी हैं। यह स्थिति तब है जब दुनिया के कई भागों में राष्ट्रवाद ताकतवर शक्ति के रूप में उभर रहा है। बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने विश्वस्तरीय संजाल और रणनीति के जरिये अपने संसाधनों की वितरण ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने की मंशा से विभिन्न देशों में रहने लगी हैं। जन विनाशकारी प्रौद्योगिकी व हथियारों का फैलाव राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार होने लगा है। वास्तव में सोवियत संघ के पतन ने हथियारों के प्रसार पर लगा अवरोध दूर कर दिया है। सोवियत संघ पूरी मुस्तैदी से अपने प्रभाव क्षेत्र के देशों में पारवाणविक हथियारों के प्रसार पर रोक लगाए हुए था। इसके अतिरिक्त नशीले पदार्थों का व्यापार, आतंकवाद, एड्स का प्रसार तथा विश्व तापमान में वृद्धि जैसी पर्यावरणीय समस्याएँ भी संप्रभु राज्यों के अधिकार के सामने चुनौती बनकर आ खड़ी हुई है। नयी विश्व व्यवस्था में इन समस्याओं के निदान के लिए सामूहिक प्रयास किए जाएंगे और यह सामूहिक सरोकार ही इस नयी व्यवस्था का नियंत्रण भी करेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस तरह प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि दुनिया बदल गयी है। पूरे विश्व के स्तर पर ये बदलाव और उनकी व्याख्या एक सी नहीं है। अलग-अलग देशों में उनका अलग-अलग रूप प्रकट हुआ है। प्रत्येक देश इन बदलावों की व्याख्या अपनी स्थिति, विश्व में अपने क्रय-स्थान तथा इन बदलावों का उस पर पड़े प्रभाव के अनुसार ही कर रहा है। इस खंड में नयी व्यवस्था के संदर्भ में प्रचलित मौजूदा दृष्टिकोणों का सर्वेक्षण किया गया है। इन सर्वेक्षणों में हम देखेंगे कि नयी विश्व व्यवस्था को लेकर जो दृष्टिकोण पैदा हुए हैं वे बुनियादी रूप से एक दूसरे से कितने अलग हैं। यह अंतर मूल्यांकन और कारण के स्तर पर भी विद्यमान है और भावी विश्व की संभावना को लेकर भी है।

15.2.1 विविध दृष्टिकोणों का सारांश

संयुक्त राज्य अमरीका में यह भावना मौजूद थी की वह शीतयुद्ध में विजयी हुआ है। उसे इस बात का भी सकून था कि इस लड़ाई में सोवियत संघ बुरी तरह परास्त हुआ है। यूरोप भी खुश था कि विश्व मामलों में अब उसे ज्यादा महत्ता मिलेगी तथा तवज्जो दी जाएगी। चीन भी खुश था कि उसे कुछ और कर दिखाने का मौका मिला है किन्तु उसे अलग-थलग पड़ जाने का डर भी लग रहा था क्योंकि विश्व में कम्युनिस्ट देशों की संख्या दिन ब दिन कम होती जा रही थी और अमरीका खुलकर अपनी दादागिरी करने लगा था। पूर्व सोवियत संघ में भ्रम की स्थिति थी। अगर अनेक लोग सोवियत संघ के पतन में मुक्ति संघर्षों की जीत देख रहे थे तो अनेक लोगों को इस बात का दुःख भी था कि शीतयुद्ध में सोवियत संघ हार गया है। एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरीका के अनेक विकासशील देशों में भविष्य को लेकर कोई उत्साह नहीं था। इन विकासशील देशों के लिए नयी विश्व व्यवस्था में कोई खास बदलाव नहीं आया था। पहली बात तो यह है कि विश्व में आज भी उनकी रैंकिंग वही है और कतिपय मामलों में तो

उसमें घटोतरी ही हुई है। वे कल भी सबसे नीचे थे आज भी सबसे नीचे हैं। इसके अलावा उनकी सामाजिक-आर्थिक विकास के नाम पर कल तक उन्हें जो थोड़ा कुछ कर्ज मिल रहा था वह भी अब नहीं मिलेगा क्योंकि वह धन अब सोवियत संघ व पूर्वी यूरोप के पुनर्निर्माण के लिए मुहैया कराया जाने वाला था। इस तरह हम देखते हैं कि दुनिया में आये बदलाव को लोग अलग-अलग नजरों से देख रहे थे।

द्विध्रुवीय विश्व के अंत को लेकर बहुत से लोग यह तर्क देने लगे कि सोवियत संघ के पतन के बाद दुनिया में संयुक्त राज्य अमेरीका के रूप में अकेली यथाशक्ति रह गयी है। अमरीकी वर्चस्व को लेकर सर्वत्र चिंता व्यक्त की जा रही थी। इनका मानना था कि सोवियत संघ के पतन से जो नयी विश्व व्यवस्था पैदा हुई वह वास्तव में बहुध्रुवीय न होकर एकल ध्रुवीय है। इनका यह भी मानना है कि पांच महाशक्तियों—अमरीका, यूरोप, जापान, रूस व चीन के बीच कोई संतुलन नहीं है : आर्थिक सुधारों पर अमल करने के साथ-साथ रूस को आर्थिक समस्याओं से जूझते रहना पड़ेगा, प्रभावी विकास के बावजूद चीन अभी एक विकासशील देश है, यूरोप जो आर्थिक व मानव संसाधनों के लिहाज से अमरीका के बराबर हैं, किंतु आवश्यक राजनीतिक एकता के अभाव में वह एकल शक्ति के रूप में कार्य नहीं कर सकता। इसी तरह आर्थिक व तकनॉलोजी के लिहाज से श्रेयस्कर जापान की सैन्य शक्ति काफी सीमित है। किन्तु इन तर्कों की भर्त्सना इस आधार पर की जा रही है। कि नयी विश्व व्यवस्था बहुध्रुवीयता के दौर से गुजर रही है जिसमें पांच महाशक्तियों की ताकत मौटे तौर पर एक बराबर मानी जा सकती है। यह इसलिए संभव हो सका है कि क्योंकि आज की दुनिया ये किसी देश की हैसियत का निर्धारण उसकी राजनीतिक व सैन्य शक्ति के आधार पर न होकर आर्थिक शक्ति के आधार पर होता है और यह हकीकत है कि आर्थिक क्षेत्र में आज कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो पूरे विश्व पर वर्चस्व कायम कर सके।

15.3 यर्थाथवादी दृष्टिकोण

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के बारे में यथार्थवादी दृष्टिकोण यह तो मानता है कि आज एक नयी विश्व व्यवस्था मौजूद है किन्तु वह यह नहीं मानता कि इसका सूत्रपात खाड़ी युद्ध से हुआ। यथार्थवादियों की नजर में नयी विश्व व्यवस्था की प्रमुख विशेषता 'न्याय' नहीं है बल्कि राज्यों के बीच सत्ता का वितरण है और इसीलिए नयी विश्व व्यवस्था की शुरुआत सोवियत संघ के 1989 के वसंत में पतन के साथ होती है। सोवियत संघ का तेजी से पतन होने के कारण उस द्विध्रुवीय विश्व का अंत हुआ जिसने विश्व में स्थायित्व बनाने में मदद की थी तथा जो आधी सदी तक कायम रहा। सही है कि पुरानी व्यवस्था एक खास किस्म के स्थायित्व का निर्माण करने में कामयाब हुई थी, किंतु उसने कई समस्याओं को जन्म भी दिया था। जहाँ एक तरफ शीतयुद्ध ने तीसरी दुनिया के अनेक देशों को संघर्ष की आग में, भले वह वास्तविक युद्ध न रहा हो, झोंक दिया था वहीं वह सोवियत संघ की सैन्य-शक्ति का भय दिखाकर अमरीका जापान व यूरोप के आपसी आर्थिक संघर्षों को नियंत्रित करने में भी कामयाब रहा था। तीसरी दुनिया के संघर्षों में महाशक्तियां किसी न किसी रूप में मौजूद रही थीं, इसमें कोई इंकार नहीं कर सकता। पूर्वी यूरोप के देशों में जो कटु जातीय विभाजन था, वह सोवियत संघ के दबाव की वजह से प्रकट नहीं हो सका। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि अगर समाजवादी खेमे का विखंडन नहीं हुआ होता तो यूगोस्लाविया में वह जातीय संघर्ष न पैदा हुआ होता जिससे आज वह पीड़ित है। सचाई यह है कि महाशक्तियों की मौजूदगी से तीसरी दुनिया के कई संघर्ष या तो प्रकट नहीं हुए या फिर जल्दी खत्म हो गए क्योंकि महाशक्तियाँ नहीं चाहती थी कि कोई संघर्ष परमाणु-युद्ध के मुकाम तक पहुँचे। उदाहरण के लिए अरब-इजराइल के बीच कई युद्ध अत्यन्त अल्पकालिक थे। वास्तव में कुछ विशेषज्ञों की राय है कि अगर सोवियत संघ मजबूत रहा होता तो वह इराक को कुवैत पर कभी चढ़ाई करने की इजाजत नहीं देता। ऐसा मान लेने पर कुवैत एक पीड़ित पक्ष के रूप में सामने आता है न कि, जैसा कि अमरीकी विश्लेषण में बताया गया है, नई विश्व व्यवस्था का प्रतिफल।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.4 उदारवादी दृष्टिकोण

कुछ लोग द्विध्रुवीय विश्व व शीतयुद्ध के अंत में उदार पूँजीवाद की जीत तथा उस विचारधारात्मक विभाजन का अंत देखते हैं जो इस सदी के महान अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों के लिए जिम्मेवार था। वास्तव में यह इतिहास के अंत होने की धारणा का इन्कार था। फ्रैंसिस फुकुयामा द्वारा प्रतिपादित इस धारणा के अनुसार अब उदार पूँजीवाद का कोई एकल महान वैचारिक स्पर्द्धी न रहा। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय संबंध आज ज्यादा सरल हो गया है। क्योंकि आज हम एकल एकीकृत विश्व व्यवस्था में रह रहे हैं। यह भ्रम अब टूट गया है कि निर्माण की प्रक्रिया में सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाएँ अलग-अलग होती है। सच तो यह है कि विश्व राजनीति एकीकरण की दिशा में बढ़ रही है। इस प्रवृत्ति के संवर्द्धन में अनेक कारकों, जैसे पूंजी का भूमंडलीकरण, तीसरी दुनिया के अनेक भागों में औद्योगिकीकरण, निर्धन देशों से धनी देशों की ओर लोगों का भारी पलायन तथा अंतर्महादेशीय संचार तंत्र का विकास—का योगदान रहा है।

तथापि यह दृष्टि दोषमुक्त नहीं कही जा सकती।

अनेक उदारपंथियों का मानना है कि साम्यवाद के पतन से दुनिया में अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष के कई स्रोत पैदा हो गये हैं। आज उदार पूँजीवाद के कई प्रतियोगी मौजूद हैं यद्यपि वे अलग-अलग और विखंडित हैं। उदाहरण के लिए, पेरू के साइनिंग पाथ गुरिल्ला आंदोलन समर्थित देशी नवमाओवाद, इस्लामिक कठमुल्लावाद के अनेक प्रकार तथा जातीय राष्ट्रवाद का उदय ऐसी घटनाएँ हैं जिनसे पूंजीवाद को कड़ी प्रतियोगिता करनी पड़ रही है।

15.5 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

नयी विश्व व्यवस्था को लेकर तरह-तरह के मार्क्सवादी दृष्टिकोण प्रचलित हैं। इनमें से प्रत्येक अत्यंत ही जटिल तरीके से सोवियत संघ व पूर्वी यूरोप के देशों में समाजवाद के खात्मे को समझने का प्रयास करता है। फिर भी उनके बुनियादी सरोकार एक ही हैं। पहली बात जो ध्यान में रखी जानी चाहिए वह यह कि समाजवादी खेमे व सोवियत संघ का पतन मार्क्सवादी दृष्टिकोण के लिए एक करारा झटका रहा है क्योंकि पश्चिम इसके ब्याज से यह प्रचारित करने की कोशिश कर रहा था कि पूँजीवाद का अब कोई भी समाजवादी विकल्प नहीं रह गया है। लेकिन मार्क्सवादी ऐसा नहीं मानते। उल्टे वे यह मानते हैं कि समाजवादियों को अपनी ताकत बढ़ाने, समाजवाद की विकृतियों को दूर करने तथा एक बेहतर विकल्प प्रस्तुत करने का अवसर है यह। उनका विश्वास है कि पूँजीवादी व्यवस्था की बुनियादी बुराईयाँ—शोषण व असमानता—एक न एक दिन उसके पतन के लिए जमीन तैयार करेंगी।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए

1) नयी विश्व व्यवस्था का अर्थ क्या है और इसमें नया क्या है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) नयी विश्व व्यवस्था के बारे में प्रचलित मुख्य दृष्टिकोण कौन-कौन से हैं तथा उनमें अंतर क्या है?

15.6 विभिन्न देशों के दृष्टिकोण

इसके पहले कि हम विभिन्न दृष्टिकोणों की चर्चा करें, यह जान लेना बहुत जरूरी है कि हम यहाँ आधिकारिक अथवा सरकारी दृष्टिकोणों की चर्चा कर रहे हैं न कि बुद्धिजीवियों, सिद्धांतकारों, विद्वानों अथवा खास राजनीतिक नेताओं के दृष्टिकोण की। एक ही देश में प्रचलित दृष्टिकोणों में अक्सर इतना अंतर होता है कि उन सबका विश्लेषण करना असंभव हो जाता है। हमें यह भी जानना होगा कि एक प्रक्षेत्र के विभिन्न देशों के दृष्टिकोणों के बीच भी गहरा अंतर होता है। उदाहरण के लिए यूरोप के सभी देश नयी विश्व व्यवस्था के बारे में एक ही तरह से नहीं सोचते, न ही सभी विकासशील देश एक तरह सोचते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि किसी खास देश के तमाम दृष्टिकोणों की चर्चा करने में एक पूरी पुस्तक लिखने की जरूरत है। हम यहाँ विभिन्न देशों के दृष्टिकोणों को मोटे तौर पर उनके आम हितों के लिहाज से वर्णन करेंगे। ये हित मोटे तौर पर आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक होते हैं।

15.6.1 अमरीकी दृष्टिकोण

अमरीकी दृष्टिकोण के अनुसार सोवियत संघ व द्विध्रुवीय विश्व के खात्में के बाद अब दुनिया में अमरीका अकेली महाशक्ति रह गया है। और इसीलिए अमरीका को शीतयुद्धोत्तर काल में आगे बढ़कर अपनी भूमिका निभानी होगी। खासतौर पर (क) अंतर्राष्ट्रीय स्थायित्व कायम करने व (ख) लोकतंत्र के लिए विश्वव्यापी आंदोलन चलाने की दिशा में उसे अगुआई करनी होगी। ये दोनों उद्देश्य (अंतर्विरोधी प्रकृति के मुद्दे कहकर इनकी आलोचना भी की जाती है) इस विश्वास पर आधारित हैं कि अमरीका अब भयमुक्त होकर जो चाहे सो कर सकता है क्योंकि अब न तो सोवियत संघ अस्तित्व में हैं न ही कोई और प्रतिरोधी शक्ति यूरोप तो अमरीका के साथ है ही, फिर अमरीका अकेला ऐसा देश है जिसके पास आवश्यक सैन्य, राजनयिक और आर्थिक शक्ति है। किंतु अमरीका को इस बात का खूब अहसास है कि यह एकलध्रुवीय व्यवस्था ज्यादा दिनों तक टिकी नहीं रह सकती क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय संबंध सदैव अस्थायित्व व गत्यात्मकता से निर्धारित होते रहे हैं। कहने का मतलब यह है कि परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय संबंध की विशेष पहचान व उसकी आंतरिक शक्ति हैं। शीतयुद्ध के अंत का मतलब यह नहीं है कि अस्थायित्व की विशेषता भी खत्म हो गयी है। फिर अमरीका को यह मालूम है कि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सदस्य सदैव उसकी हाँ में हाँ नहीं मिलाते रहेंगे। सच तो यह है कि सोवियत संघ, जो पश्चिमी यूरोपीय देशों व संयुक्त राज्य का बहुत दिनों से साझा दुश्मन रहा था, के पतन के बाद इन देशों के आपसी मतभेद खुलकर सामने आने लगे हैं। अमरीका को इसका ख्याल रखना ही होगा। लेकिन कुल मिलाकर मुख्य अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर पश्चिमी यूरोप व संयुक्त राज्य एक ही तरह का रूख अख्तियार करते हैं, खासकर जहाँ उनके साझे आर्थिक व राजनीतिक स्वार्थ विद्यमान रहते हैं।

15.6.2 यूरोपीय दृष्टिकोण

मैस्ट्रिस्ट संधि, जो 1 नवम्बर 1993 से प्रभावी है, ने यूरोपीय यूनियन के चिरप्रतीक्षित सपने को साकार किया। किन्तु यूरोपीय एकीकरण की दिशा में उठाये गये इस प्रतीतिकारी कदम के बावजूद अनेक मौलिक मुद्दों पर यूरोपीय देशों के बीच मतभेद आज भी कायम हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि एकीकरण के लिए यूरोपीय देशों में अपेक्षित इच्छा-शक्ति की भारी कमी है तथा यह कि संघ बनाने के प्रयासों के बावजूद यूरोप भीतर ही भीतर राष्ट्रवादी भावनाओं की गिरफ्त में फंसा हुआ है। स्पष्ट है कि इन देशों के बीच नयी विश्व व्यवस्था को लेकर कोई एक सोच या दृष्टिकोण नहीं हो सकता। सोवियत संघ के पतन में पश्चिमी खेमा आमतौर पर अपनी जीत देख रहा था, किन्तु सच यह भी है कि समाजवादी खेमे के विखंडन के साथ यूरोप के राजनीतिक और सुरक्षा माहौल में बुनियादी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उन्हें जो अब तक एक रखे हुए था, वह कारण ही अब बेमानी हो गया था और उसकी जगह कई दूसरे महत्त्वपूर्ण हित जुड़ गए थे इन हितों को साधना भी अब संभव हो गया था। एकीकरण के बाद विश्व स्तर पर जर्मनी एक महत्त्वपूर्ण ताकत के रूप में उभरा। उसकी इस ताकत से यूरोप के दूसरे देश आंतकित हो उठे। यूरोप के सभी देश आर्थिक रूप से बराबर हैं, उनकी विदेश और रक्षा नीतियों में काफी मतभेद है और सबसे बढ़कर उनके बीच ऐतिहासिक समस्याएँ भी मौजूद हैं। फिर भी उनके हित बहुत दूर तक साझे हैं और कहा जा सकता है कि यूरोपीय दृष्टिकोण के केंद्र में ये साझे हित ही शामिल हैं। वे पूर्वी यूरोप में बाजार अर्थव्यवस्था की जरूरत समझते हैं और इसके लिए वे अपने साझे प्रयासों में बेहतर समायोजन लाना चाहते हैं। इस तरह वे पूर्वी यूरोप के समाजवादी खेमे को विश्व पूँजीवादी व्यवस्था का अंग बनाने, पूर्वी यूरोप में उभरे जातीय और नृजातीय संघर्षों को नियंत्रित करने तथा पश्चिमी यूरोप में बड़ी तादाद में आने वाली आबादी को रोकने की कोशिश कर रहे हैं। कहने की जरूरत नहीं कि ये पश्चिमी यूरोप के साझे हित के मसले हैं। स्पष्ट है कि यूरोपीय दृष्टिकोण यूरोप में केन्द्रित है और जैसे जैसे दक्षिण और उत्तर के बीच आर्थिक खाई बढती जाएगी, वैसे वैसे यूरोप को ऋण व्यापार व सहायता की समस्याओं तथा परमाणु प्रसार के मुद्दे पर अपने प्रयासों को नियोजित करने की जरूरत सामने आती रहेगी।

15.6.3 चीनी दृष्टिकोण

नयी विश्व व्यवस्था को लेकर चीनी दृष्टिकोण एक तरह से उभयअर्थी कहा जा सकता है। क्योंकि उसमें आशा एवं निराशा दोनों के तत्त्व शामिल हैं। मोटेतौर पर वे यह तो स्वीकार करते हैं कि पुरानी व्यवस्था खत्म हो चुकी है, किंतु साथ ही यह भी मानते हैं कि नयी विश्व व्यवस्था अभी रूपाकार नहीं ले सकी है। दूसरे शब्दों में हम अभी संक्रमण काल के दौर से गुजर रहे हैं। यह सही है कि आज अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में शिथिलता आई है, किंतु शांति भंग करने वाले तथा तनाव पैदा करने वाले कारण पूरी तरह से गायब नहीं हुए हैं। कुछ पुरानी समस्याएं खत्म हुई हैं तो कुछ नयी पैदा भी हुई हैं। कालान्तर में ये नयी

समस्याएं विश्व-स्थायित्व को चोट पहुँचा सकती हैं। उदाहरण के लिए खाड़ी युद्ध से मध्य पूर्व की समस्याएं खत्म नहीं हुई हैं तथा इजरायल एवं अरब देशों के बीच जारी शांति वार्ताओं की प्रक्रिया लम्बी और जटिल हो सकती है। यूरोप में जातीय संघर्ष एक खतरनाक शक्ल का रूप ले चुका है तथा गरीब एवं अमीर देशों के बीच की खाई लगातार बढती जा रही है। इसे हम दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि मौजूदा स्थिति नाजुक मोड़ पर पहुँच चुकी है। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि आज विश्व एक ध्रुवीय नहीं है तथा हम बहुध्रुवीयता की ओर बढ़ रहे हैं और नई विश्व व्यवस्था को शांति एवं विकास में सहयोग देना है तो उसे शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के पाँच बुनियादी सिद्धान्तों पर आधारित होना होगा। ये सिद्धांत पंचशील की अवधारणा में शामिल हैं। इन पाँच सिद्धान्तों की आत्मा के रूप में हम एक दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति को रेखांकित कर सकते हैं। इससे भी बड़ी बात यह है कि सभी देशों की जनता एवं सरकार को अपनी मर्जी से सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था तथा विचारधारा अपनाने का अधिकार प्राप्त है। इस दृष्टिकोण के निर्माण में चीन की परिस्थितियों एवं उसकी जरूरतों का बहुत बड़ा अर्थ है। चीन भारी आंतरिक बदलाव के दौर से गुजर रहा है तथा वह जानता है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में काफी समय लग सकता है। इस संदर्भ में उसके सरोकार विकासशील देशों के सरोकारों से मिलते जुलते हैं। मानवाधिकार के मुद्दे पर चीन भी अमरीका, पश्चिमी यूरोप के दवाब में हैं। उसे अपने बाज़ार खोलने के लिए भी दबाया जा रहा है। तथापि चीन की महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में स्थापित है।

15.6.4 रूसी दृष्टिकोण

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, रूसी दृष्टिकोण में द्विध्रुवीय विश्व का अंत जीत भी है और हार भी है। कुल मिलाकर रूसी दृष्टिकोण मुख्य रूप से आंतरिक कारणों से प्रभावित है तथा उसके सरोकार भी मुख्यतया घरेलू हैं क्योंकि रूस के लिए निर्णायक सवाल अगर एक तरफ लोकतंत्र और आर्थिक सुधारों का भविष्य है तो दूसरी तरफ स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच पैदा हुए तनावों का प्रबंधन। नतीजन यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय हितों को तवज्जो देता है। रूस के संदर्भ में इसका मतलब मुक्त बाज़ार व्यवस्था को सफल बनाने के लिए पुरजोर कोशिश करना तथा पूरी अर्थव्यवस्था का निजीकरण और उदारीकरण करना मान लिया गया। जाहिर है कि इसके लिए रूस को अत्यंत लोकप्रिय कदम भी उठाने होंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा गैट जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ बेहतर तालमेल की वकालत करता है। क्षेत्रीय संगठनों के साथ सक्रिय सहयोग को भी यह दृष्टि-कोण विशेष महत्त्व देता है। रूसी नेता रूस के अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का विश्वसनीय एवं पूर्वानुमेय हिस्सेदार के रूप में स्थापित करने के लिए कृत संकल्प हैं और मानते हैं कि रूस सदैव एक बड़ी शक्ति बना रहेगा, भले ही उसे महाशक्ति की हैसियत न मिले। रूस अपने वैश्विक लक्ष्यों-निरस्त्रीकरण एवं हथियारों की होड़ को सीमित करना ताकि सामाजिक-आर्थिक सुधार एवं विकास के लिए धन जुटा सकें—इसको विशेष तवज्जो देगा तथा संयुक्त राज्य, जापान एवं यूरोप के साथ अपने रिश्तों को बेहतर बनाने की दिशा में कार्य करेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.6.5 विकासशील देशों का दृष्टिकोण

विकासशील दुनिया की नजर में, नयी विश्व व्यवस्था में दुनिया अलग तरह के विभाजनों में बँट गई है और यह विभाजन साफ-साफ दीख रहा है। जहाँ पहले यह विभाजन मुख्य रूप से विचारधारात्मक था यानी पूँजीवादी पश्चिम व कम्युनिस्ट पूर्व के बीच था, वहीं यह विभाजन अब समृद्ध उत्तर व निर्धन दक्षिण के बीच स्थापित है। जैसे-जैसे नयी विश्व व्यवस्था अपना निश्चित स्वरूप अख्तियार करती जायेगी, वैसे-वैसे लौह-पर्दा की जगह आर्थिक दीवार खड़ी होती जाएगी। इस प्रक्रिया में गरीब देश लगातार हाशिए पर धकेले जाते रहेंगे। जो डर है वह यह है कि एक बार अंतर्राष्ट्रीय संबंध यूरोप-केंद्रीत हो जाएंगे क्योंकि शीतयुद्ध के दौरान जो द्विध्रुवीय संरचना तैयार हुई थी, अब निरर्थक वह इस प्रवृत्ति पर अंकुश नहीं लगा सकती। कुछ लोग तर्क देते हैं कि कच्चे माल व तेल की जरूरत उन्नत देशों को यह सोचने के लिए मजबूर कर देगी कि दक्षिण की उपेक्षा करना उनके अपने हित के खिलाफ है। मालूम हो कच्चे माल व तेल पर विकासशील देशों का अधिकार ही ज्यादा है। किंतु इसमें शक है कि नयी विश्व व्यवस्था में ये देश कोई यह महत्त्वपूर्ण व प्रभावी भूमिका अदा कर सकेंगे। समाजवादी खेमे के विखंडन से एक ऐसी स्थिति पैदा हुई है। जहाँ व्यापार एवं कार्य का बड़ा हिस्सा पूर्वी यूरोप के लिए सुरक्षित कर दिया गया हैं क्योंकि आर्थिक एवं राजनीतिक स्थायित्व पूरे यूरोप का मुख्य सदोकार है। नतीजन विकासशील देशों को दी जानेवाली मानवतावादी सहायता में भारी कटौती की जाएगी। इतना भी नहीं, दक्षिण को दिए जाने वाले कर्जों पर और अधिक शर्तें लगाई जाएगी। अब उन्हें बुहराष्ट्रीय कम्पनियों को अबाध प्रवेश की सुविधा देनी होगी, विकास परियोजनाओं में उर्जा की कटौती करनी होगी, जन्म दर में दृढ़ कमी करनी होगी। अब उन्नत देश विकासशील देशों की घरेलू राजनीति में हस्तक्षेप करने के साथ

साथ उन देशों में पश्चिमी शैली के लोकतन्त्र को आरोपित करेंगे, तीसरी दुनिया पर मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था अपनाने के लिए जोर डालेंगे तथा वैसी तकनोलॉजी के आयात के लिए बाध्य करेंगे जो पुरानी एवं अप्रासंगिक हो गई है, विकासशील देशों का ख्याल है कि अति महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर समृद्ध उत्तर को ज्यादा तरजीह दी जाएगी। ये मुद्दे हैं—पर्यावरणीय समस्याएं, मानवाधिकार तथा परमाणु-प्रसार समय की माँग है कि क्षेत्रीय स्तर पर एवं विकासशील देशों के बीच आपस में मजबूत संगठन खड़े किए जाए और नयी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक एवं सूचना व्यावस्था के निर्माण की माँग की जाए। साथ ही संयुक्त राष्ट्र को एक ताकतवर एवं प्रभावी संगठन में तब्दील करने के लिए भी प्रयास किया जाए। दक्षिण के देशों के बीच विद्यमान विवादास्पद एवं संघर्ष संबंधों को देखते हुए मोटेतौर पर यह कहा जा सकता है कि यह दृष्टिकोण बहुत ज्यादा आशाजनक नहीं है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) नयी विश्व व्यवस्था के लिहाज से अमरीकी और यूरोपीय दृष्टिकोण में क्या अंतर है?

2) चीनी दृष्टिकोण व विकासशील देशों के दृष्टिकोण की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.7 मौजूदा हालात और भावी संभावनाएँ

इस तरह हम देखते हैं कि मौजूदा हालात स्पष्ट व सुपरिभाषित नहीं हैं। अनेक अनिश्चिताएँ हैं और तरह-तरह की परिस्थितियाँ हैं। ऐसे में स्पष्ट है कि नयी विश्व व्यवस्था को कोई मुकम्मल तस्वीर उभरने में अभी वक्त लगेगा। वर्तमान दौर संक्रमण का दौर माना जा सकता है जिसमें बहुध्रुवीय विश्व के उदय के संकेत मिल रहे हैं। किंतु साथ ही नयी विश्व व्यवस्था को लेकर दृष्टिकोण और नजरियों में काफी अंतर भी विद्यमान है। भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि विभीन्न देश अपनी समस्याओं का निपटारा कैसे करते हैं—तथा दुनिया में शांति का विकास के लिए वे किस प्रकार एक दूसरे से मिलकर कार्य करते हैं। यह देखना बाकी है कि वे अपनी समस्याओं का समाधान घरेलू स्तर पर करते हैं या द्विपक्षीय अथवा बहुपक्षीय स्तर पर।

15.8 सारांश

सोवियत संघ के विखंडन तथा शीतयुद्ध के अंत से नयी विश्व व्यवस्था पैदा हुई है। द्विध्रुवीय विश्व की जगह आज संयुक्त राज्य की अगुआई में एकल ध्रुवीय विश्व अस्तीत्व में आया है। विश्व अब अलग-अलग सामाजिक आर्थिक व्यवस्थाओं में विभक्त नहीं रह गया है।

आज की दुनिया में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का ही बोलबाला है। पुरानी व्यवस्था के अंतर्गत लड़े गये स्थानीय और गृहयुद्ध मोटेतौर पर साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध ही थे। उनकी जगह आज क्षेत्रीय, जातीय तथा धार्मिक कठमुल्लावादी गृहयुद्ध लड़े जा रहे हैं। एक नयी विश्व व्यापार व्यवस्था कायम हुई है तथा विश्व व्यापार संगठन का गठन हुआ है। संप्रभु देशों के बीच व्यापारिक प्रतिरोधों को

शिथिल किया जा रहा है। पूँजी के मुक्त बहाव पर लगे प्रतिबंधों को धीरे-धीरे हटाया जा रहा है। राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था, जो काफी दिनों तक अर्थव्यवस्था का नियामक बनी रही थी, की जगह मुक्त स्पर्द्धा व बाजार अर्थव्यवस्था को स्थापित किया जा रहा है।

15.9 शब्दावली

एन. डब्लू. ओ. : नयी विश्व व्यवस्था।

टी. एन. सी. : ट्रांस नेशनल कारपोरेशन्स

ए. आई. डी. एस. : अक्वायर्ड इम्यूनो डिफेशियेन्सी सिन्ड्रॉस

सी. आई. एस. : कॉमनवेल्थ ऑव इंडिपेंडेंट नेशन्स

जी. ए. टी. टी. : जेनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ्स एण्ड ट्रेड

यूरोप केंद्रित : ऐसी स्थिति जहाँ तमाम नीतियों और उसके लाभों का मुख्य केंद्र यूरोप तक सीमित हो।

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ओल्सन, विलियम सी., और मुम, ए. जे. आर., (1991) : **इंटरनेशनल रिलेशंस देन एण्ड नाउ ओरिजिन्स एण्ड ट्रेन्डस इन इंटरप्रेटेशन**, हार्पर कोलिन्स एकैडेमिक, लंदन।

कुर्थ जेम्स : **दि शेव ऑव दि न्यू वर्ल्ड ऑर्डर**, नेशनल इंटरेस्ट, 24 समर 1991

रोबर्ट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन, **ए न्यू एन इन इंटरनेशनल रिलेशस**, इंटरनेशनल अफेयर्स 67, 1991, पृष्ठ-509-25

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) नयी विश्वव्यवस्था का अर्थ है कि जिस ढ़र्रे में अंतर्राष्ट्रीय संबंध संगति था और कार्य कर रहा था, वह बदल गया है। इसमें नया यह है कि पुरानी व्यवस्था, जो विश्व के द्विध्रुवीय विभाजन पर आधारित थी, उसकी जगह एक ऐसी व्यवस्था स्थापित हुई है जिसमें सत्ता-संबंध व सत्ता श्रृंखला में काफी हद तक बदलाव आ चुके हैं।
2) नयी विश्व व्यवस्था के बारे में मुख्य सैद्धांतिक दृष्टिकोण हैं—यथार्थवादी, उदारवादी तथा मार्क्सवादी। यथार्थवादी दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीय संबंध के विश्लेषण में केवल शक्ति पर जोर देता है। तथा इन संबंधों की न्याय परकता अथवा नैतिकता के बारे में कोई टिप्पणी नहीं करता है। उदारवादी दृष्टिकोण नयी विश्व व्यवस्था में पूँजीवाद तथा उदार पूँजीवादी मूल्यों की जीत देखता है जबकि मार्क्सवादी दृष्टिकोण नयी विश्व व्यवस्था की अंतर्निहित अन्यायपरक प्रवृत्ति को उजागर करता है। वे मानते है कि पूंज़ीवाद के आंतरिक अंतर्विरोध शीघ्र ही उसके पतन के कारण बनेंगे।

बोध प्रश्न 2

1) अमरीकी व यूरोपीय दृष्टिकोण मोटे तौर पर एक समान है, तथापि उनके मुख्य सरोकार अलग-अलग हैं। अमरीका स्पष्टतः अपने लिए विश्वव्यापी भूमिका की संभावना देखता है जबकि यूरोप मुख्य रूप से महादेश पर ही केन्द्रित है। दोनों के तात्कालिक राजनीतिक व सुरक्षा लक्ष्य भी एक हद तक अलग-अलग है। आर्थिक क्षेत्र में उनके बीच प्रतियोगिता तेज होती जा रही है।
2) सही है कि चीन और विकासशील देशों के कई सरोकार एक से हैं, तथापि उनके बीच मतभेद का मुख्य रूप से शक्ति और हैसियत के सवाल को लेकर हैं। विश्व की बड़ी ताकत के रूप में चीन को गरीब व कमजोर विकासशील देशों के मुकाबले बढ़त मिली हुई है और इसीलिए यह संभावना बहुत कम है कि वह उन्नत देशों के शोषण का शिकार बनेगा।

इकाई 16 संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था का पुनर्गठन

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था का संगठन, संरचना और कार्य
16.2.1 संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र : उददेश्य और सिद्धांत
16.2.2 संयुक्त राष्ट्र के मुख्य निकाय एवं कार्य
16.3 संयुक्त राष्ट्र की बदलती भूमिका
16.3.1 शीतयुद्ध काल
16.3.2 शीतयुद्धोत्तर काल
16.4 कुछ उपलब्धियाँ और कमियाँ
16.4.1 उपलब्धियाँ
16.4.2 कमियाँ / असफलताएँ
16.5 संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था का पुनर्गठन–मुख्य सुझाव और भारत का दृष्टिकोण
16.6 सारांश
16.7 शब्दावली
16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह खंड सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय सरकारी संगठन, संयुक्त राष्ट्र तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बहाल करने में जन्म से अब तक उसकी बदलती भूमिका क्या रही है, इन सभी का सर्वेक्षण प्रस्तुत करता है। यह सामाजिक आर्थिक विकास में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका का भी संक्षेप में आकलन करता है। तथापि इसका मुख्य जोर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के पुनर्गठन को लेकर जारी बहस का सार प्रस्तुत करना है। पुनर्गठन को लेकर यह बहस इसलिए जारी है ताकि संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था को सामाजिक विश्व समस्याओं के संदर्भ में और अधिक लोकतांत्रिक, कारगर और प्रासंगिक बनाया जा सके। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था का संगठन क्या है, उसकी संरचना क्या है तथा उसके कार्य क्या है समझ सकेंगे;
- शीतयुद्ध के पूर्व और पश्चात् संयुक्त राष्ट्र की बदलती भूमिका जान सकेंगे;
- संयुक्त राष्ट्र की कुछ उपलब्धियों और असफलताओं का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- संयुक्त राष्ट्र के पुनर्गठन और उसमें सुधार के लिए कौन-कौन से मुख्य प्रस्ताव है समीक्षा कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

इकाई 16 के अंतर्गत खाड़ी युद्ध, सोवियत संघ और समाजवादी खेमे का विखंडन तथा विश्व व्यवस्था की अवधारणा से संबंधित विविध दृष्टिकोणों का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। इन असाधारण बदलावों से संयुक्त राष्ट्र की बदलती भूमिका अत्यधिक प्रभावित हुई है।

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्तूबर, 1945 को हुई थी। उसी दिन से संयुक्त राष्ट्र का घोषणा पत्र (संविधान) भी प्रभावी हुआ। प्रतिवर्ष यह दिन संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र का अध्ययन कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है। किन्तु इनमें से दो अति महत्त्वपूर्ण है। पहला, 1945 के बाद अस्तित्व में आया। 390 अंतर्सरकारी अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में संयुक्त राष्ट्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि विश्व राजनीति को इसने अत्यधिक प्रभावित किया है। इसने अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए सांस्थानिक ढाँचा तैयार किया है। मानव इतिहास में इतना बड़ा पैमाना कभी नहीं बनाया गया है। इसने अनेक अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक, आर्थिक और मानवीय समस्याओं के निष्पादन का प्रयास किया है। यह पिछले 50 वर्षों से न केवल कायम है, बल्कि भावी चुनौतियों का सामना करने के लिए इसने अपने आप में सुधार भी किया है। इसका पूर्ववर्ती राष्ट्रकुल विश्व शांति और सुरक्षा के उद्देश्य से गठित पहला अंतर्राष्ट्रीय संगठन था, किन्तु 20 सालों से अधिक जीवित नहीं रह सका। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र के जन्म के साथ ही राष्ट्र कुल की समाप्ति की आधिकारिक घोषणा कर दी गयी थी।

16.2 संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था का संगठन, संरचना और कार्य

इस इकाई में विभिन्न उपशीर्षकों यथा संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र: उद्देश्य व सिद्धान्त तथा संयुक्त राष्ट्र के मुख्य निकाय व उनके कार्य के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र के सांगठनिक ढाँचे का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

16.2.1 संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र : उद्देश्य और सिद्धांत

संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र का अनुमोदन शुरू में 51 देशों ने किया था। जिनमें भारत भी शामिल था, ये राज्य संयुक्त राष्ट्र के जनक सदस्य के रूप में जाने जाते हैं। प्रथम 50 वर्षों में इसकी सदस्यता बढ़कर 185 हो गयी। इस तरह, संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र सार्वभौम रूप से अनुमोदित अंतर्राष्ट्रीय संधि-पत्र बन गया है।

संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र की धारा 1 के अनुसार, संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य चतुर्स्तरीय है: i) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बहाल करना, ii) समान अधिकारों एवं जनता के स्वनिर्धारण के सिद्धान्तों के आधार पर देशों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध विकसित करना, iii) अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय समस्याओं के निराकरण तथा मानवाधिकारों व मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति निष्ठा के संवर्द्धन के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग करना, तथा iv) इन सामूहिक लक्षणों की प्राप्ति में राष्ट्रों के क्रियाकलापों में संगति बैठाने वाले केन्द्र के रूप में अपनी पहचान बनाना।

संयुक्त राष्ट्र जिन बुनियादी उसूलों के अनुसार कार्य करता है, वे इस तथ्य की स्वीकृति पर आधारित हैं कि इसके सभी सदस्यों को संप्रभु और समानता का अधिकार हासिल है और उनसे घोषणा पत्र की शर्तों के अनुपालन की अपेक्षा की जाती है। उनसे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे अपने अंतर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा शांति, सुरक्षा एवं न्याय को कोई क्षति पहुँचाए बगैर शांतिपूर्ण तरीके से करेंगे, और अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में किसी भी राज्य के खिलाफ बल प्रयोग की धमकी अथवा उसके इस्तेमाल से बाज आयेंगे, वे संयुक्त राष्ट्र की हर उस कार्रवाई के साथ सहयोग करेंगे जो वह अपने घोषणा पत्र के प्रावधानों के अनुरूप शुरू करेगा। मालूम हो, संयुक्त राष्ट्र किसी भी राज्य के आंतरिक मामलों में दखलंदाजी नहीं करता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र की प्रस्तावना में चार सरोकारों एवं उद्देश्यों का जिक्र है तथा उनकी सिद्धि के लिए चार तरह के तरीकों और व्यावहारिक प्राथमिकताओं का सुझाव दिया गया है। ये सरोकार हैं— i) अनुवर्ती पीढ़ियों को युद्ध से बचाना (स्मरणीय है कि इस सदी के दो महायुद्धों में मानवता को अकथ दुख और बर्बादी का सामना करना पड़ा था। इन दो महायुद्धों में मृतकों की संख्या क्रमशः 4.5 करोड़ तथा 6 करोड़ थी।) ,

ii) बुनियादी मानवाधिकारों और मनुष्य मात्र की गरिमा एवं महत्ता के प्रति अपनी आस्था को दृढ़ करना तथा सभी राष्ट्रों, चाहे वे छोटे हों या बड़े, सभी के लिए समान अधिकार के सिद्धांत में आस्था रखना, iii) न्याय के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना तथा संधि की शर्तों के अनुपालन के प्रति सम्मान रखना तथा iv) व्यापक आजादी के साथ सामाजिक विकास और बेहतर जीवन स्तर का संवर्द्धन करना। और इन लक्षणों की प्राप्ति के लिए i) सहिष्णुतापूर्ण आचरण करना, ii) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए एकजुट होना, iii)यह सुनिश्चित करना कि सामान्य हित के तथा iv) राष्ट्रों के आर्थिक व सामाजिक बेहतरी के संवर्द्धन में अंतर्राष्ट्रीय तंत्र का इस्तेमाल करना।

16.2.2 संयुक्त राष्ट्र के मुख्य निकाय एवं कार्य

उल्लिखित लक्षणों और उद्देश्यों को हासिल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र के अंतर्गत छह मुख्य निकायों की स्थापना की गयी है।

आम सभा, जो संभवतः विश्व पसंद की अवधारणा के सबसे निकट है, संयुक्त राष्ट्र का मुख्य विचार विमर्श निकाय है। यह निकाय मुक्त और उदार बातचीत के जरिये समस्याओं का समाधान ढूँढने की कोशिश करता है क्योंकि यह तकनीक समय की कसौटी पर खरी उतरी है। यह विश्व का स्थायी मंच एवं बैठक कक्ष है। इसका गठन इस मान्यता पर आधारित था कि शब्दों से लड़ा जाने वाला युद्ध तलवारों और बमों से लड़े जाने वाले युद्ध से श्रेयस्कर होता है। इसमें सभी सदस्य राज्यों को प्रतिनिधित्व हासिल हैं। इसमें सभी संप्रभु समानता के सिद्धान्त के आधार पर एकमत देने का अधिकार प्राप्त है। सामान्य मुद्दों पर फैसला लेने के लिए दो तिहाई बहुमत की जरूरत होती है।

सभा को संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र की परिधि में आने वाले तमाम मुद्दों पर बहस एवं अनुशंसा करने का अधिकार प्राप्त है। हालांकि इसके फैसले को मानना सदस्य राज्यों के लिए अनिवार्य नहीं है, तथापि उन फैसलों में विश्व जनमत की अभिव्यक्ति होती है। स्पष्ट है, आम सभा राष्ट्रीय संसद की तरह कानून का निर्माण नहीं करती है तो भी संयुक्त राष्ट्र के सभाकक्षों व उसके गलियारों में तकरीबन सभी छोटे बड़े, धनी

निर्धन और विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था वाले देशों के प्रतिनिधियों को अपनी बात कहने तथा वोट देने का अधिकार प्राप्त होता है। कहना न होगा कि इन्हीं बातों से अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की नीतियों के स्वरूप का निर्धारण होता है।

संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र के अनुसार शांति और सुरक्षा बहाल करने की प्राथमिक जिम्मेवारी सुरक्षा परिषद की होती है। यह कभी भी, यहाँ तक की अर्द्धरात्रि में भी, अगर शांति के लिए कोई खतरा पैदा हो गया है। तो बुलाई जा सकती है। इसके फैसलों का अनुपालन करना सदस्य राज्यों के लिए अनिवार्य है। इसके 15 सदस्य होते हैं। इनमें पाँच चीन, फ्रांस, सोवियत संघ, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका स्थायी सदस्य है। शेष दस सदस्यों का चुनाव आम सभा द्वारा किया जाता है। इनका कार्यकाल दो वर्षों का होता है। कार्यप्रणाली से संबंधित सवालों को छोड़कर प्रत्येक फैसले के लिए मतों की जरूरत होती है। ठोस बुनियादी सवालों पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता। अगर कोई भी स्थायी सदस्य उस पर अपना मत देना अस्वीकार कर देता है तब इसे वीटो के नाम से जाना जाता है।

परिषद के सामने जब कभी शांति के खिलाफ खतरे का सवाल लाया जाता है, तो अक्सर वह पहले विविध पक्षों से शांतिपूर्ण हल ढूँढने के लिए कहती है। परिषद मध्यस्थता भी कर सकती है। वह स्थिति की छानबीन कर उस पर रपट भेजने के लिए महासचिव से भी आग्रह कर सकती है। लड़ाई छिड़ जाने की स्थिति में परिषद युद्ध विराम की कोशिश करती है। संबद्ध पक्षों की राय से वह अशांत क्षेत्रों में तनाव कम करने एवं विरोधी सैनिक बलों को दूर रखने के लिए शांति सैनिकों की टुकड़ियाँ (पर्यवेक्षक अथवा दल) भी भेज सकती है। आम सभा के प्रस्तावों के विपरीत, इसके फैसले बाध्यकारी होते हैं। आर्थिक प्रतिबंध लगाकर अथवा सामूहिक सैनिक कार्रवाई का आदेश देकर अपने फैसले को लागू करवाने का हक भी है, जैसा कि वह कोरियाई संकट (1950) तथा ईराक-कुवैत संकट (1990-91) के दौरान कर चुकी है।

युद्ध का अभाव, उसकी रोकथाम स्वतः शांतिपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था सुनिश्चित नहीं कर देते। भावी संघर्ष जिनमें शांति को खतरा हो अथवा शांतिभंग की संभावना हो, उनके बुनियादी कारणों को कम करने के लिए संयुक्त राष्ट्र के संस्थापक जन्मदाताओं ने आर्थिक और सामाजिक उन्नति और विकास तथा जीवन स्तर में बेहतरी के लिए कुछ ठोस साधनों/उपायों का भी प्रावधान किया था। अब यह काम आर्थिक और सामाजिक परिषद एवं इसकी विशेषज्ञ एजेंसियों के हवाले कर दिया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आर्थिक और सामाजिक परिषद के 54 सदस्य हैं। सामान्य तौर पर इसकी प्रतिवर्ष दो बैठकें - एक- एक महीने के सत्रों के रूप में होती है। यह संयुक्त राज्य और उसकी विशेषज्ञ एजेंसियों के कार्यों का समंजन करता है। ये सभी एक साथ मिलकर "संगठन परिवार" का निर्माण करते हैं या सीधे कहें कि यह संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था है। अन्य बातों के अलावा परिषद जिन बातों को तरजीह देती है तथा जिन गतिविधियों की अनुशंसा अथवा निर्देश करती है वे हैं—विकासशील देशों में आर्थिक विकास का संवर्द्धन करना, विकास और मानवीय सरोकार की सहायता प्राप्त परियोजनाओं का प्रबंधन करना, मानवाधिकारों के अनुपालन को मजबूत करना, अल्पसंख्यकों के खिलाफ भेदभाव को समाप्त करना, विज्ञान और प्रोद्योगिकी के लाभों का विस्तार करना, तथा बेहतर आवास, परिवार नियोजन तथा अपराध निस्तारण के क्षेत्र में विश्व सहयोग को बहाल करना।

ट्रस्टीशिप परिषद के गठन का उद्देश्य 11 ट्रस्ट क्षेत्रों के प्रशासन की देखभाल करना था। परिषद यह भी सुनिश्चित करती है कि इन क्षेत्रों के प्रशासन के लिए जिम्मेवार सरकारें प्रशासन और स्वतंत्रता की दिशा में उपयुक्त कदम उठाये। यह संतोष की बात है कि वर्ष 1994 तक ये सभी क्षेत्र स्वतंत्र हो चुके हैं और अब इस निकाय के पास कोई काम नहीं रह गया है। सच तो यह है कि महासचिव इसे समाप्त करने की अनुशंसा भी कर चुके हैं।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में 15 न्यायाधीश होते हैं। इनका चयन आमसभा और सुरक्षा परिषद द्वारा एक ही साथ किया जाता है। यह संयुक्त राष्ट्र का मुख्य न्यायिक निकाय है। यह कानूनी मुद्दों का निपटारा और अंतर्राष्ट्रीय संधियों की व्याख्या करता है।

सचिवालय संयुक्त राष्ट्र की मुख्य निकाय है। महासचिव और उनके अधिनस्थ कर्मचारी संयुक्त राष्ट्र प्रशासन की देखभाल करते हैं। सचिवालय संयुक्त राष्ट्र के दैनिक कार्यों को भी अंजाम देता है। अधीनस्थ कर्मचारियों में 160 देशों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय नौकरशाह के रूप में ये कर्मचारी संयुक्त राष्ट्र की पूरी व्यवस्था के लिए कार्य करते हैं। उन्हें शपथ लेनी पड़ती है कि वे किसी सरकार अथवा बाह्य प्राधिकरण से कोई निर्देश प्राप्त नहीं करेंगे। सचिवालय के अंतर्गत 25000 कर्मचारी काम करते हैं जबकि विशेषज्ञ एजेंसियों के कर्मचारियों की संख्या 30000 होती है। अब तक महासचिव पद पर सात व्यक्ति विराजमान हो चुके हैं: त्रिग्वे ली (नार्वे) , डाग हमार्सजोल्ड (स्वीडेन), उथांत (म्यानमार), कुर्त वाल्डाइम (आस्ट्रिया), जेवियर पेरेज दि क्यूआर (पेरू), बुतरस घाली (मिश्र), तथा कफी अन्न (घाना)।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र की स्थापना क्यों की गई ?

....

....

....

....

....

....

2) आम सभा और सुरक्षा परिषद के फैसलों में मुख्य अंतर क्या होता है ?

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) वीटो पावर से आप क्या समझते हैं ? संयुक्त राष्ट्र में यह पावर किसे हासिल है ?

....

....

....

....

....

....

16.3 संयुक्त राष्ट्र की बदलती भूमिका

संयुक्त राष्ट्र की भूमिका का अध्ययन दो शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है—शीतयुद्ध काल और शीतयुद्धोत्तर काल।

16.3.1 शीतयुद्ध काल

खंड 7 के अध्ययन से हमें पता चलता है कि शीतयुद्ध की दुर्घटनाओं में से सबसे बड़ी दुर्घटना संयुक्त राष्ट्र को ही झेलनी पड़ी है। शीतयुद्ध का जोर इतना भयानक था कि संयुक्त राष्ट्र दुनिया में शांति और सुरक्षा बहाल करने का अपना बुनियादी कार्य भी नहीं कर सका। सुरक्षा परिषद भी स्थायी सदस्यों द्वारा वीटो के इस्तेमाल/गलत इस्तेमाल किये जाने की वजह से निष्क्रिय बनी रही। इन महाशक्तियों की टकराहट के कारण दुनिया में बड़े संघर्षों की कुल 100 वारदातें हुई हैं जिनमें 2 करोड़ लोगों की मौतें हुई हैं। सुरक्षा परिषद इनमें से केवल दो अवसरों पर अपनी कार्रवाई से शांति बहाल करने में कामयाब हुई है—1950 में कोरियाई संकट के अवसर पर तथा 1990-91 में ईराक कुवैत संकट के अवसर पर। अन्य किसी भी मामले में यह कोई भी कार्रवाई नहीं कर सकी क्योंकि किसी न किसी स्थायी सदस्य के द्वारा वीटो लगा दिया गया। संयुक्त राष्ट्र में अब तक 280 बार वीटो का प्रयोग किया गया है। इनमें से

आधे का प्रयोग तो शीतयुद्ध के प्रथम 10 वर्षों में ही कर दिया गया था। परिषद के सभी स्थायी सदस्यों ने वीटो का प्रयोग कभी न कभी अवश्य किया है, किन्तु रूस और अमरीका इन दो महाशक्तियों ने इसका अंधाधुंध प्रयोग किया जिसमें केवल सोवियत संघ ने 117 बार वीटो का प्रयोग किया। वीटो के बार बार प्रयोग कुप्रयोग की वजह से सुरक्षा परिषद कई गंभीर मसलों पर कोई प्रस्ताव पास नहीं कर सकी। नतीजतन, सुरक्षा परिषद की भूमिका का ह्रास हुआ है।

शीतयुद्ध के दौरान संयुक्त राष्ट्र को कई संकटपूर्ण स्थितियों का सामना करना पड़ा जैसे कोरियाई संकट (1950), फिलीस्तीन का मुद्दा, कश्मीर के सवाल पर भारत-पाक विवाद, स्वेज संकट, (1956) हंगरी में सोवियत दखलंदाजी (1956), कांगों संकट (1960-64), अफगानिस्तान का सोवियत अधिग्रहण (1979-88), कम्पुचियाई संकट (1978), तथा ईरान-ईराक युद्ध, (1980-88), इनमें से अधिकांश मामलों में वीटो की वजह से सुरक्षा परिषद तय नहीं कर पायी कि संकट के समाधान के लिए वह कौन सी कार्रवाई करे। इन्हीं परिस्थितियों में आम सभा को 1950 में पारित मशहूर शांति के लिए एकता प्रस्ताव के अंतर्गत कार्रवाई करनी पड़ी। इस प्रस्ताव में आम सभा को प्राधिकृत किया गया था कि वह सूचना देकर 24 घंटे के अन्दर बैठक का आयोजन कर सकती है तथा अशांत क्षेत्र में शांति और सुरक्षा की बहाली के लिए उचित कार्रवाई की अनुंशंसा कर सकती है। आमसभा इस प्रस्ताव का सहारा तभी ले सकती है जब सुरक्षा परिषद वीटो की वजह से पंगु बन गयी हो। ऐसी परिस्थितियों में आम सभा उन अधिकारों का प्रयोग करने लगी है जो घोषणा पत्र द्वारा केवल सुरक्षा परिषद को प्रदान किये गये थे।

शांति के लिए एकता प्रस्ताव के अंतर्गत आमसभा ने कई आपातकालीन सत्र आयोजित किये हैं जैसे स्वेज, हंगरी, कांगो, अफगानिस्तान, नामीबिया आदि संकटों के दौरान। स्वेज संकट के दौरान आमसभा ने शांति बहाल करने के लिए एक सर्वथा नवीन तरीका अपनाया था। इसने स्वेज में शांति सेना को रवाना किया। यह एक ऐसी सेना थी जो शांति बहाल करने के लिए युद्ध नहीं करती थी, अपितु संघर्षी पक्षों के बीच और उनकी राय से युद्ध विराम रेखा पर तैनात होकर, अवरोधक का काम करती थी। ऐसी ही सैन्य टुकड़ियाँ कांगों और अन्य स्थानों में भी भेजी गयी थी।

1970 में दोनों शीत लड़ाकों, रूस और अमरीका के बीच तनाव शैथिल्य का सूत्रपात होते ही सुरक्षा परिषद को अपनी पुरानी महत्ता मिल गयी। नतीजतन शीतयुद्ध सचमुच ही ठंडा पड़ गया और वीटो का भी पहले की तरह बारंबार प्रयोग नहीं किया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.3.2 शीतयुद्धोत्तर काल

उल्लेखनीय है कि 1945 से 1987 के बीच संयुक्त राष्ट्र ने शांति स्थापना की तेरह कार्रवाईयों को अंजाम दिया। ऐसी शांति कार्रवाइयाँ बेहद सफल रही तो इसीलिए कि इन सेनाओं में गुटनिरपेक्ष देशों के सैनिक शामिल थे। महाशक्तियों को अपने सैनिक भेजने से रोक दिया गया था। इस क्षेत्र में महा उपलब्धियों के लिए संयुक्त राष्ट्र की शांति सैन्य टुकड़ियों को 1988 में नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। किन्तु शीत युद्ध के उपरांत प्रथम पांच वर्षों में संयुक्त राष्ट्र को जितनी संकटपूर्ण स्थितियों का सामना करना पड़ा, उतनी संकटपूर्ण स्थितियाँ शीतयुद्ध के दौरान किसी भी पाँच सालों की अवधि में पैदा हुई थीं। ईराक-कुवैत संकट सहित संयुक्त राष्ट्र को कई अन्य अंतर्राज्य संघर्षों अथवा गृहयुद्धों का सामना करना पड़ा। शीतयुद्ध के बाद 20 से ज्यादा शांतिपरक कार्रवाइयाँ की गयी है। इन शांति कार्रवाइयों में पिछले 50 वर्षों में करीब 6,50,000 लोगों ने भाग लिया तथा कर्तव्य निर्वहन के दौरान इनमें से 1,145 लोगों की मौत हुई। इन कार्रवाइयों में संयुक्त राष्ट्र को 11 खरब डालर खर्च करने पड़े। 1995 के जुलाई महीने के अंत तक करीब 70,000 शांति सैनिक संयुक्त राष्ट्र की 16 कार्रवाइयों में शामिल थे। इनका कुल वार्षिक बजट 3.6 खरब डालर था। इस तरह हम देखते हैं कि शीतयुद्धोत्तर परिदृश्य में सदस्य राज्यों को संयुक्त राष्ट्र की प्रासंगिकता का फिर से अहसास हुआ है। वे मानने लगे हैं कि शांति और सुरक्षा के लिए जो विश्व समस्याएँ पैदा हो गई हैं, उनका निदान संयुक्त राष्ट्र ही कर सकता है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) शांति के लिए एकता प्रस्ताव का क्या महत्त्व है ?

....

....

....

....

....

2) शांति सेना पद की व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

....

16.4 कुछ उपलब्धियाँ और कमियाँ

किसी भी अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की तरह, संयुक्त राष्ट्र की अगर अनेक उपलब्धियाँ रही हैं तो अनेक कमियाँ भी रही है। सदस्यों के सहयोग के चलते कई क्षेत्रों में इसे कामयाबी मिली। फिर जिन प्रतिबंधों और शर्तों के साथ इसे काम करना पड़ता है, उनमें यह कई संदर्भों में असफल भी रहा। स्थानाभाव के कारण, यहाँ संयुक्त राष्ट्र की केवल खास उपलब्धियों और कमियों का विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

16.4.1 उपलब्धियाँ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) संयुक्त राष्ट्र की महान उपलब्धियों में से एक उपलब्धि वि-उपनिवेशीकरण के क्षेत्र में रही है। औपनिवेशिक शासन में रहने वाले एशिया और अफ्रिका के लाखों लोगों को इसने स्वतंत्रता और स्वनिर्धारण के अधिकारों के प्रति सजग बनाया। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के समय इसके वर्तमान सदस्यों में 80 सदस्य औपनिवेशक शासन के अंतर्गत थे। संयुक्त राष्ट्र इनमें से कइयों की मुक्ति में सहायक रहा।

2) मानवाधिकारों के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र की उल्लेखनीय भूमिका रही है। इसने मानवाधिकारों से संबंधित एक व्यापक सूची बनाई है। इस सूची में उचित आचार संहिता और मानकों का समावेश है। इन मानकों ने संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलनों, उसकी उद्घोषणाओं और उसके संयोजनों के 88 तरीकों की खोज कर ली है।

3) संयुक्त राष्ट्र के अस्तित्व में आने के बाद प्रथम 50 वर्षों में जितने अंतर्राष्ट्रीय कानून बने उतने पूर्ववर्ती मानव इतिहास के कुल काल-खंड में भी नहीं बने। अंतर्राष्ट्रीय कानून को औपचारिक स्वरूप प्रदान कर राष्ट्रों के बीच कानून के शासन की महत्ता कायम करने की दिशा में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

4) 1980 में संयुक्त राष्ट्र की विशेषज्ञ एजेंसी विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पूरी दुनिया से चेचक को समाप्त कर देने का दावा किया। यह उसके 13 वर्षीय विश्व कार्यक्रम का नतीजा था।

5) 1991 में विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनिसेफ के मुखियाओं ने सत्यापित किया कि दुनिया के 80 प्रतिशत बच्चों को छह जानलेवा बीमारियों पोलियो, टिटनेस, खसरा, काली खाँसी, डिफ्थिरिया तथा टी.बी. से निजात दिलाने के लिए प्रतिरोधी टीके लगाये जा चुके हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा यूनिसेफ के संयुक्त कार्यक्रमों से प्रतिवर्ष दुनिया के 35 लाख से ज्यादा बच्चों की जान बचा ली जाती है।

6) संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू एन डी पी) द्वारा पूरी दुनिया में सामाजिक और आर्थिक विकास के सराहनीय कार्य किए गए हैं। यू एन डी पी विकासशील देशों की सरकारों के साथ मिलकर विविध क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग और शिक्षा के क्षेत्र में, विविध परियोजनाओं को अंजाम देने का कार्य करता है। यह दुनिया का सबसे बड़ा बहुआयामी अनुदान संगठन है। 1.3 खरब डालर के वार्षिक बजट के साथ यह तकरीबन 150 विकासशील देशों और क्षेत्रों में 6100 परियोजनाओं की सहायता करता है। इसके अलावा यू एन डी पी से वित्तीय सहायता प्राप्त गतिविधियों में निजी और सार्वजनिक स्रोतों से करीब 14 खरब डालर निवेश किए जाते हैं। यू एन डी पी कोष का 50 प्रतिशत से अधिक भाग दुनिया के 45 निर्धनतम देशों की परियोजनाओं पर ही खर्च हो जाता है।

7) फिलहाल संयुक्त राष्ट्र दुनिया के करीब 2.4 करोड़ शरणार्थियों को संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी महामुक्त के जरिये मानवीय सहायता (रोटी, आवास, चिकित्सा व शिक्षा) मुहैया करा रहा है। 1995 के आकलन के अनुसार इन मदों पर 1 खरब डालर से ज्यादा का खर्चा आया था। अपनी भूमिका के लिए यू एन एच सी आर को दो- दो बार सन 1954 व 1981 में, नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

16.4.2 कमियाँ/असफलताएँ

संयुक्त राष्ट्र की असफलताओं के मुख्य दो कारण रहे है :

1) जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, संयुक्त राष्ट्र की कार्यप्रणाली की सबसे बड़ी समस्या सदस्यों द्वारा वीटो का इस्तेमाल करना रहा है।

2) आज संयुक्त राष्ट्र की दूसरी सबसे बड़ी समस्या उसका वित्तीय संकट है। पहले भी छठे दशक में इसे इस समस्या से जुझना पड़ा था क्योंकि फ्रांस और सोवियत संघ ने शांति बहाली की इसकी कार्रवाइयों के लिए अंशदान करना अस्वीकार कर दिया था। अन्य राज्यों के साथ इन दोनों राज्यों ने संयुक्त राष्ट्र की आपातकालीन सेना (स्वेज में तैनात) तथा कांगो कार्रवाई के लिए अंशदान करना अस्वीकार कर दिया था। उनकी दलील थी कि आम सभा द्वारा [illegible] का गठन केवल सुरक्षा परिषद के फैसले के आधार पर ही किया जा सकता है। छठे दशक [illegible] समस्या का समाधान अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के सहयोग से हल किया गया था। न्यायालय से आग्रह किया गया कि वह अपने परामर्शकारी विचार के हवाले से यह बताये कि क्या शांति बहाली के निमित होने वाले खर्च को संयुक्त राष्ट्र का खर्च माना जा सकता है। न्यायालय ने बहुमत के आधार पर लिए गये अपने फैसले में कहा कि घोषणा पत्र के प्रावधानों के अंतर्गत शांति बहाली का खर्च वस्तुतः संगठन का खर्च होता है।

8वें दशक से जो वित्तीय संकट शुरू हुआ है, वह पिछले संकटों से भिन्न है। इसके लिए संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति का फैसला जिम्मेदार है जिसके तहत उसने अपना स्वीकृत अंशदान यह कहकर रोक लिया था कि संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार संयुक्त राष्ट्र के कुछ खास कार्यक्रमों को स्वीकार नहीं करती। राष्ट्रपतियों जिनमें बिल क्लिंटन भी शामिल है, उनहोंने भी ऐसा किया। परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र दिवालियापन की कगार पर आ खड़ा हुआ है। आम सभा द्वारा तय किए गए फार्मूले के अनुसार, अमरीका को संयुक्त राष्ट्र के कुल बजट में 25 प्रतिशत का अंशदान करना होता है। कुछ अन्य राज्यों ने भी अपने बकाया राशि का भुगतान समय पर नहीं किया है। चाहे नियमित बजट का मामला हो अथवा शांति बहाली की कार्रवाइयों का। आमसभा में महासचिव द्वारा वर्ष 95 के लिए प्रस्तुत वार्षिक रपट के अनुसार, 10 अगस्त 1995 तक नियमित बजट में न चुकाए गए अंशदान की राशि 85.82 करोड़ डालर थी (इनमें से 45.61 करोड़ डालर वर्ष 1995 के लिए तथा 40.21 करोड़ डालर वर्ष पिछले वर्ष के लिए है।) तथा शांति प्रयास की कार्रवाइयों के मद में यह राशि 3 खरब डालर थी। इनमें 70 प्रतिशत बकाया 5 बड़े अंशदाताओं (संयुक्त राज्य अमरीका इनमें सबसे बड़ा है) के नाम है। मालूम हो कि ये सभी दुनिया के धनी देशों में से एक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वर्तमान वित्तीय संकट के हल के लिए ही नहीं, अपितु संयुक्त राष्ट्र के लिए स्वायत्त धन स्रोत सुनिश्चित करने के लिए भी कई दिलचस्प सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं ताकि संयुक्त राष्ट्र की सदस्य राज्यों पर निर्भरता कम हो सके। इनमें प्रमुख सुझाव निम्नांकित हैं—

i) खास हथियारों की बिक्री पर अंतर्राष्ट्रीय कर।

ii) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर कर।

iii) अंतर्राष्ट्रीय जलमार्गों के इस्तेमाल पर शुल्क लेने की व्यवस्था।

iv) अंतर्राष्ट्रीय डाक और दूर संचार पर कर।

v) अंतर्राष्ट्रीय यात्रा पर कर अथवा अंतर्राष्ट्रीय पासपोर्ट शुल्क।

vi) अंतरिक्ष के इस्तेमाल पर लाइसेंसिंग शुल्क।

vii) गहरे समुद्र में मछली मारने का अधिकार अथवा खनिज संपदा के खनन का अधिकार प्राप्त करने के लिए शुल्क लेने की व्यवस्था क्योंकि यह मानवता की सामूहिक विरासत है।

हालांकि किसी भी सदस्य राज्य ने इन सुझावों को स्वीकार नहीं किया है।

16.5 संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था का पुनर्गठन—मुख्य सुझाव और भारत का दृष्टिकोण

31 जनवरी, 1992 को सुरक्षा परिषद में शामिल देशों के अध्यक्षों की बैठक हुई थी, तभी से संयुक्त राष्ट्र के पुनर्गठन को लेकर विश्व स्तरीय बहस भी जारी है। इस संदर्भ में अनेक सुझाव दिए गए हैं। इन

सुधारवादी प्रस्तावों का मुख्य मकसद विश्व संस्था खासकर सुरक्षा परिषद को और अधिक लोकतांत्रिक, सक्षम तथा बदलते अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य के अनुकूल बनाना है। चूंकि संयुक्त राष्ट्र की जिम्मेवारियाँ एवं उसके सरोकार विश्वव्यापी है तथा उसका विस्तार आज मानवीय गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र में हो चुका है, इसलिए संयुक्त राष्ट्र का पुनर्गठन अनिवार्य हो गया है। तभी वह 21वीं सदी की चुनौतियाँ का सामना कर सकेगा।

अनेक अध्ययनों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के पुनर्गठन के लिए अनेक सुझाव दिए गए हैं। ये निम्नांकित हैं—

1) सुरक्षा परिषद की सदस्यता 15 से बढ़ाकर 23 या 25 कर दी जानी चाहिए। इनमें से 5 परिषद के अतिरिक्त स्थायी सदस्य होंगे-2 औद्योगिक देश (जर्मनी एवं जापान) तथा तीन बड़े विकासशील देश (ब्राजील, भारत और नाइजीरिया)। कहा जाता है कि पूर्व महासचिव बुतरस घाली ने इन देशों के नाम 14 अगस्त 1992 को सुझाए थे। वस्तुतः 25 सितम्बर, 1992 को बुलाई गई आमसभा के सत्र में भारत ने सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता के लिए अपना औपचारिक दावा पेश किया। चूँकि भारत उन तमाम शर्तों को पूरा करता था जो स्थायी सदस्यता प्राप्त करने के लिए जरूरी माने गये थे। अतः यह आशा की जा रही थी कि सुरक्षा परिषद में भारत को स्थायी स्थान प्राप्त हो जाएगा। शर्त थी कि पद की आकांक्षा रखने वाले राज्य के पास शांति बहाली की कार्रवाइयों में अंशदान करने की क्षमता एवं चाहत दोनों हो। जब से संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई है, तभी से भारत ऐसी कार्रवाईयों में अग्रणी रहा है चाहे वह कोरियाई संकट की हो या फिर हिन्द-चीन, स्वेज, कांगो एवं गाजा आदि के संकट हों।

   एक और भी प्रस्ताव है। इसके अनुसार जो देश उपर्युक्त शर्त को पूरा करते हैं, उन्हें सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता तो दी जाएगी किन्तु उन्हें वीटो का अधिकार नहीं होगा। अन्य सुझावों में एक सुझाव यह था कि जिन पाँच देशों के पास आज वीटो का अधिकार है, वे स्वेच्छा से अपने अधिकार का परित्याग तब तक के लिए कर दें जब तक कि घोषणा पत्र में संशोधन कर वीटो के अधिकार को औपचारिक रूप से समाप्त नहीं कर दिया जाता है। भारत इस प्रस्ताव का समर्थन करता है किन्तु वह किसी भी ऐसी चाल का विरोध करता है जो नये सदस्यों को वीटो के अधिकार से वंचित करती है। इनमें से कुछ प्रस्तावों पर आम सभा के 49वें सत्र में खुले रूप में कार्य समूह के बीच चर्चा की गयी थी। कार्यसमूह सुरक्षा परिषद के विस्तार की जरूरत से सहमत था, किन्तु इसने इस सवाल पर विचार नहीं किया कि किन देशों को स्थायी सदस्यता दी जानी चाहिए। अमरीका ने जर्मनी एवं जापान की सदस्यता का तो खुले रूप से समर्थन किया है, किन्तु भारत की उम्मीदवारी पर अभी भी संकोच कर रहा है। फिर मिश्र, इरान तथा दक्षिण अफ्रीका जैसे विकासशील देश भी तो होड़ में शामिल हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) एक सुझाव यह भी है कि संयुक्त राष्ट्र निरस्त्रीकरण आयोग को भंग कर उसके स्थान पर संयुक्त कार्य समूह का गठन किया जाये। यह आम सभा एवं सुरक्षा परिषद के अलावा होगा।

3) चूँकि आर्थिक और सामाजिक परिषद अपने निर्धारित कार्यों को अंजाम देने में नाकामयाब रही है, अतः सुझाव है कि इसकी वजह आर्थिक सुरक्षा परिषद के नाम से एक नये निकाय का गठन किया जाये। प्रस्तावित आर्थिक सुरक्षा के परिषद के कामों में, अन्य कामों के अलावा, आर्थिक आपात स्थितियों से निपटना तो शामिल है ही, कुछ असैनिक खतरों जैसे पर्यावरणीय अपक्षरण, आहार सुरक्षा, नशीली वस्तुओं का पारगमन, आव्रजन आदि पर भी विचार करना इसी का काम होगा। प्रस्ताव के अनुसार इस परिषद में सदस्यता सीमित होनी चाहिए और किसी भी स्थिति में सदस्यों की संख्या 25 से ज्यादा नहीं होनी चाहिए और निर्णय सर्वानुमति से लिए जाएँगे।

   कइयों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया है। उनका कहना है कि आर्थिक एवं सामाजिक परिषद और प्रस्ताविक आर्थिक सुरक्षा परिषद में वस्तुतः कोई अंतर नहीं है, सिवाय नाम को छोड़कर। फिर वर्तमान संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र के अंतर्गत आर्थिक और सामाजिक परिषद को व्यापक अधिदेश (मंडेट) भी प्राप्त है जिससे वह आर्थिक, सामाजिक एवं मानवीय सरोकार के मसलों का सामना कर सकती है। सच तो यह है कि हाल के दिनों में आर्थिक और सामाजिक परिषद उच्च सरकारी स्तर पर पर्यावरण, मानवाधिकार, सामाजिक विकास, अनुरक्षित आर्थिक विकास, आदि से जुड़े मसलों को सुलझानें की कोशिश करती रही है और यही कारण है कि वे आर्थिक और सामाजिक परिषद के पुनर्गठन का कोई औचित्य नहीं देख पाते।

4) आर्थिक और सामाजिक परिषद के बदले आर्थिक परिषद तथा सामाजिक परिषद का गठन हो। इन नयी परिषदों में 23 सदस्य होंगे।

5) संयुक्त राष्ट्र व्यापार और विकास कांफ्रेस, संयुक्त राज्य औद्योगिक विकास संगठन (यूनिडो) तथा ट्रस्टीशिप परिषद को भंग किया जाये। यूनिडो को भंग करने के सवाल पर जहाँ सामान्य सहमति है, वहीं शेष दो के बारे में यह कहा गया है कि वे बहुत ही उत्कृष्ट काम कर रहे हैं और उन्हें भंग करने

करने की कोई जरूरत नहीं है।

6) अंतर्राष्ट्रीय पुनर्गठन और विकास बैंक (आई बी आर डी) तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को संयुक्त राष्ट्र के अधीन लाया जाना चाहिए। अभी तो केवल नाम के लिए ये विशेषज्ञ एजेंसियाँ हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ उनकी सहमति काफी सीमित है और स्वतंत्र संगठन के रूप में कार्य भी करते हैं। नतीजतन, उन पर संयुक्त राष्ट्र का कोई जोर नहीं चलता, न ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर (यानी आर्थिक और सामाजिक परिषद) और न ही सचिवालयीय स्तर पर। वे संयुक्त राष्ट्र को तमाम जानकारियाँ नहीं मुहैया कराती, भले ही संयुक्त राष्ट्र को उनकी जरूरत हो। अपनी बैठकों में भी उनकी संयुक्त राष्ट्र तक पहुँच नहीं होती, उनके प्रमुख आर्थिक और सामाजिक परिषद को प्रतिवर्ष संबोधित करते हैं, किन्तु वे अपनी वार्षिक सभाओं में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को आमंत्रित नहीं करते। अपने बजट के निर्माण में भी वे संयुक्त राष्ट्र के किसी फैसले को बाध्यकारी मानते हैं। यह स्थिति धनी और

औद्योगिक राज्यों की नीतियों से पैदा हुई है। इन संस्थाओं पर इन्हीं राज्यों का आधिपत्य कायम है। इनमें से कुछ प्रस्तावों पर दुनिया की 185 राजधानियों और संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में गंभीर बहस चल रही है। जब तक इन रचनात्मक प्रस्तावों के अनुरूप संयुक्त राष्ट्र का पुनर्गठन नहीं हो जाता तब तक इसकी कार्यप्रणाली में कोई सुधार नहीं होगा।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) किन संगठनों को नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित गया था ?

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) किस देश पर संयुक्त राष्ट्र की देय राशि सबसे ज्यादा है ?

....

....

....

....

....

16.6 सारांश

इस इकाई में संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धांतों, उनके मुख्य अंगों व विशेषज्ञ एजेंसियों की संरचना और कार्यों, शीतयुद्ध के पहले और उनके उपरांत इसकी बदलती भूमिका, इसकी कतिपय मुख्य उपलब्धियों तथा असफलताओं, उसकी समस्याओं और संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के पुनर्गठन के लिए सुझाए गए प्रस्तावों का सर्वेक्षण किया गया है। इसमें संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था में सुधार की महती आवश्यकता को भी रेखांकित किया गया है।

16.7 शब्दावली

संघर्ष : एक ऐसी स्थिति जहाँ एक या अधिक देशों द्वारा परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से सैन्य बल का प्रयोग किया जाता है।

वीटो : घोषणा पत्र द्वारा सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों को प्रदत्त वे विशेषाधिकार जिनके तहत वे किसी ठोस प्रस्ताव पर नकारात्मक वोटिंग कर सकते हैं अथवा उसे पारित होने से

रोक सकते हैं।

तनाव शैथिल्य : इसका अर्थ है दो देशों के तनाव पूर्ण रिश्तों में शिथिलता।

प्रस्ताव : किसी दिए गए सवाल पर सोच विचार कर व्यक्त किए गए औपचारिक कथन का स्वीकृत व प्रमाणिक दस्तावेज।

16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

चिल्डर्नस, अर्सकीन व अर्कहार्ट, ब्रायन, 1994, *रिनिविंग दि यूनाइटेड नेशन्स सिस्टम* (उपासला : डैगू हैमर्सजोल्ड फाउंडेशन)

फासेट, एरिक व न्यूकम, हाना, (संपादित), *यूनाइटेड नेशन्स रिफार्मः लूकिंग अहेड फिफ्टी इयर्स*, 1995 टोरंटो साइंस फार पीस।

राजन, एम एस (संपा) 1996, *यूनाइटेड नेशन्स एट फिफ्टी एण्ड बियोन्ड*, नई दिल्ली, लैन्सर्स बुक।

रोबर्ट्स, एडम एण्ड कंग्सबरी, बेनेडिक्ट, (संपा.) 1993 *यूनाइटेड नेशन्स, डिवाइडेड वर्ल्ड : दि यूएन्स रोल इन इंटरनेशनल रिलेशन्स*, द्वितीय प्रकाशन ऑक्सफोर्डः ऑक्सपोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

यूनाइटेड नेशन्स, बेसिक फैक्ट्स, *अपडेट दि यूनाइटेड नेशन्स*, न्यूयार्क, डिपार्टमेंट ऑफ पब्लिक इन्फॉर्मेशन 1975

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) संयुक्त राष्ट्र का जन्म अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बहाल करने, राष्ट्रों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध विकसित करने, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय समस्याओं का हल ढूंढने तथा मानवाधिकारों का संवर्द्धन करने के लिए हुआ था।

DIKSHANT IAS

2) आम सभा केवल अनुशंसा कर सकती है जबकि सुरक्षा परिषद फैसले करती है और उस पर अमल भी करती है। अनुशंसाएँ सदस्य राज्यों के लिए बाध्यकारी नहीं होती, किन्तु फैसले बाध्यकारी होते हैं।किसी प्रस्ताव पर सहमति इंकार कर देने की ताकत अर्थात् खिलाफ में मतदान करने की ताकत "वीटो पावर" कहलाता है। ये अधिकार संयुक्त राष्ट्र के पांच स्थायी सदस्यों को उपलब्ध है। ये सदस्य हैं — चीन, फ्रांस, रूसी संघ, यूनाइटेड किंग्डम तथा संयुक्त राज्य अमरीका।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) शांति के लिए एकता प्रस्ताव आम सभा को संकटपूर्ण हालात पर चर्चा करने व तदनुरूप कार्रवाई करने का अधिकार प्रदान करता है खासकर वैसी स्थिति में जब सुरक्षा परिषद वीटो की समस्या की वजह से कोई फैसला नहीं कर पाती।
2) शांति अनुरक्षण बल का मतलब है सैनिक टुकड़ी—एक ऐसी टुकड़ी जिसे अशांत क्षेत्र में, झगड़े में शामिल दोनों पक्षों की अनुमति से, भेजा जाता है। यह टुकड़ी वास्तविक लड़ाई में हिस्सा नहीं लेती है, बल्कि युद्ध विराम रेखा पर तैनात होती है और दोनों के बीच अवरोधक का काम करती हैं। आत्म रक्षा को छोड़कर यह टुकड़ी कभी भी गोलीबारी में शामिल नहीं होती है।

बोध प्रश्न 3

1) शांति संरक्षक बल को 1988 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।
   यू एन एच सी आर को यह पुरस्कार दो बार सन 1954 व 1981 में मिला ।
2) संयुक्त राज्य अमरीका सबसे बड़ा कर्ज़दार है। इस पर संयुक्त राष्ट्र का 52.7 करोड़ डालर का एक कर्ज़ (नियमित बजट का) और 55.3 करोड़ डालर का दूसरा कर्ज़ शांति संरक्षण देय है।

इकाई 17 अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण, आई॰बी॰आर॰डी॰ अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व व्यापार संगठन

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 भूमंडलीकरण—अर्थ एवं संरचना

17.2.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

17.2.2 ब्रिटेन वुड्स तथा व्यवस्था

17.2.3 अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष—उद्देश्य व कार्य

17.2.4 संरचना

17.2.5 आई बी आर डी उद्देश्य

17.2.6 कार्य

17.2.7 गैट

17.2.8 उरुग्वे चक्र एवं विश्व व्यापार संगठन

17.2.9 विश्व व्यापार संगठन

17.3 उत्तर ब्रिटेन वुड्स विकास

17.3.1 भूमंडलीकरण और तीसरी दुनिया

17.3.2 भूमंडलीकरण का प्रभाव

17.4 सारांश

17.5 शब्दावली

17.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.0 उद्देश्य

इस खंड के अंतर्गत विश्व अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण के धर्म की व्याख्या की गयी है तथा उन संस्थाओं का वर्णन किया गया है जो भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में अस्तित्व में आये हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- भूमंडलीकरण की ऐतिहासिक प्रक्रिया की छानबीन करने में समर्थ हो सकेंगे;
- वैश्विक अर्थव्यवस्था का संचालन करने वाली संस्थाओं के कार्य और उनकी संरचना का वर्णन कर सकेंगे; और
- भूमंडलीकरण के प्रभाव की आलोचनात्मक आंकलन करने में सफल हो सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

हम सभी आज भूमंडलीकरण शब्द से वाकिफ हैं। भूमंडलीकरण निहितार्थ यही है कि दुनिया तेज़ी से अंतर्राष्ट्रीय अंतनिर्भरता की प्रक्रिया में शामिल होती जा रही है। नतीजन आज वैसी अर्थव्यवस्थाएँ अप्रासंगिक हो गयी हैं जिनकी कोई खास राष्ट्रीय पहचान हो तथा जो क्षेत्र विशेष के सर्वोपरि विधानी अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत संचालित हों। इसका यह मतलब नहीं है कि आम समानता पर आधारित विश्व समुदाय का उदय हो गया है। ऐतिहासिक रूप से, अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था राष्ट्र-राज्य के आधार पर विकसित हुई है। यातायात और संचार के क्षेत्र में होने वाली क्रांति तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वाले काल में परिष्कृत औद्योगिक उत्पादन की प्रौद्योगिकी की वजह से आज पूँजीवादी विश्व बाजार स्थापित हो चुका है। युद्धोत्तर काल में स्थापित ब्रिटेन वुड व्यवस्था जिसके तहत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यवसाय के नियम तय किए थे, सांतवें दशक के आते आते गहराकर गिर गये। नवें दशक में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई है। विश्व व्यापार संगठन के रूप में नई संस्थाएँ एवं नये नियमों का जन्म हुआ। आज इन्हीं संस्थाओं एवं नियमों के जरिये विश्व व्यापार का संचालन होता है।

17.2 भूमंडलीकरण—अर्थ एवं संरचना

हमें यहां अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था के अवधारणात्मक अंतर की स्पष्ट पहचान

कर लेनी चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पद से सामूहिकता की ध्वनि निकलती है। दूसरे शब्दों में यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था होती है जिसमें विविध राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रक्रिया एवं उनके प्रतिफल की अभिव्यक्ति अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होती है। अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय रूप स निर्धारित प्रकार्यों का कुल योग होता है। राष्ट्रीय रूप से निर्धारित आर्थिक क्रियाओं के लिए तरह तरह की अनेक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक अंतक्रियाएँ या तो अवसर प्रदान करती है या फिर बाधा उपस्थित करती है। इस संदर्भ में वित्तीय बाज़ार और उत्पादित वस्तुओं के व्यापार के उदाहरण दिये जा सकते हैं। भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था में चूंकि बाज़ार व उत्पादन दोनों ही वैश्विक और आत्मनिर्भर हो जाते हैं, अतः घरेलू नीतियों का निर्माण करते समय, चाहे वे निजी प्रतिष्ठानों से संबंधित हों या संप्रभु राज्यों से, बहुलांश में राष्ट्रीययेत्तर निर्धारकों का ध्यान रखना पड़ता है। विश्वस्तर पर उत्पादन एवं बाज़ार का जिस तेजी से अंतर्गुथन हो रहा है, उसे देखते हुए राज्य को ऐसी नीतियों का निर्माण करना होगा जिनके आधार पर उक्त चुनौती का सामना किया जा सके। जैसे-जैसे उत्पादन का साधन, खासकर वित्त, अंतर्राष्ट्रीय होता जाएगा तथा बाजार विश्व स्तर पर फैलता जाएगा, वैसे वैसे संप्रभु राज्यों की भूमिका विश्व बाज़ार के इशारों के अधीन होती जाएगी। भूमंडलीकरण का दूसरा महत्त्वपूर्ण परिणाम यह निकला है कि बहुदेशीय निगम (एस एन सीज) आज अंतर्राष्ट्रीय निगमों में तब्दील हो गये हैं। अंतर्राष्ट्रीय वित्त की कोई राष्ट्रीय पहचान नहीं होती। फिर चूँकि आज प्रबंधन का भी अंतर्राष्ट्रीयकरण हो गया है, अतः निश्चित लाभ अथवा उच्च लाभ के लिए इस वित्त की कहीं भी निवेश या पुनर्निदेश किया जा सकता है। संचार क्षेत्र में आई क्रांति की वजह से आज वित्त, खासकर वित्तीय क्षेत्र का निवेश बटन दबाते ही कहीं से कहीं संभव हो गया है। पूरी तरह से भूंडलीकृत अर्थव्यवस्था में वित्त का निवेश केवल बाजार की शक्तियों से निर्धारित होता है, राष्ट्रीय मौद्रिक नीतियों का हवाला देना कतई जरूरी नहीं होता। रणनीति एवं जरूरत के मुताबिक, अंतर्राष्ट्रीय निगम विश्व स्तर पर अपना उत्पादन तथा मार्केटिंग कर सकता है। अंतर्राष्ट्रीय निगम का उत्पादन आधार किसी खास राष्ट्रीय सीमा में केन्द्रित नहीं रहता। जैसा कि बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ होता है, अपितु यह विश्व बाज़ार की जरूरतें पूरी करता है क्योंकि इसके क्रियाकलाप दुनिया भर में फैला होता है। और यही कारण है कि अंतर्राष्ट्रीय निगम की नीतियाँ, बहुराष्ट्रीय निगम की नीतियों के विपरीत, किसी खास राष्ट्रीय राज्य की नीतियों से नियंत्रित अथवा प्रभावित नहीं होती। यह प्रक्रिया राज्य संप्रभुता की पुरानी धारणा का जड़मूल से नाश करने की कोशिश करती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.2.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का दौर ब्रिटेन वुड व्यवस्था से संचालित था। तीसरे दशक की अत्यधिक मंदी तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था की असफलता के लिए आर्थिक राष्ट्रवाद, प्रतियोगी विनिमय दर, अवमूल्यन, स्पर्द्धी मौद्रिक खेमों के गठन तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के अभाव को जिम्मेदार माना गया था । जुलाई 1944 में, जब मित्र शक्तियाँ फ्रांस से बाहर जा रही थी, चालीस देशों के प्रतिनिधि नई अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली के निर्माण के लिए व्यू हैम्पशायर के ब्रिटेन वुड नामक स्थान पर एकत्र हुए थे। सर्वानुमति की राय थी कि पुरानी मौद्रिक व्यवस्था जो मुख्यतया बाज़ार की ताकतों पर निर्भर थी, अब अपर्याप्त साबित हो चुकी है। आगे सभी सरकारों को मिलजुलकर अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था के प्रबंधन की जिम्मेदारी लेनी होगी। संयुक्त राज्य अमरीका से जो उस दौर में प्रमुख आर्थिक एवं सैनिक शक्ति में आगे था, ने युद्धोत्तर काल में नयी मौद्रिक व्यवस्था स्थापित करने की प्राथमिक जिम्मेदारी ली थी। इसके गठन का उद्देश्य आर्थिक राष्ट्रवाद की रोकथाम तथा बढ़ते हुए अंतर्राष्ट्रीय मेलजोल के संदर्भ में मुक्त व्यापार को प्रोत्साहित करना था। माना गया कि एक उदार आर्थिक प्रणाली, जो अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर आधारित होगी, ही टिकाऊ शांति की गारंटी दे सकती है। संयुक्त राज्य अमेरीका और युनाइटेड किंग्डम द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रबंधन की नयी प्रणाली की योजना दुनिया की पहली सामुहिक अंतराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली बन गयी। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संवर्द्धन, आर्थिक विकास और दुनिया के विकसित बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं के बीच राजनीतिक संगति का मार्ग प्रशस्त हुआ। 27 सालों बाद 15 अगस्त 1971 को अमरीकी राष्ट्रपति निक्सन ने टेलीविजन के जरिये ब्रिटेन वुडस व्यवस्था के अंत की घोषणा कर दी। साथ ही उन्होंने यह घोषणा भी कि संयुक्त राज्य अमरीका अब अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था के नियमों एवं प्रक्रियाओं का अनुपालन नहीं करेगा। क्रमिक तेल संकट, बाज़ार व्यवस्था का बढ़ता असंतुलन, औद्योगिक देशों की विकास दर में ह्रास— ये ही वे कारण रहे, जिनसे 9वे दशक में भूमंडलीकरण की शुरुआत हुई। इसके पहले कि हम भूमंडलीकरण की व्याख्या प्रस्तुत करें, बेहतर यह होगा कि हम ब्रिटेन वुड्स व्यवस्था और उसके तहत स्थापित संस्थाओं खासकर अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अंतर्राष्ट्रीय पुनर्गठन तथा विकास बैंक (आई बी आर डी) के बारे में जानकारी प्राप्त कर लें।

17.2.2 ब्रिटेन वुड्स तथा व्यवस्था

इस वयवस्था के तहत यह स्वीकार किया गया था कि व्यापारिक और आर्थिक स्थायित्व के लिए नियत विनियत दर ही सबसे कारगर उपाय है। इस प्रकार सभी देशों ने सहमति जतायी कि वे अपनी मुद्राओं का स्वर्ण के साथ साम्य स्थापित करेंगे तथा विनियम दर को इस साम्य के एक प्रतिशत, कम या ज्यादा

के अंतर रखेंगे। नियमों से मुक्त व्यवस्था को और बढ़ावा मिला क्योंकि सभी सदस्यों ने प्रतिबद्धता तथा मुक्त व्यापार को प्रश्रय देने में अपनी रुचि दिखाई देती है। इन नियमों को लागू करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को प्राधिकृत किया गया तथा सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय प्रबंधन के मुख्य साधन के करने की भूमिका भी उसी की थी।

युद्धोत्तर पुनर्निर्माण को आसान बनाने के लिए 10 खरब डालर की पूँजी के आधार पर आई बी आर डी अथवा विश्व बैंक का गठन हुआ। इस संगठन से अपेक्षा की गयी थी कि वह अपने कोष से ऋण का आबंटन करेगा तथा अपने कोष में वृद्धि के लिए प्रतिभूति जारी करेगा। तथापित यूरोप का विनाश इतना अधिक था कि उसके विशाल घाटे को पाटने में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की ऋणदेयता नाकाफी साबित हुई। 1947 तक यह बात साफ हो गई थी कि 5.70 करोड़ डालर मूल्य के अमरीकी अंशदान के अलावा आई बी आर डी के पास ऋण देने के लिए कोई दूसरा धन नहीं है। 1947 में संयुक्त राज्य अमरीका ब्रिटेन वुड्स व्यवस्था से उत्पन्न हुई आर्थिक खाई को पाटने के लिए तत्पर हुआ और आगामी दो वर्षों में एक तरफे अमरीकी प्रबंधन के आधार पर एक नयी अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था कायम हो गई। 1947 से लेकर 1958 तक विकसित होने वाली इस व्यवस्था में डालर को मानक मुद्रा माना गया (स्वर्ण के बदले)। विविध सहायक कार्यक्रमों के जरिये अमरीका डॉलर के बहिर्गमन को प्रोत्साहित करता रहा। क्योंकि इसके पास विशाल व्यापार संतुलन अधिराशि थी। अमरीका द्वारा शुरू किये गए प्रमुख साहायय कार्यक्रम थे।

- यूरोपीय पुनर्निर्माण के लिए मार्शल योजना, तथा ग्रीस एवं टर्की की सहायता के लिए टूमैन योजना। शीतयुद्ध की वजह से भी डॉलर की तरलता बढ़ी क्योंकि अमरीका अपने सैन्य मित्रों तथा दुनिया भर में तैनात अमरीकी सैनिक टुकड़ियों का खर्च वहन करता था। शीतयुद्ध पर भारी सैनिक खर्च आता था और इस खर्च का अधिकांश भाग अमरीका द्वारा मुहैया कराया जाता था। इस प्रकार डॉलर विश्व मुद्रा बन गयी और अमरीका दुनिया का केन्द्रीय कर्जदाता था। वह अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था के लिए डॉलर निर्गत करने लगा।

ब्रिटेन वुड्स सम्मेलन की स्थापना कि थी :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अंतर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या का निवारण करेगा यानी सदस्य राज्यों को भुगतान संतुलन के घाटे से तथा अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक असंतुलन की समस्याओं से निपटने में मदद करेगा।

2) अंतर्राष्ट्रीय पुनर्गठन एवं विकास बैंक (आई बी आर डी) विविध राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण एवं विकास में दीर्घकालिक पूँजी सहायता के जरिये मदद करेगा, तथा

3) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन व्यापार के उदारीकरण की दिशा में कार्य करेगा।

आई एम एफ व आई बी आर डी, जो ब्रिटेन वुड्स के जुड़वा शिशु के नाम से भी जाने जाते हैं, की स्थापना 1946 में की गयी थी। किन्तु प्रस्तावित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (आई टी ओ) ठोस रूप नहीं ले सका। इसके बदले गैट (जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ एण्ड ट्रेड) की स्थापना की गयी। 1995 में गठित विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) वस्तुतः लम्बे खींचे गैट समझौतों की परिणति है। मालूम हो, गैट के तत्वाधान में ऐसे समझौते पहले काफी दिनों से चल रहे थे।

17.2.3 आई एम एफ : संरचना व कार्य

अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग के जरिये आई एम एफ व्यापार के विस्तार को बढ़ावा देता है ताकि रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो सके तथा आर्थिक स्थिति बेहतर बन सके। इसके सदस्य देशों की संख्या 153 है। कुल विश्व व्यापार में इनका हिस्सा 80% है। विश्व बैंक की सदस्यता हासिल करने के लिए आई एम एफ का सदस्य होना अनिवार्य है। ये दोनों संगठन आपस में गहरे जुड़े होते हैं। आई एम एफ एवं गैट की बीच भी निकट का संबंध होता है। संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था के तहत आई एम एफ एक विशेषज्ञ एजेंसी है।

कार्य

आई एम एफ के महत्त्वपूर्ण कार्य निम्नांकित हैं:

1) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार एवं उसके संतुलित विकास को सरल बनाना और हम प्रक्रिया में रोजगार और धाय के उच्चस्तर को कायम रखना तथा उनका संवर्द्धन करना।

2) विनियम स्थायित्व का संवर्द्धन करना, सदस्य देशों के बीच नियमित विनियम व्यवस्था कायम करना और स्पर्द्धी विनियम अवमूल्यन को दूर करना।

3) विदेशी विनियम प्रतिबंधों को खत्म करना क्योंकि इससे विश्व व्यापार का विकास बाधित होता है। आई एम एफ अपने सदस्यों को भुगतान संतुलन ठीक करने के लिए कर्ज भी मुहैया कराता है। ऐसा करते समय वह उन हथकंडों का इस्तेमाल नहीं करता जिनसे राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय समृद्धि पर बुरा असर पड़ता हो। इस तरह स्पष्ट है कि आई एम एफ के तीन मुख्य कार्य हैं :

आई एम एफ के पास विशाल वित्तीय संसाधन होता है जो वह अपने सदस्य देशों को भुगताने घाटे से निपटने के लिए मुहैया कराता है। ये ऋण अस्थायी तौर पर और खास शर्तों पर दिए जाते हैं ताकि संबद्ध देश भुगतान घाटा कम करने के उपायों को अंजाम दे सके। मुद्रा कोष के इस्तेमाल के शिवाय सदस्य देश अपनी नीतियों का जिस तरह सामंजस्य करते हैं उससे उनकी समर्थन ऋण देयता बढ़ती है। यानी दूसरे स्रोतों एवं निजी वित्तीय बाज़ार से कर्ज लेना उनके लिए आसान हो जाता है। चूँकि कोष अपना ध्यान किन्हीं खास देशों की निजी समस्याओं पर ही नहीं केन्द्रित करता है, अपितु अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था की संरचना पर भी करता है, अतएव आई एम एफ राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समन्वयन करने का काम भी करता है। कभी-कभी आई एम एफ के इन दुहरे सरोकारों में टक्कर भी हो जाती है और इससे दुनिया के गरीब मुल्कों की अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ता है।

17.2.4 संरचना

आई एम एफ अपने कार्यों का निष्पादन बोर्ड ऑव गवर्नर्स अधिशासी बोर्ड, प्रबंध निदेशक एवं सहायक कर्मचारियों के जरिये करता है। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स में प्रत्येक सदस्य देश का प्रतिनिधि गवर्नर के रूप में शामिल होता है। यह कोष का सर्वाधिक शक्तिशाली सत्ता केन्द्र है और साथ में एक बार इसकी बैठक होती है। सदस्य देश के मतदान की ताकत उसके द्वारा कोश के वित्तीय संसाधन में किए गए अंशदान पर निर्भर करता है और यह अंशदान इस बात पर निर्भर करता है कि विश्व अर्थव्यवस्था की तुलना में उस देश की अर्थव्यवस्था का कितना बड़ा हिस्सा है। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स अपने अधिकांश अधिकार अधिशासी बोर्ड को सुपुर्द कर देता जो शेष के कार्य व्यापार से संचालन के लिए जिम्मेवार होता है। प्रबंध निदेशक अधिशासी बोर्ड की अध्यक्षता करता है।

संसाधन

आई एम एफ संसाधन के मुख्य स्रोत दो हैं—सदस्यों से प्राप्त चंदे और कर्ज़। प्रत्येक देश को अपने निर्धारित कोटे के अनुरूप कोष में अंशदान करना होता है। प्रत्येक सदस्य के लिए कोटा निर्धारित है और यह स्पेशल ड्राविंग राइट्स (एस डी आर) के रूप में व्यक्त होता है। कोटे के आधार पर सदस्यों के वोटिंग पावर, कोष के संसाधनों में उनके अंशदान, इन संसाधनों को निर्धारित करने के उनके अधिकार और एस डी आर के आबंटन में उनके हिस्से तय किए जाते हैं। किसी सदस्य का कोटा कोष की कुल सदस्यता की तुलना में उसके आर्थिक आकार को अभिव्यक्त करता है। आई एम एफ को यह अधिकार है कि वह अपने संसाधनों को पूरा करने के लिए कर्ज़ ले सकता है ताकि अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था की शक्ति पर आये किसी खतरे को टाला जा सके। 11 अतिविकसित औद्योगिक देशों ने संकल्प लिया है कि जरूरत पड़ने पर वे कोश को कर्ज़ देंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अनेक नीतियों व सुविधाओं के तहत, राज्य अपने भुगतान संतुलन की जरूरतों को पूरा करने के लिए आई एम एफ से कर्ज़ ले सकते हैं। जो देश कोष से कर्ज़ लेते हैं उन्हें इस तरह के नीतिगत आर्थिक कार्यक्रम चलाना होता है जिससे उचित कालवधि में उनके भुगतान संतुलन की स्थिति ठीक हो जाये। यह व्यवस्था प्रतिबंध के रूप में जानी जाती है और यह उस सिद्धान्त की अभिव्यक्ति है जो कहता है कि वित्तीय निवेश व उसका संजन साथ-साथ किया जाना चाहिए। आई एम एफ के प्रतिबंध और उसके समंजक कार्यरूप को लेकर विकासशील देशों में तीखी बहस चल रही है। इन प्रतिबंधों और संरचनात्मक समन्वयन कार्यक्रमों/नीतियों को विकासशील देशों के ऊपर थोप दिया गया है जिनकी वजह से उन्हें सब्सिडी खत्म करने, मुद्रा का अवमूल्यन करने तथा अर्थव्यवस्था का निजीकरण करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है। इन नीतियों/कार्यक्रमों की वजह से बेरोजगारी में इजाफा हुआ है तथा समाज के गरीब तबको पर बुरा असर हुआ है। उदारीकरण की आर्थिक नीतियों व सब्सिडी समाप्ति को लेकर जो बहस आज भारत में चल रही है, वह आई एम एफ की विवादास्पद नीतियों का खुलासा करती है।

17.2.5 आई बी आर डी उद्देश्य

आई बी आर डी 1945 में स्थापित हुई थी। इससे दो अन्य संस्थाएँ भी जुड़ी हुई हैं। 1956 गठित अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (आई एफ सी) तथा 1960 में गठित अंतर्राष्ट्रीय विकास एसोसियेशन (आई टी ए)। बैंक की सदस्यता के लिए आई एम एफ का सदस्य होना अनिवार्य है।

उद्देश्य

आर्टिकल ऑफ एग्रीमेंट में बैंक के उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है। ये हैं :

1) उत्पादन के उद्देश्य से आसान वित्तीय निवेश की सुविधा मुहैया कर सदस्य राज्यों का पुनर्निर्माण व विकास करना, युद्ध से बर्बाद और तहस-नहस कर दी गई अर्थव्यवस्थाओं को फिर से पटरी पर लाना, उत्पादन को शांतिकाल की जरूरतों के मुताबिक दिशा देना तथा अल्पविकसित देशों की उत्पादन क्षमता को प्रोत्साहित व विकसित करना।

2) गारंटी के जरिये विदेशी निवेश को बढावा देना अथवा निजी निवेशकों द्वारा मुहैया कराए जाने वाले निवेश व कर्ज के लेन-देन में शामिल होकर विदेशी निवेश को बढ़ावा देना और जब निजी

वित्त उचित शर्तों पर उपलब्ध न हो तो निजी निवेश को अपने कोष से जो वह अपने नए व अन्य संसाधनों से जुटाता है, वित्त देकर पूरा करना। अलबत्ता, ये निवेश केवल उत्पादक गतिविधियों के लिए ही मुहैया कराए जाते हैं।

3) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के दीर्घकालिक संतुलित विकास को बढावा देना तथा भुगतान संतुलन में स्थायित्व कायम करना। इसके लिए वह सदस्य राज्यों के उत्पादक संसाधनों का अंतर्राष्ट्रीय निवेश का बदोबस्त करता है ताकि दुनिया के जरूरतमंद देशों की उत्पादकता, जीवन स्तर और श्रम स्थिति को बेहतर बनाया जा सके।

17.2.6 कार्य

आई बी आर डी जिसकी पूँजी का बड़ा हिस्सा सदस्य देशों के अंशदान पर निर्भर करता है, अपनी ऋणदेयता का संचालन मुख्य रूप विश्व पूँजी बाज़ार से कर्ज़ लेकर करता है। बैंक के कर्ज़ों पर पाँच साल की माफी अवधि दी जाती है। कर्ज़ की अदायगी के लिए 20 सालों या उससे कम का समय होता है। यह कर्ज़ उन विकासशील देशों के लिए उपलब्ध कराया जाता है जो आर्थिक व सामाजिक विकास की दृष्टि से बेहतर स्थिति में होते हैं।

बैंक को प्राप्त अधिकारों का उपभोग "बोर्ड ऑफ गवर्नर्स" द्वारा किया जाता है। इस बोर्ड में प्रत्येक सदस्य राज्य का एक प्रतिनिधि गवर्नर के रूप में शामिल होता है। बैंक के गवर्नर अपने अधिकारों को अधिशासी गवर्नरों को सौंप देते हैं क्योंकि वे ही पूर्णकालिक स्तर पर बैंक के कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। अधिशासी गवर्नरों की संख्या 21 होती है जिनकी नियुक्ति उन पाँच सदस्यों द्वारा की जाती है जिनका बैंक के कैपिटल सटॉक में सबसे बड़ा हिस्सा होता है। अन्य सदस्य राज्यों के गवर्नर बाकि अधिशासी गवर्नरों का चयन करते हैं।

बैंक अपने कर्ज़ों की पुनः अदायगी का आकलन करता है और इसके लिए वह संबद्ध देश के प्राकृतिक संसाधनों व कर्ज़ अदायगी के उसके पुराने रिकार्ड का हिसाब किताब करता है। बैंक उन्हीं विशिष्ट परियोजनाओं के लिए कर्ज़ मुहैया कराता है जो आर्थिक और तकनीकी रूप से कारगर होती है जो बृहतर उद्देश्यों के संदर्भ व प्राथमिक महत्त्व की होती है। सामान्य नीति के तौर पर, यह उन्हीं परियोजनाओं के लिए कर्ज़ देता है जो सीधे रूप से आर्थिक उत्पादकता से जुड़ी होती है और अमुमन यह सामाजिक हित में जुड़ी परियोजनाओं यथा शिक्षा और आवास के लिए कर्ज़ नहीं देता। बैंक के कर्ज़ों का निवेश बहुलांश में बुनियादी क्षेत्रों में हुआ है। ऊर्जा व यातायात के क्षेत्र ऐसे ही क्षेत्र हैं क्योंकि इनका विकास आर्थिक विकास की अनिवार्य शर्त है। बैंक की वित्तीय सहायता से चलने वाली परियोजनाओं में जिन मशीनों एवं वस्तुओं की जरूरत होती है, उनकी खरीददारी सस्ते से सस्ते बाज़ार दर पर हो सके, यह बैंक की अपेक्षा होती है। और अंत में वह परोक्ष रूप से स्थानीय निजी उद्यम के विकास को प्रोत्साहित करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हाल के दिनों में बैंक ऊर्जा परियोजनाओं के लिए विशेष रूप से कर्ज़ मुहैया करा रहा है। बैंक द्वारा दिए जा रहे कर्ज़ों में इस क्षेत्र का हिस्सा सबसे बड़ा है। गैस व तेल उत्पादन के क्षेत्र में भी बैंक की ऋणदेयता बढ़ी है। 8वें दशक में चूंकि तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं की स्थिति बेहतर हो गई थी, अतः बैंक ने ऋण देने के मामले में ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम की शुरुआत की। ऐसा कर्ज़ अल्पविकसित देशों में विशिष्ट नीतिगत परिवर्तन कार्यक्रमों व संस्थागत सुधारों का समर्थन करता है ताकि वे अपने संसाधनों का बेहतर इस्तेमाल कर सके। 1983 में बैंक ने अपनी द्विवर्षीय विशेष कार्य योजना (सैप) की शुरुआत की। यह योजना उन देशों के लिए इजाद की गयी थी जिन्हें वैश्विक मंदी के चलते गंभीर आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ रहा था। संबद्ध देश की ऋण अर्हता और विकास को दुरूस्त करने के उद्देश्य से इस योजना में नीतिगत परामर्श के साथ साथ वित्तीय उपायों को भी शामिल किया गया था।

17.2.7 सीमाशुल्क एवं व्यापार आम सहमति (गैट)

पृष्ठभूमि

व्यापार एवं व्यावसायिक नीति की देखभाल करने के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन बनाने के प्रयास 1947 में ही शुरू हो गये थे। हालांकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन के घोषणापत्र की रूपरेखा हवाना सम्मेलन के दौरान ही बन गयी थी, लेकिन कभी भी इसका अनुमोदन नहीं हो सका क्योंकि इसके समर्थकों और विरोधियों के बीच मतभेद उभर आये थे। समर्थक बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था की वकालत कर रहे थे तो विरोधी राष्ट्रीय आधारपूर्ण रोजगार नीतियों की। फिर भी अमरीका का गैट प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया जिस पर अनेक देशों ने हस्ताक्षर भी कर दिए। इस तरह गैट का जन्म बिना किसी औपचारिक संगठन और सचिवालय के हो गया। यह विश्व व्यापार के क्षेत्र में बढ़ते उदारीकरण और गैट समझौतों का ही नतीजा था कि 1995 में विश्व व्यापार संगठन अस्तित्व में आ सका।

सदस्य राज्यों के बीच उचित और मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देना गैट का मुख्य उद्देश्य था और

इसके लिए गैट के तहत दो मुख्य सिद्धांतों—अभेदमूलकता तथा पारस्परिकता— को अंगीकार किया गया था। भेदभाव न हो, यह सुनिश्चित करने के लिए गैट सदस्यों ने तय किया था कि तमाम आयात निर्यात में वे अनुकूलतम राष्ट्र (एम एफ एन मोस्ट फेवर्ड नेशन) के सिद्धान्त का अनुपालन करेंगे। इसका मतलब था कि प्रत्येक राष्ट्र के साथ "अनुकूलतम राष्ट्र" जैसा व्यवहार किया जाएगा। फिर भी गैट आर्थिक गोलबंदी को नहीं रोक सका। उदाहरण के लिए मुक्त व्यापार क्षेत्रों अथवा सीमाशुल्क यूनियनों के गठन को मंजूरी दी गई, बशर्ते ऐसी लामबंदी घटक क्षेत्रों में व्यापार को सुगम बनाती हो तथा इससे दूसरे पक्षों के व्यापार पर कोई बुरा असर नहीं पड़ता हो।

तटकर और व्यापार से तटकर बाधा को दूर करने के उद्देश्य गैट वार्ता के कई-कई दौर चले। यह इसीका नतीजा था व्यापार ड्यूटी में कमी आई। आज गैट में दुनिया के दो तिहाई राज्य शामिल हैं।

17.2.8 उरुग्वे चक्र एवं विश्व व्यापार संगठन

बहुपक्षीय व्यापार समझौतों का अंतिम और आठवाँ चक्र जिसकी बैठक उरुग्वे के पुन्ते देल एस्टेट में हुई थी, जो मुख्य रूप से तीन मसलों पर केन्द्रित था —

1) व्यापार विषयक बौद्धिक संपदा अधिकार (ट्रिप्स),
2) व्यापार विषयक निवेश युक्ति (ट्रिप्स) तथा,
3) कृषि वस्तुओं का व्यापार।

तीसरी दुनिया के देश गैट समझौतों से कमोवेश असंतुष्ट ही रहे हैं। व्यापार से संबंधित बौद्धिक संपदा के उदारीकरण का मतलब यह होगा कि अल्पविकसित देशों को उन्नत देशों अथवा अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के साथ प्रतियोगिता में खड़ा होना होगा। बौद्धिक संपदा के तहत कॉपीराइट्स पेटेन्ट तथा ट्रेडमार्क के मसले आते हैं। संभव है कि इससे अल्पविकसित देशों की घरेलू प्रौद्योगिकी एवं उनके नवजात उद्योगों खासकर चिकित्सा एवं दवा उद्योगों, को नुकसान उठाना पड़े। गैट के ट्रिप्स प्रावधानों के अंतर्गत सेवा क्षेत्र भी शामिल हैं। इससे विकासशील देशों में रोज़गार की स्थिति पर बुरा असर होने की संभावना है। क्योंकि तब यहाँ के सेवा क्षेत्र में उन्नत देशों के पेशेवरों की बाढ़ की संभावना है। क्योंकि तब यहाँ के सेवा क्षेत्र में उन्नत देशों के पेशेवरों की बाढ़ आ जाएगी। गैट के तहत कृषि का सवाल भी एक विवादास्पद सवाल है। जहाँ अमरीका कृषि क्षेत्र उन्मुक्त व्यापार और सब्सिडी वापस लेने का पक्षधर था, वहीं यूरोपीय आर्थिक संघ के देश, खासकर फ्रांस जो अपने कृषि क्षेत्र को भारी सब्सिडी देता है, इसका विरोध कर रहे थे। तब अमरीका ने धमकी दी कि वह उन देशों के खिलाफ सुपर 301 के जरिये दंडात्मक कानूनी कार्रवाई करेगा जो मुक्त व्यापार का अनुसरण नहीं करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.2.9 विश्व व्यापार संगठन

उरुग्वे चक्र को 1990 में अर्थात् शुरू होने के चार सालों के भीतर ही, पूरा हो जाना था। किन्तु जब कई विवादास्पद मुद्दों पर गतिरोध पैदा हो गया तो गैट के डायरेक्टर जनरल आर्थर डंकल को हस्तक्षेप करना पड़ा। गतिरोध दूर करने के लिए उन्होंने एक मसौदे का प्रस्ताव किया। यह डंकल मसौदा के नाम से जाना जाता है। मजाक में लोग इसे डी डी टी (डंकल ड्राफ्ट टैक्स्ट) कहते हैं। डंकल प्रस्तावों में घरेलू और निर्यात सब्सिडी कम करने, तथा तटकर बाधा के रूप में कोटा व्यवस्था और तटकर द्वारा मात्रात्मक अंकुश प्रणाली के नाम गिनाये गये थे। भारत के मामले में प्रस्ताव में कहा गया था कि अब उसके लिए अपने कॉपीराइट एवं ट्रेडमार्क नियमों का अनुपालन जरूरी नहीं रह गया। ऐसे प्रावधानों का मतलब था कि भारत अपने पेटेंट कानून में बदलाव लाए ताकि वह पेरिस कन्वेंशन के साथ संगति बिठा सके। गैट के तहत प्राधिकृत बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था तथा डंकल प्रस्तावों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर पश्चिम के उन्नत औद्योगिक देशों का वर्चस्व कायम रखने की कोशिश की गयी है। गैट उरुग्वे चक्र तथा डंकल मसौदे में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भूमिका पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। मालूम हो कि ये कंपनियाँ तीसरी दुनिया के देशों का शोषण करती है तथा उन देशों के साथ-साथ पूरे विश्व व्यवस्था में गरीब और अमीर के बीच मौजूदा खाई को बढ़ाती है।

15 अगस्त को सदस्य राज्यों ने डंकल पर हस्ताक्षर कर दिए। सात सालों की गहन मंत्रणा के बाद 1994 में भारतीय मंत्रिमंडल ने उरुग्वे चक्र के गैट समझौतों का अनुमोदन कर दिया। गैट समझौते का महत्त्वपूर्ण पहलू विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के रूप में सामने आया। यह गैट की उत्तराधिकारी संस्था है। पांच सौ पृष्ठों के समझौते के फलस्वरूप जिस विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई है, उससे विश्व व्यापार के बहुपक्षीय कारण के नए दौर का सूत्रपात हुआ है। विश्व व्यापार संगठन पहली जनवरी 1995 से प्रभावी है तथा इसकी हैसियत विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के बराबर है। यह संधि सभी 117 सदस्य देशों के लिए बाध्यकारी है। इन राज्यों में दो तिहाई अल्पविकसित राज्य है। संगठन से अपेक्षा की जाती है कि वह व्यापारिक पक्षों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाएगी तथा यह सुनिश्चित करेगी कि खेल के नियमों का पालन किया जाये। इसके तहत विवाद निवारण एजेंसी का भी गठन किया जाना है यह देखना अभी बाकी है कि अल्पविकसित देश (इसमें विशाल बाज़ार के साथ भारत भी शामिल है) पश्चिम के ताकतवर

औद्योगिक देशों के साथ प्रतियोगिता में कैसे मुकाबला करते हैं।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की परिभाषा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) ब्रिटेनवुड्स व्यवस्था का निर्माण किन परिस्थितियों में हुआ था?

....

....

....

....

....

....

4) ब्रिटेनवुड्स व्यवस्था पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

5) अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के बारे में आप क्या जानते हैं?

....

....

....

....

....

....

6) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सांगठनिक ढाँचे क्या हैं ?

....

....

....

....

....

....

7) आई बी आर डी पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

8) गैट के बारे में टिप्पणी कीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

9) उरुग्वे चक्र समझौते का परीक्षात्मक विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

....

10) विश्व व्यापार संगठन पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

17.3 उत्तर ब्रिटेन वुड्स विकास

1950 से लेकर अब तक विश्व अर्थव्यस्था के क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटी हैं। पहली क्षेत्रीय आर्थिक उपव्यवस्थाओं का विकास तथा दूसरी बहुराष्ट्रीय निगमों का विकास जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है। बहुराष्ट्रीय निगम राष्ट्रीय सीमाओ से बंधे नहीं होते, अपितु पूरा विश्व ही उनका कार्यक्षेत्र होता है। सही है, बहुराष्ट्रीय निगम भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में सहायक होते हैं, किन्तु उनसे राष्ट्रीय आर्थिक स्वायत्तता के लिए खतरा भी पैदा हो सकता है। क्षेत्रीय आर्थिक क्रियाकलापों की शुरुआत पूँजीवादी औद्योगिक दुनिया के केन्द्र अर्थात पश्चिमी यूरोप के देशों में हुई थी। 90 के दशक में यूरोपीय अर्थव्यवस्था के साझे बाज़ार से शुरु होकर यूरोपियन यूनियन के रूप में तब्दील हो गयी। प्रशांत क्षेत्र और दक्षिण पूर्व एशिया में ऐसी आर्थिक अव्यवस्थाएँ प्रकट हुई। न्यूयार्क, टोक्यो और लंदन में वित्तीय और प्रतिभूति बाजारों का उद्‌भव क्षेत्रीयकरण एवं अंतक्षेत्रीय गठबंधन के जरिये भूमंडलीकरण लक्षण है। बहुराष्ट्रीय निगम भूमंडलीकरण के कारण और प्रभाव दोनो हैं। विश्व बाज़ार एवं अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक तंत्र के उदय ने अंतर्राष्ट्रीय फर्मों के लिए माकूल माहौल तैयार किया। शुरु में ऐसी कंपनियों में प्रमुखता अमरीकी कंपनियों की भी और कभी-कभी उनका वर्चस्व विश्व अर्थव्यवस्था के एक पूरे क्षेत्र पर कायम था। मानकता का निर्धारण और उसे सब पर थोपने का काम भी यही कंपनियाँ करती थी। अमरीका की कंपनी आई बी एम इसका पुरातन उदाहरण है। एक समय ऐसा था जब दुनिया के कल कंप्यूटर बाज़ार में इसका हिस्सा 80% था और वह अपनी प्रभावी स्थिति का इस्तेमाल कर मानक गुणवत्ता को परिभाषित करती थी। ऐसा वह अपना बाज़ार कायम रखने अथवा बाज़ार में अपना हिस्सा बढ़ाने तथा स्पर्द्धा लाभ अर्जित करने के लिए करती था। युद्धोत्तर काल में बहुराष्ट्रीय निगमों की संख्या, व्यापकता एवं विविधता में बढ़ोतरी हुई है। आज स्थिति यह है कि बैंकिंग, तेल, मोटरकार तथा अन्य क्षेत्रों में लिप्त इन कंपनियों के बीच परिवर्तनीय संतुलन स्थापित है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विकास होने से अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अजीब जटिल पारस्परिक निर्भरता पैदा हुई है। निवेश, पूँजी गतिमानता तथा प्रौद्योगिकी नियंत्रण के क्षेत्र में भी कई मुश्किल समस्याएँ पैदा हुई हैं इससे सबसे बड़ी बात यह हुई कि एक नये प्रबंधकीय वर्ग का उदय हो गया। यह वर्ग कपंनियों और देशों के बीच चक्कर लगाता रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युद्धोत्तर विश्व अर्थव्यवस्था की तीन स्पष्ट विशेषताएँ हैं। विश्व अर्थव्यवस्था में अमरीका की वर्चस्ववादी स्थिति और भूमिका, 1969 से 1970 के बीच विश्व निर्यात में अल्पविकसित (विकासशील भी) देशों के हिस्से का ह्रास, और विश्व व्यापार में हिस्सेदारी के लिहाज से केन्द्रीय रूप से नियोजित अर्थव्यवस्थाओं अथवा समाजवादी देशों का अलग थलग पड़ना। इन देशों यानी समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं को न तो मार्शल एड मिला न ही वे ब्रिटेनवुड्स व्यवस्था में शामिल हुए। युद्ध के बाद वाले काल में जब इन अर्थव्यवस्थाओं की सेहत ठीक हो रही था, तब दुनिया मंदी के दौर से गुजर रही थी। चूंकि खाड़ी के तेल उत्पादक देशों ने तेल की कीमत बढ़ा दी थी अतः ऊर्ज़ा का दाम लगातार बढ़ता जा रहा था। 1971 में अमरीका ने सोने के साथ डॉलर की निश्चित परवर्तनीयता स्थगित कर दी। नतीजन विश्व व्यापार और वित्त के क्षेत्र में परिवर्तन विनिमय दर की व्यवस्था कायम होने लगी। यह उस आरंभिक योजना के विपरीत था जो नीयत अनुरूपता और नियंत्रित सम्मेजन प्रविधि पर आधारित थी। ब्रिटेनवुड्स व्यवस्था के खत्म हो जाने पर बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के केन्द्रीय बैंकों को मुद्रा बाज़ार में हस्तक्षेप करना पड़ा ताकि विनिमय दर की परिवर्तनीयता को एक सीमा के अंदर रखा जा सके तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में कुछ स्थायित्व फिर से कायम किया जा सके।

पिछले बीसेक सालों में विश्व अर्थव्यवस्था में अमरीका की धोंस कुछ कम हुई है। तथापि डॉलर प्रधान अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा की भूमिका में कायम है और यही कारण है कि वह मौद्रिक एवं व्यापार के क्षेत्र के केन्द्र में आज भी टिका हुआ है। अमरीका आज भी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की संस्थाओं, बहुपक्षीयता तथा व्यापार उदारीकरण के प्रति प्रतिबद्ध है। लेकिन पश्चिमी भूख खासकर जर्मनी और जापान के बड़ी आर्थिक ताकतों के रूप में उभरने से युद्धोत्तर काल में आर्थिक ताकतों का वितरण कुछ हद तक बदल गया है।

17.3.1 भूमंडलीकरण और तीसरी दुनिया

8 वें दशक की एक विशेषता यह भी है कि इस काल में औद्योगिक पूँजीवाद का फैलाव अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की परिधि में हुआ है। उदाहरण के लिए दक्षिण कोरिया, ताईवान, सिंगापुर तथा पड़ोस के नये ओद्योगिक देशों जिन्हें दक्षिणपूर्व एशियाई बाघ के नाम से जाना जाता है, के नाम गिनाये जा सकते हैं। लेकिन इन देशों में तीसरी दुनिया की मात्र 2 प्रतिशत आबादी निवास करती है। 8वें दशक में दुनिया में गरीबों और अमीरों के बीच खायी बढ़ी जो आज भी बढ़ रही है। उत्तर दक्षिण वार्ता के जरिये नयी अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था कायम करने का सपना दक्षिण के लोगों के जीवन में कोई बेहतरी नहीं ला सका। यह विश्वास, जैसा कि नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र का कहना था, कि अप्रतिबंधित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से

गरीब देशों को धनी देशों के स्तर तक पहुँचने में मदद मिलेगी, ऐतिहासिक अनुभव को झुठलाता है। उल्टे, विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की ऋणदाय नीतियों तथा तीसरी दुनिया खासकर अफ्रीका पर थोपे गये शर्तों एवं ढाँचागत समायोजन कार्यक्रमों की वजह इन देशों में बेरोज़गारी व बढ़ती गरीबी की समस्याएँ पैदा हो गई। हालत यहाँ तक पहुँच गयी है कि भोजन की छीनाझपटी के लिए दंगे तक हो जाते हैं। यहाँ यह बात भी काबिलेगौर है कि मुक्त व्यापार के अंतर्राष्ट्रीय तरीकों से मुद्रास्फीति बढ़ी है, अर्थव्यवस्था में मंदी आई है, व्यापार के लिहाज से अनेक यूरोपीय देशों का ह्रास हुआ है।

17.3.2 भूमंडलीकरण का प्रभाव

पिछले दो दशकों में प्रौद्योगिकी के विकास और यातायात के क्षेत्र में क्रांति आ गयी है। नतीजतन बाज़ार और राष्ट्र-राज्य की सीमाएँ टूटी हैं। संचार, उत्पादन, व्यापार व वित्त जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में, आर्थिक गतिविधियाँ तेजी से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुई है। नई प्रौद्योगिकी से आर्थिक इकाइयों की गतिशीलता में भी इजाफा हुआ है तथा बाज़ार एवं समाज एक दूसरे के प्रति ज्यादा संवेदनशील हुए हैं। इन्ही सब बातों से दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं का भूमंडलीकरण संभव हो सका है। इससे मुक्त विश्व व्यापार के आदर्श को हासिल करने का, विश्व व्यापार संगठन की अगुआई में, मार्ग भी प्रशस्त हुआ है।

भूमंडलीकरण से उत्पादन प्रकिया में क्रांतिकारी बदलाव आया है। नतीजतन उत्पादन का केन्द्र धनी देशों, जहाँ श्रम मूल्य काफी है, से हटकर गरीब देशों, में स्थापित हो रहा है जहाँ सस्ते श्रम की प्रचुर उपलबधता है। पहले जहाँ श्रम उत्पादन का महत्वपूर्ण कारक था, उसे प्रौद्योगिकी विकास ने फालतू बना दिया है। इससे बेरोज़गारी और अर्द्धरोज़गार में इजाफा हुआ है। ऐतिहासिक रूप से इन, दबावों का मुकाबला करने के लिए राज्य हस्तक्षेप करते थे, संरक्षणवाद की अवधारणा का इस्तेमाल था। लेकिन मुक्त व्यापार की विचारधारा से अनुप्रमाणित भूमंडलीकरण की प्रकिया ने राज्य हस्तक्षेप की संभावना को खत्म कर दिया था उसे कमज़ोर कर दिया है, चाहे सब्सिडी का मामला हो अथवा उनके आंतरिक बाज़ार के संरक्षण का मामला हो। विकसित देशों के श्रमिकों को जहाँ नौकरी खोने का खतरा पैदा हो गया है, वहीं तीसरी दुनिया के देश आस लगाए बैठे हैं कि इससे रोज़गार के अवसरों में वृद्धि होगी।लेकिन यह छिपी हुई बात नहीं है कि जब मुक्त व्यापार की विचारधारा पश्चिम के देशों खासकर तीसरी दुनिया के देशों को सामाजिक सुरक्षा एवं सार्वजनिक कल्याण के मदों में कटौती करने के लिए बाध्य करती है, तब रोज़गार में भारी कमी आती है तथा समाज में कई तबकों को हाशिए पर जाना पड़ता है। दरअसल ऐसा हो भी रहा है। भूमंडलीकरण के ऐसे सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव के विश्वव्यापी हो जाने की संभावना है। यह अलग बात है कि तीसरी दुनिया के देशों में इसका ज्यादा गहरा असर होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

श्रम शक्ति का प्रव्रजन भी भूमंडलीकरण का एक महत्वपूर्ण नतीजा है। जब रोजगार की तलाश कोई श्रमिक पश्चिम के औद्योगिक देशों अथवा खाड़ी के तेल उत्पादक देशों में प्रवजन करता है तब वहाँ सामाजिक तनाव में वृद्धि की संभावना पैदा हो जाती है। जर्मनी और दूसरे पश्चिमी देशों में प्रवजन करता है तब वहाँ जर्मनी और दूसरे पश्चिमी देशों में नस्लवाद तथा खाड़ी देशों में प्रव्रजकों के खिलाफ स्थानीय लोगों का असंतोष इस बात के सबूत है। सही है कि संचार क्रांति से दुनिया सिमटकर छोटी हो गई है, तथापि यह अपने आप में विश्व समुदाय के गठन का पर्याप्त कारण नहीं है। भूमंडलीकरण का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह भी रहा है इससे समाजों में अलगाववादी प्रवृत्ति और अस्मिता की पहचान की लड़ाई तेज हो गयी है। चाहे वह नृजातीय, राष्ट्रीय अथवा धार्मिक ही क्यों न हो। मुक्त व्यापार और विश्व व्यापार संगठन की मौजूदगी से राष्ट्रीय हितों में स्वतः ही संगति पैदा नहीं हो सकती। दूरसंचार, उपग्रह टी वी कार्यक्रम इलेक्ट्रोनिक उद्योग आदि के मसलों, अमरीका एवं यूरोपीय देशों के बीच जैसी ठनी हुई है, उससे भी यह स्पष्ट होता है। आर्थिक भूमंडलीकरण और राष्ट्र के रूप में विश्व समुदाय का उदय एक ही चीज नहीं है। विश्व हितों के ऊपर राज्य चाहे उसकी संप्रभुता सीमित ही क्यों न हो। अपनी प्राथमिकताओं और अपने हितों को तरजीह देने से आज भी बाज नहीं आ रहे। ये झगड़े विश्व असुरक्षा और अंतर्राज्यीय तनावों को बढ़ाते हैं।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) उत्तर ब्रिटेनवुड्स काल में अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कौन-कौन से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं?

....

....

....

....

....

17.4 सारांश

भूमंडलीकरण दुनिया के राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के बीच अंतर्सूत्रता एवं अन्तः निभरता में तेजी लाने की प्रक्रिया का नाम है। यह राज्यों के अर्थव्यवस्था के संचालित करने के अधिकार में कटौती करती है। भूमंडलीकरण एक ऐतिहासिक ..क्रिया रही है। उ.. द्वितीय विश्वयुद्ध काल में, ऐसी संस्थाएँ अस्तित्व में आयी जो अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक एवं व्यापार संबंधों को नियंत्रित करने का प्रयास करती थी। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा गैट ऐसी ही संस्थाएँ थी। यह व्यवस्था ब्रिटेनवुड्स व्यवस्था के नाम जानी जाती थी। तथापि यह व्यवस्था सातवें दशक में अमरीकी वर्चस्व के तले ध्वस्त हो गयी क्योंकि अमरीका ने एक तरफ घोषणा कर दी कि वह इसके नियमों और प्रकियाओं का अनुपालन नहीं करेगा। तदुपरान्त तेल संकट पैदा हुआ। औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में परिष्कृत कंप्यूटर तकनीक का इस्तेमाल बढ़ा। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा। पश्चिमी देशों की संसाधनों की जरूरत, तथा इन देशों के आर्थिक संकट तथा उनमें आए प्रगतिरोध का नतीजा अंततः यह हुआ कि अमरीकी वर्चस्व तले उनका भूमंडलीकरण हो गया। भूमंडलीकरण से राष्ट्र राज्यों के बीच न तो बराबरी बढ़ी है और न ही उससे अनिवार्य रुप से तीसरी दुनिया के देशों का विकास हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय निगम और औद्योगिक देश आज भी एक साथ मिलकर विश्व अर्थव्यवस्था का शोषण कर रहे हैं। आज भी उनकी दमदार स्थिति कायम है। गैट के उरूग्वे चक्र वार्ता के परिणामस्वरूप विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई है।

17.5 शब्दावली

मित्रशक्तियाँ : द्वितीय विश्वयुद्ध दो शक्ति केन्द्रों—मित्र शक्तियों एवं ध्रुव शक्तियों, के बीच लड़ा गया था। मित्र शक्तियों की अगुआई ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, फ्रांस तथा भूतपूर्व सोवियत संघ के हाथ में थी।

डंकल मसौदा : उरुग्वे चक्र वार्ता में आये गतिरोध को दूर करने की गरज से गैट के डायरेक्टर जनरल आर्थर डंकल ने कुछ खास प्रस्ताव तैयार किये थे। बाद में यही प्रस्ताव "डंकल मसौदा" के रूप में जाना गया।

सेवा क्षेत्र : किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में दो क्षेत्र होते हैं—सप्राथमिक क्षेत्र और द्वितीयक क्षेत्र। प्राथमिक क्षेत्र वस्तुओं के उत्पादन से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ रहता है द्वितीयक क्षेत्र सेवा मुहैया कराता है और इसी लिए यह सेवा क्षेत्र भी कहलाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

जोन एडेलमैन स्पेरों, 1977 *: दि पॉलिटिक्स आव इंटरनेशनल इकोनोमिक रिलेशन्स,* जॉर्ज लेन एण्ड अन्वित।

होल्ड रिनेरार्ट एण्ड विंस्टन, 1975, *इंटरनेशनल इकोनोमिक इंस्टीट्युशन्स,* नंदन,

चेरनुलम एफ, टाटा मेग्रा हिल, 1988 *इंटरनेशनल इकोनोमिकज,* नई दिल्ली।

17.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था वह होती है जिसकी प्रक्रियाओं का निर्धारण राष्ट्रीय अर्थशास्त्र करता है तथा अंतर्राष्ट्रीय घटनाएँ राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के बिल्कुल अलग प्रदर्शनी का फल होती है।
2) अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण का मतलब है कि राष्ट्र स्तरीय अर्थशास्त्र का अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पूरी अर्थव्यवस्था अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार शक्तियों से निर्देशित है।
3) तीस के दशक की भयंकर मंदी, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था का अचानक ठप्प हो जाना और विध्वंसकारी द्वितीय विश्वयुद्ध ने मिलकर ब्रिटेनवुड्स व्यवस्था का निर्माण किया था।
4) ब्रिटेनवुड्स व्यवस्था के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संचार के लिए स्थिर विनिमय दर की परिकल्पना की गयी थी। सभी देश इस प्रस्ताव पर सहमत थे वे कि विनिमय दर को 1% कम या

ज्यादा, से नीचे रखने अथवा बराबरी कायम रखने तथा अपनी मुद्राओं का स्वर्ण के अनुरुप ढालने का अपनी सुविधा के अनुसार प्रयास करेंगे।

5) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक संघटन है जो व्यापार के विस्तार को आसान बनाने में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा सहयोग को बढ़ावा देना चाहता है ताकि रोज़गार और माली हालत में बेहतरी आये।
6) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सांगठनिक ढाँचे के अंग हैं, बोर्ड आव गवर्नर्स, अधिशासी बोर्ड, प्रबंध निदेशक तथा कार्यरत्त कर्मचारी।
7) इसकी स्थापना 1945 में हुई थी। यह विश्व बैंक है।
8) गैट की स्थापना सदस्य राज्यों के बीच निष्पक्ष और मुक्त बाज़ार को बढ़ावा देने के लिए की गई थी।
9) विकासशील देशों की कीमत पर विकसित देशों के हितों की सुरक्षा को बढ़ावा देने के लीए ये वार्ताएँ आयोजित हुई थी।
10) विश्व व्यापार संगठन ने गैट को विस्थापित कर दिया है और यह पहली जनवरी 1955 से प्रभावी है।

बोध प्रश्न 2

i) आर्थिक उपव्यवस्था का उदय तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विकास सबसे महत्वपूर्ण विकास है।
ii) महसूस किया गया कि भूमंडलीकरण का प्रभाव खासकर विकासशील देशों पर अच्छा नहीं हो सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 18 क्षेत्रीय संगठन : यूरोपियन समुदाय, एशियन, एपेक, सार्क दक्षेस, ओ.आई.सी. तथा ओ.ए.यू.

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 यूरोपियन यूनियन
- 18.2.1 उद्भव, इतिहास तथा उद्देश्य
- 18.2.2 संस्थाएँ और अंग
- 18.2.3 विश्व राजनीति में इसकी भूमिका और भविष्य

18.3 दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्रसंघ (एशियन)
- 18.3.1 लक्ष्य एवं उद्देश्य
- 18.3.2 संस्थाएँ या संरचना
- 18.3.3 अधिकार, कार्य और भूमिका

18.4 एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग परिषद (एपेक)
18.5 दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (दक्षेस)
- 18.5.1 लक्ष्य और उद्देश्य
- 18.5.2 संरचना एवं कार्य
- 18.5.3 उपलब्धियाँ और संभावनाएँ

18.6 इस्लामिक सम्मेलन संगठन (ओ आई सी)
- 18.6.1 लक्ष्य और उद्देश्य
- 18.6.2 ओ आई सी के अंग (निकाय)

18.7 अफ्रीकी एकता संगठन (ओ ए यू)
- 18.7.1 उद्देश्य और सिद्धांत
- 18.7.2 अंग और संस्थाएँ
- 18.7.3 भूमिका और कार्य

18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमने महत्वपूर्ण क्षेत्रीय संगठनों की चर्चा की है। संयुक्त राष्ट्र की तरह ये संगठन न केवल क्षेत्रीय स्तर पर, अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी निर्णायक राजनीतिक अथवा आर्थिक भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। जैसे जैसे दुनिया में अंतरनिर्भरता बढ़ रही है, वैसे वैसे राष्ट्रों की सीमाएँ क्षीण होती जा रही है तथा खास क्षेत्र अपने अपने संगठन बना रहे हैं। यह प्रक्रिया आज भी जारी है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- छह क्षेत्रीय संगठनों अथवा समूहों के उद्भव, उद्देश्य अथवा कार्य तथा संरचना को समझ सकेंगे;
- क्षेत्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में उनकी भूमिका का सिहांवलोकन कर सकेंगे; और
- उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धियों और कमियों को जान सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

वैश्विक अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विपरीत, क्षेत्रीय अंतर्राष्ट्रीय संगठनों व संस्थाओं का गठन देशों के किसी खास समूह जो एक दूसरे से भूगोल, संस्कृति अथवा इतिहास से जुड़े होते हैं, के बीच विशिष्ट अथवा सीमत कार्यों के निष्पादन के लिए किया जाता है। आर्थिक और राजनीतिक संबंधों अथवा राजनीतिक विचारधारा और संस्थाओं की एकरूपता की गरज से किसी खास क्षेत्र के राज्य एक दूसरे से समूहों अथवा संगठनों के तौर पर जुड़ते हैं। अंतर्राष्ट्रीय समन्वय और अंतर्राष्ट्रीय संघीय व्यवस्थाओं के लाभों को पहचानने में ऐसे क्षेत्रीय संगठनों का अनुभव सरकार अथवा कौम के लिए उपयोगी साबित हो सकता है। ऐसा अनुभव उन्हें यह भी बता सकता है कि बड़े और व्यापक पैमाने के कार्यों को पूरा करने के लिए वे किस तरह अपने समन्वयकारी राजनीतिक व्यवहारों और अपनी क्षमताओं का विकास करें।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद दुनिया के कई क्षेत्रों में क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना हुई है। इस इकाई में कतिपय महत्वपूर्ण संगठनों की चर्चा की गई है।

18.2 यूरोपियन यूनियन

1992 तक यूरोपियन यूनियन, यूरोपीय समुदाय अथवा यूरोपीय आर्थिक समुदाय के रूप में जाना जाता था। यह 15 यूरोपीय देशों का घनिष्ट रूप से जुड़ा हुआ समूह है। उसका निर्माण यूरोप में वृहत्तर आर्थिक और राजनीतिक एकता स्थापित करने तथा उनके बीच युद्ध की संभावनाओं को खत्म करने के लिए किया गया था। यूरोप द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका झेल चुका था और इसीलिए नहीं चाहता था कि फिर दोबारा ऐसी स्थिति पैदा हो। यूरोपियन यूनियन के 15 देशों में, जिनकी कुल आबादी 37 करोड़ है, एक ही तरह की संस्थाएँ और नीतियाँ लागू होती हैं। नतीजन पश्चिमी यूरोप शांति व समृद्धि के अभूतपूर्व दौर में प्रवेश कर गया है। कई मामलों में यूरोपीय यूनियन की जनता के बीच राष्ट्रीयेतर अस्मिता की भावना पैदा करने के लिए शुरू किए गए थे। सच तो यह है कि इसकी अभूतपूर्व सफलता की कहानी दूसरे सदृश प्रयासों के लिए मॉडल का काम करती रही है।

18.2.1 उद्भव, इतिहास तथा उद्देश्य

द्वितीय युद्ध के पूर्व और पश्चात् यूरोपीय देशों के बीच संस्थागत आधार पर एका स्थापित करने के अनेक प्रयास किए गए थे। यूरोपियन यूनियन की सीधी शुरुआत 1952 में होती है जब छह देशों ने मिलकर यूरोपीय कोयला और स्टील समुदाय बनाने का फैसला किया। तय किया गया कि वे अपने कोयला और स्टील संसाधनों के लिए साझा बाजार का निर्माण करेंगे जिसका नियंत्रण स्वतंत्र राष्ट्रीयेतर सत्ता प्रतिष्ठान द्वारा किया जायेगा। ये देश थे— बेल्जियम, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली, तथा नीदरलैंड। तथापि महत्वपूर्ण उपलब्धि 1958 में ही हांसिल हो सकी यानी जब रोम संधि (1957) प्रभावी हुई। रोम संधि की वजह से यूरोपीय आर्थिक समुदाय तथा यूरोपीय परमाणु ऊर्जा समुदाय (यूरेटॉम) अस्तित्व में आये। नतीजतन साझा बाजार की परिधि का विस्तार कोयला और स्टील से लेकर तकरीबन सभी महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियों तक हो गया। इन संधियों का बुनियादी उद्देश्य एक ऐसे यूरोपीय साझा बाजार की स्थापना करना था जहाँ यूरोपीय समुदाय के देशों के बीच वस्तुओं, व्यक्तियों, सेवाओं व पूँजी का मुक्त आवागमन हो सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1973 में तीन अन्य देश— इंग्लैंड, आयरलैंड तथा डेनमार्क— यूरोपीय समुदाय में सदस्य बने। 1973 में जहाँ इसकी सदस्यता थी, वह 1 जनवरी 1995 तक बढ़कर 15 हो गयी। जो अन्य देश इसके सदस्य बने, वे हैं ग्रीस (1981), स्पेन व पुर्तगाल (1986) तथा आस्ट्रिया, फिनलैंड तथा स्वीडन (1955)।

1958 से 1992 के बीच कई ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई जिनकी वजह से यूरोपीय समुदाय का रूप परिवर्तन हुआ और आज वह यूरोपीय यूनियन के रूप में स्थापित है। 1973 में यूरोपीय मैद्रिक सहयोग के संविधान पर हस्ताक्षर हुए। यूरोपीय मौद्रिक व्यवस्था 1990 से लागू होगी। यूरोपीय समुदाय के इतिहास में एकल यूरोपीय अधिनियम 1986 तथा यूरोपीय यूनियन की मौस्ट्रिस्ट संधि (1992) मील के पत्थर माने जा सकते हैं। पहला 1987 के जुलाई महीने से कारगर है जबकि दूसरा 1 नवम्बर 1993 से लागू है। पहले के अंतर्गत पहली जनवरी 1993 तक एकल बाज़ार स्थापित कर लेने की बात की गयी थी। मौस्ट्रिस्ट संधि की कई महत्वाकांक्षी योजनाएँ थीं। कम से कम 1 जनवरी 1997 तक या ज्यादा से ज्यादा 1999 तक साझी अथवा एकल मुद्रा प्रचलित करना, एक यूरोपीय केन्द्रीय बैंक की स्थापना करना, साझी विदेश व सुरक्षा नीति का निर्माण करना तथा एकल यूरोपीय नागरिकता का प्रावधान करना। इसका काम सदस्य राज्यों को एकल समुदाय में परिवर्तित करना था। इसके अंतर्गत अर्थव्यस्था के प्रत्येक क्षेत्र को शामिल करने की कोशिश की गई है। कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे वस्तुओं व श्रमिकों का मुक्त आवागमन, प्रतिष्ठान स्थापित करने तथा सेवाओ की स्वतंत्रता, पूँजी व भुगतान, स्पर्द्धा नीति, शोध व प्रौद्योगिकी तथा औद्योगिकी नीति की निर्बाध अदलाबदली, को रेखांकित किया जा सकता है।

संघीय (यूरोपीय) नागरिकता की बात मौस्ट्रिस्ट संधि की महत्वपूर्ण विशेषता मानी जा सकती है। यह संधि संघीय नागरिकों को किसी भी सदस्य राज्य में रहने, अध्ययन करने और अवकाश प्राप्ति के बाद अपना जीवन बिताने का अधिकार प्रदान करती है। शुरू में यह अधिकार कामगारों तक ही सीमित था, किंतु अब सभी इसका लाभ उठा सकते हैं। संघीय नागरिकों को सदस्य राज्य, जहाँ वे निवास करते हैं के नगरपालिका चुनावों में बतौर उम्मीदवार खड़ा होने और मतदान करने का अधिकार प्राप्त है। इसके गहरे निहितार्थ हैं। वास्तव में कुछ सदस्य राज्यों को इसे संभव बनाने के लिए अपने संविधानों में संशोधन करना पड़ा था। मालूम हो कि संघीय नागरिकता और राष्ट्रीय नागरिकता एक ही साथ प्रदान किये जाते हैं ताकि लोग अपनी राष्ट्रीय पहचान बनाये रख सकें। फिर भी हमें यह तो स्वीकार करना ही होगा कि संघीय नागरिकता संधि की खोज है और इस बात का प्रमाण है कि यूरोपियन यूनियन धीरे धी

आर्थिक समुदाय से राजनीतिक समुदाय में तब्दील होती जा रही है।

18.2.2 संस्थाएँ और अंग

यूरोपीय यूनियन सात प्रधान अंगों के जरिये कार्य करता है। ये हैं :

1) **यूरोपीय यूनियन परिषद** : यह मुख्य निर्णयकारी संस्था है। इसमें 15 सदस्य राज्यों के मंत्री शामिल होते हैं। एजेंडा के अनुरुप अलग-अलग मंत्री परिषद् की अलग-अलग बैठकों में हिस्सा लेते हैं। यह संघीय कानूनों (विनियमों, निर्देशों एवं फैसलों) का निर्माण करती है। इसके फैसले यूरोपिय संघ के पूरे क्षेत्र में लागू होते हैं तथा अंतरसरकारी सहयोग के लिए दिशा निर्देश दे सकती है। प्रत्येक छह महीने पर परिषद की सदस्यता सदस्य राज्यों के बीच बदलती रहती है। प्रत्येक अध्यक्ष के प्रशासन काल की समाप्ति पर परिषद की शीर्ष बैठक होती है जिसमें राज्याध्यक्ष अथवा सरकार के प्रमुख हिस्सा लेते हैं।

2) **यूरोपीय संसद (ई.पी.)** : इसके सदस्यों की संख्या 626 है। 1979 से ये सदस्य पाँच सालों के लिए सीधे चुनाव द्वारा चुने जाते हैं। यूरोपीय संसद राजनीतिक समूह का निर्माण करते हैं, न कि राष्ट्रीय समूह का। यह यूरोपीय संघ के लिए राजनीतिक मंच का कार्य करता है। जहाँ सार्वजनिक महत्व के मसलों पर चर्चा की जाती है तथा परिषद एवं आयोग के बारे में प्रश्न उठाए जाते हैं। यह यूरोपीयन संघ के बजट को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकता है।

3) ***यूरोपीय आयोग*** : इन सभी समुदायों (यूरोपीय कोयला व स्टील समुदाय यूरोपीय आर्थिक समुदाय तथा यूरेटॉम) को मिलाकर एकल आयोग का निर्माण तब किया गया था, जब संधि, जिसके तहत सभी अधिशासियों का विलयन कर दिया गया था। 1967 के जुलाई महीने से कारगर हुई।

4.) **दि कोर्ट आफ जस्टिस** : यूरोपीय संघ के कानूनों की व्याख्या करता है तथा इसके फैसले सबके लिए बाध्यकारी होते हैं। इसमें 15 न्यायाधीश तथा उन्हें सहायता देने वाले 6 महाधिवक्ता होते हैं। प्रथम दृष्टया अदालत जिसे सीमित क्षेत्रों में केस की सुनवाई करने का अधिकार होता है, कोर्ट आफ जस्टिस की मदद करता है।

यूरोपीय संघ के दूसरे निकाय हैं — कोर्ट आफ ओडीटर्स (15 सदस्य), आर्थिक व सामाजिक समिति (222 सदस्य), तथा क्षेत्रीय समिति (222 सदस्य)। दूसरा निकाय नियोक्ताओं, कर्मचारियों तथा दूसरे अनेक समूहों जैसे कृषकों व उपभोक्ताओं का प्रतिनिधित्व करता है जबकि तीसरा निकाय स्थानीय व क्षेत्रीय प्राधिकरणों का प्रतिनिधित्व करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.2.3 विश्व राजनीति में इसकी भूमिका और भविष्य

पिछले चार दशकों में यूरोपीय संघ दुनिया के सबसे बड़े व्यापारिक खंड तथा आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभर कर सामने आया है। नये सदस्यों को आकर्षित करने में यह चुंबक की तरह कार्य करता रहा है और आज इसकी कुल आबादी तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद भूतपूर्व और वर्तमान महाशक्तियों यानी अमरीका व रूस के योग के समतुल्य है। स्मरण रहे, यूरोपीय संघ की सदस्यता के लिए हंगरी व पोलैंड के आवेदन अप्रेल 1994 से पड़े हुए है। यह धीरे धीरे वृहत्तर यूरोपीय समन्वय तथा संघवाद की ओर बढ़ रहा है। संभव है, एक निश्चित अवधि में यह **संयुक्त राज्य यूरोप** बन जाये। यह महाशक्ति बनने की प्रक्रिया में है। नतीजतन यह सोवियत संघ के विखंडन से पैदा हुई खाई को भरने में सक्षम है। मालूम हो, सोवियत संघ 1945 से एकमात्र दूसरी महाशक्ति रहा था। वर्तमान एक ध्रुवीय विश्व राजनीति में इसकी रचनात्मक भूमिका सत्ता-संतुलन फिर से बहाल कर सकती है।

18.3 दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (एशियन)

एशियन बैंकाक उद्घोषणा जिस पर 8 अगस्त 1967 को पाँच राज्यों इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपींस, सिंगापुर तथा थाईलैंड - ने हस्ताक्षर किए थे, का नतीजा था। ब्रुनेई 1984 में इसका सदस्य बना तथा हाल में वियतनाम भी इसका सदस्य बन गया है। यद्यपि एशियान प्रधान रूप से वियतनाम युद्ध तथा दक्षिण पूर्व एशिया के गैर साम्यवादी राज्यों पर उसके खतरे के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया था, तथापि अब यह अपने साम्यवादी पूर्वाग्रह से मुक्त हो चुका है क्योंकि यह वियतनाम को साम्यवादी राज्य के रूप में स्वीकार कर चुका है। यूरोपिय संघ की तरह यह भी अनेक देशों को आकर्षित कर रहा है। 20 जुलाई 1996 को हुई इसके विदेश मंत्रियों की बैठक में म्यांमार को पर्यवेक्षक की हैसियत प्रदान की गयी है। आशा की जाती है कि लाओस और कम्बोडिया के साथ - साथ म्यांमार भी इसका शीघ्र ही एशियान का सदस्य बन जायेगा।

18.3.1 लक्ष्य एवं उद्देश्य

एशियान के घोषणा-पत्र में सात लक्ष्यों व उद्देश्यों को सम्मिलित किया गया था। ये हैं—

1) समृद्ध व शांतिपूर्ण दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र समुदाय के आधार को पुख्ता करने के लिए क्षेत्र ने समानता व सहभागिता की नीयत से तथा साझे प्रयासों के जरिये आर्थिक विकास, सामाजिक उन्नति व सांस्कृतिक विकास को तेज करना।

2) क्षेत्र के देशों के बीच के संबंधों में न्याय और कानून के शासन के प्रति अटूट विश्वास तथा संयुक्त राष्ट्र-घोषणा-पत्र के सिद्धांतों के अनुपालन के आधार पर शांति व स्थायित्व को बढ़ावा देना,

3) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी वैज्ञानिक व प्रशासनिक क्षेत्रों में साझे हित के मसलों पर सहभागिता व पारस्परिक सहयोग को बढ़ावा देना,

4) शैक्षिक, पेशागत, तकनीकी और प्रशासनिक क्षेत्रों में प्रशिक्षण एवं शोध सुविधाओं के जरिये एक दूसरे की सहायता करना,

5) कृषि तथा उद्योग के बेहतर इस्तेमाल, उनके व्यापार के विस्तार जिसमें अंतर्राष्ट्रीय वस्तु व्यापार की समस्याओं का अध्ययन भी शमिल है, उनके आवागमन व संचार की सुविधाओं में बेहतरी तथा उनके लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा करने के लिए और ज्यादा सक्रिय रूप से साझेदारी करना,

6) दक्षिण पूर्व एशियाई अध्ययना को बढ़ावा देना,

7) समान लक्ष्य व उद्देश्य वाले मौजूदा दूसरे अंतर्राष्ट्रीय व क्षेत्रीय संगठनों के साथ निकटवर्ती व लाभकारी सहयोग कायम करना तथा आपस में सहयोग को बेहतर बनाने के लिए जो भी तरीके उपलब्ध हैं, उनकी खोज करना।

18.3.2 संस्थाएँ और संरचना

सदस्य राज्यों की सरकार-प्रमुखों का शिखर सम्मेलन एशियान का सर्वोच्च प्राधिकरण है। शिखर की बैठक जरूरत पड़ने पर ही होती है। ऐसी पहली शिखर बैठक 1976 में तथा तीसरी और सबसे हाल की बैठक 1987 में हुई थी। मंत्रीमंडलीय सम्मेलन विदेश मंत्रियों की वार्षिक बैठक है और बारी बारी से प्रत्येक देश में बैठक आयोजित होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरी स्थायी समितियाँ हैं: 1) व्यापार व पर्यटन, 2) उद्योग, खनिज तथा ऊर्जा, 3) आहार, कृषि व वन संपदा, 4) यातायात व संचार, 5) वित्त व बैंकिग, 6) विज्ञान व प्रौद्योगिकी, 7) सामाजिक विकास, 8) संस्कृति व सूचना, और 9) बजट।

18.3.3 अधिकार, कर्तव्य और भूमिका

एशियन सदस्य राज्यों व किसी तीसरी पार्टी के बीच व्यापार, विकास - साहायता, तथा विदेश नीति के कुछ मामलों में संयुक्त मोर्चे का काम करता है।

एशियान अपनी आंतरिक शक्ति का इजहार अलग-अलग स्थायी समितियों के जरिये करता है। साझे औद्योगिक व तकनीकी परियोजनाओं के बीच समन्वय का काम करना तथा नीतियों, मानकों व विनियमों के बीत संगति सथापित करना, ये ही दो इसके बुनियादी कार्य हैं।

दो क्षेत्रों में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है : 1) क्षेत्र में शांति व स्थायीत्व स्थापित करने की गरज से 1981 में इसने कम्बोडिया के सवाल पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन का आयोजन किया था।1977 में पक्षपातपूर्ण व्यापार समझौता (पी टी ए) का गठन किया जिसका नतीजा यह हुआ कि एशियान का जो अंतः व्यापार। 2) 1977 में 15% था, वह 1983 में बढ़कर 21% पर पहुँच गया।

18.4 एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग परिषद (एपेक)

5 नवम्बर 1989 को एपेक की स्थापना हुई। इसकी स्थापना में एशियान के सदस्यों ने हिस्सा लिया था। एपेक में एशियान देशों के अलावा संयुक्त राज्य अमरीका, जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण कोरिया शामिल है। 1990 के जुलाई में उद्घाटन बैठक मे अवसर पर यह फैसला लिया गया था कि चीन, ताईवान व हांगकांग की सदस्यता के सवाल को लेकर उनसे फिर बातचीत की जानी चाहिए। यूरोपीय समुदाय व एपेक के संबंधों का सवाल भी 1991 की मीटिंग के बाद से ही एजेंडे पर है। एपेक के गठन पर एशियान के देशों की प्रतिक्रिया अलग-अलग है। अगर सिंगापुर इसके प्रति उत्साहित नजर आ रहा है, तो इंडोनेशिया का कहना है एशियान का अंतक्षेत्रीय आर्थिक सहयोग पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए न कि बाहरी आर्थिक संबंधों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) क्षेत्रीय संगठनों के क्या कारण अथवा आधार रहे हैं ?

....

....

....

....

....

....

2) मौस्ट्रिस्ट संधि की मुख्य विशेषताओं की परीक्षा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3) एशियान के किन्हीं तीन लक्ष्यों को सूचीबद्ध कीजिए।

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.5 दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संघ (दक्षेस)

ढाका में सन् 1985 में हुए राज्याध्यक्षों अथवा सरकार प्रमुखों की शिखर बैठक में हुए राज्याध्यक्षों अथवा सरकार प्रमुखों की शिखर बैठक में सार्क के गठन की औपचारिक घोषणा की गई थी। दक्षिण एशिया के सात देशों— बंगलादेश, भूटान, भारत, मालद्वीप, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका— में क्षेत्रीय सहयोग को लेकर बहस उसी समय से चलनी शुरू हो गयी थी। जब 1980 के मई महीने में बंगलादेश के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय जिया उर्रहमान ने ऐसे संघटन के निर्माण की दिशा में पहल की थी, कहा बताया जाता है कि नेपाल के राजा वीरेन्द्र भी ऐसा ही विचार कर रहे थे।

18.5.1 लक्ष्य और उद्देश्य

सार्क घोषणा-पत्र की धारा 1 के अनुसार 1985 में अंगीकार किया गया। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं : —

क) दक्षिण एशिया के लोगों के सुख तथा उनके जीवन की गुणवत्ता को बढ़ावा देना,

ख) क्षेत्र में आर्थिक विकास, सामाजिक उन्नति था सांस्कृतिक विकास को तेज करना,

ग) दक्षिण एशिया के देशों में सामूहिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना तथा उसे और मजबूत करना,

घ) एक दूसरे की समस्याओं के प्रति पारस्परिक विश्वास, समझ व सम्मान पैदा करने में योगदान करना,

च) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्रों में सक्रिया साझेदारी और पारस्पारिक सहायता को बढ़ावा देना,

छ) दूसरे विकासशील देशों के साथ सहयोग को मजबूत करना,

ज) साझे हितों के मामले में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पारस्परिक सहयोग को मजबूत करना, तथा

झ) सामान्य लक्ष्यों व उद्देश्यों वाले दूसरे अंतर्राष्ट्रीय व क्षेत्रीय संगठनों के साथ सहयोग करना।

18.5.2 संरचना एवं कार्य

i) **राज्याध्यक्ष एवं सरकार प्रमुख का अर्थ** : शिखर सम्मेलन सार्क की सर्वोच्च निर्णयकारी निकाय है जिसकी सामान्यतया साल में एक बार बैठक होती है। अब तक ढाका (1985), बंगलौर (1986), काठमाँण्डू (1987), इस्लामाबाद (1988), माले (1990) कोलम्बो (1991), ढाका (1993) तथा दिल्ली (1995) में सार्क सम्मेलन आयोजित किये जा चुके हैं। 1989, 1992 तथा 1994 में कोई शिखर सम्मेलन आयोजित नहीं हुआ।

ii) मंत्रिपरिषद में सदस्य राज्यों के विदेश मंत्री सदस्य के रूप में होते हैं। सामान्यतया साल में इसकी दो बैठकें होती हैं। यह मुख्य रूप से नीतियों का निर्माण, सहयोग कार्यक्रमों की समीक्षा आदि का काम करती हैं।

iii) स्थायी समिति में सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। स्थायी समिति के मुख्य सरोकार हैं— सर्वोच्च निगरानी व सहयोग करना, संसाधनों को जुटाना, सहयोग के नये क्षेत्रों की पहचान आदि करना। वैसे तो जरूरत पड़ने पर इसकी बैठक कभी भी हो सकती है किन्तु साल में कम से कम दो बार तो अवश्य ही होती है।

iv) तकनीकी समितियों में सदस्य राज्यों को प्रतिनिधि होते हैं। ये समितियाँ अपने अपने क्षेत्रों के कार्यक्रमों को कार्यान्वयन, समन्वयन, तथा उनकी निगरानी की जिम्मेवार होती है। ये नियमित रूप से अपनी रपटे स्थायी समिति को भेजती है।

v) कार्य-समिति का निर्माण स्थायी समिति कर सकती है। यह समिति परियोजनाओं के कार्यान्वयन का कार्य करती है। सदस्य राज्य इसके सदस्य होते हैं। सदस्यों की संख्या दो से अधिक होती है किंतु किसी भी हालत में सभी राज्य इसके सदस्य नहीं हो सकते।

vi) सचिवालय, जिसका गठन 1987 में हुआ था, में महासचिव तथा अन्य दूसरे स्टाफ होते हैं। यह कार्यक्रमों के समन्वयन व कार्यान्वयन के कार्यों की निगरानी करता है तथा सार्क के विविध अंगों की बैठकों को आयोजित करता है। यह काठमांडू में अवस्थित है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.5.3 उपलब्धियाँ और संभावनाएँ

यद्यपि सार्क के गठन के दस वर्ष पूरे हो चुके हैं, किंतु अन्य क्षेत्रीय संगठनों की तरह यह भी उतना सफल नहीं हो सका है जितना इसे होना चाहिए था। सार्क के एजेंडे के जिन मुद्दों पर आम सहमति थी, न केवल उनकी प्रगति बहुत धीमी रही है बल्कि असंतोषप्रद भी रही है। सार्क के लक्ष्यों व उद्देश्यों के कार्यान्वयन में सहयोग व समन्वयक की भी भारी कमी रही है। मौजूदा हालात के कारणों की तलाश करना कोई मुश्किल काम नहीं है। पूरा क्षेत्र जातीय तनावों से ग्रस्त है— कहीं तमिलों व सिंघलों के बीच तनाव है तो कहीं आसमियों व बांगलादेशियों के बीच तो कहीं हिंदुओं व मुसलमानों के बीच। इन सभी तनावों में भारत, जो कि इस क्षेत्र का केंद्र हैं, लिप्त रहता आया है। यही नहीं, सदस्य राज्यों के बीच इतिहासजन्य पारस्परिक अविश्वास, गलत धारणा व नासमझी रही है। भारत में पाकिस्तान के जातीय तनावों के बारे में कौन नहीं जानता। तमिलों के सवाल पर भारत व श्रीलंका के संघर्ष तथा नेपाल का भारत पर उसके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के आरोप तनाव के दूसरे कारण रहे हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि भारत की विशालता से क्षेत्र के दूसरे देश इस शंका से पीड़ित रहते हैं कि कहीं भारत उन पर अपना प्रभुत्व न कायम कर लें। हालांकि दक्षिण एशिया पर आज कोई बाहरी खतरा नहीं है, तथापि पाकिस्तानी आंतकवादियों का सीमापार से भारत में आना जाना पहले पंजाब में और अब कश्मीर में असल क्षेत्रीय सहयोग के मार्ग में बाधा पहुँचाता रहा है। इसकी वजह से दोनों देशों के बीच लगातार तनाव बना रहा है, मुठभेड़, सैनिक चेतावनी व छायायुद्ध की वारदातें भी होती रही है।

इन समस्याओं के बावजूद सार्क लगातार घनिष्ट सहयोगी की ओर बढ़ता रहा है। ढाका में संपन्न हुए सातवें शि[illegible] सम्मेलन से वास्तव में पारस्परिक सहयोग की नयी जमीन मिली है। इसी सम्मेलन में साप्टा ।साउथ एशियन प्रिफेरेन्शियल ट्रेड एग्रीमेंट के गठन का फैसला लिया गया जो क्षेत्र में व्यापार उदारीकरण की दिशा मे एक ठोस कदम है। साप्टा जनवरी 96 से प्रभावी है किन्तु सितम्बर 96 तक साप्टा के अंतर्गत अंतः क्षेत्रीय व्यापार की शुरूआत ढाँचागत सुविधाओं के अभाव, सूचना की कमी तथा सदस्य वालों का बीच उच्च सीमा शुल्क की वजह से नहीं हो सकी थी। अंतर्राज्यीय व्यापार के लिए सीमाओं को खोलने के प्रयास सफल नहीं हो सके हैं। क्योंकि पाकिस्तान और बांगलादेश के व्यापारियों को डर है कि ऐसा करने से उनके उद्योग प्रतियोगिता में पिछड़ जायेंगे।

क सार्क अभी शुरूआती अवस्था में हैं, अतः कोई इससे शीघ्र परिणाम की आशा नहीं कर सकता। भी, अपनी सीमाओं में सार्क ने क्षेत्रीय सहयोग की दिशा में कुछ प्रगति की है। यहाँ पर वीसा जेम्पशन, इन्डोर्समेंट फैसिलिटी विशेष उल्लेखनीय है। क्षेत्र के नागरिकों के बीच संपर्क को बढ़ावा के लिए इस सुविधा के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों, राष्ट्रीय संसद के सदस्यों, राष्ट्रीय ादमिक संस्थाओं के अध्यक्षों, उनकी पत्नियों तथा आश्रित बच्चों को वीसा की छूट प्रदान की गयी है। यह व्यवस्था 1 मार्च 1992 से लागू है। इस सुविधा के तहत वे बगैर वीसा के सार्क क्षेत्र में यात्रा कर सकते हैं।

18.6 इस्लामिक सम्मेलन संगठन (ओ आई सी)

ओ आई सी की स्थापना मई 1971 में की गयी थी। इसके गठन के पीछे राबात (मोरक्को) में 1969 के सितम्बर महीने में संपन्न मुस्लिम राष्ट्राध्यक्षों के शिखर सम्मेलन, मार्च 1970 में साउदी अरबिया के जेहाद में संपन्न मुस्लिम विदेश मंत्रियों के सम्मेलन तथा 1970 में कराची में संपन्न हुए मुस्लिम विदेश मंत्रियों के सम्मेलन का हाथ है। मौजूदा समय में इसके 45 सदस्य हैं : अफगानिस्तान, अल्जीरिया, बहराइन, बेनिन, ब्रुनेई, बुरकीना फासो, कमरुन, चाड, कोमोरोस, जिबुती, मिस्र, गैबन, मांबिया, गायना, गाया, बिसाव, इंडोनेशिया, ईरान, इराक, जोर्डन, कुवैत, लेबनान, लिबिया, मलयेशिया, मालद्वीप, माली मोरीतानिया, मोरक्को, नाइजर, नाइजेरिया, ओमन, पाकिस्तान, पेलेएटाइन, कावर, साउदी अरबिया, सिनेगल, सिपेरा, लिओन, सोमालिया, सुडान, सीरिया, तुनुसिया, टर्की, युगांडा, संयुक्त अरब अमीरात तथा यमन।

18.6.1 लक्ष्य और उद्देश्य

1972 में अंगीकृत चार्टर में इस्लामिक सम्मेलन संगठन के निम्नलिखित उद्देश्य तय किये गये हैं :

1) सदस्य राज्यों के बीच इस्लामिक एकजुटता को बढ़ावा देना,
2) सदस्य राज्यों के बीच आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक व दूसरे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सहयोग को मजबूत करना, तथा जो सदस्य राज्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के सदस्य हैं उनके बीच मंत्रणा करना।
3) नस्लवादी अलगाव व भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास करना और उपनिवेशवाद की हर शक्ल का निटाना।
4) न्याय पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के समर्थन में आवश्यक कार्रवाई करना,
5) पवित्र स्थलों की सुरक्षा के लिए किये जा रहे प्रयासों में समन्वय कायम करना, फिलीस्तीनी लोगों के संघर्ष को समर्थन देना और उनके अधिकारों को वापस दिलाना तथा उनके राष्ट्र को मुक्त करना।
6) मर्यादा, स्वतंत्रता और राष्ट्रीय अधिकारों की सुरक्षा के मद्देनजर सभी मुस्लिम आवाज की लड़ाई को मजबूत कराना,
7) सदस्य राज्यों व दूसरों देशों के बीच सहयोग व समझ की बढ़ोतरी के लिए माकूल माहौल तैयार करना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.6.2 इस्लामिक सम्मेलन संगठन के अंग (निकाय)

विगत वर्षों में आई ओ सी अपने सदस्य राज्यों के आर्थिक, सांस्कृतिक, मानवीय व राजनीतिक मुद्दों के क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने की सक्रिया कोशिश करती रही है। इसके लिए उसने कार्यक्रमों की शुरुआत की है तथा 20 करोड़ अमरीकी डॉलर की पूँजी के साथ इस्लामिक पुनर्बीमा निगम का गठन किया है। संगठन पूरी दुनिया में मुसलिम समुदायों की शिक्षा को संरक्षण देता है तथा इस्लामिक एकजुटता कोष की सहायता से नाइजर, युगांडा तथा मलेशिया में इस्लामिक विश्वविद्यालयों की स्थापना की है। राजनीतिक क्षेत्र में इसकी गतिविधियाँ फिर भी फिलीस्तीन और फिलीस्तीन मुक्ति मोर्चा को मान्यता देने तक ही समिति रही है। 1981 के शिखर सम्मेलन में जेरूसलम व इजरायल अधिकृत क्षेत्र की मुक्ति के लिए जिहाद। पवित्र युद्ध—अनिवार्य रूप से सैनिक अर्थ में नहीं का आव्हान किया गया था। साथ ही इसमें इजरायल के आर्थिक बहिष्कार की बात भी शामिल थी। पिछले 15 सालों में यह अफगानिस्तान से रूसी सैनिकों को हटाने की माँग भी करता रहा। वास्तव में सम्मेलन में मुस्लिम देशों से 1980 के ओलम्पिक में भाग न लेने के लिए कहा गया था। जब तक कि अफगानिस्तान से रूसी सैनिकों की वापसी नहीं हो जाती। यद्यपि राजनीतिक क्षेत्र में सहयोग व सहमति कायम करने में यह बहुत सफल नहीं रहा है। फिर भी यह एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय समुदाय समूह है।

18.7 अफ्रीकी एकता संगठन (ओ.ए.यू.)

अफ्रीकी एकता एक बहुद्देशीय क्षेत्रीय संगठन तो है ही, सदस्यता की दृष्टि से सबसे बड़ा है। इसकी स्थापना 1963 में हुई थी। शुरू में इसके 30 सदस्य थे जो आज बढ़कर 51 तक पहुँच गये हैं। ये सभी सदस्य अफ्रीका के हैं क्योकि ओ ए यू का घोषणा पत्र गैर अफ्रीकी सदस्यता को मान्यता नहीं देता। दूसरे केवल स्वतंत्र एवं संप्रभु राज्य ही इसके सदस्य हो सकते हैं। 1990 में आजादी हासिल होने के बाद नामिबिया इसका 51 वां सदस्य बना।

18.7.1 उद्देश्य और सिद्धांत

ओ ए यू के निम्नांकित उद्देश्य हैं :

i) अफ्रीकी राज्यों के बीच एकता व एकजुटता को बढावा देना,

ii) अफ्रीकी लोगों के बेहतर जीवन के लिए सहयोग व प्रयासों का समन्वय करना,

iii) अफ्रीकी राज्यों की संप्रभुता, सीमाई अखंडता व स्वतंत्रता की रक्षा करना,

iv) अफ्रीका से हर तरह के उपनिवेशवाद को खत्म करना,

v) संयुक्त राष्ट्र के चार्टर और मानवाधिकारों की सार्वभौम उद्घोषणा के प्रति आदरभाव रखते हुए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना।

ओ ए यू के बुनियादी सिद्धांतों में शामिल है - 1. आपसी विवादों का बातचीत, मध्यस्थता, मेलजोल, अथवा सुलह के जरिये निपटारा करना, 2. राजनीतिक हत्याओं व तोड़फाड़ की कार्यवाइयों की बेबाक भर्त्सना करना, तथा 3. सभी खेमों के साथ गुटनिरपेक्षता की नीति पर जोर देना।

ओ ए यू की स्थापना के समय घाना ने एक केन्द्रीय राजनीतिक संगठन बनाने की कोशिश की थी, एक ऐसे संगठन की जिसे साझी विदेश नीति, साझी योजना व आर्थिक विकास, साझी मुद्रा तथा साझी सुरक्षा व्यवस्था निर्धारित करने का अधिकार प्राप्त होगा। ओ ए यू चार्टर का अनुमोदन करने वाले अधिकांश देशों के राज्याध्यक्षों को यह प्रस्ताव पसंद नहीं था क्योंकि इसमें राष्ट्रीय संप्रभुता को तिलांजलि के प्रस्ताव के बदले एक ऐसे शिथिल संगठन को स्वीकारा गया जिसके पास एकता की दिशा में काम करने का संकुचित अधिकार होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.7.2 अंग और संस्थाएँ

राज्याध्यक्षों की वार्षिक एसेंबली ही ओ ए यू का सर्वोच्च सत्ता प्राप्त निकाय है। मंत्रिपरिषद इस सर्वोच्च अंग के एजेंडे का निर्धारण करती है। संगठन के कार्यों की निगरानी के लिए यह साल में दो बार बैठती है। आपातकालीन अवस्था में इसका सत्र कभी भी आहूत किया जा सकता है। इस सर्वोच्च निकाय के निर्णयों के कार्यान्वयन की जिम्मेवारी मंत्रिपरिषद पर होती है। जनरल सेकेटेरियट संगठन के दैनंदिन कार्यों का सपादन करता है। साथ ही निर्णयकारी निकायों की नियमित बैठकों का बंदोबस्त भी करता है। प्रशासकीय महासचिव सचिवालय का प्रधान होता है। पदनाम से ही स्पष्ट है कि अधिकारी को सीमित मामलों में ही हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा, पाँच विशिष्ट प्रकार्य आयोग तथा एक सुलह, मेलजोल व मध्यस्थता आयोग मिलकर ओ ए यू के पूरे संगठनिक ढाँचों का निर्माण करते हैं।

18.7.3 भूमिका और कार्य

क्षेत्रीय राजनीतिक, आर्थिक अथवा शरणार्थी समस्याओं को सुलझाने में ओ ए यू की कोई प्रभावी भूमिका नहीं रही है। पिछले 30 सालों में इसके सामने अनेक ऐसे संकट आये जिनसे संगठन के टूट जाने का खतरा था। लेकिन लाचार होकर देखते रहने के अलावा यह ज्यादा कुछ न कर सका। अफ्रीका के अनेक देशों को गृहयुद्ध व गोरिल्ला संघर्ष के दंश सहने पड़े हैं। सही है कि दक्षिण अफ्रीका अथवा रोडेशिसा के पूर्ववर्ती श्वेत आधिपत्य वाले क्षेत्रों के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों के असल कार्यान्वयन का मसला आने पर अफ्रीकी राज्यों ने व्यक्तिगत स्तर पर संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव का उल्लंघन करते हुए नस्लवादी दक्षिण अफ्रीकी प्रशासन के साथ व्यापारिक संबंध बनाये रखा। व्यापार नाकेबंदी के प्रस्ताव को अमल में नहीं लाया जा सका। तथापि राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक मसलों पर ओ ए यू की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं। सबसे पहले 1965 में आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में निरंतर आधार पर पारस्परिक सहयोग करने के लिए ओ ए यू तथा संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक आयोग के बीच समझौते पर हस्ताक्षर किए गए तथा अफ्रीका मे आर्थिक व सामाजिक विकास को आसान बनाया जा सके। दूसरे 1981 में उसने मानवाधिकार व जनाधिकार पर बने घोषणा पत्र को अंगीकार किया। यह घोषणा पत्र 1986 से लागू है। ओ ए यू ऐसा तीसरा क्षेत्रीय संगठन (यूरोपीय परिषद और ओ ए एस को छोड़कर) है जिसके द्वारा क्षेत्रीय मानवाधिकार संधि तथा उसके कार्यान्वयन के उपाय मौजूद हैं।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) सार्क के आठ महत्वपूर्ण उद्देश्यों की सूची बनाएँ।

....

....

....

....

....

....

2) क्षेत्रीय सहयोग कायम करने में सार्क बहुत सफल क्यों नहीं हुआ है ?

....

....

....

....

....

....

3) क्यों ओ ए यू एक सफल संगठन नहीं है ?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

18.8 सारांश

क्षेत्रीय संगठनों की प्रासंगिकता पर चर्चा से इस इकाई की शुरुआत की गयी है। इस इकाई में छह प्रकार के महत्वपूर्णण क्षेत्रीय संगठनों का सर्वेक्षण किया गया और प्रत्येक के निर्माण की अलग कहानी व अलग कारण थे। हमने देखा कि अलग-अलग कारणों अथवा कारकों जैसे पड़ोसी राज्यों के छोटे समूहों के बीच उनके हितों, परंपराओं व मूल्य बोधों की एकरुपता की वजह से ये संगठन अस्तित्व में आये। इसके अलावा यह दर्शाता है कि भौगिलिक क्षेत्र में सीमित कुछेक राज्यों में राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक समन्वयन स्थापित करना जितना आसान है उतना वैश्विक स्तर पर नहीं।

साथ ही इस इकाई में हमें महत्वपूर्ण क्षेत्रीय संगठनों की उपलब्धियों और उनकी कमियों से वाकिफ होने में भी मदद मिली है।

18.9 शब्दावली

क्षेत्रीय एकीकरण : वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत राष्ट्र समूह अथवा दूसरी राजनीतिक इकाइयाँ अपनी राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं को दरकिनार बृहत्तर क्षेत्रीय पहचान का निर्माण करते हैं

मुक्त व्यापार क्षेत्र : ऐसा क्षेत्र जहाँ वस्तुओं व उत्पादों का बिना तटकर व सीमाशुल्क के निर्बाध आवागमन संभव हो पाता है।

साझा बाज़ार : एक सीमाई संघ जहाँ श्रम व पूँजी का बेरोकटोक आदान प्रदान किया जा सके। उत्पाद और कारक का एकीकरण निर्धारित क्षेत्र की विशेषता होती है।

नस्लवाद : श्वेत अल्पसंख्यक प्रशासन के दौरान दक्षिण अफ्रीका में नस्लवादी भेदभाव की अधिकारिक नीति। पिछले 50 सालों से जारी इस शासन व्यवस्था का स्थानापन्न 1994 के मई महीने में नेल्सन मंडेला की अगुआई में स्थापित प्रथम लोकतांत्रिक सरकार द्वारा हुआ।

18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बेनेट, ए लोरॉय, 1918 *इंटरनेशनल आर्गेनाइजेशन्स - प्रिंसिपुल्स एण्ड इश्युज,* चौथा संस्करण (डगलवुड्स क्लिफ्स, एन जे प्रंटिस हॉल इंटरनेशनल)।

बोचार्ट, क्लौस दायतेर, 1995 *यूरोपीय एकीकरण - यूरोपीय संघ का उद्भव व विकास।* (लक्जामबर्ग : यूरोपीय समुदाय के अधिकारिक प्रकाशन का कार्यालय) ।

इलाजर, डेनियल जे, (संपादित), 1994 *विश्व की संघीय व्यवस्था ए हैंडबुक ऑफ फेडेरल, कान्फेडरेशन एण्ड आटोनॉमी अरेंजमैंट्स,* दूसरा संस्करण (लंदन : लॉगमैन)

18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इस इकाई का भाग 18.1 देखें।
2) इस इकाई का भाग 18.3.1 के अंतिम दो पैरा देखें।
3) इस इकाई का भाग 18.3.1 में वर्णित प्रथम तीन लक्ष्यों को देखें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) इस इकाई का भाग 18.5.1 देखें।
2) इस इकाई का भाग 18.5.3 देखें।
3) इस इकाई का भाग 18.7.3 देखें।

इकाई 19 पर्यावरण और सतत् मानव विकास

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 सतत् मानव विकास की संकल्पना
  19.2.1 मानव विकास प्रतिमान के अवयव
  19.2.2 सतत् मानव विकास की संकल्पना एवं परिभाषा
19.3 सतत् मानव विकास और पर्यावरण
  19.3.1 आर्थिक गतिविधियां और पर्यावरण
  19.3.2 जल
  19.3.3 वायु प्रदूषण
  19.3.4 ठोस और खतरनाक अपशिष्ट (कूड़ा करकट)
  19.3.5 भूमि और निवास स्थान
  19.3.6 वातावरणीय बदलाव
19.4 अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय खतरा
  19.4.1 अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय खतरे का परिचय
  19.4.2 एजेन्डा-21 और रियो घोषणा
  19.4.3 क्या बाजार यंत्रावली पर्यावरणीय समस्या का समाधन कर सकता है ?
  19.4.4 बहु पणधारी भागीदारी
19.5 सारांश
19.6 शब्दावली
19.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
19.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- सतत् मानव विकास एवं पर्यावरण के अंतर स्पष्ट कर सकेंगे,
- आर्थिक विकास एवं सतत् मानव विकास से व्यापार को दूर रख कर समझा सकेंगे, और
- विश्व व्यापी पर्यावरण के साथ सरोकार तथा सतत् मानव विकास को बनाए रखने में भागीदारी का चयन कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

1950 एवं 1960 के दशक में विकासवादी सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देते हुए आर्थिक वृद्धि में सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) की वृद्धि पर अत्याधिक बल दिया गया था। 1970 के दशक में विश्व बढ़ती गरीबी का सामना कर रहा था तथा उसके लिए बुनियादी आवश्यकताओं को पूरी करने का दृष्टिकोण रखा गया था जो असफल रहा क्योंकि इसमें न केवल कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों का स्वार्थ था बल्कि यह बहुत से दलितों की असहायता का परिणाम भी था। 1980 के दशक में भी स्वार्थपरता तथा असहायता देखने को मिली। ये दोनों ही सामान्य रूप से पर्यावरण में गिरावट की व्यापक घोर समस्या तथा विशेषरूप से ऋण एवं शोषण में वृद्धि के साथ साथ देशों के बीच बढ़ती असमानताओं में वृद्धि का माहौल बना है। यद्यपि 1990 के दशक में धरातल के क्षितिज पर कुछ आशाएं दिखाई देने लगी जो संतुलित प्रबंधकीय नीतियों, अंतर अनुशासनात्मक संबंधों, तकनीकी प्रगति से पैदा हुई लगातार फायदों, साझेदारी की भूमिका इत्यादि से बनी है। अतः वह धुरी, जिसके चारों तरफ नया प्रतिमान परिक्रमा कर रहा है वह है सतत् मानव विकास, मानव विकास को अकेले आर्थिक विकास को आधार बना कर प्रेरित नहीं किया जा सकता है। आर्थिक विकास की मात्रा

व्यापक विकास का केवल एक आयाम है। विकास प्रक्रिया में आय, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छ पर्यावरण तथा अभिव्यक्ति् की स्वतंत्रता को उपलब्ध कराना विकास बहुत ही कठिन एवं गंभीर कार्य है।

सतत् मानव विकास प्रारंभिक रूप से भौतिक उपभोग के दोहरे प्रतिमान से संबंधित है। यह प्रतिमान पर्यावरण की सीमाओं को मान्यता प्रदान करता है। हालांकि सतत् मानव विकास सामान्यतया पर्यावरण के संरक्षण के लिए नहीं है। इसमें भी विकास का एक नया सिद्धांत शामिल है जो कि विश्व के सीमित प्राकृतिक संसाधनो को नष्ट या नुक्सान किए बिना विश्व के लोगों को विकास का अवसर उपलब्ध कराता है। इसलिए सतत् विकास एक प्रक्रिया है जिसमें आर्थिक, राजकोषिय, कृषि, औद्योगिक तथा दूसरी नीतियों को ध्यानपूर्वक आर्थिक सामाजिक व पारिस्थितिक सतत् विकास के लिए तैयार किया जाता है।

सतत् प्रक्रिया भी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तर पर दूरवर्ती बदलाव की मांग करता है। राष्ट्रीय स्तर पर सतत् प्रक्रिया आज की बाध्यताओं तथा कल की आवश्यकताओं में निजी पहलकदमी तथा सार्वजनिक कार्यो में व्यक्तिगत लालच तथा सामाजिक सद्भावना में संतुलन की मांग करती है। सतत प्रक्रिया में चलते सैनिक खर्चो एवं अक्षम सार्वजनिक निवेश से अधिक मानव निवेश तथा पर्यावरण को सुरक्षित तकनीकों की तरफ मुख्य रूप से बजटीय पुनर्निर्माण की अत्यंत आवश्यकता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सतत् विकास एक मतैक्य की मांग करता है कि प्रत्येक व्यक्ति के भरपूर सहयोग के बिना विश्व किसी के लिए भी सुरक्षित नहीं रह सकता है। इसके लिए विखंडित वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था से समान विश्व व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता है। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था ने अंतर्राष्ट्रीय बाजार (वस्तुओं, सेवाओं तथा वित्तीय पूंजी का बाजार) के असमान बढ़ावे के परिणामस्वरूप गरीब राष्ट्र को प्रत्येक वर्ष मिलने वाले 500 करोड़ डालर से अधिक के आर्थिक अवसरों को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार के असमानता पूर्ण विश्व में एक विश्व की संकल्पना करना जब तक व्यर्थ रहेगी तब तक विश्व व्यापी सुधार नहीं किया जायेगा। भूमंडलीय सुधार के बारे में विचार भी नहीं किया जा सकता है। इसलिए बिना समरूपता के सतत् प्रक्रिया हमेशा स्वीकार न करने वाला सिद्धांत बन कर रह जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.2 सतत् मानव विकास की संकल्पना

यू एन डी पी की मानव विकास रिपोर्ट में मानव विकास को परिभाषित करते हुए लोगों की पसंदगी के दायरे को बढ़ाया गया है। यह वास्तव में बुनियादी आवश्यकताओं के दृष्टिकोण को विस्तृत किया है। दृष्टिकोण हमें बताता है कि विकास प्रयासों का उद्देश्य केवल बुनियादी संपूर्ण मानव जाति को पूर्णजीवन के अवसर उपलब्ध कराना है। वस्तुओं ढेर या विशिष्ट आवश्यकताओं के अर्थ में कुछ बुनियादी व्याख्याएं हैं कि मानव विकास इससे दूर हटने का प्रयत्न कर रहा है। एक अर्थ में मानव विकास की बुनियादी आवश्यकताओं के पीछे रहता है क्योंकि यह राष्ट्र राज्यों के अंदर एवं राष्ट्र राज्यों के मध्य निरपेक्ष रूप से गरीब अमीर संपूर्ण मानव जाति से संबंधित है।

19.2.1 मानव विकास प्रतिमान के अवयव

मानव विकास प्रतिमान अर्थात् मानव विकास परिदर्श के अत्यावश्यक रूप से चार अवयव हैं : समानता, संरक्षणता, उत्पादकता, प्राधिकारिता। जबसे मानव विकास परिदर्श आर्थिक विकास की परम्परागत संकल्पना से भिन्न हुआ है प्रत्येक की आवश्यकताओं का इसकी उचित संभावना में ध्यान रखा गया है। जब से, समानता के विकास ने जनता की इच्छाओं उसके चुनने के अधिकार को वृहत बनाया है लोगों को चाहिए कि वह अवसरों का उचित स्तर तक लाभ उठाये। इसी तरह यदि अवसरों के मिलने के बाद भी समानता का असमान परिणाम का अर्थ यह है कि उसे सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक अवसरों को बढ़ाने में भी समानता मिलनी चाहिए। इससे हम मानव विकास के परिदर्श में मूल अधिकारों के समान मानते हैं। यह इस धारणा पर अधारित है कि संपूर्ण मानव जाति अपनी क्षमताओं को अत्याधिक विकसित करने में समर्थ हो तथा इन क्षमताओं का सभी संभव क्षेत्रों में सबसे अच्छा प्रयोग करके व्यापक उपयोगी बनाने में समर्थ हों।

निरंतरता

निरंतरता मानव विकास परिदर्श का दूसरा आवश्यक अवयव है। निरंतरा का अर्थ प्राकृतिक संसाधनों का मात्र नवीकरण करना ही नहीं है यह तो केवल सतत् मानव विकास का केवल एक ही

पहलू है। यह मानव विकास की वह निरंतरता है जिसमें भौतिक पूंजी, वित्तीय मानव तथा पर्यावरण आदि रूप शामिल है। इसे अलग रखते हुए मानव जीवन को निरंतरता देते हुए संरक्षित रखना अत्यंत आवश्यक है।

यह जरूरी नहीं है कि सभी प्रकार की पूंजी को उसके वर्तमान रूप में ही संरक्षित रखा जाये। निश्चित रूप से प्रौद्योगिकी प्रगति ने पूंजी को सुरक्षित रखने के लिए उसके अनेक विकल्प हमें दिए हैं और यदि मूल्य प्रभावी विकल्प उपलब्ध हैं, तो वे मानव विकास को निरंतर बनाए रखने के लिए काम में लाए जा सकते हैं। इसलिए जो कुछ होगा वह कम से कम मानव हित की संकल्पना को मध्य नजर रखते हुए समान स्तर के विकल्प तैयार करेगा जो मनुष्य की इच्छाओं के अनुरूप भी होगा। निरंतरता एक परिवर्तनशील संकल्पना होती है जो अंतरपीढ़ी एवं अंतरा पीढी के समान अवसरों को निश्चित करते हुए वर्तमान और भविष्य के अवसरों के बीच भागीदारी या उसमें हिस्सेदारी प्राप्त करने में केंद्रित होती है।

उत्पादकता

मानव विकास दृष्टिकोण का दूसरा आवश्यक आयाम उत्पादकता है। यह मांग करता है कि मानव संसाधन में समुचित निवेश हो जो उसकी गतिशीलता को बनाए रखने में हित साधन का काम करे। ध्यान रहे कुछ पूर्वी एशियाई देशों ने अपने विकास को मानव पूंजी में निवेश के माध्यम से विकास दर्शाया है अथवा वे विकसित देश बन सके हैं। जापान और कोरिया के पास लोह के भण्डार न होते हुए भी वे स्टील के बहुत बड़े निर्यातकर्ता हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इन देशों ने अपने मानव संसाधनों को इतना विकसित कर लिया है कि एक वस्तु के न होते हुए भी वे उसके अच्छे निर्यात करने वाले देश हैं।

प्राधिकारिता

मानव विकास परिदर्शक सीधा केन्द्र बिंदु उस विकास पर होता है जो लोगों की भागीदारी व सहयोग की प्रक्रिया में नीहित होता है और जिसमें मानव जीवन को सुरक्षित रखने की गारंटी होती है। गरीबों के लिए निर्धारण की कार्यनीति मानव प्रतिष्ठा में नीहित नहीं होती है और न ही उसे हमेशा बनाये रखा जा सकता है। इसलिए मानव विकास परिदर्श लोगों को संपूर्ण प्राधिकारिता का हक प्रदान करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्राधिकारिता का अर्थ यह है कि लोग अपनी स्वयं की इच्छा से चुनने की शक्ति रखते हों एवं वे इस स्थिति में हों कि अपनी पंसद का कार्य करने में समर्थ हों। इसे राजनीतिक प्रजातंत्र के माध्यम से पूरा किया जा सकता है जहां वे लोग अपने जीवन के संबंध में लिए जाने वाले निर्णयों को प्रभावित कर सकें। इस आवश्यकता को आर्थिक उदारीकरण के माध्यम से भी पूरा किया जा सकता है जहां पर नियंत्रण और नियम विनियमों की पाबंदी से मुक्त होते हैं। दूसरे शब्दों में इसे हम इस प्रकार कह सकते हैं कि शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाए जिससे प्राधिकारिता का हक प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से प्राप्त हो। अतः उपर्युक्त विवरण से यह बात अवश्य स्पस्ट हो गई है कि मानव विकास परिदर्श सभी तरह की चुनने की इच्छाओं का स्वागत करता है चाहे वे पसंदगियां बुनियादी आवश्यकता की पुरानी से पुरानी संकल्पना ही क्यों न हो अथवा आर्थिक दबावों के कारण परिभाषित हुई हों।

19.2.2 सतत् मानव विकास की संकल्पना एवं परिभाषा

सतत् मानव विकास की संकल्पना वह विकास है जो हमेशा टिकाऊ (चिरस्थाई) होता है। यह भी संभव है कि आज जो लोग विकास के फायदों का आनंद उठाते रहे हैं वे शायद इसकी कीमत भविष्य में आने वाली पीढ़ी के जीवन को पृथ्वी के सीमित संसाधनों तथा पर्यावरण के विघटन से दुखदायी बनाने में लगें हो। पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग ने (हमारे समान भविष्य 1987) सतत् विकास के सामान्य सिद्धांत को अपनाया है वह है "वर्तमान पीढ़ी को भविष्य की पीढ़ी की योग्यता से कोई समझौता किये बिना अपनी आवश्यकता पूरी करनी चाहिए जिससे भविष्य की पीढ़ी भी अपनी आवश्यकतापूरी कर सकें।"

सतत् मानव विकास जो कि निर्धारित करता है कि "वर्तमान पीढ़ी को भविष्य में आने वाली पीढ़ी की आवश्यकताओं की परिपूर्ति से समझौता नहीं करना चाहिए" इसकी मांग है कि पर्यावरणीय धरोहर के विघटन या ह्रासमान को हमें जानबूझकर रोकना होगा जिससे कि संसाधन आधारित व

पारिस्थितिकी आधारित मानव गतिविधियों को हमेशा के लिए बनाये रखा जा सके। भिन्न प्रकार की पर्यावरणीय संपत्ति, नवीनीकृत और गैर नवीनीकृत संसाधनों तथा अवनति विभिन्न प्रकार के कार्य जो कि पारिस्थितिकी को सतत् बनाये रखने को निर्धारित करता है। इस विषय को निम्नलिखित दो बॉक्सों में बताया गया है।

बाक्स - 1

वर्तमान की आवश्यकताओं पर सम्मेलन

- **आर्थिक आवश्यकताएं** — इसमें पर्याप्त आजीविका या उत्पादक सम्पत्ति का बढ़ावा शामिल है तथा आर्थिक सुरक्षा भी जो कि बेरोजगारी, बीमार, असमर्थ या दूसरे तरीके से अयोग्य हैं उनकी आजीविका को सुरक्षित रखने के लिए शामिल है।
- **सामाजिक, सांस्कृतिक तथा स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताएं** — इसमें आवास शामिल है जो स्वास्थ्य, सुरक्षित भार उठाने योग्य तथा संरक्षित हो और उसके नजदीक पाइप का पानी, स्वच्छ, सफाई के लिए नालियां परिवहन, स्वास्थ्य केन्द्र, शिक्षा, बच्चे के विकास की सुविधाएं उपलब्ध हों। घर यानि आवास, कार्य का स्थान तथा आवासीय पर्यावरण रासायनिक प्रदूषण सहित पर्यावरणीय खतरों से सुरक्षित हों। लोगों की पसंदगी और नियंत्रण से संबंधित आवश्यकताएं भी महत्वपूर्ण हैं। आवास के आस पड़ोस में जहाँ व्यक्ति निवास करते हैं उसका एक अलग मूल्य होता है क्योंकि उसे सांस्कृतिक एवं सामाजिक सम्पत्तियां उसे आस पास के वातावरण में ही प्राप्त होती हैं। आवास और सेवाएं जिनमें विशिष्ट सेवाएं बच्चों को उपलब्ध होनी चाहिए और इसे उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी प्रोढ़ों की है जिसमें प्रायः महिलाओं की जिम्मेदारी अधिक होती है। इसलिए राष्ट्रों के बीच आय का समान वितरण होना आवश्यक है और इससे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्र के अंदर भी समान वितरण हो ताकि इनकी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।
- **राजनीतिक आवश्यकताएं** — इसमें वे स्वतंत्रता शामिल हैं जैसे कि राष्ट्रीय और स्थानीय राजनीति में भागीदारी करना तथा एक व्यापक ढांचे के अंतर्गत किसी के ग्रह या पड़ौसी के विकास व प्रबंध से संबंधित निर्णयों में साझीदारी जो कि नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए सम्मान स्थापित करता है तथा पर्यावरणीय विधानों को लागू करने में स्वतंत्र है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोतः मिल्टन डायना और डेविट सैटरथवाटे "सीटीज एंड ससेटनेबुल डवलैपमेंट भूमंडलीय फोरम" 94 पृष्ठभूमि पेपर -94 मेनचेष्टर नगर परिषद, जून, 1994.

बाक्स - 2

भविष्य की पीढी से समझौता किए बना अपनी आवश्यकताओं की परिपूर्ति करना

- **फिर से पैदा न होने वाले संसाधनों के प्रयोग व अपशिष्टता को कम करना** — घरों, वाणिज्य उद्योग तथा परिवहन के सहित प्राचीनतम ईधन को कम से कम इस्तेमाल किया जाए। ऐसे ईधन का प्रयोग किया जाए जो फिर से पैदा हो सकता हो। अर्थात् उसके संसाधन पुनः तैयार हो सकते हैं। और, मिनरल वाटर का न्यूनतमीकरण (प्रयोग में कमी, पुर्नप्रयोग, पुर्नसंरचना) सांस्कृतिक ऐतिहासिक तथा प्राकृतिक सम्पदाओं व (शहरों के भीतर) भी, जो अहस्तांतरणीय है तथा पुनः पैदा नहीं हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, ऐतिहासिक शहर और पार्क तथा प्राकृतिक भूखंड जो खेल और प्रदत्त के मनोरंजन के लिए स्थल आदि होते हैं।
- **पुनः उत्पादित संसाधनों का संरक्षित प्रयोग** — शुद्ध जल के संसाधन या शहरीकरण उस स्तर तक हो जिससे उसे पारिस्थितिकी को संरक्षित किया जा सकता है। जैसे कि भूमि क्षेत्रों के अंदर पारिस्थितिक अभिजान का संरक्षण होना चाहिए। किसी शहर के उत्पादक व उपभोक्ता, कृषि फसले लकड़ी तथा जैविक ईधन बनाते हैं।
- **स्थानीय और भूमंडलीय अवनति का शहरीकरण के भीतर शोषित क्षमता से ह्रास** — नवीनयी अवनति है (नादियों की क्षमता जो बौद्धिक ह्रास को तोड़ती है (तथा अनवीनीय अर्थात् है) रसायन, जिसमें हाउस गैस ऑजोन, शतीकरण के रसायन तथा कई अन्य शामिल होते हैं।

स्रोत: मिटलिन डायना एंड डेविड सेटरडवेट : "सिटीस एंड सस्टेनेबुल डवेलपमेंट" विश्व फोरम का पृष्ठभूमिक पत्र, 94, मैनचेस्टर सीटी परिषद, जून 1994

सतत् मानव विकास में विकास एवं पर्यावरण दोनों आयामों को ध्यान में रखते हुए, सतत् मानव विकास को जांचने की महत्वपूर्ण कसौटियां हो सकती हैं:

- आवासीय जीवन स्तर के साथ मौजूदा गरीबी का स्तर सामाजिक दूरी एवं एकता और सामाजिक राजनैतिक स्थायीत्व की कोटि।
- अपशिष्ट का दुबारा प्रयोग व पुनः आवर्तन या उसके प्रयोग को कम करने के साथ संसाधनों को फिर से प्रयोग के मापांकन तथा प्रकृति।
- जो मांग के गतिमान स्तर को निश्चित करता है, उन साधनों के प्रयोग की प्रकृति व पैमाना, जिसमें वे प्रावधान शामिल हैं। तथा,
- उत्पादन व उपभोग की गतिविधियों से उत्पन्न हुए गैर पैदा होने वाले अपशिष्टों की प्रकृति व पैमाना तथा वे साधन जिससे ये अपशिष्ट खत्म किये जाते हैं। यह वे विस्तार भी शामिल करता है जो अपशिष्ट मानव के स्वास्थ्य, प्राकृतिक व्यवस्था व सुख सुविधाओं को प्रभावित करता है।

फिर भी यह व्याख्या वर्तमान और भविष्य की पीढ़ी की आवश्यकताओं की स्थिति के क्षेत्रों के बारे में चुप रहती है। यह सोचनीय प्राथमिकताएं हैं कि विकासशील देश साधारणतः अपने वर्तमान उपभोग स्तर से संतुष्ट नहीं होते हैं जबकि विकसित देश विश्व की आय का 85 प्रतिशत उपभोग करने के अधिकारी नहीं हैं जब तक कि उपभोग के वर्तमान तरीकों के मानकों को बदल नहीं दिया जाता है। वास्तव में तथ्य है कि विश्व पर्यावरण के संरक्षण का वर्तमान सवाल विश्व के समक्ष है वह आय व सम्पदा के बटवारे के बारे में गंभीर प्रश्न खड़े करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

निस्संदेह, मानव जीवन को संरक्षित करना हमारी परम आवश्यकता है। सतत् भौतिक पर्यावरण का संरक्षण करना एक उपाय है अंत नहीं है, जैसे कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि करना मानव विकास की ओर जाना तय करता है। इसलिए पर्यावरण पर वाद विवाद चल रहा है यह विमर्श को पर्यावरण को ह्रास से बचाने के लिए एक मानवीय रूप दिया जाना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में हम यूं कह सकते हैं सतत् मानव विकास संरक्षण को हम लोगों का विकासमान कर चल रहे हैं। इसलिए हमारे वाद–विवाद का मुख्य मुद्दा पेड़ पौधे न होकर मानव के विकास पर केंद्रित है।

सतत विकास की संकल्पना इस मुद्दे पर लागू होती है कि प्रत्येक पीढ़ी अपनी आवश्यकताओं को अपने समय के संसाधनों से अपनी पूर्ति करने कि उधार के पर्यावरण पर जीवित रहे जिसकी कभी भी पूर्ति नहीं की जा सकती है। ग्रहण शब्द में चार आयामों को शामिल किया गया है जो निम्न प्रकार से हैं :

1) प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट करने से पर्यावरणीय धरोहर के संयोजन की उपेक्षा

2) आरक्षित उधार द्वारा वित्तीय की उपेक्षा

3) मानव पूंजी के निवेश की उपेक्षा करके सामाजिक ऋण को न चुकाना

4) शहरीकरण और बिना अनियंत्रित जनसंख्या विकास द्वारा जनसंख्यकीय की उपेक्षा करना।

मानव विकास संरक्षित हो सकता है यदि सही देखभाल की जाए, निसंदेह बजट नीति के माध्यम से भी, इन चारों क्षेत्रों में प्रत्येक पीढ़ी में संतुलन बनाया जा सकता है। इसलिए सतत् विकास का कार्य आर्थिक विकास से अलग रखना चाहिए तथा इसको भौतिक पर्यावरण की तरह ही देखा जाना नितांत आवश्यक है। इसे मानव जीवन में बदला जाना चाहिए। तथापि भौतिक संरक्षण करना इसका अंतिम उपाय है इसका अंत ही मानव जीवन को सतत् बनाए रखना है। विकास के अवसर और मानव की पसंद को भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखा जाना बहुत आवश्यक है ताकि आने वाली पीढ़ियां कल्याणकारी व उसका सुखद जीवन वर्तमान पीढ़ियों की तरह ही व्यतीत कर सके।

इन सब खामियों के बावजूद सतत् मानव जीवन के विकास का केंद्र बिंदु केवल भविष्य पर ही न

रखा जाए बल्कि उसका ध्यान वर्तमान के पर्यावरण पर भी होना आवश्यक है। इसके साथ ही यह भी हास्यास्पद रहेगा कि हम उस पीढ़ी की चिन्ता करने लगे जो अभी पैदा ही नहीं हुई है और वर्तमान पीढ़ी गरीबी रेखा के नीचे जी कर अपना वर्तमान नष्ट कर दे। इसलिए यह न तो आवश्यक है और न ही वांछनीय है कि आज की असमानताएं हमेशा बनी रहें। अतः तथ्य यह है कि यह भी सतता को बनाए रखें हैं और न इन्हें बनाए रखा जा सकता है। इसलिए विश्व की आय का समुचित ढांचा फिर से तैयार करना पड़ेगा और मानव विकास को सतत् बनाए रखने के लिए पूर्व शर्तों सहित कार्यनीतियों का निर्माण करना पड़ेगा।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना किजिए।

1) मानव विकास क्या है ? मानव विकास प्रतिमानों के भिन्न अवयव क्या क्या हैं।

....

....

....

....

2) हम मानव विकास को सतत् कैसे बनाये रख सकते हैं ?

....

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

3) सतत् मानव विकास के देश स्तर को बनाए रखने के लिए अपनाए जाने वाले साधनों के लिए कौन कौन से महत्वपूर्ण उपाय हैं ?

....

....

....

....

4) सतत मानव विकास न केवल भविष्य पर बल्कि वर्तमान पर भी अपना ध्यान केंद्रित करता है। स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

19.3 सतत् मानव विकास और पर्यावरण

आर्थिक विकास एवं ठोस पर्यावरणीय प्रबंध इस घोषणापत्र के एक दूसरे के पूरक पहलू हैं। पर्याप्त पर्यावरणीय संरक्षण के बिना विकास दुर्बल बना देने वाला होगा विकास के बिना पर्यावरणीय संरक्षण असफल होगा।" वर्ल्ड डवलपमेंट रिपोर्ट, 1992 (WDR)।

जैसे कि हम पहले ही भाग दो में वर्णन कर चुके हैं कि विकास पूर्णतया जनता के भले से जुड़ा हुआ है। जीवन स्तर का विकास तथा स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अवसरों के स्तर आर्थिक विकास के महत्वपूर्ण आयाम है। हालांकि आर्थिक विकास के उपाय पर्यावरण को विघटित नहीं करते हैं बल्कि आर्थिक सवंर्द्धन करते समय जो प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग करते हैं वे ही पर्यावरण को हानि पहुंचाते हैं। वास्तव में किसी भी प्रकार के पर्यावरणीय हानि को पूर्ति के लिए मौद्रिक मूल्य से प्रतिपूर्ति करना न तो संभव है और न ही वांछनीय होता है। यह जानना/समझना आवश्यक है कि विकास के नाम पर किस हद तक पर्यावरणीय गुणों को छोड़ा जा सकता है। इसी तरह पर्यावरणीय संरक्षण के नाम पर कितना विकास किया जा सकता है। विश्व विकास रिपोर्ट 1992 का तर्क है कि आर्थिक विकास व पर्यावरणीय फायदों को प्राप्त करने के लिए पर्यावरणीय गुणों का अत्याधिक त्याग किया गया तथा भविष्य में कितनी आर्थिक वृद्धि का त्याग किया जा सकेगा। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाने के लिए ठोस पर्यावरणीय प्रबंध की नीतियों को इससे जोड़ना पड़ेगा तब जाकर हमारी पर्यावरण एवं विकास की समस्याएं हल हो सकती है।

अब एक सुस्पष्ट सवाल सामने आता है कि कुछ आर्थिक गतिविधियां पर्यावरण को हानि पहुंचाने में सबसे आगे क्यों हैं। इसका एक संभावित उत्तर यह दिया जा सकता है कि बहुत सारे प्राकृतिक संसाधनों का बहुतायत रूप से प्रयोग किया जाता है तथा बहुत सी पर्यावरणीय वस्तु एवं सेवाओं को अंधाधुंध नष्ट करते हैं और उसका प्रयोग करते समय उसके भावी मूल्य को न समझ कर उसकी पूर्ति नहीं करते हैं। इसके बावजूद भी कुछ प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग किया जाता है तथा ज्यादातर मामलों में सम्पत्ति अधिकारों को लागू कराने के लिए प्रबंध की व्यवस्था नहीं है। इसका दूसरा संभव कारण यह हो सकता है कि कुछ परियोजनाओं के कारण सरकारी नीतियां पर्यावरण को हानि पहुंचाने में सहायक होती हैं। यह नीतिया वास्तव में अधिक हानिकारक होती हैं जो पर्यावरण को नष्ट कर देती हैं। इसका एक कारण और भी हो सकता है कि गरीब लोग जिनके पास में पर्याप्त संसाधन नहीं है और इस प्रकार न ही इनकी कोई पसंद होती है और इस तरह से यह गरीब लोग अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो कि उनको जीवित रखने के लिए आवश्यक है उसका उपभोग करते हैं और उनके इस अतिक्रमण से भी पर्यावरण को अत्याधिक हानि पहुंचती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आज के विश्व की सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरणीय चिन्ता यह है कि वे जिन संसाधनों का उपभोग करते हैं वे फिर से पैदा हो सकती हैं किंतु पुनः पैदा होने वाली पर्यावरण संबंधी वस्तु पहले जैसे स्तर पर और मूल्य की नहीं होती है उदाहरण के तौर पर हवा तथा पानी नवीनीकृत संसाधन हैं लेकिन उत्सर्जन व अपशिष्ट स्वांगीकरण की एक सीमा भी यहां मौजूद है। यदि प्रदूषण एक विशेष सीमा तक बढ़ता है तो पारिस्थितिकी तीव्रता से विघटित होती चली जायेगी। जहां पर मत्स्य पालन व वन अतिबिंदु तक पहुंच जाते हैं वहां पर उससे पारिस्थितिकी व विभिन्न प्रकारों से हानि हो सकती है।

19.3.1 आर्थिक गतिविधियां तथा पर्यावरण

जब संयुक्त रूप से उच्च आर्थिक गतिविधियां विपरीत तरीके से पर्यावरण पर प्रभावी डालती हैं तब यह माना जाता है कि तकनीकि, कर तथा पर्यावरणीय निवेश अपने स्थान पर स्थिर बैठे हुए हैं। आर्थिक गतिविधियों का एक पैमाना बढ़ता है तो यहां यह संभावना होती है कि पृथ्वी की धारणा क्षमता में भी वृद्धि हुई है। आर्थिक गतिविधियों एवं पर्यावरण के बीच जो चक्रिय संबंध बना हुआ है उसे सारणी 1 में दिया गया है। सारणी में स्पष्ट किया है कि अवयवों में अर्थव्यवस्था का पैमाना ही एक मात्र अवयव है जो पर्यावरणीय गुणों को निर्धारित करता है। यहां पर सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि वह अवयव जो पर्यावरणीय विघटन को गतिविधि की प्रति इकाई तक घटाने में लगे हैं। महत्वपूर्ण अवयव निम्न हैं :

संरचना : अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करना।

दक्षता : अर्थव्यवस्था में उत्पादन की प्रति इकाई का निवेश होता है।

विकल्प : उन संसाधनों का विकल्प स्थापित करने की क्षमता कमजोर हो गई हैं।

स्वच्छ तकनीकियां तथा प्रबंधकीय अनुभव—निवेश या उत्पाद की प्रति इकाई पर्यावरण को हानि पहुंचाने की क्षमता रखती है।

चार्ट 1

आर्थिक गतिविधियां एवं पर्यावरण

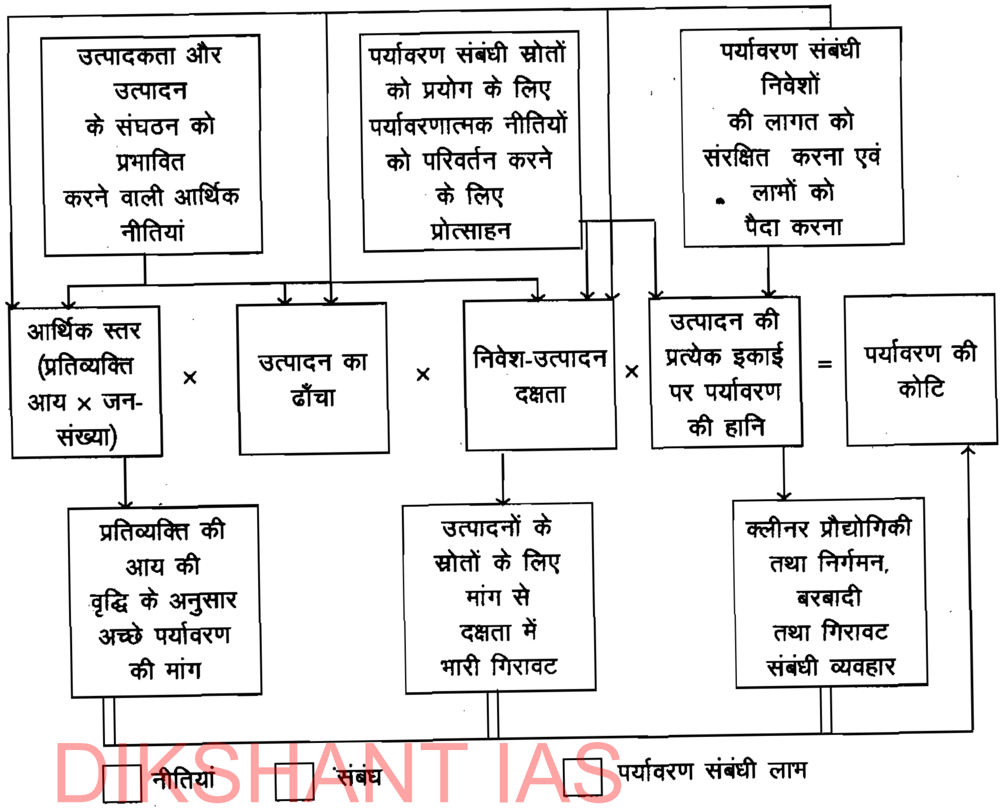

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत: विश्व विकास रिपोर्ट, 1992, विश्व बैंक। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, पृष्ठ-39 (चित्र 1.4)

आर्थिक नीतियां, पर्यावरण नीतियां और पर्यावरणीय निवेश में पर्यावरणीय संसाधनों के वास्तविक मूल्यों में व्यक्तिगत व्यवहार के ज्ञान से दृष्टि परिवर्तन करने में सहायक होता हैं। आर्थिक नीतियां उत्पादन के मानदण्ड, संरचना एवं दक्षता पर प्रभाव डालती हैं। जिसके परिणाम में पर्यावरण पर सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आर्थिक नीतियों से परिणामित कार्यकुशलता कमी कमी प्राकृतिक संसाधनों के निवेश को कम कर देता है तथा पर्यावरण की नीतियां पुनः प्रभावित करती हैं कि ऐसी तकनीक अपनाई जाए जो पर्यावरण को हानि न पहुंचाए। पर्यावरणीय नीतियों द्वारा बढ़ाई गई प्रेरणाएं बाह्यनिवेश को कम कर सकती है परन्तु वे वह लाभ जरूर पैदा करेंगी जो मानव कल्याण के लिए हितकर होती है। जिस पैमाने पर अर्थव्यवस्था बढ़ेगी, स्वच्छ पर्यावरण हेतु वृद्धि की मांग की संभावना होगी, निवेश के लिए ज्यादा संसाधनों की उपलब्धता के कारण प्रभावकारी होंगे। उदाहरण के तौर पर, बढ़ी हुई आय समाज का सार्वजनिक वस्तुओं एवं साधनों के वितरण की अनुमति देती है जैसे : स्वास्थ्य की देखभाल, शिक्षा इत्यादि। दूसरी तरफ आर्थिक विकास के पैमाने को पर्यावरण संभवतः नुक्सान पहुंचाता है। उदाहरण के लिए, कार्बन डाईआक्साइड उत्सर्जन, नगरीय अपशिष्ट इत्यादि, आय में वृद्धि होने लगती है। इसलिए, नियम, प्रमार, सुविधा या दूसरे आवश्यक साधनों के तहत् व्यवहार तथा दृष्टिकोण को बदलने के लिए पर्याप्त अभिप्रेरणाओं तथा प्रतिकूल अभिप्रेरणाओं का परचिय कराना आवश्यक है। तब भी बदलते व्यवहार की व्यक्तिगत शर्तें, व्यक्तिगत फायदों की तुलना में सापेक्षतः उच्च है जो अतिवृद्धि के प्रभाव का परिणाम है। यह दूसरे सभी देशों को कम पर्यावरणीय प्रभाव के साथ अधिक तीव्र विकास के लिए योग्य बनता है।

पर्यावरणीय ह्रास के मूलतः तीन खतरनाक प्रभाव हैं यह मानव स्वास्थ्य पर विपरित प्रभाव डालता है सम्पूर्ण कार्यकुशलता और उत्पादकता को कम करता है तथा सुख सुविधाओं को घटाता है। जनता का स्वास्थ्य दुषित पेय जल, खाना बनाने के ईधन से दूषित गैस, खतरनाक इकाइयों से निकलने वाला धुंआ, लकडियों के जलने से निकलने वाले धुएं इत्यादि से प्रभावित होता है। अब हम इसके प्रत्येक पहलू पर विस्तार से विचार प्रस्तुत करने जा रहे हैं।

बाक्स - 3

गरीब देशों की चिन्ताएं

- अतिसार रोग जो दूषित जल से होता है और इससे 20 लाख बच्चे मर जाते हैं तथा 9,000 लाख बीमारी हर वर्ष पैदा करता है।
- लकड़ी पलटने में पैदा अंदर का वायु प्रदूषण, तारकोल और डेग 4000-7000 लाख लोगों के स्वास्थ्य को खराब करते हैं
- शहरों में धूल और गन्दी वायु द्वारा 300,00,00 और 700,000 अकाल मौते प्रतिवर्ष होती है।
- भूमि कटाव वार्षिक आर्थिक घाटे का कारण है, जो सकल राष्ट्रीय उत्पाद में 5 से 1.5 प्रतिशत तक होता है।
- सभी खेती योग्य भूमि का एक चौथाई हिस्सा खारीपन के कारण बेकार भूमि है।
- भौगोलिक वन जीवनयापन के प्राथमिक स्रोत हैं, 140 मिलियन लोग .9 प्रतिशत वार्षिक दर से नाश कर रहे हैं।
- औजोन के घटने से विविधता का ह्रास तथा ग्रीन हाउस का प्रभाव खतरे के स्तर पर पढ़ रहा है।

स्रोत: विश्व विकास रिपोर्ट 1992, पृष्ठ-44, विश्व बैंक, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस

19.3.2 जल

आज बहुत से देशों के लिए स्वच्छ जल की आपूर्ति करना बहुत ही आवश्यक बन गया है। सबसे भयानक प्रदूषण है मल को ठिकाने लगाना अथवा उसे व्यवस्थिति रूप से अलग रखना जो मानव स्वास्थ्य को अप्रत्यक्ष रूप से क्षति पहुंचाता है। मानव मल, औद्योगिक वहीस्त्रावी, कृषि में रासायनिक उरर्वरकों की तीव्रता से प्रयोग इत्यादि विघटित ऑक्सीजन के अपर्याप्त खतरों के मुख्य करण हैं जो मछली की जाति के लिए अत्याधिक खतरनाक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शहर में समतल पानी के प्रदूषण होने से तथा इसको स्वच्छ बनाने में खर्चा अधिक होने से भूमि में से पानी लेना पेय जल का एक सुरक्षित स्रोत बन गया है। हालांकि कुछ क्षेत्रों में तो भू जल भी प्रदूषित हो गया है जिसके प्रदूषण को रोकना अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारी धात्विक संश्लेषिक रसायनों तथा दूसरे खतरनाक अपशिष्टों के अनुचित प्रयोग व विस्फोटन के निस्पादन भू जल प्रदूषण के प्रमुख कारण है। कभी कभी औद्योगिक बहिस्रावी प्रत्यक्ष रूप से भू जल में प्रवेश कर जाते है। तटीय क्षेत्रों में पानी की लवणता अत्याधिक पम्प से अधिक पानी निकालने का परिणाम है। मल निकास व्यवस्था की कमी, सेप्टिक टैंक का अनुचित रखरखाव इत्यादि प्रायः भू जल को दूषित कर देते हैं। दूषित जल को पीने व स्नान करने में प्रयोग करने से पानी संबंधी बीमारियां जैसे कि आन्तज्वर (टाईफाईड) हैजा, (कॉलेरा) इत्यादि के फैलने का एक प्रमुख कारण है। यह मानव हित के विपरीत प्रभाव के कारण होते हैं तथा इस प्रकार आर्थिक विकास, दूषित पानी की आपूर्ति गंभीर पर्यावरणीय समस्याओं को पैदा करती है।

स्वच्छता पर परिष्कृत जल के प्रभाव

बीमारी	बीमारी से प्रभावति लोग (लाखों की संख्या में)	सुधार के लिए मध्यका (प्रतिशत)
दस्त	900*	22
गोलकृमि या मलसर्प	900	28
गिनीकृमि	4	76
स्तरित पटलित	200	74

* प्रतिवर्ष के मामलों की संख्या को दर्शाता है।

स्रोत: "एसरे (1990) जलापूर्ति व स्वास्थ्य प्रबंधन में सुधार से स्वास्थ्य के फायदे"। विशिष्ट बीमारियों से संबंधित पुस्तकों का सर्वेक्षण व विश्लेषण USAI स्वास्थ्य के लिए जल व स्वास्थ्य प्रबंध WASH तकनीकि प्रतिवेदन वाशिंगटन डी सी ने भी विश्व विकास रिपोर्ट 1992 प्रतिपादित किया, विश्व बैंक, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, पृष्ठ 49.

जल आपूर्ति में सुधार का स्वास्थ्य प्रभाव अमेरीकी अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी USAID के सर्वेक्षण से समझा जा सकता है।

उपर्युक्त दर्शाया गया सर्वेक्षण बताता है कि दस्त के 22 प्रतिशत मामले से 70 प्रतिशत गिनीकृमि के मध्यवर्ती घटती दूरी के साथ इन सुधारों के प्रभाव दूरगामी हैं। जल आपूर्ति में सुधार के अतिरिक्त यह मृत्यु दर व अस्वास्थ्य दर को भी प्रभावित करता है।

19.3.3 वायु प्रदूषण

मानव द्वारा निर्मित वायु प्रदूषण के तीन प्रमुख स्रोत : ऊजा का उपयोग, वाहनों से पैदा होने वाला धुआं तथा औद्योगिक उत्पादन के माध्यम हैं। जब तक कि अनुकूल प्रदूषण की कमी के साधन नहीं अपना लिए जाते हैं तब तक ये सभी आर्थिक वृद्धि के साथ घातक विस्तार तक पहुंचते रहेंगे सबसे गंभीर विषय स्वास्थ्य जोखिम भीतरी वायु प्रदूषण एवं सीसे की अत्याधिक सामग्री के उजागर होने के परिणामस्वरूप होती है। SPM के जुड़ाव से यहां बीमारी, मृत्युदर और अस्वास्थ्य दर के प्रमाणों में वृद्धि हो रही है। एस पी एम उच्च स्तर पर पालमोनरी बीमारी, निमोनिया तथा हृदयरोग आम बात हो गये हैं। यह विशेषकर उन वृद्ध लोगों व व्यक्तियों में अधिक है जिनका स्वास्थ्य स्तर कमजोर है। यहां तक कि निम्न स्तर पर एस पी एम श्वांस संबंधी रोगों का कारण बनी हुई है।

भीतरी वायु प्रदूषण से श्वांस एवं दूसरी स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं पैदा होती हैं। गरीब देशों में ज्यादातर महिलाएं तथा बच्चे भीतरी वायु के शिकार होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक मोटे अनुमान के अनुसार लगभग 40 से 70 करोड़ लोग विकासशील देशों में भीतरी प्रदूषण के शिकार होते हैं। उच्च विकसित देशों में मुख्यतः भीतरी वायु जोखिम सिंथेटिक सामग्री, चूना व रेडौन गैस के उत्सर्जन से है। गरीब देशों में वायु प्रदूषण सबसे पहले घरों में खाना पकाने में लकड़ी, गोबर के कंडे जलाने तथा घास फूंस के धुंऐ से होता है। वास्तव में ग्रामीण क्षेत्रों मे ईधन के लिए लकड़ी व गोबर के कंडे आदि प्रयोग किये जाते हैं। शवों को जलाने में लकडी का प्रयोग भी वनों को हानि पहुंचाता है। यह पर्यावरणीय ह्रास का एक दूसरा कारण है। नेपाल व भारत में धूम्रपान न करने वाली महिलाओं का अध्ययन किया गया जिनमें लकड़ी के धुएं से बहुत सी महिलाएं श्वांस की बीमारी से पीड़ित पाई गई जिसकी संख्या अत्याधिक थी। आंकड़ों से पता चलता है कि घरों में लकड़ी व गोबर के कंडों को इंधन के रूप में प्रयोग करने से ईधन के धुवे से श्वांस की बीमारी के कारण बहुत कम आयु में प्रायः मृत्यु हो जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सीसा भी श्वांस के माध्यम से मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। सबसे महत्वपूर्ण कारण है वाहनों के प्रयोग से जिसमें लेड (सीसा) ईधन के मिश्रण के कारण प्रदूषण फैलता है। यही समस्या शहरों के साथ साथ कस्बों में भी व्यापक रूप से फैलती जा रही है जहाँ पर आज कल वाहनों की संख्या तीव्रता से बढ़ती जा रही है। इस प्रकार ईधन से सीसा की मात्रा को घटाना अत्यावश्यक हो गया है।

सीमाओं के आर पार वायु प्रदूषण मानव स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाता है इसका मुख्य कारण है वृक्षों व वनों का कटाव। यह कई बार विभिन्न रूपों में अच्छी तरह महसूस किया है कि प्रदूषण को रोकने के लिए क्षेत्रीय समझौतों को स्थापित व सुदृढ़ किया जाना आवश्यक है। शीघ्र तापीय व्यवस्था से चलने वाले उद्योगों में अति ताप के कारण औद्योगिक दुर्घटनाएं होती हैं जिन्हें रोका जा सकता है। यह उद्योग उत्पादन करते समय संसाधनों को नष्ट करते हैं और प्राकृतिक संपदाओं को सबसे अधिक हानि पहुंचाते हैं।

19.3.4 ठोस और खतरनाक अपशिष्ट (कुड़ा करकट)

विश्व के ज्यादातर शहर ठोस अपशिष्ट उससे ज्यादा पैदा करते हैं जितना कि वे इसे एकत्रित करते या ठिकाने लगाते हैं। सामान्यतः इसकी मात्रा आय के स्तर के साथ बढ़ती है। नगरीय अपशिष्ट सेवाएं सामान्यतः शहरी बजट 20 से 50 उपभोग करती है। अभी भी ज्यादातर ठोस अपशिष्टों का पुनः उपयोग नहीं होता है। यद्यपि नगरीय बजट एकत्रित करने व एकत्रित अपशिष्टों को खत्म करने में पर्याप्त है फिर भी समस्या बरकरार है। हालांकि बहुत से विकासशील देशों का खुला कूड़ादान इसे खत्म करने का एकप्रमुख साधन है। अनुचित जगह एकत्रिकरण व समापन मानव स्वास्थ्य के लिए कई समस्याएं पैदा कर देते हैं। याद रहे ये सतही प्रदूषण के साथ साथ भूजल को भी दूषित कर देते हैं। ठोस अपशिष्टों को सर्वाजनिक क्षेत्रों व पानी के रास्तों में डालने से अनेक बीमारियां फैल जाती हैं। औद्योगिक उत्पादक देश प्रत्येक अरब सकल घरेलू उत्पाद (जी डी पी) पर लगभग 5000 टन अपशिष्ट छोड़ते हैं जबकि विकासशील देशों की कुछ सौ टनों में ही संग्रह होती है। देश के आर पार स्वास्थ्य जोखिम विषाक्त व खतरनाक अपशिष्टों की वजह से

समस्या पैदा हो रही है तथा यह समस्या आसानी से हल हो सकती है यदि इस पर गहनता से विचार किया जाए और वैज्ञानिक तरीके से समस्या से निपटने के लिए समुचित कदम उठाये जाएं।

कुछ देशों में खतरनाक अपशिष्टों के प्रबंध में सुधार हो रहा है जबकि बहुत से दूसरे देश इन अपशिष्टों को बिना किसी सुरक्षा के पानी में डाल देते हैं या पृथ्वी के किसी दूसरे हिस्से में फेंक देते हैं। यद्यपि आज के विश्व का सबसे खतरनाक तथ्य यह है कि जब विषैला व खतरनाक अपशिष्ट एक देश में प्रतिबंधित है तो यह दूसरे देशों को बेच देते हैं या उन्हें दूसरे देशों में फेंक देते हैं। विशेषकर विकासशील देशों में। यद्यपि विषैले व खतरनाक अपशिष्ट हवा व जल प्रदूषण की तुलना में प्राथमिक रूप से स्थानीय व कम महत्वपूर्ण जोखिम है। लेकिन एकत्रिकरण व सुरक्षित से नष्ट करने के पर्याप्त साधनों के बिना, इसके भयंकर परिणाम हो सकते हैं। इसलिए इसका समाधान बहुत आवश्यक है।

19.3.5 भूमि तथा आवास

भूमि

भूमि प्रयोग के कुछ निश्चित प्रकार ग्रीन हाउस के दबाव को कम करते हैं इससे पर्यावरण को हानि होती हैं। इस संदर्भ में एजेंडा 21 के प्रस्ताव में कहा है कि राष्ट्रीय, प्रशासनिक, सामाजिक तथा आर्थिक उपायों को जिम्मेदारी के साथ निभाना चाहिए तथा ग्रीन हाउस गैस को कम किया जाए। प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित किया जाए ये वातावरणीय बदलाव के लिए प्रासंगिक है, परन्तु सीमित भी हैं।

पिछली कमियों के संदर्भ में जो कि अत्यावश्यक है वह है भूमि संसाधनों के प्रबंध व योजना के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण है। एकीकरण का अर्थ है कि पर्यावरणीय, सामाजिक तथा आर्थिक मुद्दे साथ साथ ही हल किये जाने चाहिए। सरकार को चिरस्थाई भूमि के प्रयोग तथा भूमि संसाधनों का प्रबंध के लिए विधानों, नियमों तथा आर्थिक प्रोत्साहनों का निर्माण करना चाहिए तथा इसे विशेषकर कृषिगत भूमि पर जोर देकर लागू करना चाहिए।

DIKSHANT IAS

एजेंडा 21 की संकल्पना को विस्तार से आगामी भाग में स्पष्ट किया गया है।

Call us @7428092240

वन

वन विश्व भू भाग का 25 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र घेरे हुए हैं। वन प्रमुख रूप से तीन प्रकार के होते हैं। आर्द उष्ण कटिबंधीय वन तथा शुष्क उष्ण कटिबंधीय वन, शीतोष्ण कटिबंधीय वन व निम्नीकृत वन/आद्रशुष्क कटिबंधीय वन विशेषकर अपनी किस्मों में समसृद्ध होते हैं। शुष्क उष्ण कटिबंधीय वन अति उष्णकटिबंधीय वनों की तरह समृद्ध तो नहीं होते लेकिन वे भूक्षरण के विपरीत संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। शीतोष्ण कटिबंधीय वनों में निम्नतम जैव विविधता के होते हैं। ये औद्योगिक जंगलों के मुख्य स्रोत होते हैं। आर्द उष्ण कटिबंधीय वनों के साथ सबसे गंभीर चितां का कारण है कि ये नियमित दर से घटते जा रहे हैं जो भूमंडलीय आर्थिक व पारिस्थितिकों की सतता को चुनौती देती हैं। इसका अर्थ यह है कि इनकी कमी के कारण ही पर्यावरण नष्ट होता है।

वन न केवल लकड़ी के स्रोत हैं अपितु ये सामाजिक व पारिस्थितिकी के स्रोत भी है। ये वन में रहने वालों को आजीविका की अवस्थिति उपलब्ध कराते हैं तथा बाग बगीचों व जानवरों की किस्मों के लिए आवास भी प्राप्त करते हैं। ये मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं तथा इसके कटाव से संरक्षण करते हैं, जल विज्ञान की जलवायु को प्रभावित करते हैं, समतलीय तथा भू जल के बहावों को प्रभावित करते हैं तथा कार्बनडाई ऑक्साइड की वृद्धि में संतुलन के द्वारा भू मण्डलीय पर्यावरण की स्थापना में सहायता करते हैं। वनों के विभिन्न प्रकार विभिन्न अनुपातों में उपर्युक्त वर्णित उद्देश्यों को उपलब्ध कराते हैं।

तीव्र वन कटाई में किसान, लकड़हारा तथा खान कंपनियों, लकड़ी का ईधन एकत्रित कर्ताओं इत्यादि के कारण होता है जो भूमंण्डलीय पर्यावरण के रखरखाव व विकास दोनों के लिए गंभीर चुनौति प्रस्तुत करते हैं। हालांकि विकासशील देशों में वनों की कटाई हाल ही का एक तथ्य है। विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि प्रायः लकडी के ईधन की मांग को बढ़ाने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त कुछ देशों में कृषि के आधुनिकीकरण के परिणाम ने श्रम की मांग को जो बंधुआ मजदूरी से मुक्त हो गए हैं और वे वनों में नई आवासीय जगहों की तलाश करने में लगे हैं। वनों की पारिस्थिति की आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक भूमिका के समर्थन के लिए तथा भूमि एजेण्डा 21 सभी देशों को वन सम्बंधित संस्थाओं तथा व्यवस्यिक तकीनकों के

संबंधित आंकड़े एकत्रित करना तथा पारिस्थितिकी एवं वनों के मुल्यों के लिए उपयोगी क्षेत्र तैयार करना। श्रम संघों की भागीदारी, ग्रामीण सहकारिता, स्थानीय समुदायों, प्रबुद्ध लोगों, युवा, महिलाओं गैर सरकारी संगठनों इत्यादि वन संबंधित गतिविधियों को विकसित करना। तकनीकि स्थानांतरण को बढ़ाना तथा विशिष्ट प्रशिक्षण को विकसित करना इत्यादि हैं।

जैव विविधता

जैव विविधता (मानव जाति की सूचना, विभिन्न किस्म तथा पारिस्थितिकी का एक सम्मिश्रण) भोजन, कपड़े, आवास, तंतु, दवाइयां औद्योगिक प्रक्रियाओं के अंतर्गत आगत, आध्यात्मिक आहार इत्यादि के रूप में भौतिक सम्पत्ति उपलब्ध कराती है। जैव वैज्ञानिक विविधता को बनाये रखने के क्रम में, एजेन्डा सभी सरकारों को सुझाव देता है।

- जैव विज्ञानी विविधता पर संयुक्त राष्ट्र संघ सम्मेलन के दबाव के अतिरिक्त प्रांरभिक प्रवेश।
- प्रबुद्ध लोगों के ज्ञान व परम्परागत पद्धतियों को संजोए रखना।
- विकासशील देशों के साथ जेव वैज्ञानिक साधनों तथा जैव तकनिकों के फायदों को बांटना या उनसे आपस में लाभान्वित होना। जैव विविधता के रख–रखाव तथा जैव तकनीकों के सुरक्षित स्थानांतरण के लिए विकसित राष्ट्रीयकरण की कार्य नीतियों को विकसित करना।

19.3.6 वातावरणीय बदलाव

ग्रीन हाउस वारमिंग

गैसों का वातावरणिय संकेन्द्रण जो ग्रीन हाउस तापन के कारण होता है, पिछले कुछ सालों से यह बढ़ रहा है। कार्बन डाईआक्साइड जो ग्रीन हाउस गैसों का मुख्य आयाम है। पिछले तीन सालों में 12% बढ़ चुका है। ये नये विकास मुख्यतः पृथ्वी पर मानव गतिविधियों के परिणाम है। आने वाले दिनों में ग्रीन हाउस गैसों का संकेन्द्रण कई तथ्यों आर्थिक वृद्धि ऊर्जा की तीव्रता तथा वातावरणीय जीवमंडल व महाद्वीप का रसायन विज्ञान पर निर्भर करती है। ग्रीन हाउस प्रभाव एक भूमंडलीय मुद्दा है, क्योंकि प्रथमतः ग्रीन हाउस गैसों के सभी उत्सर्जन, जलवायु को प्रभावित करते हैं। लेकिन ग्रीन हाउस प्रभाव को हल करने के संरक्षणात्मक संसाधनों के तटीय फायदे असमान रूप से शायद संपूर्ण देश में फैल रहे हैं। परिणामस्वरूप ग्रीन हाउस तापन पर कोई भी अंतर्राष्ट्रीय संधि पर समझौता एक कठिन प्रक्रिया है। कुछ महत्वपूर्ण अवयव इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं जो निम्न हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- संपूर्ण देश में जलवायु का परिवर्तन कई प्रकार का होगा। शीतोषण श्रेणी की जगह विषुवतीय क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन छोटा लेकिन अधिक तीव्र गति से होगा।
- क्षति के प्रभाव से संपूर्ण देश में कई प्रकार के होंगे। कुछ देश यह देख रहे हैं कि उनकी जलवायु में सुधार हो रहा है तथा इस प्रकार उनको फायदा प्राप्त हो रहा है। जबकि दूसरे कई देश यह मानते हैं कि ऐसे प्रभाव चिरस्थाई हानि के कारण बनते हैं। यद्यपि जलवायु के बदलाव का तरीका समान होता है। पारिस्थितिकी, आर्थिक गतिविधियों, आवासीय तथा दूसरे पर्यावरणीय संसाधनों में अंतर के कारण यह संभवतः देश को असमान रूप से प्रभावित करता है।
- उच्च आय वाले देश कई वर्षों से कई प्रकार की गैसों का उत्सर्जन कर रहे है तथा उस प्रकार वातावरण में संचित गैसों की असमानुपातिक भागीदारी का योगदान हो रहा है। दूसरी तरफ एक निम्न स्तर से शुरू होते हुए निम्न आय वाले देशों से उत्सर्जन और तीव्र गति से बढ़ रहे हैं।
- जलवायु के बदलाव को चुनौती देने की एक जिम्मेदारी उत्सर्जन को घटाने के साधन हैं। दूसरी जिम्मेदारी सम्पदा में निवेश करने के द्वारा अपनाई जा सकती है। जो आर्थिक गतिविधियों पर प्रभाव को कम करेगी। यद्यपि संबंधित लागत व फायदे संपूर्ण देश में कई प्रकार के होते हैं।
- कई देश जीवास्म ईधन के निर्यातों पर पूर्णतः निर्भर होते हैं तथा वे उन नीतियों से ग्रसित होते हैं जो विश्व मांग को कम करने को प्रवृत होते हैं।

[illegible] वर्तमान ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाने के यहां कई

उपाय हैं जो राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनाये गये। यहां पर हानिकारक उत्सर्जनों को घटाने के लिए व्यापक रूप से चार प्रकार के तकनीकि विकल्प मौजूद है।

1) निम्न सल्फर कोल
2) तेल तथा गैस के परिस्करण के द्वारा इंधन का बदलाव।
3) नियंत्रीत उत्सर्जन
4) उच्च कार्यकुशलता तथा निम्न उत्सर्जन तकनीके अपनाने के द्वारा अवस्थित इंधनों का अधिक पर्याप्तता से प्रयोग।

ओजोन क्षीणता

ओजोन क्षीणता सी एफ सी से क्लोरीन उत्दगमन के वातावरणीय संकेन्द्रण के बढावे परिणामस्वरूप हुआ है। मोनट्रीयल विज्ञप्ति में सी एफ सी के बाहरी उत्पादन के दौर से देश सहमत थे। दीर्घकाल में ओजोन की परत के संरक्षण के कटाव के परिणाम स्वास्थ्य एवं समुद्री व भूमध्य रेखीय व्यवस्था की उत्पादकता के लिए हानिकारक होगा। सी एफ सी का वातावरणीय स्तर 2000 ई. पूर्व के लगभग स्वीकार किया था। सबसे बड़ा ओजोन प्रभाव अर्न्टाटिका के ऊपर है जहां पर क्षीणता (लगभग 50 प्रतिशत) अत्याधिक गहरी व वृह्द हैं, जबसे इसका मापन शुरू हुआ हैं। ओजोन क्षीणता का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम हैं सूर्य की पैरा बैगनी किरणों का पृथ्वी की सतह पर सीधी आने में वृद्धि का होना है।

सूर्य की किरणों के आवर्तन के विपरीत संरक्षण में मानव व्यवहार में बदलाव आता है ओजोन की अनुपस्थिति से एक विद्यमान ओजोन में 10 प्रतिशत के घटाव का अर्थ होता है। जैसे कि मोतियाबिंद से नेत्र की दृष्टि का कम होना, चर्म कैंसर होना या विशेषकर व्यक्तियों में सफेद चर्म आना। इसके अतिरिक्त पराबैंगनी किरणों के नियमित रूप से आवर्तन में बढ़ाव लोगों में सभी प्रकार के चर्म रंगों की संक्रामक व्यवस्था का दबाव हो सकता है। यह स्वास्थ्य जोखिम कुछ कम हो सकता है यदि जनता अनावश्यक आवर्तन से बचेगी, यह अपने व्यवहार में एक छोटे से परिवर्तन से ही संभव है। कहने का अर्थ यह है कि मनुष्य को पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए सजग हो जाना चाहिए अन्यथा उसके कुप्रभाव उसे ही नष्ट कर देंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पराबैंगनी किरणों का फसलों की उत्पादकता पर प्रभाव एक दूसरा चिन्तनीय कारण माना जाता है। यद्यपि कुछ फसलों को अपनाने व सुधारने के लिए क्षमता को स्वीकारा गया है। यहां पर उदाहरण है कि जहां कृषिगत फसलों की वृद्धि में निषेध व चित्रसंश्लेषण दिखाई देता है जब फसलों पर पैराबैंगनी किरणें प्रभाव डालती हैं। इसके अतिरिक्त यहां पर फसलों के निषेचन के द्वारा पराबैंगनी किरणों के बढाव को समझने के कुछ क्षेत्र हैं। यहां पर कुछ उदाहरण ये भी के जहां पराबैंगनी किरणें समुद्री उत्पादकता व पारिस्थितिकी व्यवस्था को सामान्य रूप से बढ़ाती हैं।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना किजिए।

1) आर्थिक गतिविधियां पर्यावरणीय ह्रासमान को बढ़ाती है। उपर्युक्त तर्क के पक्ष में और विपक्ष में दो दो तर्क दीजिए।

....

....

....

....

2) पर्यावरणीय ह्रास मानव जाति पर प्रतिकुल प्रभाव डालता हैं। नीचे वर्णित प्रत्येक पहलू पर भविष्य में पृथ्वी को सुरक्षित बनाने के लिए कम से कम दो महत्वपूर्ण पद्धतियों को लिखिए।

क) **जल प्रदूषण**

....

....

....

ख) वायु प्रदूषण

....

....

....

ग) ठोस व खतरनाक उपशिष्ट (कूड़ा-करकट)

....

....

....

घ) भूमि अपरदन

....

....

....

ड) वन कटाव

....

....

....

च) ग्रीन हाउस तापन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

छ) ओजोन क्षीणता

....

....

....

19.4 अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय खतरा

राष्ट्रीय समस्याओं की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय समस्याएं दो कारणों से ज्यादा पेचिदा हैं। यहां, एक भी सत्ता सटीक नीतियों को लागू तथा अपना नहीं सकती। दूसरा, विभिन्न देशों द्वारा इसके हल को मूल्यों एवं लाभों के सामंजस्य में काफी विविधताओं के साथ अवस्थित करना होता है। कुछ देशों में ज्वलंत स्थानीय समस्याएं ज्यादा हो सकती हैं और उन्हें हल करने हेतु साधन कम होते हैं। क्रियान्वयन के लिए धनी देशों द्वारा गरीबों की सहायता भी देनी हो सकती है (विश्व विकास रिपोर्ट 1992)।

19.4.1 अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय खतरे का परिचय

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह प्रायः असंभव होता है कि राष्ट्रीय सरकारों की सत्ता, आर्थिक नीतियों तथा सामान्य नियमित ढांचे पर विश्वास किया जाए। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय समस्याएं संप्रभु देशों के बीच समझौते और सहयोग पर आधारित होती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मुददों की प्राथमिकता का प्रश्न भी बड़ी समस्याओं का होता है। चूंकी, कुछ भी न करने की कीमत दूसरे देशों द्वारा उत्पन्न की जा सकती है और जो मुख्य राष्ट्रीय नीतियों को अंतर्राष्ट्रीय हल हेतु मुख्यतः तीन मुख्य रूपरेखाएं अपनाते हैं:

पहली, क्षेत्रीय समस्याएं जैसे सामान्य साधनों का बटवारा, जहां एक देश का कार्य क्षेत्र है वहां वह दूसरों को प्रभावित करता है। इसके अंतर्गत वे भी कठिन समस्याएं हैं जो उत्तर सीमागत प्रदूषण फैलाती हैं जैसे अम्ल वर्षा, समुद्री, नदियों का प्रबंधन आदि।

दूसरी, संसार आपस में कुछ सामान्य वैश्विक चीजें अदला बदली करता हैं जहां एक देश का कार्य दूसरे देश को प्रभावित करता है। उदाहरण, वातावरण और जहां महासागर वैश्विक संसाधन हैं। ग्रीन हाउस गैसों का प्रभाव ओजोन परत क्षतीकरण, जो सी एफ सी के कारण होता है आदि अंतर्राष्ट्रीय समस्याएं हैं जो वैश्विक समुदाय को प्रभावित करता है।

तीसरी, कुछ ऐसे समाधान है जो एक देश के पास ही उपलब्ध होते हैं पर उनकी अनिवार्यता वैश्विक समुदाय के लिए भी होती है। बाजारी तंत्र में वे अनिवार्यतः प्रतिबिम्बित नहीं होते। उदाहरणार्थ, भौगोलिक वर्षा, वन, विशिष्ट पारिस्थितिक आवासीय, अपने प्रकार की जातियां आदि हैं।

चूंकि, 1972 की स्टाकहोम में हुई संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन वैश्विक पर्यावरण के अनवरत विकास से संबंधित था। ये तथ्यपरक है कि पारिस्थितिकीय संतुलन में कोई भी बाधा जीवन जन्य समताओं में कमी करेगी और आर्थिक तथा पारिस्थितिक महामारी पैदा करेगी। यह वैश्विक पर्यावरणीय नुकसान पहले ही औद्योगिक समाजों में उत्पादन और उपभोग के विभिन्न प्रकारों को असहनीय प्रवृत्ति में पहुँच चुका है। निस्संदेह, औद्योगिक देश के विश्व के वर्तमान प्रदूषित विकिरण में अधिक योग देने के उत्तरदायी हैं विशेषतः विषैले तथा खतरनाक अपशिष्ट।

संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरण और विकास सम्मेलन में सदस्य राष्ट्रों ने गरीबी बढ़ने और पर्यावरणीय गिरावट को एक दूसरे से संबद्धत बताया और यह शंका व्यक्त की थी कि विकसित देशों में पर्यावरणीय संरक्षणता – विकास प्रक्रिया में एकीकृत भाग में देखा जाएगा। वास्तव में पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग ने सन् 1987 की रिपोर्ट में तार्किक रूप से संयोजित है जो स्थापित करती है कि अंतरवित्तीय पर्यावरणीय संरक्षण के पैमाने, आहार और उपभोग में वैदेशिक संयोजन के उपाय किए जाएंगे। यू. एस. सी. ई. डी में सभी सदस्य देश सहमत थे कि पर्यावरणीय समस्याओं का वैशिष्क चरित्र (मौसम बरताव, ओजोन परत एकीकरण, अन्तरसीमाए वायु, जल प्रदूषण, महासागर तथा समुद्रों के नुकसान आदि) आवश्यक रूप से सभी देशों के सम्मिलित प्रयास तथा सहभागिता से ठीक किये जा सकते है। अनिवार्यतः सहभागी प्रयास जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होगा, ही मुख्य सदस्यों को पूरा करेंगे, जिस स्तर की मानकता बनाएगे पर्यावरण व्यवस्था को बेहतर संरक्षण करेंगे एवं सुरक्षित भविष्य प्रदान करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.4.2 एजेंडा-21 और रीयो घोषणा

एजेंडा 21 अंतर्राष्ट्रीय सतत विकास संरक्षण का कार्यक्रम है, पर्यावरण और विकास तथा संरक्षित वन संबंध के सिद्धांतों का अभिकथन ही रीयो घोषणा में शामिल है तथा जो 3-4 जून 1992 में ब्राजील के रियो डि. जरेरियो में शुरू यू. एस. सी. ई. डी. के सम्मेलन में स्वीकृत हुआ। इसमें हजारों व्यवसायिक लोगों, पर्यावरणीय एवं सामाजिक विज्ञानी, धार्मिक नेताओं, महिलाओं, शिक्षाविद, श्रमिक नेता, देशज लोग तथा युवाओं का सहयोग रहा। यू. एन. सी. ई. डी. के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :

- विकास मुद्दों और पर्यावरण के मध्य अन्तर्निर्भरता, तथा
- जटिल समस्याओं से निपटने के लिए विभिन्न देशों और समाजों के क्षेत्रों के बीच सहभागिता की आवश्यकता।

एजेंडा 21, जो सम्मेलन का एक बड़ा परिणाम था कि यह कई सालों के अथक श्रम की तार्किक परिणति था। इस सम्मेलन में विभिन्न देशों तथा भागों से हजारों लोगों ने सहयोग दिया था। एजेंडा 21 में 40 अनुच्छेद हैं जो 4 भागों में विभाजित है:

- सामाजिक और आर्थिक आयाम
- विकास के संसाधनों का प्रबंधन और संरक्षण
- बड़े समूह की भूमिका का सशक्तीकरण करना तथा
- क्रियान्वयन के तरीके या उपाय करना।

ऐजन्डा-21

भाग-1

सामाजिक और आर्थिक आयाम

1) प्रस्तावना
2) विकासशील देशों में सतत् विकास को तीव्र करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग
3) गरीबी उन्मूलन
4) बदलते हुए उपभोग के तरीके
5) जनांकीय सक्रियता और स्थिरता
6) मानव स्वास्थ्य का विकास और संरक्षण
7) सतत् मानव व्यवस्था विकास को विकसित करना
8) निर्णय निर्माण में एकिकृत पर्यावरण एवं विकास

भाग 3

मुख्य समूहों की भूमिका का सुदृढ़करण करना

23) प्रस्तावना
24) महिलाएं
25) बच्चे व युवा
26) देशज लोग और उनके समाज
27) गैर सरकारी संगठन
28) स्थानीय प्राधिकारी
29) श्रमिक और श्रमिक संघ
30) व्यापार और उद्योग
31) वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी समुदाय
32) किसान

भाग 4

क्रियान्वयन के साधन

33) वित्तीय संसाधन एवं क्रियाविधि
34) पर्यावरणीय ठोस प्रौद्योगिकी का स्थानांतरण
35) सतत् विकास के लिए विज्ञान
36) शिक्षा व जन जागरूकता का विकास
37) क्षमता निमार्ण के लिए राष्ट्रीय क्रियाविधि एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोग
38) अंतर्राष्ट्रीय संस्थानीय व्यवस्था
39) अंतर्राष्ट्रीय कानूनी साधन
40) निर्णय निर्माण के लिए सूचना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भाग-2

विकास के लिए संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबंध

9) वातावरण का संरक्षण
10) एकीकृत दृष्किोण के लिए भूमि संसाधनों की योजना व प्रबंध
11) कमजोर पारिस्थितिकी व्यवस्था का प्रबंध करना : मरूथलीकरण व सूखेपन की रोकथाम करना।
12) कमजोर पारिस्थितिकी व्यवस्था का प्रबंध करना : सत्त पहाड़ी विकास,
13) वन अपवर्द्धन की रोकथाम करना
14) सत्त कृषिगत व ग्राम विकास को विकसित करना।
15) जैविक विभिन्नता का उपभोग
16) जैव तकनीक का पर्यावरणीय ठोस विकास।
17) तटीय क्षेत्रों व परिबद्ध तथा अर्द्ध परिबद्ध सहित सभी प्रकार के समुद्रों व महाद्वीपो का संरक्षण।
18) स्वच्छ जल संसाधनों की कोटि एवं आपूर्ति का संरक्षण।
19) वैषिक रसायनों का पर्यावरणीय ठोस प्रबंध।
20) खतरनाक अपशिष्टों का पर्यावरणीय आंतरिक प्रबंध।
21) ठोस अपशिष्टों तथा मल जल व्यन से संबंधित अपशिष्टों का पर्यावरणीय ठोस प्रबंध।

यद्यपि एजेण्डा 21 वैधानिक रूप से लागू नहीं होता है फिर भी यह सभी सामाजिक आर्थिक और पर्यावरणीय मुद्दों हेतु एक मूल्यवान दस्तावेज है जो सतत विकास की उपलब्धि के लिए प्रासंगिक भी है। यह इन मुद्दों के बीच जटिल तथा करोड़ों परिवर्तन करने वाले तत्वों को जोड़ता है और उपायों तथा खतरों के बीच सहभागिता एवं कार्य का प्रबंध करता है।

19.4.3 क्या बाजार तंत्रावली पर्यावरणीय समस्या का समाधान कर सकता है ?

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि विकास नीति और पर्यावरणीय नीति का उद्देश्य लोक कल्याण को उन्नत बनाना है। पर्यावरणीय ह्रास अनिवार्यतः तब होता है जब समाज का पर्यावरणीय ज्ञान की कीमत पर पर्यावरणीय संसाधनों की उपेक्षा की जाती है या उसे कम महत्व देकर उसका धड़ल्ले से प्रयोग करने का निर्णय लिया जाता है। निस्संदेह बाजारी तंत्रवाद पर्यावरण के सही सामाजिक मूल्यों को मान्यता देता है। इसके निम्नलिखित कुछ कारण हैं।

- बाजार अस्तित्व नहीं रखता क्योंकि यह कठिन है कि अपने या पर्यावरण के प्रयोग द्वारा किसी के अधिकार का अतिक्रमण हो। उदाहरणार्थ वायु, वायु का बाजार अस्तित्व नहीं रखता। यहां तक कि यदि कीमत अभिभावी होती है तब भी यह समाज का मूल्य प्रतिबिंबित नहीं करता। परिणामतः इतना ज्यादा वायु प्रदूषण है।

- कुछ संसाधनों का प्रयोग बाजार में किया जा सकता है, पर दूसरों का नहीं। उदाहरणार्थ भौगोलिक वायु वन जहां उभरती लकड़ी बाजारजन्य है पर वाटरशैड नहीं। इनमें अबाजारजन्य लाभ प्रायः उपेक्षित होते हैं और दूसरे उपयोग भारी शोषण के शिकार होते हैं।

- जब समाधान सभी के लिए खुले हैं, वे अपने प्रभाव के विपरीत दोहित हैं। वनों की अंधाधुन्ध कटाई और अतिरिक्त मत्स्य पालन इस प्रकार की बाह्यतः शोषण या प्रयोग के गंभीर उदहारण हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- प्रायः वातावरणीय प्रभावों के वनों में सूचनाओं का अभाव होता है अथवा उपयोगकर्ताओं के पास अल्प उपलब्धता होती है।

क्योंकि अत्याधिक उपयोग वातावरणीय समस्याओं से जुड़ी होती है, बाजारी तंत्रवाद संसाधन के उपभोग का नियंत्रित करने में असफल दिखाई देते हैं। इसे हम सहभागिता के सक्रिय सहयोग से लागू करके सरलता से सफल हो सकते हैं और इन उपायों के माध्यम से इसे संवृद्ध कर सकते हैं।

19.4.4 बहु पणधारी भागीदारी

सतत् मानव विकास पर विमर्श में सहभागिता महत्वपूर्ण निर्णायक शब्द हो गया है। इस संदर्भ में सहभागिता द्वारा निम्न लागू होंगे कि, एक या अधिक पार्टियों के बीच स्वैच्छिक तथा अलाभकारी समझौता जो सतत् विकास के पर्यावरणीय चुनौतियों तथा सामाजिक आर्थिक चुनौतियों की विकासपरक तथा हलपरक कार्यनीतियों से लाभान्वित होगा। इस उद्देश्य, सामना करने के प्रावधानों, निर्भरता और अन्योन्य जन्य अंतरनिर्भरता की स्थितियों के पार्थक्य से संपूर्ण अलग हो चुका होना चाहिए।

यद्यपि तब भी सेक्टर पणधारियों के प्रकार असमान है, फिर यह दस्तावेज तीन बड़े से क्षेत्रों की ओर इशारा करता है।

- सरकार,

- स्वैच्छिक या "लाभ के लिए नहीं" गैर सरकारी संगठन (एन जी ओ) तथा

- निगम या "लाभ कमाने वाले" व्यवसायिक और औद्योगिक क्षेत्र

यद्यपि, सार्वजनिक जीवन में भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के क्षेत्र में इन तीनों वर्गों के बीच अतिव्यापन है। वे सरस विमर्श के लिए शुरुआती बिंदु की भांति प्रयोग हो सकते हैं। प्रत्येक क्षेत्र के पास विभिन्न दक्षताएं और संसाधन हैं जो सहभागितापूर्वक एक दूसरे क्षेत्र में मूल्य जोड़ सकते हैं। सतत विकास हेतु सहभागिता निर्माण की कठिन प्रक्रिया में व्यवसाय और उद्योग की निर्णायक

भूमिका अदा करते हैं। निजी उद्योगों का संयुक्त सामाजिक आर्थिक तथा पर्यावरणीय प्रभाव, व्यापक और कम, औपचारिक या अनौपचारिक पराराष्ट्रीय या स्थानीय हो, बहुत निर्णायक होता है। व्यवसायिक क्षेत्र जीवनयापन की रणनीतियां, नया बाजार, उत्पाद तथा सेवाएं निर्मित करता है। इस क्षेत्र में प्रौद्योगिकी विकास होता है क्योंकि यह जोखिम उठाता है, यह प्राकृतिक संसाधनों तथा अपव्यय का उत्पन्नकर्ता होता है। इसलिए जल्दी यह है कि उन उपायों तथा साधनों को खोजा जाए जो सकारात्मक प्रभावों को अधिकतम एवं नकारात्मक प्रभाव को न्यूनतम करे। जैसा कि, व्यवहार में व्यावसायिक क्षेत्र प्रायः निम्न कमियों के शिकार रहते हैं।

- एक समुचित तथा नियमित ढांचागत व्यवस्था।
- समुचित पर्यावरणीय, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक विशेषज्ञता
- स्थानीय समुदायों से सहयोग

बहु स्टैकहोल्डर भागीदारी

एजेंडा 21 आज की समस्याओं को उजागर करता है तथा आगे आने वाली शताब्दी में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करता है। यह विकास एवं पर्यावरणीय सहयोग पर विश्वव्यापी सामंजस को तैयार करने में सहयोग प्रदान करता है। इसके सफल कार्यान्वयन की पहली और अंतिम जिम्मेदारी सरकारों की है। इसलिए सरकारों को चाहिए कि वे इस विषय को प्राथमिकता दें और कार्यान्वयन का कार्य पूरा करें।

व्यापार और उद्योग

- परा राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय
- स्थानीय एवं विदेश
- व्यापक एवं लघु स्तर
- औपचारिक एवं अनौपचारिक
- ग्रामीण एवं शहरी
- प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक उद्यमियों

गैर सरकारी संगठन (NGO)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एजेंडा 21 से संबंधित गतिविधियों की परार्राष्ट्रीय निगमों तथा उनके प्रतिनिधि संगठनों सहित व्यापार और उद्योग को कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन में पूरी भागीदारी निभानी चाहिए।

- अंतर्राष्ट्रीय सरकारें
- क्षेत्रीय सरकार समूहीकरण
- राष्ट्रीय सरकार
- राज्य सरकार

- संयुक्त राष्ट्र. संघ व्यवस्था
- शिक्षाविद
- अनुसंधान कर्ता
- प्रौद्योगिकी विज्ञानी
- शिक्षक

- विकास संगठन
- सक्रिय समूह
- चर्च
- श्रम संगठन
- महिला समूह
- युवा समूह

उद्यमियों, उपभोक्ताओं, पूर्तिदाता, वित्तदायी और पर्यावरणय के साथ इस पूर्ण बदलाव के दौरान यह स्वच्छ प्रक्रिया और उत्पाद विकसित कर सकता है।

अनुसंधान और प्रशिक्षण क्षेत्र में

व्यवसायिक सेक्टर, शिक्षाविदों और वैज्ञानिक कार्मिक के बीच, जड तकनीक के विकास हेतु सहभागिता पैदा कंर सकता है। साथ ही नये उत्पाद और नयी प्रबंद्ध पद्धति भी।

योगदान समुदायों में

यह एन जी ओ के साथ, स्थानीय सरकार तथा लोगों के साथ, मानव पूंजी में निवेश तथा जीवन की उच्चता हेतू काम कर सकता है।

राष्ट्रीय लोक नीति में

यह सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा शोध संस्थाओं के साथ आर्थिक कौशलों का बलिदान किए बिना ठीक नियमित ढांचे के विकास हेतू सहयोग कर सकता है।

सहभागिता की उपयोगिता

- यह विभिन्न कोशलों तथा संसाधनों को महान तरीके से गतिशील कर सकता है। अपेक्षाकृत अन्य तरीकों के
- यह समस्याओं को ज्यादा एकीकृत बहु विषयी तथा व्यापक तरीके से संसोधित कर सकता है।
- यह मूल्यों और प्रयासों के अनावश्यक दोहरावों को कम कर सकता है।
- यह विपरीत हितों के लिए संवाद की सुविधा, सृजनात्मकता तथा अन्योन्य विश्वास पैदा कर सकता है।
- सहभोगियों के बीच अंतरदर्शिता, सूचनाओं के विकास तथा तकनीक के हस्तांतरण की सुविधा भी देता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.5 सारांश

इस इकाई में, आपने पर्यावरण और सतत मानव विकास के बीच के संबंधों का अध्ययन किया है। मानव विकास केवल आर्थिक संवृद्धि के द्वारा ही नहीं प्राप्त किया जा सकता है। आर्थिक संवृद्धि विकास का केवल एक आयाम है। आय वितरण स्वास्थ्य देखभाल की व्यवस्था, शिक्षा, सुरक्षित पर्यावरण और विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता, आदि विकास प्रक्रिया के महत्वपूर्ण आयाम है। सतत मानव विकास को केवल पर्यावरणीय के सरंक्षण का एक हिस्सा नही मान लेना चाहिए बल्कि विश्व के सीमित प्राकृतिक संसाधनों पर दुष्प्रभाव डाले बिना विश्व के सभी लोगों को बढ़ने के अवसर प्रदान करता है। सतत् मानव विकास का सामान्य सिद्धांत है जो कि पर्यावरण तथा विकास पर विश्व आयोग ने अपनाया है कि भविष्य की पीढ़ी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आज की पीढ़ी सावधानी से साधनों का प्रयोग करे। दूसरे शब्दों में इसे यूं कह सकते हैं कि मानव जीवन के संरक्षण में हमें किन किन चीजों की आवश्यकता है, वह है मानव जांच का संरक्षण। इसलिए पर्यावरणीय नुक्सान के बचाव में हमें पर्यावरण को एक मानवीय रूप देना होगा अर्थात् उसके साथ मानवीय व्यवहार करने से ही वह सुरक्षित रह सकता है।

कभी कभी आर्थिक गतिविधियां पर्यावरण को बहुत हानि पहुंचाते हैं क्योंकि प्रयोग करने वालों को इसका ज्ञान नहीं होता है कि पर्यावरण मौजूदा कितनी क्षमता है और उसका कितना प्रयोग किया जाना चाहिए। वैसे अधिकतर प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध प्रयोग से पर्यावरण को हानि पहुंचती

है। इस तरह पर्यावरण को नुक्सान पहुंचा देती है। पर्यावरणीय नुक्सान मानव स्वास्थ्य को भी नष्ट करता है। कार्यकुशलता को घटा देता है और लोगों की उत्पादकता के अवसर कम कर देता है। इसके विपरीत आर्थिक वृद्धि के परिणाम को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि निवेश के भीतर व्यवहार और दृष्टिकोण को बदला जाये। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, पारिस्थितकीय संतुलन पर कि सभी तरह का हस्तक्षेप जीवन संरक्षण के अवसरों को कम कर देगा या नष्ट कर देगा तथा आकस्मिक पारिस्थितिकी एवं आर्थिक व महामारी पैदा करेगा। यदि इसी तरह से वर्तमान पर्यावरणीय क्षति की प्रवृत्ति जारी रहेगी तो यह निश्चित है कि किसी का भी जीवन सुरक्षित नहीं रहेगा। इसलिए हम सब को मिलकर पर्यावरण का संरक्षण कर सकते हैं। इस निर्णायक स्थिति में मानव जीवन संरक्षण हेतु सहयोग एवं सहभागिता के निर्माण की हमें नितांत आवश्यकता है। यह विश्व के प्रत्येक प्राणधारियों के बीच स्वयंसेवी या स्वैच्छिक सहयोग की मांग करता है। इस दृष्टिकोण को रीयो घोषण पत्र ही इसे अधिक वैज्ञानिक तरीके से हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

19.6 शब्दावली

अपशमन : एक साधन जो वायु या ध्वनि प्रदूषण को कम करने या खत्म करने में अपनाया जाता है।

वायु प्रदूषण : अनिच्छित ठोस, तरल व गैसों से वातावरण का दूषित होना।

पर्यावरण : वह क्षेत्र, जो घिरा हुआ या अविस्थत है जिसमें आंगिक के लिए प्रत्येक आंतरिक है व कुछ का अंस्तित्व है।

पर्यावरणीय प्रभाव : अच्छे या बुरे रूप में पर्यावरण में कुछ बदलाव विशेषकर ठोस तरल या गैसी अपशिष्टों, दुर्गन्ध या शोर का वायु भूमि या पानी पर प्रभाव।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सकल राष्ट्रीय उत्पाद : देश में एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का मोद्रिक मूल्य + विदेश से प्राप्त कुल आय/GNP में एक लम्बे समय में वृद्धि को हम आर्थिक वृद्धि मानते हैं।

आर्थिक विकास : यह जीवन के विभिन्न आयामों जैसे सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक, गुणात्मक परिवर्तन और इसमें वृद्धि को दर्शाती है। इस प्रकार विकास में वे सभी ढांचागत परिवर्तन शामिल हैं जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का आधुनिकीकरण व मोद्रीकरण सहित संस्थानिक परिवर्तन सम्मिलित है।

बुनियादी आवश्यकता : विकास के इस उपागम का उद्देश्य मानव व्यक्तित्व के पूर्ण शारीरिक, मानसिक व सामाजिक विकास को प्राप्त करना है। यह व्यक्ति की आमदनी के बजाय उसे क्या उपलब्ध कराया जाता है पर संकेन्द्रित है तथा यह संसाधनों को समेटने के रूप में दिया हुआ होता है।

वहन क्षमता : यह सभी प्रकार के उत्सर्जन व अपशिष्टों को अपने में समा लेने की पर्यावरण की अधिकतम क्षमता है। यही वहन क्षमता से प्रदूषण अधिक हो जाता है तो यह पारिस्थितिकी व जातियों के लिए हानिकारक होता है।

ओजोन : आक्सीजन का एक उच्च प्रतिक्रियाशील जहरीला रूप जिसकी क्लोरिक गन्ध क्लोरिक जैसी होती है यह प्रति मिलियन 0.02 भाग को ही हवा के संकेन्द्रण में जनता द्वारा पहचान ली जाती है। बिजली कड़कने के दौरान जब हवा में विद्युत जाति है तो ओजान स्वतः ही उत्पादित होती है। ओजर समताप मण्डल में ओजोन परत के रूप में होता है। जहां पर यह एक ओजोन चक्रवाक में बनता व टूटता रहता है।

क्लोरोफ्लोरो कार्बन : ऐरोजल प्रणोदक, रिफ्रिजरेन्ट तरल व फ्रमब्लोईग एजेंन्ट ये सभी पदार्थ लोरोफ्लोरो कार्बन में आते हैं जो फियोन व्यापारिक नाम से जाने जाते हैं।

ग्रीन हाउस प्रभाव : ग्रीन हाउस के निर्माण में जो चयनित समाहित प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है वह सामान्य वातावरण जल वाष्प तथा कार्बन डाईऑक्साइड में समानान्तर पाया जाता है। यद्यपि वातावरण का एक छोटे से हिस्से में ही वातावरण व धरातल का जो संतुलन होता है उसे काफी मात्रा में प्रभावित करता है।

19.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

विश्व विकास प्रतिवेदन, 1972, **विकास एवं पर्यावरण विश्व बैंक,** ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।

विकास व पर्यावरण पर विश्व आयोग, 1987, **हमारा समान भविष्य,** न्यू यार्क, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।

आनन्द सुधीर तथा अमात्य सेन 1992, **गतिमान मानव विकास, सिद्धांत एवं वरीयताएं,** मानव विकास प्रतिवेदन ऑफिस, ऑक्सनल पेपर - 8 UNOP8 न्यूयार्क।

19.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) 19.2 के भाग को पढ़ें तथा उत्तर दें।

2) 19.2.2 के उपभाग को पढ़े तथा उत्तर दें।

3) 19.2.2 के उपभाग को पढ़े तथा उत्तर दें।

4) 19.2 के भाग को पढ़े तथा उत्तर दें।

बोध प्रश्न 2

1) 19.3.1 के उपभाग को पढ़िए तथा प्रश्न का उत्तर दीजिए।

2) क) उपभाग 19.3.2 से 19.3.6 तक पढ़िए।

इकाई 20 मानव अधिकार एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 मानव अधिकारों का महत्व
20.3 संकल्पना : विकास एवं अर्थ
20.3.1 प्राचीन यूनानी एवं स्टोइक दार्शनिक
20.3.2 आज का प्रमुख सिद्धांत
20.3.3 विकास के मील के पत्थर
20.3.4 विकास का अधिकार
20.3.5 व्यक्ति के विविध संकल्पना–निर्धारण
20.4 सार्वभौम बनाम सांस्कृतिक सापेक्षवाद
20.4.1 कारेल वास्क के अधिकारों की तीन पीढ़ियाँ
20.4.2 दो प्रसंविदा पत्रों में अंतर
20.4.3 संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष सम्मेलन
20.4.4 संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उपनिवेशीकरण
20.5 मानव अधिकार, विकास एवं लोकतंत्र
20.5.1 हेलसिंकी प्रक्रिया
20.5.2 भूमंडलीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था में कार्यनीतिक परिवर्तन
20.5.3 मानव अधिकारों पर अमरीकी नीति
20.6 मानव अधिकारों पर वियना घोषणा की विशेषताएँ
20.7 मानव अधिकार संरक्षण के समक्ष उभरती चुनौतियाँ
20.8 सारांश
20.9 परिशिष्ट-I
20.9.1 भारत : मौलिक कर्तव्य (अनुच्छेद 51क)
20.9.2 भारत : मौलिक अधिकार
20.9.3 भारत : राज्य के नीति निदेशक तत्व
20.10 परिशिष्ट-II
20.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
20.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.0 उद्देश्य

आज "मानव अधिकार" विषय बहुत ही प्रसिद्ध हो चुका है, इसके बहुत सारे आयाम हैं और प्रत्येक आयाम पर पूरे शोध पत्र लिखे जा सकते हैं तब ही उन आयामों के विवरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं क्योंकि इन आयामों में बहुत सारी सामग्री हैं जिसको यहाँ पर प्रस्तुत करने के लिए न तो स्थान ही और न उचित अवसर। फिर भी हम इस इकाई में मानव अधिकार तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से संबंधित अनेक मुद्दों और विकसित परिघटनाओं पर चर्चा करेंगे। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- संकल्पना की पहचान : मूल्यांकन, अर्थ एवं उसके महत्व को समझ सकेंगे,
- विश्वव्यापी स्तर पर उठे या उठाए गए मुद्दों पर चर्चा कर सकेंगे,
- विकास एवं लोकतंत्र के अनेक मुद्दों पर मानव अधिकारों की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट कर सकेंगे, और
- विकासशील देशों में मानव अधिकारों के संरक्षण में लगी अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों की भूमिका का मूल्यांकन करने में समर्थ होंगे।

20.1 प्रस्तावना

आज हम मानव अधिकारों के संबंध में चर्चाएं सुनते हैं, उसके बारे में अध्ययन करते हैं परन्तु क्या आप जानते हैं कि इन अधिकारों की उपज बहुत पहले ही पश्चिमी देशों में हो चुकी थी जिस पर उनकी तीखी पकड़ एवं वे प्राधिकारिक रूप से उनका व्यापक रूप से प्रयोग करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव अधिकारों से वे लोग बहुत पहले से परिचित हैं। इसके अतिरिक्त यह एक अलग बात हो सकती है कि अधिकार कमोबेस सभी संस्कृतियों और परम्पराओं में मौजूद रहे हैं। परन्तु यह भी सच है कि मानव अधिकारों की संकल्पना उनका मानकीकरण तथा उन पर विचार–विवेचना व विश्लेषण का जो महत्वपूर्ण कार्य संपन्न हुआ है वह विश्वभर में प्रसिद्ध है। यह पश्चिम पद्धति की महान देन है कि जिसने उदार एवं बहुत गहरी नींव पर मानव अधिकारों की पहचान करते हुए उन्हें व्यवस्थित रूप से विश्व के समक्ष रखे हैं। फिर भी हमारा यह मानना है कि जिस तरह से मानव अधिकारों के मूल्यों को आंका गया है वह अभी न तो समुचित है और न ही इन पर कार्य अभी पूर्ण हुआ है। आज विश्व में राजनीति एवं आर्थिक व्यवस्था में बुनियादी बदलाव आए हैं इसलिए मानव अधिकारों के संतुलित परिप्रेक्ष्य में गहन विवेचन एवं निष्पक्ष परीक्षा का व्यापक कार्य पूरा करना बाकी है। मानव अधिकारों को जो वास्तव में उन्हें महत्व मिलना अपेक्षित है वह केवल निम्नलिखित अध्यायों में प्रस्तुत विश्लेषण के माध्यम से ही समझा जा सकता है। तब ही उनके वास्तविक महत्व एवं उनकी आवश्यकताओं को समुचित रूप से आंका जा सकता है। इसलिए हमें चाहिए कि इस इकाई में दिए गए तथ्यों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके मानव अधिकारों की दिशा निर्देशों के अनुकूल इनके महत्व को समझने का प्रयास करें।

20.2 मानव अधिकारों का महत्व

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

"मानव अधिकार" विषय पर जब हम चर्चा करते हैं तो हमें एक दृष्टि में ऐसा लगता है कि यह बहुत आसान एवं सरल धारणा है किंतु दूसरे ही क्षण जब हम गहन अध्ययन करते हैं तो पता लगता है कि यह बहुत जटिल एवं पेचीदा संकल्पना है। मानव अधिकारों का सर्वविदित या प्रसिद्ध कथन यह है कि यह मानव से संबंधित है। परन्तु जब हम इसका गंभीरता से विश्लेषण करते हैं तो हमें आसानी से पता लग जाता है कि यह अवधारणा बहुत जटिल भी है। इस अवधारणा या विचार को जटिल बनाने में दो महत्वपूर्ण घटक सहायक होते हैं। ये हैं। (क) इसके निर्णय राजनीतिक तर्कों सहित दार्शिनिक विशेषताएं रखते हैं तथा (ख) दूसरे इसकी शब्दावली को बहुत ही जटिल तथा अबोधपूर्ण बना दिया गया है जिससे इसकी अवधारणा को समझने में अवश्य ही कठिनाइयां सामने आई हैं।

इसके साथ ही यह विचारणीय विषय है कि चाहे कितनी भी मानव अधिकारों के अर्थों में जटिलता रही हो फिर भी उसके मूल सिद्धांतों के केन्द्र बिंदु से उसकी अवधारणा किसी भी प्रकार से अलग नहीं हो सकी है। अर्थात् प्रावधान, संरक्षणता एवं संवर्द्धन अथवा प्रोत्साहन जिसका वास्तविक मूल्यांकन "हम निश्चयपूर्वक दृढता से घोषित करते हैं कि हम सब एक मानव समुदाय के लोग हैं।" के कथन में स्पष्ट झलकता है। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि किसी भी अर्थ में इसका विवेचन करने पर हमें मानव प्रतिष्ठा के लिए उसके आदर की भावना उसके अत्यंत आवश्यक मुल्य है। जिसका सीधा अर्थ मानव अधिकारों के रूप में निकालना आवश्यक है। परन्तु जब मानव अधिकारों को व्यापक रूप से लागू करने का प्रश्न उठता है उस समय राजनीतिक निर्णय केंद्र बिंदु में स्थापित हो जाते हैं अथवा दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि मानव अधिकारों को लागू कराने के लिए हमें राजनीतिक व्यवस्था के प्रभाव क्षेत्र में जाना पड़ता है या फिर उनके निर्णयों पर निर्भर रहना पड़ता है। मानव अधिकारों को लागू कराने में राजनीतिक लोगों के दखल को हम आज की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के रूप में वर्णन कर सकते हैं। इन सब मुद्दों के अलावा हम 20वीं सदी के अंत के नजदीक पहुँच चुके हैं। इसलिए कुछ विवाद भी होंगे फिर भी सबसे प्रमुख विचार जो मानव अधिकारों का है वह 21वीं सदी के कार्य सूची में मौजूद है। और यह जो थोड़े से विवादित मुद्दे हैं अगली शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक रहने की ही उम्मीद करनी चाहिए बाद के वर्षों में यह स्वयं ही आसानी से हल होने की संभावनाएँ बनी हुई हैं।

मानव अधिकारों के महत्व को नीचे दिए गए विकसित संकेतकों के माध्यम से दर्शा सकते हैं :

क) संयुक्त राष्ट्र संघ की पहल व प्रोत्साहन से जून 14 से 25, 1993 के दौरान वियना में मानव अधिकारों पर विश्व सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इससे पहले इसी विषय पर सन 1968 में प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन तेहरान में किया गया था। वियना में यह जीवंत सम्मेलन की प्रक्रिया दो सप्ताह तक चली थी जिसमें सर्वसम्मति से निर्णय लेकर वियना घोषणा एवं कार्य योजना की घोषणा की थी। उस समय संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बॉतरोस बॉतरोस घाली ने इस घोषणा के समय यह उद्गार प्रस्तुत किए थे कि यह "आगामी सदी में मानव अधिकारों के लिए विश्व व्यापी कार्य योजना की एक नई दृष्टि व सोच है।" इसके बाद वर्ष 1995 में मार्च के महीने में आयोजित सामाजिक विकास के लिए विश्व सम्मेलन में विश्व के शीर्ष नेताओं ने एकमत से दस प्रतिबद्धताओं की सूची तैयार की जिसमें मानव अधिकार शामिल किए गए थे। उनकी मूल उद्घोषणा इस प्रकार थी :

"सभी मानव अधिकारों की संवृद्धि एवं संरक्षण के मूल सिद्धांतों पर सामाजिक एकता को उन्नत किया जाए।"

ख) उपर्युक्त लिए गए निर्णयों को लागू करने के उद्देश्य से सदस्य देशों ने निर्णयों को कार्य रूप देने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता लोगों को मानव अधिकार संबंधी शिक्षा देने की समझी गई थी। इसी लिए अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार शिक्षा दशाब्दी की घोषणा की गई थी और तब ही यानि 1995 से अपना कार्यविधिवत कर रही है। भारत ने सन 1993 में राष्ट्रीय मानव आयोग की स्थापना की और आयोग उसी समय से अपना काम बखूबी कर रहा है। यह अधिकारों की चेतना के प्रति लोगों को जागरूक बनाने के लिए राष्ट्र व्यापी कार्यों और अभियानों में जुटा हुआ है। इसके साथ साथ ही अपनी कार्यनीतियों के तहत "वर्ग अधिकारों" की जानकारी और चेतना को विकसित करने के लिए विशेष वर्गों जैसे कि महिलाओं, बच्चों, जनजातियों तथा दलितों, उपभोक्ताओं, बीमारी से पीड़ित लोगों एवं वृद्धों, अपंग व विकलांगों तथा अन्य लोगों को एकीकृत करने उनमें एक जुटता पैदा करने के लिए विशेष कार्यक्रमों एवं अभियानों को आरंभ करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लगा हुआ है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ग) युद्धोत्तर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की यदि हम गहन छानबीन करते हैं तो हम पायेंगे कि "निरंतर बदलती हुई, प्रायः विवादित परन्तु अनुदान नीति पर प्रमुख रूप से परा राष्ट्रीय घोषणाओं के द्वारा अपनी विशिष्ट चारित्रिक आचरणों में वृद्धि करती हुई राजनीति व्यवस्था का ताना बाना बनता रहा है (आर ई वुड)। राजनीतिक नेता यह सहायता अनुदान कूटनीति विकास के सवाल पर अपना ध्यान केंद्रित करती रही है। यदाकदा लोकतत्र, अच्छी सरकार एवं मानव अधिकारों के संबंध में मुद्दे उठाते रहे हैं, जो आज की स्थिति हमारे समक्ष बनी हुई है। इन दिनों में यह भी देखने में आया है कि शीत युद्ध के बाद के दिनों और सोवियत संघ के विखंडन तथा कम्यूनिष्ट गुट के बिखराव के बाद विशेष रूप से राजनीति दृष्टिकोण के केन्द्र बिंदु में सामयिक बदलाव आया है। यह तो बाद में ही स्पष्ट होगा कि जब अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के शीत युद्ध के पश्चात के चरण में सदस्य देशों के अपने आचरण एवं व्यवहार में मानव अधिकारों की चेतना को अपरिहार्य बना दिया जायेगा या उनकी स्थितियाँ स्वयं इसके लिए बाध्य कर देंगी। इस लिए अभी से सभी अनुदान सहायता देने वाले देश एवं अभीकरण मानव अधिकारों को अपनी अनुदान सहायता अनुदान नीतियों में आवश्यक शर्तों में शामिल कर दिया गया है अर्थात् उन्होंने अपनी सहायता अनुदान नीति में इस पक्ष को अनिवार्य रूप से शामिल किया हुआ है जो एक महत्वपूर्ण विषय है।

घ) आज की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है, जैसे कि जो देश अनुदान सहायता दिए जाने में मानव अधिकार चेतना विषय को उसमें शामिल करने के विरुद्ध रहे हैं वे देश भी आज के विश्व में मानव अधिकारों के महत्व को समझने लगे हैं और साथ ही इसके पक्ष में तर्कों सहित इसे स्वीकार करने के लिए पहलकदमी कर रहे हैं। यह एक अच्छे उदाहरण की शुरुआत है। ये देश अधिकतर पूर्व एवं दक्षिण पूर्व एशिया के हैं जो गैर पश्चिमी विश्व के हैं साथ ही यह देश पश्चिमी उदार व्यक्तिवाद के आवश्यक अंशदाता नहीं है। यह लोग भी इसके समक्ष "सांस्कृतिक सापेक्षवाद" को अपनाने के लिए तर्क प्रस्तुत करते हैं। संक्षेप में "सांस्कृतिक सापेक्षवाद" का अर्थ यह है कि किसी देश की प्रमुख सांस्कृतिक पद्धति को अपनाया जाना या उसमें शामिल किया जाने से है। इसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि सांस्कृतिक सापेक्षवाद भी मानवाधिकारों की संकल्पना–निर्धारण ही है। इसलिए इसे प्रभावी रूप से लागू करने के लिए हमें ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह भी याद रहे कि किसी भी सांस्कृति सापेक्षवादी ने मानव अधिकारों के महत्व को नकारा नहीं है और न उसके विरुद्ध

कभी कोई विपक्ष में सवाल ही खड़े किए हैं। अंत में हम कह सकते हैं कि कुछ भी हो ये देश भी मानव अधिकारों के वास्तविक रूप और उनको व्यवहारिक ब..ने के लिए पश्चिमी देशों के साथ उनकी वकालत कर रहे हैं जो एक सुखद विषय है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना किजिए।

1) आज मानवाधिकारों के महत्व को प्रदर्शित करने वाले विभिन्न विकसित संकेतकों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों में कौन से सही हैं और कौन से गलत हैं। प्रत्येक के समक्ष सही या गलत लिखिए।

क) राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना सन 1995 में हुई। सही/गलत

ख) अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार शिक्षा का आरंभ सन 1993 में हुआ। सही/गलत

ग) मानव अधिकार विश्व सम्मेलन का आयोजन जून 1993 में हुआ। सही/गलत

घ) पिछले दिनों तक सहायता अनुदान नीतियों में विकास का मुद्दा उठाते रहे हैं किंतु वे लोकतंत्र एवं मानव अधिकारों को प्रारंभिक महत्व भी नहीं दे रहे थे। सही/गलत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.3 संकल्पना : विकास एवं अर्थ

हम पिछले भाग में पढ़ चुके हैं कि मानव अधिकार बहुत महत्वपूर्ण है। यदि आज मानव अधिकार महत्वपूर्ण हो गए हैं तो, यहाँ पर यह बताना आवश्यक हो गया है कि इस संकल्पना का विकास तथा उनके व्यवहार में किस प्रकार से परिवर्तन आया है। इसके विकास का उतार चढ़ाव का इतिहास भी अनूठा है। आपको यह जानकर भी रूचिकर लगेगा कि आज हम मानव अधिकार के लिए जो शब्द प्रयोग में ला रहे हैं। इससे पूर्व इसकी यह शब्दावली नहीं थी। इसे विशिष्ट प्रकार से व्यक्ति के अधिकार अथवा प्राकृतिक अधिकारों के नाम से जानते थे। आज की ओर पहले की शब्दावली में जमीन–आसमान का अंतर है। उदाहरण के लिए थामॅस पेने ने सबसे पहले "मानव अधिकार" शब्द का प्रयोग किया था। हुआ यूं कि फ्रांस ने 1789 में व्यक्ति एवं नागरिक अधिकारों की घोषणा की। इन अधिकारों का अंग्रेजी में अनुवाद करते समय मानव अधिकार "शब्दावली" को अपनाया गया था। याद रहे इसी लेखक ने सन 1792 में मानव अधिकारों पर एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक "राइटस आफ मैन" रखा था। इसी वर्ष यानि की 1792 में ही विश्व में पहली बार फ्रांस में ही मैरी वालस्टॉनक्राफ्ट ने अपनी प्रसिद्ध सांस्कृतिक पुस्तक "ए विन्डीकेशन ऑफ दि राइट्स आफ वूमन" में महिलाओं को समान अधिकार देने के लिए जोरदार तर्क एवं मुद्दे उठाए थे। यह पुस्तक महिलाओं के अधिकारों की वकालत करने वाली विश्व की प्रथम पुस्तक तो है ही बल्कि महिलाओं को समानता के अधिकार के परिप्रेक्ष्य में यह इतिहास में मील का पत्थर भी सिद्ध हुई है। सन 1947 में एलीन रूजवेल्ट ने "व्यक्ति के अधिकार" के स्थान पर इसका "मानव अधिकार" नाम रखने का सुझाव दिया था जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया था। उसी दिन से इस नाम के लिए एकरूपता अपनाई गई थी। इसके बाद 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने मानव अधिकारों की सार्वजनिक घोषणा करते समय इसी नाम को सहर्ष अपनाया था जो आज विश्व में इसी नाम से चर्चित है।

20.3.1 प्राचीन यूनानी एवं स्टोइक दार्शनिक

मानव अधिकारों की यदि तह में देखा जाए तो इसका आधार अत्यंत प्राचीन है। क्योंकि विश्व के विभिन्न धर्मों ने इस अधिकार की व्याख्या एवं शिक्षा किसी न किसी रूप में प्रस्तुत की है। परन्तु मानव अधिकारों की संकल्पना–निर्धारण में जो सबसे अधिक प्राधिकृत शब्द सांस्कृतिक एथेनिया लोकतंत्र में आसानी से खोजी जा सकती है तथा इसके सामाजिक प्रभाव को रोम के विधिशास्त्रों से सरलता से पता लगाया जा सकता है। इस शब्दावली को यहाँ के दार्शनिकों के दर्शनों में तथा नियमों में मौजूदगी है। साथ में यह जानकार आश्चर्य होना चाहिए कि आदर्शी नीतिपरक संकल्पना से ही मानव अधिकारों का उद्‌गम हुआ है जिसे राजनीतिक सिद्धांत को अपना सर्वगुणार्थ माना है या अपनाया है। यही सिद्धांत आज तक यानि की आधुनिक मूल स्रोत माना गया है। प्राचीन यूनानियों का विचार था कि "प्रकृति" ही "मानव सामाजिक आचरण के निर्देशों के लिए उद्‌देश्यपरक लक्ष्य एवं स्तर है।" जो आचार के व्यवस्थित विवरण के माध्यम से प्राकृतिक नियमों को जाना जाता है जिसे समाज में "कर्तव्य करने की भावना" उत्पन्न होने को कहा जाता है। इसे राजनीति दृष्टि से इस प्रकार कह सकते हैं। इसका अर्थ है नगर राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को प्राकृतिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते हैं। वास्तव में इसका सीधा आशय नागरिकों से लिया गया है जिसका मायना है कि प्राकृतिक कानूनों का लाभ नागरिकों के अतिरिक्त अन्य किसी को प्राप्त नहीं है। परन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस तरह की असमानताओं की प्रतिरक्षा के लिए प्लैटों और अरस्तू ने समानता की अनेक संकल्पनाएं प्रस्तुत की हैं जिनको विश्व भर में ख्याति प्राप्त हुई है जिन्हें आज के मानव अधिकारों के सिद्धांतों में प्रमुख तत्व स्वीकार किए जाते हैं। इन विश्व विख्यात विद्वानों के प्रमुख सिद्धांतों के कुछ तत्वों को आपकी जानकारी के लिए नीचे दे रहे हैं :

- सभी नागरिकों को समान आदर (ISOTIMIA)
- विधि के समक्ष सब समान है (ISONOMIA)
- राजनीतिक शक्ति में समान अधिकार या हिस्सा (ISOKRATIA)
- मताधिकार में समानता (ISOPSEPHIA) तथा
- नागरिक अधिकारों की समानता (ISOPOLITIA)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

परंतु हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि उपर्युक्त लाभ केवल नागरिकों को ही प्राप्त थे और इस अधिकार क्षेत्र में आने वाले लोग एथेन्स में रहने वालों की आधी जनसंख्या ही शामिल की गई थी। क्योंकि उस समय सब को नागरिकता का अधिकार प्राप्त नहीं था। जहाँ तक समानता की रोम की संकल्पना का सवाल है, इसका क्षेत्र एथेन्स से व्यापक रहा है जिसमें अधिकारों को लागू किया जाता था। इस तरह हम देखते हैं कि प्राकृतिक विधि सिद्धांत को स्टोइक दार्शनिकों ने स्थापित करने में अपना विशेष सहयोग प्रदान किया है। यदि हम प्राचीन यूनानी विचारों का अवलोकन करें तो पता चलता है कि वे "प्रकृति" को वैचारिक दृष्टि से देखते थे तथा प्रकृति को "विधि की सार्वजनिक व्यवस्था" के रूप में मानते थे। याद रहे यही विचार रोम के समाज में व्याप्त है। इसलिए उनकी मान्यता है कि सभी विवेकपूर्ण मानव समान नागरिक स्तर अथवा समान अधिकारों के हकदार हैं। रोम के प्राकृतिक विधि के सिद्धांत ने यूनान के इस छोटे से विचार की विस्तृत व्याख्या करके प्रस्तुत किया जिससे विधि के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। यूनान के इस स्थानीय अवधारणा को व्यापकता से देखा गया तथा उसके प्रभाव का अर्थ यह माना गया कि सभी व्यक्ति समान हैं तथा विश्व समुदाय के सदस्य हैं। विश्व समुदाय मानव का एकमात्र लक्ष्य है। अर्थात् यही वह वैचारिक बिंदु हैं जहाँ से कुछ पाठ यहाँ से सीखे होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि विशिष्ट बहुलवाद के साथ सार्वजनिक सोच का सहअस्तित्व इसमें ही मौजूद है। यही आज की सोच यानि मानव अधिकारों का वैचारिकरण एवं व्यवहार में महत्वपूर्ण तत्व उभर कर सामने आया और अपना विशेष स्थान स्थापित करते हुए अपनी विश्वव्यापी मान्यता हासिल की।

20.3.2 आज का प्रमुख सिद्धांत

आज का प्रमुख सिद्धांत अथवा अवधारणा का मूल स्रोत यानि की मानव अधिकारों का जन्म प्राकृति विधि दर्शन से माना गया सिद्धांत है। इस सिद्धान्त के वास्तविक देन दार पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति है। आज भी यदि मानव अधिकारों पर दस्तावेज बनता है अथवा तैयार होता है तो वह यूनानी एवं रोम के विचारों के प्रभाव के बिना नहीं बन सकता है। इसलिए यह कहने में कतई

झिजक नहीं होनी चाहिए कि यह पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की एकमात्र देन है। जिसे समयानुसार परिवर्तन करके मानव अधिकारों के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। अतः मानव अधिकारों को सार्वजनिकीकरण करने तथा उसे संभावित व्यावहारिक रूप देने के लिए स्थानीय भिन्नताओं को ध्यान में रख कर उनका विवेचन किया जाना आवश्यक है तथा उनका व्यापक प्रयोग करना आज की अत्यन्त आवश्यकता है।

आदर्शतः मानव अधिकारों को मानव की समान प्रतिष्ठा, उसका गौरव-सम्मान के मुद्दों से जोड़ना चाहिए और ऐसा करते समय किसी अन्य आदर्श तथा राजनीति एवं आर्थिक व्यवस्था से संबंधित अड़चने सामने नहीं आनी चाहिए या फिर उन्हें इन सब से अलग रख कर देखा जाना बहुत आवश्यक है। ताकि कठिनाइयों का समाधान निकाला जा सके। इसके साथ ही मानवता के अन्य पक्षों का भी अध्ययन किया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप उनकी भी प्रतिष्ठा को संरक्षित एवं सशक्त बनाने में सहयोग और सहायता दी जा सके। ऐसा करना सम्पूर्ण विश्व के मानव के लिए यही एकमात्र सरल पथ या उपाय होगा।

अपने सभी मतभेदों एवं भिन्नताओं को भुलाकर केवल एक मानव समुदाय का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें विश्व का प्रत्येक व्यक्ति गर्व से कह सके कि मैं इसी वैश्विक समुदाय का सदस्य हूँ। किंतु यह सब तभी संभव हो सकता है जब हम मानव अधिकारों में प्रमुखता से सामाजिक सीमेंट का तत्व इसमें शामिल कर सकें। यह सामाजिक तत्व "अखंडनीय मानव तत्व" बन सकता है और मानव अधिकारों की नींव को मजबूत बनाने में अपना विशेष सहयोग दे सकता है। प्रत्येक धर्म तथा सामाजिक लोकाचार अपनी विविधता को संरक्षित करते हुए अथवा उसे सुरक्षित रखते हुए यह सब संभव हो सकता है जैसे कि भारत में अनेकताओं में एकता का प्रसार होता है जिसे हम "वसुधैव कुटुम्बंकम" नाम से पुकारते हैं। परन्तु आज हम इन दिनों में आर्थिक एवं वित्तीय व्यवस्था का जिस आक्रामक गति से भूमंडलीकरण हो रहा है उसमें समानता के मूल्यों का विश्व व्यापीकरण तथा समान स्वतंत्रता के तत्व कहीं दूर तक भी नजर नहीं आ रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि विश्व में आर्थिक व्यवस्था का साम्राज्य स्थापित करने के लिए भयंकर मारामारी चल रही है जिसमें मानव अधिकारों का कहीं नामोनिशांन दिखाई नहीं देता है। इस दौड़ ने मानव अधिकारों को गौण बना दिया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हमने एक सामान्य विद्यार्थी के ज्ञानार्थ मानव अधिकारों का एक चित्र प्रस्तुत किया है जिसका निर्माण विषय के विशेषज्ञों ने तैयार किया है। हमारा मानना है कि इस सामग्री से आपको अवश्य ही लाभ होगा तथा आपके ज्ञान में संवृद्धि होगी। तथापि हम इसके विपरीत कुछ ऐसे विचारों को भी प्रकट करना चाहते हैं जो पूर्वाग्रहों से पीड़ित हैं और ऐसे विचारों को भी वे विचारक मानव अधिकारों के तुल्य समझते हैं ये हैं :

क) नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों का संरक्षण तथा उन्नयन करना।

ख) समयानुसार आक्षेपण के साथ आर्थिक अधिकारों के लिए माँग करना।

ग) पश्चिमी विश्व में अपनाई जाने वाली लोकतंत्रता और इससे भी अधिक उदार लोकतंत्र की व्यवस्था को स्वीकार करने की अपेक्षा करना।

उपर्युक्त विषय पर पश्चिमी देशों के नीति निर्धारक तथा विद्वानों का तर्क है कि यह सब अमरीका के राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर के नेतृत्व में किया जा रहा है तथा उनका मानना भी है कि अभी वास्तव में मानव अधिकारों का संचलन आरंभ हुआ है। इसके बाद उनके अनुसार मानव अधिकार अब अंतर्राष्ट्रीय अधिकारों का जुड़ाव विश्वव्यापी संदर्भ में स्थापित हो चुका है।

20.3.3 विकास के मील के पत्थर

मानव अधिकारों के क्षेत्र में जो निरंतर विकास हुआ है वह वास्तव में प्रतिमान साबित हुए हैं। यह एक अलग मुद्दा है कि लोकतंत्र और मानवाधिकारों की संकल्पना अब पुरानी हो गई है किंतु यह तो भूला नहीं जा सकता है कि जिम्मी कार्टर के इन शब्दों की शब्दावली के साथ सरकारी तौर पर व्यवहार करने की मान्यता दी है। कुछ भी हो वर्ष 1977 तथा 1981 के बीच उनके अध्यक्षीय अवधि में यह अधिकार उनके आधार बने थे। यह याद रखना चाहिए कि "लोकतंत्र" यानि की "डेमोक्रेसी" शब्द पहली बार सोलहवी सदी में अंग्रेजी शब्दकोश में शामिल किया गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि इस सदी में अंग्रेजी भाषा का शब्द बना था। यह अलग विषय है कि इस अवधारणा का

अंग्रेजी भाषा में शामिल हुआ था। इसी प्रकार 1688 में इंगलिश बिल राइट्स के माध्यम से स्वतंत्रता को पवित्रीकरण किया गया था अर्थात् स्वतंत्रता को प्रमुखता से स्वीकार करते हुए उसे अपनाया गया था। इसी क्रम में 1776 अमरीका की स्वतंत्रता की घोषणा तथा 1789 (फ्रांस) में व्यक्ति और नागरिक के अधिकारों की घोषणा की गई। यह सब घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि मानव अधिकार एवं समानता व स्वतंत्रता की संकल्पना का जन्म पश्चिमी विश्व में ही हुआ है। यह और अधिक महत्वपूर्ण विषय है कि यहाँ जितनी भी घोषणाएँ हुई हैं वे सब राष्ट्र राज्यों के इर्द गिर्द हुई हैं। फिर भी हम कह सकते हैं कि दूसरे विश्व युद्ध के बाद अधिकारों का सवाल उठाए गए और सर्वमुक्तिवादी दृष्टिकोण का जन्म हुआ। इसका प्रथम उदाहरण 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणा पत्र में "सब के लिए अधिकारों एवं मूल अधिकारों की स्वतंत्रता के लिए अनुपालन हेतु व्यापक आदर तथा मान्यता दिए जाने" की घोषणा की। इसके साथ ही "लोगों के समान अधिकारों के सिद्धांत तथा स्व निर्धारण के अधिकारों के अनुपालन के अनुसार राष्ट्रों के बीच मित्रतापूर्ण संबंधों को विकसित" करने की भी घोषणा की गई थी। इस घोषणा के तीन वर्ष बाद यानि की दिसम्बर 10, 1948 को (यह तारीख मानव अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है) संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव ने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (यू डी एच आर) सभी सदस्यों के मतैक्य से की थी। यह अलग मुद्दा है कि इस समय सोवियत गुट के राष्ट्र, दक्षिण अफ्रीका और साउदी अरब जैसे देश इस घोषणा के समय तटस्थ रहे थे। इस घोषणा ने मानव अधिकारों की पिछली संकल्पना को बुरी तरह से ध्वस्त कर दिया था। उस समय संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों में से केवल एक चौथाई देशों ने ही यू डी एच आर को अपनाया था। इसके बाद के वर्षों में बहुत सारे राष्ट्रों ने अंतर्राष्ट्रीय संधियों के माध्यम से मानवाधिकारों को आदर सहित स्वीकार किया और उनका समुचित पालन भी किया था। इस तरह से विश्व की अनेक घोषणाओं के माध्यम से आज के मानवाधिकारों की यात्रा पूर्ण हुई है जो वास्तव में एक लम्बे समय और अनेक घटनाओं के साक्षी भी रहे हैं। यह हैं मानव अधिकार।

इस संदर्भ में कुछ समझौतों/संधियों का विवरण इस प्रकार है :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क) आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा पत्र (प्रतिज्ञा पत्र) (आई सी ई एस सी आर) तथा नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा पत्र, ये क्रमशः 1966 तथा 1976 में लागू किए गए।

ख) मानव अधिकारों पर यूरोपिय सम्मेलन (1950), 1953 में लागू किए गए।

ग) मानव अधिकारों पर अमरीकी सम्मेलन (1969), 1978 में लागू किए गए।

घ) हेलसिंकी का समझौता (1975 में अपनाया गया)।

ङ.) आम लोग तथा मानव अधिकारों पर अफ्रिका की घोषणा यह 1986 में लागू हुआ।

यू डी एच आर (मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा) के साथ दोनों संविदा पत्र (आई सी सी पी आर तथा आई सी ई एस सी आर) तथा इनके विकल्प दस्तावेज तैयार किए गए जिन्हें इंटरनेशनल बिल ऑफ राइट्स (आई बी आर) अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय अधिकार बिल के नाम से जाना जाता है। वास्तव में आई बी आर संकल्पनात्मक प्रारूप इसी के आधार पर निर्मित किए गए हैं। इसलिए आई बी आर की दो विशिष्ट विशेषताओं का जिकर करना आवश्यक है। पहली विशेषता यह है कि 1948 में घोषणा के समय इसमें ऐसी शर्तों एवं उपबंधों का समावेश कर दिया था कि इस दस्तावेज में हस्ताक्षर करने वाले देश इसकी सभी शर्तों का शक्ति से पालन करेंगे। इसके साथ ही दूसरी शर्त यह जोड़ दी गई कि इन देशों में कहीं मानव अधिकारों का हनन तो नहीं हो रहा है या फिर उनका समुचित पालन हो रहा है अथवा नहीं। इसकी निगरानी का अधिकार भी साथ में होगा। अर्थात् जब भी ऐसी कोई घटना घटी या फिर इस तरह की संभावनाएं हुई तो संबंधित देश को संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधियों को जांच करने का अधिकर है और वह संबंधित देश जांच एवं निगरानी में अपनी सहमति एवं सहयोग देगा।

इस तरह से आई सी पी आर की घोषणा के समय 121 देशों ने हस्ताक्षर किए थे और आई सी ई एस आर की घोषणा के समय 123 देशों ने सहमति प्रकट करते हुए हस्ताक्षर किए थे। भारत सरकार ने इन दोनों घोषणाओं की 10 अप्रैल, 1979 को अभिपुष्टि की। इस समय जनता सरकार थी और इसके मुख्य मोरारजी देशाई थे। इस संदर्भ में दूसरी खास विशेषता यह है कि हजारों संधियां संयुक्त राष्ट्र संघ में पंजीकृत की गई जिनमें 5 प्रतिशत बहु पश्चातीय संधियां थी। जहां तक मानव अधिकारों के क्षेत्र से संबंधित हैं वहां यह कहा जा सकता है कि इसका विरोध किया

गया था। वह कहीं तक ठीक था। वास्तव में तथ्य यह है कि जितने भी मानव अधिकार संधियों का गठन हुआ है वे सभी बहु पश्चातीय है। इसलिए प्रस्तुत तथ्यों से स्पष्ट होता है कि पूरे विश्व में मानव अधिकारों का भरपूर पालन विश्व स्तर पर किया गया है। तथा मानव अधिकारों की व्यापकता उनके प्रति आदर भावना एवं पालन की दृढ प्रतिज्ञा हमारे सामने मौजूद है।

उपर्युक्त इन घटनाओं को ध्यान में रखते हुए विचार करने से पता चलता है कि व्यक्तिगत अधिकारों में दो नए आयाम और जुड़ गए जो सन 1945 तक इनके बारे में सोचा तक नहीं गया था। आज अंतर्राष्ट्रीय अधिवक्ता एवं टीकाकार इन आयामों को बहुत ही दृढता से स्वीकार करते हुए इन का समर्थन करतें हैं। तथा ये विषय विशेषज्ञ लोग कहते हैं कि सभी राष्ट्र राज्य संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों के साथ साथ इन समझौतों को भी स्वीकार करने में शामिल रहे हैं। वे राष्ट्र पूर्णरूप से प्रमुसत्ताधारी हैं। इसलिए यह प्रश्न ही नहीं उठता कि वे अपने नागरिकों के साथ कुछ ऐसा बर्ताव करेंगे जो मानव अधिकारों की संकल्पना के विरूद्ध हो। दूसरा तथ्य यह है कि अब लोगों के स्वयं निर्धारण या स्वयं निर्णय के अधिकार को कानूनी मान्यता मिल चुकी है और इस तरह से मानव अधिकारों का सम्मान करना, उनको स्वीकार करना एवं हनन होने की स्थिति होने पर उनकी सुरक्षा करने का अब सदस्य देशों का कानूनी अधिकार के साथ साथ कानूनी बाध्यता भी सामने है।

उपर्युक्त तथ्यों के साथ इस मुद्दे को भी नोट कर लेना चाहिए कि संयुक्त राष्ट्र संघ ही एक ऐसा स्थान है जहां पर मानव अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का खेल खेला जाता है। इसके साथ ही यह एक दूसरी कहानी है कि इस असमतल विश्व पर अपने प्रभाव को स्थापित करने या फिर विश्व में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए राजनीतिक कूटनीति एवं अन्य लोग चालें चलते रहें हैं। परन्तु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि व्यक्तिगत एवं समुदाय के अधिकार अब स्थापित हो चुके हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ के महत्वपूर्ण नेतृत्व में आवश्यक संस्थानों एवं कार्य तंत्र का निर्माण हो चुका है। साथ ही उनको स्वीकार करने, लागू करने के मानक भलि भांति बन कर सामने आ चुके हैं। फिर भी हम कह सकते हैं कि मानव अधिकारों के संबंध में यह कहना कि यह पूर्णरूप से सफल है या असफल है, यह दोनों स्थितियां ही सच नहीं हैं। जहां तक अनैतिक राजनीतिक गतिविधियों के चलते मानव अधिकारों की सीमाएं सीमित हुई हैं तथा उनके अनुपालन में अड़चने आई हैं। किन्तु इन सब कार्यकलापों के विरूद्ध भी बहु पश्चातीय संधियों, घोषणाओं, संकल्पों और समझौतों के होने से और इसी तरह से क्षेत्रीय शासन की सशक्त अभिव्यक्ति व गैर सरकारी संगठनों के पनपने और उनका विकास होने के कारण जिसमें संबंधित देशों की सरकारों का भी समर्थन प्राप्त है। इसलिए एक बेहतरीन संतुलन स्थापित हुआ है। साथ ही मानव अधिकारों का महान उद्‌देश्य भी स्पष्ट होकर विश्व के समक्ष उभरा है। अतः हम कह सकते हैं कि सब कुछ मिलाकर मानव अधिकारों का ही पलड़ा भारी है। तथा मानव अधिकारों को ही सबसे अधिक महत्व मिला है, जो सराहनीय तो है ही साथ में आज की आवश्यकता भी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के दस्तावेज में एक प्रस्तावना है और 30 अनुच्छेद हैं। जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में घोषणा की जिसके शब्द "सभी लोगों एवं सभी राष्ट्रों के लिए सामान्य स्तर और समान उपलब्धियां" हैं। भारतीय संविधान ने इन सबको अपनाते हुए इस देश के नागरिकों को अधिकारों एवं कर्तव्यों की घोषणा की हैं। अब सवाल उठता है कि क्या हमारे संविधान में दिए गए अधिकार और कर्तव्य संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणाओं के समान हैं। (कृप्या संधि के क्षेत्र का अवलोकन करें और भारतीय संविधान में दिए गए अधिकारों तथा कर्तव्यों को मानव अधिकारों की सर्वाभौम घोषणा के साथ परिशिष्ट-1 में दी गई सूची के साथ मिलान कीजिए। याद रखें कि अधिकारों एवं कर्तव्यों को संक्षिप्त यदि संकेतात्मक क्रम में दिए गए हैं।)

वर्ष 1968 में तेहरान में मानव अधिकारों पर प्रथम विश्व सम्मेलन का आयोजन किया गया। उस सम्मेलन में सिद्धांतों को स्वीकार किया गया जिसकी संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्वीकृति दी थी। आपको यह याद रखना हितकर रहेगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 1950 में घोषणा की थी कि "नागरिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता का इस्तेमाल करना और आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार एक दूसरे से संबंद्ध है और एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।" यह मानव अधिकारों की दोनों विशेषताएं अर्थात् "अहस्तांतरणीय एवं अतः निर्भर होने के कारण ही इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। इनका विखंडन नहीं किया जा सकता है। एक तरफ नागरिक और राजनीतिक अधिकार एवं आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकार दूसरी और हैं जिनकी आबद्धता बहुत ही मजबूत है। इसलिए यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि उपर्युक्त अधिकारों की भावनाओं एवं उसके मूल विषयों को मध्यनजर रखते हुए वर्ष 1993 में वियाना में मानव अधिकारों पर द्वितीय विश्व सम्मेलन का आयोजन

किया गया था जिसमें सभी अधिकारों को एकमत से स्वीकार कर लिया गया था। इस विश्व सम्मेलन के पश्चात मानव अधिकारों की प्रकृति, विषय एवं महत्व के संबंध में कोई विवाद बाकी नहीं रहा है।

20.3.4 विकास का अधिकार

मानव अधिकारों के क्षेत्र में विकास का अधिकार एक महत्वपूर्ण अधिकार है। इस अधिकार को स्वीकार करने में 1950 से 1993 तक एक लम्बी यात्रा तय करनी पड़ी है जिसमें इस मुद्दे को स्वीकार किया जाए अथवा नहीं। इस संबंध में एक लम्बे विवाद के बाद तीसरी दुनिया की स्थिति जो कि वास्तव में आर्थिक एवं सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकार की अत्यावश्यकता से जुड़ी थी इसमें मुख्य रूप से यह मांग थी कि नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के साथ साथ इन अधिकारों को उसी तरह की मान्यता दी जाए। इस विवाद ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विकासशील देशों के प्रयासों पर प्रभाव डाला था जिसके पीछे सोवियत संघ की " विकास का अधिकार" की संकल्पना पूरी तरह से काम कर रही थी। इस मांग को राष्ट्र संघ के सभी सदस्य स्वीकार करने के योग्य मानते थे। परन्तु इस मांग का विरोघ करते हुए पश्चिमी पूंजीपति देशों ने इसे अस्वीकार कर के सामूहिक अधिकारों" का दोषारोपण करते हुए "भूमंडलीय आर्थिक सुधारों" को प्रस्तुत किया और तीसरी दुनिया के देशों को कुछ रियायतें दे दी गई और कुल मिला कर मानव अधिकारों को कम कर दिया या फिर उनके प्रभाव क्षेत्र पर रोक लगा दी। दूसरे शब्दों में इसे यूं कहा जा सकता है कि विकास के अधिकार को पश्चिम के उदारवादियों ने मूल राजनीतिक एवं नागरिक अधिकारों में शामिल करने में सहमत हो गए किंतु अलग से इस अधिकार को रखने के सवाल पर अपना विरोध प्रकट करते रहे थे। इन सब विरोधों के बावजूद 1986 में महासभा ने विकास के अधिकार की घोषणा करके विरोधी पक्षों, यानि पश्चिमी पूंजीवादी देशों को सहमति दे दी। उनके तर्को को अमान्य करार दे दिया था। याद रहे इस अधिकार के विरोधियों को शांत करने तथ इसका मसौदा तैयार करने में संयुक्त राष्ट्र संघ को वर्षो तक कसरत करनी पड़ी थी। यह विकास का अधिकार घोषणा के अनुसार निम्न प्रकार से है:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

> "यह एक ऐसा अधिकार है, वास्तव में जिससे प्रत्येक व्यक्ति, मानव तथा सभी लोगों को वंचित नहीं रखा जा सकता है क्योंकि संपूर्ण मानव जाति भाग लेने, सहयोग देने तथा आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास की हकदार है। प्रत्येक का इसमें अधिकार बनता है। इसलिए सभी मानव अधिकार एवं मौलिक स्वतंत्रता इस अधिकार के बिना पूर्ण नहीं माने जा सकते हैं।"

उपर्युक्त विकास की परिभाषा विश्वव्यापी स्तर पर स्वीकार की गई है। वह एक अलग मुद्दा है कि एक लम्बे समय के पश्चात यह परिभाषा 1997 में स्वीकार की गई है। अर्थात् कह सकते हैं कि इस प्रक्रिया में 30 वर्ष से भी अधिक समय लगा है। क्योंकि आई सी ई एस सी आर की घोषणा पर सन 1966 में हस्ताक्षर हुए थे।

20.3.5 व्यक्ति के विविध संकल्पना-निर्धारण

पश्चिमी उदारवाद का लंगर व्यक्तिवाद के खम्बे में बंधा हुआ है। यह एक राजनीतिक दर्शन है जो "व्यक्तिगत की भौतिकवादी संकल्पना" पर अपना केंद्र बिदु स्थापित करती है। इसीलिए कहते हैं कि यह शरीर की संवेदना होती है और इसका दूसरे व्यक्तिगत अथवा प्रकृति से कोई अंतः संबंध नहीं होता है फिर इसका क्या महत्व होता है इस संबंध में प्रो. भिक्षु पारेख का कहना है कि "जीवन, अपने ठीक समय में निरंतर गतिमान और स्वतंत्र रहती है एवं शरीर की अदृश्य संचलन की उच्चतम नैतिक मूल्यों को स्थापित करती है।" यह है हिंसा, संकुचन। अवरोध व प्रतिबंध, पीड़ा होना आदि ये सब हमेशा उनकी शारीरिक शर्तो में मानव अधिकारों पर प्रभाव डालती है। जैसे कि चिल्लाना, पुकारना, मारना, भुखमरी तथा इसी तरह की अन्य "शारीरिक" पीड़ाएं व्यक्ति के नैतिक भर्त्सना और मानव अधिकारों के उल्लंखन एवं उसके अतिक्रमण का प्रतिवाद करती है उसे रोकने के लिए उत्साहित करती है। परन्तु यदि यह देखता है कि एक बालक धन प्राप्त करने के लिए अपनी योग्यता में वृद्धि करने के लिए कुंठित होता है अथवा एक अच्छे लाभकारी रोजगार के लिए हताश रहता है। इन समस्याओं में कोई भी व्यक्ति नैतिक समस्या का अवलोकन नहीं करेगा। इन सब के लिए उसी तरह से समाधान खोजने का प्रयास किया जायेगा। जिस तरह से मृत्यु को रोकने के लिए या उससे बचने के लिए किया जाता है। तीसरी दुनिया के विकासशील देश इस मानव अधिकारों की संकुचित संकल्पना पर आधारित सिद्धांत का कोई लाभ नहीं उठा सकते थे

क्योंकि यह उस "व्यक्ति" जिसकी की अपनी समाज जिसमें वह रहता है और इस स्थिति में यह याद रखना बहुत ही लाभकारी है कि "व्यक्तिगत का संकुचित दृष्टिकोण" का उदगम सतरहवीं शताब्दी में आरंभ हुआ था। इसके बाद इसका विकास होता रहा। इसको स्थापित करने वाले अंग्रेज राजनीतिक दार्शनिक जॉन लोक थे। जॉन लोक 1689 का राइट्स ऑफ बिल का मसौदा तैयार करने में बहुत नजदीकी सहयोगी रहे थे। जिसमें व्यक्तिगत की महत्वाकांक्षाहीन के अधिकारों को निरस्त कर दिया था और इसे सम्राट यानि क्राउन के परमाधिकार में सीमित कर दिया गया था। इस प्रकार 1689 का बिल राइटस इस तरह के विषय को विश्व के सामने प्रस्तुत करने वाला यह पहला अधिकार बिल था। नियत प्रक्रिया की सामान्य विधि और बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट (उपस्थापक) के अतिरिक्त सभी अधिकार मौजूद थे जिनको 1215 मैगनाकार्टा की तरह सम्राट ने संरक्षण दिया हुआ था। परन्तु सम्राट के परमाधिकार के विरूद्ध व्यक्ति के नागरिक एवं बाद में, राजनीतिक अधिकारों को इसमें संबद्ध करने का प्रयास किया गया था। यद्यपि पहले से चली आ रही इस दिशा की कारवाही जो व्यक्ति के अधिकारों के अर्थ और उसके विषय क्षेत्र को सीमित करते चले आ रहे थे। अतः आज की तथाकथित आधुनिक राजनीति से पहले व्यक्तिगत या व्यक्ति को बहुत धनी माना जाता था और इसके अर्थ भी बहुत ही कलिष्ट थे। प्राचीन एथेन्स से विश्वास किया जाता था कि "व्यक्ति वह होता है जिसके साथ भूमि और राजनीतिक अधिकार जुड़े होते हैं और यह दृष्टिकोण मध्य युग के आते आते यह माना जाने लगा कि एक शिल्पकार के औजारों को किसी शिल्पी से अलग नहीं किये जा सकते है या फिर उससे अलग नहीं माने जाते थे। उस समय में औजार उसके जैविक अंग माने जाते थे। जैसे कि किसी व्यक्ति के हाथ और पैर अंग होते हैं उसी तरह से यह औजारों को भी माना जाता था। (भिक्षु पारेख) हिन्दू इस बात में विश्वास करते हैं कि मनुष्य जन्म से ही एक जाति के सुनिश्चित घेरे में होता है अर्थात् जाति की कुप्रथा में माना जाता है कि मनुष्य की जाति जन्म से होती है। यह जाति प्रथा उसे उस तरह का समाज उपलब्ध कराता है जिसमें व्यक्ति जन्म लेता है। चीनी लोगों की भी बहुत जटिल संकल्पना होती है उनका मानना है कि मनुष्य एक परिवार में जन्म लेता है जिससे उसका संबंद्ध उसके पूर्वजों के साथ स्वयं ही बन जाते हैं और अपने जीवित संघ में बहुत सारे लोगों का मित्र एवं कई लोगों का शत्रु बन जाता है। इसलिए वह व्यक्तिगत रूप से इन सब से अलग दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है। इस तरह हमने एक व्यक्ति की संकल्पना का संक्षिप्त सार बताने का प्रयास किया है जो आपके लिए व्यक्ति के अधिकारों की संकल्पना को स्पष्ट करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) कालक्रम के अनुसार एक तालिका बनाएं जिसमें मानव अधिकारों की संकल्पना तथा व्यवहार के विकास में विकास के मील के पत्थरों को दर्शाते हुए प्रमुख तारीखों का भी उल्लेख कीजिए। इस तालिका का आरंभ महान घोषणा पत्र मैग्ना कार्टा से आरंभ कीजिए जिसमें अंग्रेज बैरोन के दबाव में आकर सम्राट जोहन ने हस्ताक्षर किए थे। यह महत्वपूर्ण तिथि 1215 ई. थी। तालिका के अंत में वर्ष 1993, में इस संबंध में घटी दो घटनाओं का विवरण दीजिए।

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों पर सही या गलत का चिन्ह लगाइये।

क) एलीनर रूजवेल्ट ने "व्यक्ति के अधिकार" (राइटस ऑफ मैन के स्थान पर "मानव अधिकार" नाम परिवर्तन करने का सुझाव दिया था। सही/गलत

ख) प्लैटो और अरस्तु के अनुसार नगर राज्य में प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार नहीं दिए जाने चाहिए। सही/गलत

ग) मानव अधिकारों की प्रमुख अवधारणा का जन्म पश्चिमी देशों में हुआ था। शेष अन्य समाज तो केवल उनका मात्र अनुकरण कर रहे हैं। सही/गलत

घ) प्रायः मध्ययुग के अंत तक एक शिल्पकार के औजारों को शिल्पी के शरीर के अंगों के समान समझा जाता था। सही/गलत

20.4 सार्वभौम बनाम सांस्कृतिक सापेक्षवाद

मानव अधिकारों में सांस्कृतिक सापेक्षवाद का बहुत महत्व है। इस तरह से व्यक्ति के विभिन्न संकल्पना-निर्धारण प्रत्ययवादीकरण के अंतर्गत एशियाई देशों ने जो मानव अधिकारों को अपनाया है उनमें तो मौजूद है किंतु ये मूल मानव अधिकारों से भिन्न अर्थ नहीं देते हैं और न ही किसी तरह से विपरीत है। 1993 में आयोजित वियना कांग्रेस के अधिवेशन के समय चीन के प्रतिनिधि ने बहुत ही महत्वपूर्ण विचार सभा के समक्ष रखे थे। उनका कहना था कि उनकी शासन व्यवस्था में मानव अधिकार बहुल रूप में विद्यमान हैं और हम उसका समर्थन करते हैं किंतु उदार व्यक्तिवाद के पश्चिमी विचारों का विरोध करते हैं चाहे वे प्रत्यक्ष या फिर अप्रत्यक्ष रूप से ही लागू क्यों न होते हों।

"मानव अधिकारों की संकल्पना का उदगम ऐतिहासिक विकास की कहानी है। सभी देशों की विभिन्न विकास की स्थिति उनके सार विविध ऐतिहासिक परम्पराएं एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में मानव अधिकारों की आपसी समझ तथा उनके व्यवहार हमेशा मौजूद रहे हैं। इसलिए किसी को भी यह सोचना नहीं चाहिए कि कुछ खास ही देशों के मानव अधिकारों स्तर और नमूने ही बेहतर हैं। इसलिए उनके यहां अपनाए जाने वाले मानव अधिकार ही एक मात्र उपयुक्त हैं। अतः इन्हीं मानव अधिकारों को ही अन्य बाकी देशों के द्वारा पालन होना चाहिए। यह सोचना गलत तो है ही साथ में न वास्तविक है और न ही इसको कार्यरूप दिया जा सकता है। अतः ऐसे अधिकारों के थोपने के लिए अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहायता देना अथवा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग शर्तों को जबरन मनवाना दोनों ही वास्तविक तथ्यों एवं आचरण के विरूद्ध हैं।"

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि चीन मानव अधिकारों के कतई विरोध में नहीं है किंतु वह इस विचार का घोर विरोधी है कि कोई प्रमुख देश या शासक एक ही तरह के मानव अधिकारों को अन्य किसी देश पर जबरन थोपना चाहता हो। इस विचार का व्यापक रूप से विकासशील देशों ने समर्थन किया। इसी आधार पर वियाना कांग्रेस ने अपनी घोषणा के पांचवे पैरा में विधिवत् इस सिद्धांत को स्वीकार करते हुए उसमें शामिल किया था। यह सिद्धांत निम्न प्रकार से स्वीकार किया गया है:

"राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय विशिष्ट विशेषताओं और विभिन्न ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक पृष्ठभूमियों के महत्व को विशेष रूप से दिमाग में रखना चाहिए जब मानव अधिकारों को लागू किया जा रहा हो। यह देखना विभिन्न राज्यों का काम है कि वे मानव अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं का संरक्षण करे। ऐसा करते समय इन देशों को अपने राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को स्थापित करना या फिर उन्हें उन्नत करने के लिए किसी देश विशेष पर दबाव डालना नीति के विरूद्ध माना जाएगा।" इस पैरागाम में जो विशेष प्रकार का जोर दिया है वह महत्वपूर्ण है कि सामाजिक आर्थिक के विभिन्न स्तरों पर राज्यों की सामाजिक सांस्कृतिक विशिष्ट विशेषताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह साफ तौर पर संयुक्त राज्य अमरीका फ्रांस तथा अन्य विकसित देशों की ओर संकेत देती है जो हमेशा उनकी विदेश नीतियों के व्यापार के आधार पर बनाते हैं। इसीलिए ये देश चीन पर दोषारोपण करते हैं कि वह मानव अधिकारों के पालन संबंधी रिकार्डो को सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित नहीं रखता है। इसी वर्ष एशियाई गैर सरकारी संगठनों की बैठक में जो बैंकांक क्षेत्रीय मानव अधिकार सम्मेलन के समानांतर सत्र में सांस्कृतिक भिन्नताओं के संबंध में दस्तावेज तैयार किया गया था। यह दस्तावेज मानव अधिकारों के विश्वव्यापी सामान्य सेट के विकास के विरूद्ध एक तथ्यपूर्ण तार्किक उत्तर माना गया है।

"सार्वभौम मानव अधिकार स्तर की जड़े विभिन्न संस्कृतियों के गर्भ से निकली हैं। हम उन मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता को दृढ़ता से स्वीकार करते हैं जो संपूर्ण मानवता को अपने दायरे में समेटता है उनके अधिकारों का संरक्षण करता है जिसमें विशेष समूहों अर्थात् महिलाओं, बच्चों, अल्पसंख्यकों तथा विभिन्न देशों के देशज लोग, कामगार, शरणार्थी एवं विस्थापित, अपंग, विकलांग और वृद्धों को शामिल किया गया हो। जब सांस्कृतिक बहुलवाद की वकालत की जा रही है। उस समय उन सांस्कृतिक व्यवहारों को प्रतिबंधित किया जायेगा जहां पर ऐसी संस्कृतियां विश्वव्यापी

मूल मानव अधिकारों के विरूद्ध खडी हों। इसलिए किसी भी स्थिति में महिलाओं के अधिकारों की अनदेखी को स्वीकार नहीं किया जायेगा और न ही इस तरह के अधिकारों को किसी तरह की हानि को सहन किया जायेगा।"

जब मानव अधिकार संकल्पना तथा व्यवहार के लिए "सांस्कृतिक सापेक्षवाद" के लिए तर्क प्रस्तुत किए जा रहे हों, उस समय हम अपने अधिकारों को भी स्वीकार करते हैं उसे तथ्यपर्क समझते हैं। इस तरह के संदर्भ विशिष्ट सीमाओं का सख्ती के साथ समझना आवश्यक है ताकि मानव अधिकारों को विश्वव्यापी स्तर पर शक्ति से उन्नत करने में सफलता प्राप्त हो। यह विश्व व्यापकता की संकल्पना इस तरह से समाविष्ट है कि तीसरी दुनिया के देश इस अखंड सिद्धांत तथा अंत निर्भरता अधिकार वास्तव में एक एवं सबके अधिकारों के लाभ के लिए कार्य करता है। इसलिए ये देश इस अधिकार की अपनी व्यापक दृष्टि से अवलोकन करके इसकी संपुष्टि करते हैं जो बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व है।

20.4.1 कारेल वास्क के अधिकारों की तीन पीढियां

कारेल वास्क ने फ्रांस की क्रांति के इस नारे "स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता" के अनुसार मानव अधिकारों के ऐतिहासिक विकास का वर्गीकरण किया है। सबसे पहले उन्होंने स्वतंत्रता को लिया है जिसे उन्होंने प्रथम पीढ़ी का अधिकार का नाम दिया है। इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि स्वतंत्रता का मुख्य उद्देश्य "से स्वतंत्रता या मुक्ति" था न कि किसी प्रकार के अधिकार की मांग करना अर्थात् सबसे पहले स्वतंत्रता की मांग की गई न की अधिकार की। दूसरी श्रेणी में समानता अथवा दूसरी पीढ़ी के अधिकार माना गया है। इसमें उन्होंने कहा है कि यह समान रूप से आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के संरक्षण की मांग करते हैं। उनका कहना है कि इस अधिकार के तहत राज्य को अपने व्यक्तित्व को संवारने संभालने और विकास के लिए समान रूप से अधिकतम अवसर उपलब्ध कराये जायें। बंधुत्व या तीसरी पीढ़ी का अर्थ है "सामूहिक" या "समूह" के अधिकार। यह अधिकार नए तरीके के हैं। इन अधिकारों को तीसरी दुनिया के राज्य मांग करते हैं। ये राज्य अंतर्राष्ट्रीय कानून एवं अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए मांग करते हैं जिसमें विकास का अधिकार, दुर्घटना होने पर सहयोग व सहायता, शांति और अच्छे तथा स्वच्छ पर्यावरण उपलब्ध कराने के अधिकार उपलब्ध कराने की गारंटी दी जानी चाहिए। इसके साथ ही इन अधिकारों के अनुपालन की जिम्मेदारी आंतरिक संवैधानिक उपायों के स्थान पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर पूरी तरह से निर्भर होने चाहिए। इस तरह हम देखते हैं कि श्री कारेल वासक ने स्वतंत्रता समानता एवं बंधुत्व के अधिकारों का वर्गीकरण बहुत ही तथ्यपूर्ण एवं ऐतिहासिक किया है जो वास्तव में सराहनीय है। आशा है इसके अध्ययन कर्ताओं को अवश्य ही पसंद आयेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.4.2 दो प्रसंविदा (करार) पत्रों में अंतर

वर्ष 1956 में दो प्रसंविदा (करार) पत्रों अर्थात् आई सी सी पी आर और आई सी ई एस सी आर पर हस्ताक्षर हुए थे। परन्तु यह दोनों प्रसंविदा पत्र 1976 तक प्रभावी नहीं हुए थे। इन दोनों प्रसंविदा पत्रों की प्रस्तावना और अनुच्छेद 1, 3, 5 एक जैसे ही थे यद्यपि दोनों की घोषणाएं समान रूप से थी। इन दोनों में नीति निदेशक अंतर यह है कि आई सी सी पी आर का अनुच्छेद 2 कहता है कि अधिकारों का संरक्षण करेगा एवं उनका आदर करते हुए शीघ्र निश्चित निर्णय उपलब्ध करायेगा। जबकि आई सी ई एस सी आर के अनुच्छेद 2 में साधारण प्रावधान रखे हैं कि राज्यों के अधिकारों को मान्यता दी जानी चाहिए एवं विशिष्ट कार्यक्रमों के अनुसार उनका पालन किया जाना चाहिए। तत्पश्चात, जैसा कि आई सी सी पी आर ने मानव अधिकार समिति (एच आर सी) स्थापित की और प्रसंविदा को उसकी निगरानी में लागू करने की शर्ते जोड़ दी और यह प्रावधान भी शामिल कर दिया कि एच आर सी में व्यक्तिगत रूप से भी याचिका दायर की जा सकती है। आई सी ई एस सी आर ने साधारणतया इसके कार्यो की निगरानी का कार्य राष्ट्रसंघ की एक राजनीतिक निकाय ई सी ओ एस ओ सी को सौप दिया था जो वास्तव में 1976 तक सफल नहीं हुआ था।

20.4.3 संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष सम्मेलन

यह जान लेना आवश्यक है कि मानव अधिकारों के संरक्षण तथा संवर्द्धन या उन्नति के लिए सार्वभौमिक व्यवस्था स्थापित करने में ढेर सारी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। इसलिए मानव अधिकारों के विशिष्ट पक्षों सहित कानूनी बाध्यता पूर्ण साधन या उपाय करने के लिए मसौदा

की निरंतर प्रक्रिया के लिए राष्ट्र संघ संघर्ष करता रहा है। इन्होंने विश्व स्तर पर मानव अधिकारों को निर्मित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर सहयोग और सहायता प्रदान की थी। इस तरह के कुछ सहयोग का विवरण परिशिष्ट II में दिया गया है।

20.4.4 संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उपनिवेशीकरण

मानव अधिकारों के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय घटना यह कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने उपनिवेशकरण को समाप्त करने के लिए लगातार संघर्ष किया है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने आदेश पत्र को भी स्थानांतरित कर दिया था जिसे लीग ऑफ नेशन्स ने तैयार किया था। यह वास्तव में ट्रस्टीशिप व्यवस्था थी जिसे ट्रस्टीशिप काउंसिल के अधीन स्थापित करना था। इसके तहत जो उपनिवेशों पर शासन कर रहे थे जहां पर वहां के मूल निवासियों का शासन नहीं था जैसे कि भारत पर ब्रिटिश राज्य होता था जिसे अंग्रेजों की उपनिवेशी राज्य माना जाता था। इस तरह के शासकों को आदेश था कि वे निरंतर वहां के लोगों के प्रति किए जाने वाले कार्य बाध्यताओं के ब्यौरे संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव को रिपोर्ट भेजेंगे। यद्यपि यह सही है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणा पत्र में स्व-निर्धारण का सिद्धांत प्रस्तुत किया था जो वास्तव में स्वं-निर्धारण का सिद्धांत नहीं था और न ही उसका अधिकार था। अब आम तौर पर यह माना जाने लगा है कि ऐसा अधिकार अंतर्राष्ट्रीय कानून में बाकायदा मौजूद है। अब यह विचार महासभा संकल्प 2625 तथा अनुच्छेद 1 में पुनः जोर दिया गया है कि सभी लोगों को स्व निर्धारण का अधिकार है। इन दोनों का अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भी घोषित किया गया है। इस अधिकार को शामिल करने के बाद औपनिवेशीकरण को समाप्त करने पर बल देते हुए सामूहिक अधिकारों को प्रभावित किया है। परन्तु यही स्वंय निर्धारण का अधिकार एक बार फिर से उपनिवेशीकरण समाप्त करने का अधिकार बन गया था अथवा अल्पसंख्यकों के शासन को समाप्त करने के लिए एक खुला प्रश्न खड़ा हो गया था। इस तरह से स्पष्ट होता है कि यह अधिकार व्यापक रूप से उपनिवेशीकरण को समाप्त करने के लिए प्रयोग में आया वहीं पर पूर्व उपनिवेशी शासकों ने स्वतंत्र हुए नए राज्यों के समूहों का गठन कर लिया या फिर नए गुट बना लिए जो तीसरी पीढ़ी के अधिकारों की मांग करने लगे। याद रहे हम पहले कारेल वास्क के तीन पीढ़ियों के सिद्धांतों का वर्णन कर चुके हैं जिसमें फ्रांस के स्वतंत्रता समानता एवं बंधुत्व के विशेष ऐतिहासिक विवरण दिए गए हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) सांस्कृतिक सापेक्षवाद क्या है। इस पहलू पर वियना घोषणा का क्या मत था।

....

....

....

....

2) कारल वास्क द्वारा निर्मित पीढ़ियों से कम से कम दो पीढ़ियों की पहचान कीजिए।

....

....

....

....

3) वियना कांग्रेस भी उस पर खुले रूप में अडिग रही थी परन्तु कम से कम एक अधिकार वियना घोषणा पत्र में शामिल करने के लिए सहमति नहीं हुई थी। वह कौन सा अधिकार था ?

....

....

20.5 मानव अधिकार, विकास एवं लोकतंत्र

जैसा कि आप भाग 20.3.2 में मानव अधिकारों की प्रमुख धारणा के संबंध में अध्ययन कर चुके हैं जिसमें मुक्त बाजार आधारित विकास और लोकतंत्र के दो अन्य तथ्यों को स्पष्ट कर चुके हैं। यह एक दूसरे से आबद्ध हैं। परन्तु मानव अधिकारों पर विशेष बलाघात या उसके महत्व, उसके अर्थ एवं व्यवहार का वास्तविक निर्माण भूमंडलीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था में शीतयुद्ध के बाद से आरंभ हुआ है। इस तथ्य को मानव अधिकारों का अध्ययन करते समय विशेष रूप से ध्यान में रखना आवश्यक है।

20.5.1 हेलसिंकी प्रक्रिया

हमें यह विशेष रूप से याद रखना चाहिए कि जब पश्चिमी देश, अमरीका, कनाडा एवं यू के तथा यूरोप के कम्यूनिष्ट गुट के देशो के बीच वातावरण में नरमी आने पर एक प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय घटना घटी, यह दौर 1970 के दशक का था। इसे यूरोप में सुरक्षा तथा सहयोग पर सम्मेलन के (एस सी ई) के नाम से जाना जाता है। यह हेलसिंकी प्रक्रिया (यह नाम कैपिटल ऑफ फिनलैंड के बाद सामने आया, जिसका पहला आयोजन 1973 में हुआ था।) का महत्वपूर्ण राजनय विकास पर प्रभाव पड़ा जो शीत युद्ध के अंतिम दिनों के दौरान प्रमुख शक्तियों के संबंधों पर आधारित था। उस समय सोवियत संघ ने हेलसिंकी प्रक्रिया के तहत पश्चिमी सीमाओं को मान्यता प्रदान की और उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अनुसार अपने आप मानव अधिकारों का पालन करने के लिए सहमति जाहिर की। यह निर्णय जो पश्चिमी देशों की इच्छा के अनुसार था। इसके साथ ही सोवियत गुट के देशों का विखंडन होने से हेलिसंकी प्रक्रिया को व्यापक महत्व मिला। यद्यपि हेलसिंकी प्रक्रिया का प्राथमिक कार्य यूरोप में शांति और सुरक्षा के विकास के लिए सुव्यवस्थित संरचना स्थापित करना था साथ ही अभी तक जो समझौता बाध्यता की स्थिति प्राप्त नहीं कर सकता था उसने संस्थानिक प्रकृति के द्वारा लोकतंत्रीय सरकारों के कार्यों को उन्नत करने के लिए महान शक्ति एवं संवेग का स्वयं स्रोत बना और पूरे विश्व में राजनीतिक बहुलवाद को शक्ति प्रदान की। इसके साथ ही जो रियायतें मिली उनसे मानव अधिकार आंदोलन का अंतर्राष्ट्रीयकरण हुआ यह कार्य सोवियत गुटों के देशों का निर्णायक सहमति से पूरा हुआ जो वास्तव में पश्चिमी देशों की ओर से प्राप्त हुआ था। इससे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों को प्रोत्साहन एवं उनका अंतर्राष्ट्रीयकरण में व्यापक प्रगति को देखा जा सकता है। यह रूप स्वयं लोकतांत्रिक सरकार एवं राजनीतिक बहुलवाद को स्वयं शक्ति से स्थापित करने में सहायक हुआ जिसका विकास पश्चिम के उदार लोकतांत्रिक आदर्शों के माध्यम से समापन हुआ। इस स्थिति का वास्तविक उदगम शीत युद्ध से विजय प्राप्त करने के साथ माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संवर्द्धन हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसलिए यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि शीतयुद्ध के बाद अनेक राज्यों की भौतिक विदेश नीति में अधिपत्य की स्थिति प्राप्त करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय अखाड़ा की बाहरी परिधि बनी। इस स्थिति से ही मानव अधिकार उभर कर सामने आए हैं। परन्तु जिस व्यापकता से मानव अधिकारों का विकास हुआ है वह तो सामूहिक विकास की देन ही है। अर्थात् मानव अधिकार, मुक्त बाजार तथा लोकतंत्र की त्रिक, तिगड़ी जो विकसित पश्चिम से आर्थिक एवं अन्य सहायता की प्राप्ति पर आधारित हैं।

इस संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्येता विद्यार्थियों के ऐतिहासिक शृंखला को स्मरण करना चाहिए उसमें हेलिसंकी में रियायते देने से पहले सोवितय संघ ने अपने पैरो में पश्चिम को झुका दिया था। इसलिए इतिहास से ज्ञात होता है कि 70 का दशक पश्चिमी पूंजीपति देशों के लिए विशेषकर उनकी विदेश नीति को बहुत हानि उठानी पड़ी थी। उस समय ओ पी ई सी देशों ने तेलों की कीमतों में चार गुना वृद्धि कर दी थी। इससे यह भय हो गया था कि कहीं "तीसरे देशों का संगठीकरण" न हो जाए इसलिए अमरीका के नेतृत्व वाले गुट के देशों की विदेशनीति की स्थिति बहुल बिगड़ गई थी। उस स्थिति का विपरीत प्रभाव दक्षिण पूर्व एशिया में पड़ा था। इन कारणों से नरमी का मार्ग बन कर सामने आया। दूसरी ओर सोवियत संघ ने इस स्थिति से लाभ

उठाते हुए अबाध गति से अपने प्रभाव का विस्तार करने में जुट गए। क्रिसमिस के दिन 1979 में सोवियत संघ की विदेश नीति को भी उसी तरह से धक्का लगा जिस तरह से दूसरे गुट के सामने दिक्कते सामने आई थी। और कठिनाइयां तब तक चलती रही थी जब तक सोवियत संघ स्वयं बिखर नहीं गया। इस तरह से मानव अधिकारों का इतिहास आर्थिक सुविधाओं, दो शक्तियों की गुटबंदी एवं शक्ति प्रदर्शन के रहते हुए चला और उसका अंतर्राष्ट्रीयकरण रूप में स्थापना हुई।

20.5.2 भूमंडलीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था में कार्यनीतिक परिवर्तन

साम्यवाद के विरोधस्वरूप अमरीका के विदेश नीति योजनाकारों ने जिसमें जार्ज केयान एंव उसके बाद के नीतिकारों ने विदेशनीति का निर्माण किया था इसके दरवाजे उसी समय बंद हो गए जब शीत युद्ध का समापन हुआ। इसकी विरोध की भूमि 70 के दशक में तीसरे देश के सक्रिय देशों ने तैयार की थी। उस समय वे नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने की मांग कर रहे थे। याद रहे यह भी अपनी गति को खो चुकी है। इस नीति को विलियम रोबिन्सन ने उपयुक्त कहा और इसे साम्यवाद से युक्त माना है। इसका अर्थ यह हुआ कि अमरीका ने जिस नीति का शीत युद्ध के दिनों में जम कर विरोध किया था उसी नीति को कानूनी रूप देने का प्रयास किया गया है। अब इसको लोकतंत्र की प्रगति तथा मानव अधिकार संरक्षण का नाम देकर बदल दिया है। अतः जिसके लक्ष्य एवं उद्देश्य वे ही हैं जिस तरह से भूमंडलीय नेतृत्व प्राप्त करने के लिए पहले भी इस तरह की कूट नीतियां अपनाई जा चुकी हैं। इस तरह हमारे समक्ष अमरीका की शीत युद्ध के बाद की विदेशी नीति के इस विश्लेषण से स्पष्ट हो गया है कि उसने सीधी आधिपात्य संकल्पना के स्थान पर अप्रत्यक्ष दबाव वाली नीति अपना ली है जिससे वह शीत युद्ध के विरोधी के रूप में उभर कर सामने आया है। इसके बारे में प्रसिद्ध विद्वान प्रो. हॅटिंगटन का दावा है कि यह प्रक्रिया या व्यवस्था समाजवाद की तीसरी लहर है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में बाजार शक्तियों को मुक्त रूप से कार्य करने के लिए स्थितियां निर्मित कर दी गई हैं मुक्त बाजार के माध्यम से पूंजीपतियों को भरपूर लाभ तो मिलेगा ही साथ में राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर भी भूमंडलीय एकीकृत करने का काम भी सुनिश्चित हो गया है। इसके साथ ही भूमंडलीयकरण की परिघटना ने राष्ट्रीय व्यवस्था की असमानताओं को अनदेखा कर दिया है इसमें केवल संप्रभुसत्ता राज्यों की राजनीतिक समानता को प्रमुखता देकर राष्ट्रों की अंदरूनी अर्थव्यवस्था को नष्ट करने के सशक्त साधन तैयार कर लिए गए हैं। हमारे समक्ष बहुत स्पष्ट उदाहरण हैं जिसे ध्यान में रखना चाहिए यह कि विश्व के दो अत्याधिक धनी एवं उद्योगपति अमरीका के ही हैं और उनका वार्षिक कारोबार उसी तरह से होता है जिस तरह से भारत के जी डी पी की उद्योग व्यवस्था है इनमें भी उसी तरह से लाभ कमाने की व्यवस्था है।

अब हम भूमंडलीयकरण की प्रक्रिया के बारे में बताना चाहते हैं इसका शीत युद्ध के समापन से आरंभ होता है और मुक्त व्यापार की व्यवस्था की स्थापना में बदल जाती है। इस संबंध में अनेक मानव विकास रिपोर्टों में व्यक्त विपरीत विचारों को ध्यान में रखा जाना चाहिए इस तरह के विचार यू एन डी पी (संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम) द्वारा प्रत्येक वर्ष प्रकाशित करता है। उसके विचार व्यापक रूप से इस व्यवस्था को हानिकारक मानते हैं। वे इस संबंध में असहमति प्रकट करते है। 1992 में प्रकाशित रिपोर्ट विश्व की भूमंडलीय आय का असमान ब्यौरा निम्न प्रकार से प्रकाशित किया गया है:

"वर्ष 1960 तथा 1989 के दौरान विश्व की जनसंख्या का 20 प्रतिशत भाग और अत्याधिक गरीब देश हैं। उनका सामूहिक हिस्सा 2.3 प्रतिशत से 1.4 प्रतिशत हो गया जो एक भयानक गिरावट है। आर्थिक असमानताओं के लिए यह घटनाएं बहुत ही नाटकीय मानी जाती हैं। 1960 में सबसे ऊपर के 20 प्रतिशत लोगों ने तीस गुना अधिक लाभ प्राप्त किया था जो नीचे के 20 प्रतिशत से कहीं अधिक था। परन्तु 1989 में उन्होंने 60 गुना से अधिक प्राप्त किया था। दूसरी ओर हम वास्तविक उपभोग की स्थिति को देखें तो "उत्तर विश्व की जनसंख्या का चौथा हिस्सा है और इसने कल खाद्य का 70 प्रतिशत भाग का उपभोग किया है। यह आंकडे चौकाने वाले हैं।"

अब यह कहानी पुरानी हो गई है कि यूरोप के उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था ने विश्व के बाहरी हिस्सों में व्यापारिक संबंध स्थापित करके विस्तार कर लिया है। आज व्यापारिक निगम (टी एन सी) विश्व के सभी देशों को एक साथ मिला कर जितना निर्यात किया जाता है उससे कहीं अधिक यह निगम अपना उत्पाद बेच देती है। इसे हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि आज दुनिया का सबसे प्रमुख व्यापारिक कार्य क्षेत्र जिसे हम कुटनीतिक व्यापारं भी कहते हैं उसी

टी एन सी से ही संबंध रखता है। उसी का व्यापार पर आधिपत्य है। इन निगमों के समक्ष सरकारें भी स्वयं पीछे हो गई हैं। इस तरह से परिवर्तित स्थिति अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में आई है। यहां यह मुद्दा विशेष रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इन निगमों में सबसे अधिक अमरीका में स्थिति हैं। इसके बाद भी शेष 80 प्रतिशत व्यापार भी शेष विश्व इन्हीं टी एन सी के बैनरों के नीचे या इनके माध्यम से सम्पन्न करते हैं।

यहां यह स्पष्ट कर देना अत्यंत आवश्यक है कि एन टी सी के कार्य आरंभ करने से पूर्व (जो वास्तव में विषमतापूर्व वित्तीय भूमंडलीकरण का तीव्रगामी पक्ष प्रस्तुत करता है) तीसरी दुनिया के देश पहले से ही कर्जे के चंगुल में फंसे हुए थे। ये देश विकास की निर्भरतात्मक नीतियों के तहत विदेशी सहायता प्राप्त करते रहे हैं। यह उसी तरह से अनुकरण करते थे जिस तरह से किसी एक गुट का नेतृत्व का आदेश देते थे और उनके गुट के तहत नीतियों का निर्धारित करते थे।

ऋण संकट समाधान से परे है और इसका कोई भी विकल्प नहीं है। अधिकतर विकासशील देश विश्व बैंक एवं आई एम एफ (जहां से इन्होंने असीमित ऋण प्राप्त किया है) की शर्तों के अधीन ऋण प्राप्त किया हुआ है। इसलिए यह देश अपने यहाँ संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम) (एस ए पी) तथा उदार आर्थिक सुधारों को मजबूरन लागू कर रहे हैं अथवा स्वयं अपना रहे हैं। यह तथाकथित उदार आर्थिक सुधारों का वास्तविक अर्थ यह है कि अर्थव्यवस्था के राज्य नियंत्रण से अलग करना है और दिखावटी रूप में यानि की मामूली तौर पर श्रमिक वर्ग अथवा कामगारों को जिनकी संख्या असीमित है उन्हें मामूली सी सामाजिक सुरक्षा देने का दिलासा देते हैं। यह भंयकर आंकड़े हैं कि युनीसेफ के एक आंकलन के अनुसार इस ऋण के कारण तीसरी दुनिया के देशों में प्रत्येक वर्ष 650,000 से अधिक बच्चों की अकाल मृत्यु हो जाती है। यह सभी लोग जानते हैं कि विकासशील देशों को इन आई एम एफ तथा विश्व बैंक के बोर्डो में बहुत मामूली सा प्रतिनिधित्व है जो इनको अपना मत देते हैं, उनका वहां पर किसी तरह का कोई अस्तित्व नहीं हैं। सच्चाई यही है कि विश्व के परिदृश्य में राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आधिपत्य केवल अमरीका के नेतृत्व में है अमरीका के नियंत्रण में यह सब निगमें अपना विश्व का कार्य संपन्न करती हैं। यहां तक जन माध्यमों में भी इनकी प्रमुखता से दखल है, इनका कब्जा है। श्री चन्द्र मुजफर का कहना है विश्व के मुद्रित माध्यम के संरचण अर्थात् वितरण व्यवस्था में 90 प्रतिशत जन माध्यमों पर नियंत्रण है यह नियंत्रण चाहे वह प्रत्यक्ष हो या फिर अप्रत्यक्ष हो। केवल उत्तर में ही चार विदेशी एजेंसिया अपना आधिपत्य जमाए हुए हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस शीत युद्ध के बाद के युग की पृष्ठभूमि के परिवर्तन के परिदृश्य में आए दिन सुनने को मिलता है कि मानव अधिकार, मुक्त बाजार और लोकतंत्र के तीन तत्वों को व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है। हम यह पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि यह तीन तत्व विश्व के लिए कोई नए नहीं हैं। लोकतंत्र एवं मानव अधिकारी के संपूर्ण विश्व पहले से ही आदर के साथ देखता है और उन्हें स्वीकार भी करता है। केवल मुक्त बाजार का लक्ष्य शीत युद्ध के बाद की देन है। इसे बाद में जोड़ा गया है। इसका सीधा कारण यह है कि मानव अधिकारों के अपने स्वार्थ के लिए उनका निर्माण पूर्वाग्रहों के चलते किया है जो एक विशेष वर्ग ने विश्व पर आधिपत्य जमाने के लिए किया है। इसलिए आज विश्व के सामाजिक समूहों ने इसका खुलकर विरोध किया है क्योंकि इसके माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों को नष्ट किया जा रहा है। जिसे तीसरी दुनिया के लोग भलिभांति परिचित हैं।

20.5.3 मानव अधिकारों पर अमरीकी नीति

अमरीका मानव अधिकारों के संबंध में हमेशा डींग हाका करता है कि जिस तरह से वह मानव अधिकारों को सुरक्षित एवं संरक्षित करता है उसके समान विश्व में कोई अन्य नहीं करता है, कहने का अर्थ है कि उसका मानव अधिकारों के प्रति प्रेम बेजोड़ है। परन्तु मानव अधिकारों के मूल्यांकन अमरीकी नीतियों के तहत करते हैं और उसके मानव अधिकार संबंधी सम्मेलनों की जांच परख करते हैं। उस समय कहानी उल्टी नजर आने लगती है। वास्तव में वह मानव अधिकारों की आड़ में अपने आत्म विश्वास के साथ साम्यवाद पर पूंजीवादी व्यवस्था को स्थापित करने का लक्ष्य है। इसे यूं भी कह सकते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था को विश्व पर थोपने का प्रयास मात्र है। इस तरह से वह कई बार घोषित भी कर चुका है कि न्यूयार्क पर वाशिंगटन अर्थात् वह यह कह कर बताना चाहता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के यू एन डी पी आदि व्यवस्था पर विश्व बैंक एवं आई एम एफ जैसी शक्तियां अपना आधिपत्य रखती हैं। इसी लिए इन दिनों सभी देशों में मानव अधिकारों के मूल्यांकन की नीति की राष्ट्रीय स्थिति स्पष्ट दिखाई देती है। यह बात अलग है

कि वह दिखावे के लिए मानव अधिकारों की उन्नति के कार्यों को अमरीका की विदेश नीति में प्रमुखता से रखता है। यह स्थिति और अधिक स्पष्ट तब होती है जब हम मानव अधिकार संबंधी अमरीका की नीति को चीन के संदर्भ में अखबार पढ़ते हैं कि उसने व्यापारिक समझौते स्थापित करने के लिए किस प्रकार से अधिकारों को ताक पर रख दिया जाता है। व्यापारिक समझौते स्थापित करते हुए मानव अधिकारों को नजर अंदाज कर देता है और खास तौर पर जब इस तरह के समझौते चीन के साथ करते समय। क्योंकि अमरीका का केवल उद्देश्य यह होता है कि साम्यवाद पर पूंजीवाद व्यवस्था स्थापित करना है। इसे प्रमुख उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। इस संदर्भ में दि अमरीकन जरनल ऑफ इंटरनेशनल ला अपने संपादकीय टिप्पण में अमरीका के विरूद्ध अपने विचारों को बहुत ही सटीक ढंग से प्रस्तुत करता है। उसकी टिप्पणी का विवरण संलग्न मूल्यांकन जो उसने प्रत्येक आरक्षण, आपसी समझ तथा घोषणा (आर यू डी) के माध्यम से मूल्यांकन करके प्रस्तुत किया है। इसको जानने के पश्चात् तो वे लोग भी अब अमरीका की आलोचना करने लगे हैं जो अमरीका के समर्थक हैं।

यह संरक्षण, समझौता और घोषणा (आर यू डी) ने मानव अधिकार सम्मेलन के मूल्यांकन को बहुत अच्छी तरह से स्थापित किया है जिनको निम्नलिखित सिद्धांतों के अंतर्गत मार्ग दर्शित किया गया है। ये हैं :

1) अमरीका उस संधि या समझौते को न तो स्वीकार करेगा और न ही उसे आदर देगा यदि वह उसके संविधान के प्रावधानों के विपरीत है।

2) यदि इस तरह के संधि/समझौते ऐसे लगते हैं कि वे मौजूदा अमरीकन कानून और उनके व्यवहारों में परिवर्तन करने का वायदा करते हैं उन पर प्रभाव डालते हैं ऐसी स्थिति में अमरीका उनका निश्चित रूप से विरोध करेगा।

DIKSHANT IAS

3) मानव अधिकार सम्मेलन के उद्देश्यों को स्पष्ट करने या उनको लागू करते समय उठते विवादों को सुलझाने के लिए अमरीका कभी भी ऐसे विवादों को अंतर्राष्ट्रीय न्यायिक न्यायालय के कानूनी क्षेत्र में प्रस्तुत नहीं करेगा।

Call us @7428092240

4) प्रत्येक संधि जो मानव अधिकारों से संबंधित हो वे संघवाद धारा की घोषणा के तहत हो तथा उन अधिकारों को लागू करने की जिम्मेदारी व्यापक रूप से राज्यों के अधिकार क्षेत्र में होनी चाहिए।

5) प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार संधि गैर स्वतः कार्यचालक होनी चाहिए, इसका अर्थ है कि इससे पूर्व कि वे अपने हितों को लागू नहीं कर सकते हैं।

इस तरह अमरीका ने झिझक एवं संरक्षण की राष्ट्रीय नीतियों को अपनाया है। अतः यह कोई आश्चर्यजनक विषय नहीं है कि उसने 1995 तक केवल उसने निम्नलिखित पांच प्रमुख संधियों को ही स्वीकार किया है (यद्यपि द्वितीय क्लींटन प्रशासन (1996-2000) लगता है इस दिशा में अधिक दृढ़ दिखाई दे रहा है। यह संधिया निम्न प्रकार से हैं :

1) जातिसंहार सम्मेलन 1948 में लागू हुआ था और इसे अमरीका ने 1989 में स्वीकार किया।

2) आई सी सी पी आर सम्मेलन 1966 में अपनाया गया था किंतु इसे अमरीका ने 1992 में अपनाया था।

3) यातना के विरूद्ध सम्मेलन 1984 में संपन्न हुआ किंतु इसे 1994 में अपनाया गया।

4) जातीय विभेद के सभी रूपों के बहिष्कार पर सम्मेलन 1965 में हुआ और लागू माना गया परन्तु अमरीका ने इसे 1994 में जाकर माना था।

5) महिलाओं के विरूद्ध विभेद के सभी रूपों के बहिष्कार पर सम्मेलन 1979 में संपन्न हुआ परन्तु अमरीका ने इसे सन 1995 में स्वीकार किया था।

सम्पादकीय टिप्पणी के अनुसार उसने आगे कहा है कि "यह रिपोर्ट प्राप्त हुई है कि क्लींटन प्रशासन आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (1966) में हुआ, मानव अधिकारों पर अंतर अमरीकी सम्मेलन (1969 में संपन्न हुआ) तथा बाल अधिकारों पर सम्मेलन (1989 में हुआ) को स्वीकार करने के लिए सीनेट से मंजूरी प्राप्त करेगा तब जाकर

अमरीका इन महत्वपूर्ण मानव अधिकार निर्णयों को लागू करेगा। यहां पर यह अवश्य ही बता देना चाहिए कि इन अधिकारों के संबंध में लिए जाने वाले निर्णयों में अत्याधिक विलम्ब हुआ है, हो सकता है कि इसके अपनाने की प्रक्रिया में कुछ कानूनी रूकावटे आती हैं जिनका अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र एवं दायित्वों को लागू करने की व्यापक जिम्मेदारी उसके समक्ष आती रही हो। परन्तु कुछ भी हो चाहे तकनीक बाधाएं ही क्यों न हो फिर भी सम्पादकीय आलोचना आज की तारीख तक तो उन्हें ठीक और सही ही माना जायेगा। अमरीका इसे अतिरिक्त उग्र नेतृत्व करने की होड़ में आगे रहता है और इसीं संदर्भ में उसने यूरोपीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (यूरोपीयन बैंक ऑफ रीकंष्ट्रक्शन एवं डवलपमेंट) (ई बी आर डी) की स्थापना की है जो मध्य और पूर्वी यूरोप के देशों को मुक्त बाजार स्थापित करने में सहयोग तो देगा ही साथ में पुनः प्रतिष्ठित लोकतंत्र तथा इसी तरह के कार्यो को हेती में रोकने के लिए उनमें बाधा डालने के रूप में इस बैंक का प्रयोग करेगा। इसके साथ ही आश्चर्यजनक विषय यह भी है कि ई बी आर डी की स्थापना 1991 में हुई थी जिसका स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान की तरह था और उसका मुख्य कार्य मानव अधिकारों को तीव्र गति प्रदान कराना था जबकि इतने वर्षो के पश्चात मुख्य उद्देश्य में तो कोई प्रगति नहीं हुई और न ही उस दिशा में कोई कार्य किंतु इस बैंक का प्रयोग मुक्त बाजार को मजबूत बनाने में अवश्य ही प्रयोग किया जायेगा।

20.6 मानव अधिकारों पर वियना घोषणा की विशेषताएं

समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में मानव अधिकारों के अर्थो को समझने के लिए अभी तक शब्दावली में कितनी भी असमानताएं क्यों न रही हों परन्तु फिर भी मानव अधिकारों के महत्व को मानवता के संदर्भ में कभी भी साधारण नहीं समझा जा सकता है। फिर भी यह हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण एवं लाभदायक होगा कि हम वियना में मानव अधिकारों के संबंध में सम्मेलन हुआ जिसमें लिए गए निर्णयों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया गया है। आइए अब हम मानव अधिकारों की एक मुश्त सार्वभौमिक स्वीकृति की विशेषताओं का संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं जो निम्न प्रकार हैः

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) मानव अधिकार और स्वतंत्रता की सार्वभौमिक प्रकृति सर्वमान्य है और सवालों से परे है। जबकि ऐशियाई देशों (चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, ईरान उत्तरी कोरिया परन्तु भारत नहीं) ने इन मानव अधिकारों की घोषणा पर अपनी असहमति प्रकट की है परन्तु शेष देशों ने मानव अधिकारों को सार्वभौमिक रूप से एक मत से स्वीकार किया है। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि पश्चिमी देशों ने पहली बार आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को समान वरीयता देते हुए औपचारिक रूप से स्वीकार किया है। इसके साथ साथ इन देशों ने विकास के अधिकार को भी मान्यता प्रदान की है जिसे यह हमेशा ही मानव अधिकारों का सार समझते रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि विकास के अधिकार को सिविल और राजनीतिक अधिकार के समान ही इन्होंने उसे मान्यता प्रदान की है जो पश्चिमी देशों के लिए एक उदाहरण हो सकता है।

2) मानव अधिकार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घोषित किए गए तथा अधिकतर देशों ने स्वीकार किया तथा आपस में किसी की भी प्रमुखता स्वीकार नहीं की गई और उन्हें अखंडनीय तथा अंतर निर्भरता के रूप में व्यापकता से स्वीकार किए गए।

3) इसी प्रकार नए संबंधों को भी व्यर्थ घोषित कर दिया। इस घोषण के अनुसार "लोकतंत्र विकास और मानव अधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रता जो एक दूसरे पर अंतः निर्भर है उनका आदर करना तथा आपस में मिलकर उन्हें लागू करने के लिए दबाव बनाना है"।

   इस घोषणा के अंतर्गत विशेष घटना यह हुई कि मानव अधिकार आयोग की स्थापना हुई जिसने अपने निर्देशन में विकास के अधिकार को जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया गया है उसका निर्माण करने के लिए एक स्थायी कार्य समूह की विधिवत स्थापना की जो एक मील का पत्थर साबित होगी।

4) अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के अधिकार जिनका संबंध किसी भी देश में मानव अधिकारों के व्यवहारों से था, सबने एक मत से स्वीकृति प्रदान की। इस प्रकार हमारा मानना है कि राज्य प्रभुसत्ता की संकल्पना में एक छिद्र कर दिया है।

5) अब यहां पर संप्रभु राज्यों के अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों का और अधिक तेजी से आह्वान किया गया है जो प्रथागत या रिवाजी है। यह राज्य के न्यायधिकरण से बाहर की वस्तु है। राज्यों की अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वता का केंद्र बिंदु, का मुख्य क्षेत्र घरेलू हिंसात्मक गतिविधियों से संबंधित होगा जिसका संबंध महिलाओं और सामाजिक हिंसाओं से जुड़ा होगा जैसे कि प्रजातिवाद, जातीय परिमार्गन, विदेशी द्वेष और अन्य विषयों से होगा अर्थात् इस तरह के उल्लंघन होने पर वह घरेलू कारवाई कर सकेगा।

6) घोषणा का आह्वान अंतर्राष्ट्रीय समुदाय और राष्ट्रीय सरकारों को संस्थानिक रूप से एकत्रित होने, संगठित होकर निरक्षरता को दूर करना तथा मानव अधिकारों की शिक्षा देने के लिए लोगों को उत्साहित करना है। विश्व सम्मेलन की सिफारिशों के बाद अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार शिक्षा दशक (1995-2004) की घोषणा एक लम्बे विवाद के बाद की गई। मानव अधिकारों के लिए उच्च आयोग की स्थापना करने का कार्य अंतिम रूप से अनुमोदित हो गया। इस उच्च आयोग का मुख्य कार्य संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार कार्यक्रमों को लागू करने की होगी।

20.7 मानव अधिकार संरक्षण के समक्ष उभरती चुनौतियां

इस विषय के विद्यार्थियों की, अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों की उन्नति एवं संरक्षण संबंधी दो परम्पराएं देखने में आती हैं जिन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह हैं: एक और पूरे विश्व में लोकतांत्रिक सरकारों की स्थापना के लिए विशेष रूप से आंदोलन चल रहा है। सभी राज्य राजनीतिक दबावों के कारण अपने नागरिकों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अनुसार तैयार करना अपना कानूनी उत्तरदायित्व मानते हैं और उसको लागू करने का प्रयास करते है। आज अधिकतर लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते जा रहे हैं। इसका मुख्य कारण व्यापक रूप से गैर सरकारी संगठनों को सरकारों की ओर से प्रोत्साहन देना तथा उनके कार्यक्लापों में आम लोगों को शामिल करने के साथ ही इन संगठनों का मानव अधिकारों के संरक्षण संबंधी गतिविधियों में उनके सरोकार तथा उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को श्रेय जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरी ओर अब यह परम्परा चल पड़ी है कि मानव अधिकारों के अतिक्रमण एवं हिंसात्मक घटनाओं में लगातार वृद्धि हो रही है। जिससे आज का समाज विशेष रूप से प्रभावित है। फासीवाद तथा अलोकतांत्रिक विचारों के पुनः उभरने से जैसे कि युरोप, उत्तरी अमरीका, अफ्रीका तथा एशिया में कट्टर पंथियों के पुनः उभरने से जातीय परिमार्जन की काली छाया पड़ने लगी है। अतः मानव अधिकारों के हनन की घटनाओं में वृद्धि हुई है। इस तरह के उदाहरणों में चाहे बोसनिसा या रवांडा अथवा अफगानिस्तान हो, यहां पर जो मानव अधिकारों का हनन हुआ है वह एक गन्दी और अधम कहानी है जिसे सीधे सीधे शब्दों में यहां व्यक्त नहीं किया जा सकता है। यह सच्ची कहानी अवर्णनीय है। विश्व में मानव अधिकारों की स्थिति का जायजा लेने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के जिनेवा स्थित केन्द्र की ओर निहारना पड़ेगा जिसने वियना सम्मेलन को प्रस्तुत किया है, उसके बाद का दृश्य निम्न प्रकार है :

> "कम से कम विश्व के आधे लोग, उनके आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या राजनीतिक अधिकारों से वंचित हैं एवं उनके अधिकारों का अतिक्रमण बहुत ही भयंकरता से किया जा रहा है। इन अतिक्रमणों की परिधि यातनाएं, प्रादण्डित करना, बाल शोषण, बलात्कार, मनमाने ढंग से बंदी बनाना, हिंसा तथा अदृश्य व गायब करना, घोर गरीबी, दासता, दुर्भिक्ष या अकाल पड़ना, कुपोषण और शुद्ध पेय जल की नितांत कमी, स्वच्छता या सफाई व्यवस्था और स्वास्थ्य देखभाल की सीमाओं में आती है। इस तरह से विश्व की आधी जनसंख्या मानव अधिकारों से वंचित ही नहीं है अपितु अत्यंत आवश्यक यानि जीवन रक्षा के अधिकार प्राप्त करने के लिए अधर में लटकी हुई है।"

अधिकतर तीसरी दुनिया के देशों की सरकारें आर्थिक और राजनीतिक स्थाईत्व को बनाए रखने के लिए स्वयं ही कटिबद्ध हैं। क्योंकि यह सरकारें आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण भयंकर कष्टों में है जबकि उद्योगीकृत देश बहुत समय के बाद दूसरी पीढ़ी के अधिकारों को संरक्षण देने के लिए अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए सामने आ रही हैं जिसकी गति बहुत ही धीमी है वे तीसरी दुनिया के शासकों को आर्थिक पंगुपन से उभारने के लिए महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

इसके साथ ही राजनीतिक कार्यक्षम इच्छा शक्ति और दायित्वपूर्ण शक्ति इन देशों को प्राप्त होगी जिससे ये राज्य विश्व में मानवता के सुखद अधिकारों को महसूस कराने एवं लोकतंत्र तथा विकास को आगे बढ़ाने में सहयोग प्रदान करने में समर्थ होंगे। इन मानव अधिकार का यह एजेंडा तीन युक्तिसंगत तत्वों को अपने में समेटे हुए हैं। यह तीन एजेंसियों को चेतना, सतर्कता और समर्थन के साथ प्रयोग करता है। ये है : व्यक्तिगत चौकसी एवं चेतन रहना होगा। दूसरी और गैर सरकारी संगठनों से सतर्क रहते हैं। उनसे लाभ लठाना और संयुक्त राष्ट्र संघ से इनको लागू कराने के लिए समर्थन प्राप्त करना है। इस तरह से आशा की जाती है कि व्यक्तिगत रूप से भागीदारी एन जी ओ को संगठनात्मक संवर्द्धन तथा यू एन ओ के नेतृत्व को विश्व में व्यापक बनाना है। ऐसा करने से कार्य निष्पादन करने वाली एजेंसियों पर राजनीतिक और आर्थिक दबाव पड़ेगा जिससे विश्व में लोकतंत्र, मानवाधिकार एवं विकास का अंतर्राष्ट्रीय सुखद परिदृश्य निर्माण में सहयोग मिलेगा।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

1) वियना सम्मेलन के चार अविवादित उपलब्धियों की पहचान कीजिए और कम से कम रिपोर्टिड दस मानव अधिकारों के अतिक्रमण की सूची बनाइए।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) निम्नलिखित कथनों पर **सही** या **गलत** का संकेत दीजिए।

क) ई बी आर डी की स्थापना 1991 में हुई थी जो एक अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान है और वह मानव अधिकारों को संरक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध है। सही/गलत

ख) अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार संधियां एवं उत्तरदायित्व अमरीका में लागू किए जा सकते हैं और वे इसी तरह से भारत में भी कर सकते हैं (उदाहरण दीजिए।) सही/गलत

ग) विश्व में मुद्रित माध्यम परिचालन के क्षेत्र में विदेशी सूचना व समाचारों को चार एजेंसियां नियंत्रित करती हैं और पूर्व में स्थित हैं। सही/गलत

घ) केवल शीतयुद्ध के बाद की अवधि में अंतर्राष्ट्रीय अखाड़े में मानव अधिकारों ने केंद्रीय स्थिति प्राप्त कर ली है। सही/गलत

20.8 सारांश

मानव अधिकार और मौलिक स्वतंत्रता दोनों ही एक साथ मानव के व्यक्तित्व को विकसित करने में योगदान देते हैं। मानव की प्रतिष्ठा को किसी भी तरह से इससे नीचे समझौता नहीं किया जा सकता है। मानव अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष को सफल बनाने में संप्रभु राष्ट्रों की जिम्मेदारी आती है। यह उत्तरदायित्व न केवल उनके अधिकार क्षेत्रों में सीमित है बल्कि सामाजिक क्षेत्रों में भी उसी तरह से लागू होता है।

एक सामान्य विद्यार्थी के मस्तिष्क में यह बैठा होता है कि मानव अधिकारों की चिंता अमरीका के राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर के नेतृत्व में आरंभ हुई है अर्थात् मानव अधिकारों की सोच अमरीका से शुरू हुई है। विद्यार्थियों को यह जानलेना आवश्यक है कि गहरी छानबीन करने पर यह तथ्य उभर कर सामने आया है कि यह संकल्पना के चित्र को प्रदर्शित करना पूर्वाग्रहों से ग्रसित है। इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि उसकी भूमिका को कहीं काठ का घोड़ा ही न मान लिया

जाए क्योंकि उसने लोकतंत्र और मानव अधिकारों को विदेशी नीति के रूप में प्रयोग किया है। इस तरह से एक आलोचनात्मक तर्क यह भी हो सकता है कि आज मानव अधिकारों की चर्चा करना दृढ़ता या उत्साहित करने की नीति बन गया है जो शीतयुद्ध के आदर्शों के विपरीत उभर कर सामने आई है।

इस तरह से विचारने के लिए अनेक कारण दिए जाते हैं जैसे कि अमरीका ने मानव अधिकारों को बहुत विलम्ब से स्वीकार किया है और वह भी बहुत ही धीमी गति से जिसका उदाहरण है कि उसने अभी तक केवल पांच ही प्रमुख संधियों को स्वीकार किया है। परन्तु इतना सब होने पर भी 1993 में वियना में आयोजित मानव अधिकारों पर विश्व सम्मेलन ने चार महत्वपूर्ण लक्ष्यों को प्राप्त करने की उपलब्धियां हासिल की हैं जो निम्न प्रकार है :

1) मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता की अभिपुष्टि की।

2) नागरिक एवं राजनीति अधिकारों तथा विकास के अधिकार सहित सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों को समान विधि मान्यता स्थापित करने का संकल्प लिया।

3) संप्रभु राज्यों की उत्तरदायित्व के क्षेत्र को विस्तृत किया गया। यह दायित्व सौपां गया कि वह मानव अधिकारों का संरक्षण केवल अपने घेरलू अधिकार क्षेत्र में ही नहीं करेगा बल्कि अब से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी दखल रख सकेंगे और जिसका रूप बहु पक्षीय होगा।

4) अंत में, मानव अधिकार, लोकतंत्र तथा विकास अब एक साथ निर्मित किए गए हैं जिनसे आंतरिक संबंध स्थापित हो रहे हैं। किंतु तत्वों को यह कह कर आलोचना भी की जा रही है कि विकास के लिए सहायता प्राप्त करने वाले देश पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव डालता है। इन सब जिम्मेदारियों की निगरानी रखने व जांच परख करने के लिए मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई है। मानव अधिकारों में विश्व व्यापी शिक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय दशक की घोषणा पहले ही की जा चुकी है। अंतर्राष्ट्रीय सरकारों को भी इस सूची में शामिल किया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सभी तरह की कार्यालयी प्रयासों को प्रस्तुत किया गया है परन्तु यह एक तरफ का ही चित्र है। तथापि यह कम महत्व का विषय नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के नेतृत्व में व्यक्तिगत, और गैर सरकारी संगठनों के सहयोगी वातावरण में मानवाधिकारों का विस्तार कार्य सम्पन्न होने की आशा बंधी हुई है। सामूहिक, संयुक्त तथा सहयोग से नियोजित कार्यकलापों के माध्यम से विश्व पर आवश्यक दबाव बनेगा जिससे लोकतंत्र, मानव अधिकार और विकास की स्थितियां पैदा होगी और उनके उचित महत्व एवं आदर प्राप्त होगा। सरकारी तथा संस्थागत सुधारों के माध्यम से आशापूर्वक संपूर्ति होगी और मानव अधिकार संरक्षण तथा संवृद्धन के व्यक्तिगत प्रयासों को गति मिलेगी। अतः इस विषय के विद्यार्थी को निष्पक्ष रूप से तथ्यों को विश्लेषित करते हुए वास्तविकता तक पहुंचने के लिए गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है।

20.9 परिशिष्ट-I

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (संक्षिप्त रूप)

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने विश्व के सभी लोगों तथा संपूर्ण राष्ट्रों के लिए मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा की है उस दस्तावेज में उपलब्धि का सामान्य स्तर प्रस्तुत किया है। अतः प्रत्येक व्यक्ति एवं समाज के प्रत्येक अंग को इस घोषणा को हमेशा दिमाग में रखना आवश्यक होगा ताकि इन अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं के प्रति इस शिक्षण एवं शिक्षा से इन के प्रति आदर भावना तेजी आयेगी और इनको विकसित करने में सहयोग और सहायता प्राप्त होगी।

अनुच्छेद-1 समानता का अधिकार।

अनुच्छेद-2 शोषण से मुक्ति।

अनुच्छेद-3 जीवन, स्वतंत्रता, व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार।

अनुच्छेद-4 दासता से मुक्ति का अधिकार।

अनुच्छेद-5 यातना या यंत्रण, अपमानजनक व्यवहार के विरूद्ध अधिकार।

अनुच्छेद-6 विधि के समक्ष एक व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार।

अनुच्छेद-7 विधि के समक्ष समानता का अधिकार।

अनुच्छेद-8 प्राधिकृत अधिकरण द्वारा शिकायत के समाधान का अधिकार।

अनुच्छेद-9 मनमाने ढ़ंग से बंदी बनाना, देश निकाला देने के विरूद्ध अधिकार।

अनुच्छेद-10 उचित सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार।

अनुच्छेद-11 दोष सिद्ध न होने तक निर्दोष मानने का अधिकार।

अनुच्छेद-12 एकांत, परिवार, निवास तथा पत्राचार में बाधाओं से स्वतंत्रता का अधिकार।

अनुच्छेद-13 देश के किसी भी हिस्सों में अन्दर बाह्य स्वतंत्र आवागमन का अधिकार।

अनुच्छेद-14 अत्याचार से बचने के लिए दूसरे देशों में शरण लेने का अधिकार।

अनुच्छेद-15 राष्ट्रीय प्राप्त करने तथा राष्ट्रीयता परिवर्तन की स्वतंत्रता का अधिकार।

अनुच्छेद-16 विवाह तथा परिवार का अधिकार।

अनुच्छेद-17 अपनी सम्पत्ति रखने का अधिकार।

अनुच्छेद-18 विश्वास और धर्म का अधिकार।

अनुच्छेद-19 मत एवं सूचना का अधिकार।

DIKSHANT IAS

अनुच्छेद-20 शांतिपूर्वक एकत्रित होने और सभा करने का अधिकार।

अनुच्छेद-21 सरकार और स्वतंत्र चुनाव में भागीदारी का अधिकार।

Call us @7428092240

अनुच्छेद-22 सामाजिक सुरक्षा का अधिकार।

अनुच्छेद-23 वांछित कार्य तथा श्रमिक संघों में शामिल होने का अधिकार।

अनुच्छेद-24 आराम करने एवं अवकाश का अधिकार।

अनुच्छेद-25 समुचित जीवन स्तर का अधिकार।

अनुच्छेद-26 शिक्षा का अधिकार।

अनुच्छेद-27 समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में भागीदारी का अधिकार।

अनुच्छेद-28 सामाजिक व्यवस्था में मानव अधिकारों के लिए आश्वासन का अधिकार।

अनुच्छेद-29 स्वतंत्र और संपूर्ण विकास के लिए समुदाय के आवश्यक कर्तव्य

अनुच्छेद-30 उपर्युक्त अधिकारों को प्राप्त करने के लिए राज्य एवं व्यक्तिगत बाधाओं से मुक्ति प्राप्त करने का अधिकार।

20.9.1 भारत : मौलिक कर्तव्य (अनुच्छेद 51 क)

1) संविधान, राष्ट्रीय झण्डा तथा राष्ट्रीय मान के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना।

) राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष की कदर करना एवं उसके आदर्शों का पालन करना।

) भारत की प्रभुसत्ता, एकता और अखंडता को बनाए रखना तथा उसे सुरक्षित रखना।

) देश की सुरक्षा करना और जब आवश्यकता पड़े राष्ट्र की सेवा में समर्पित भाव से शामिल होना।

5) सामान्य भाईचारा (तथा बहिनापा या भगिनीत्व) के प्रति सदभाव को उन्नत करना।

6) महिलाओं की प्रतिष्ठा का अनादर करने की प्रवृत्ति को नष्ट करना।

7) देश के मूल्यों और उसकी समृद्ध धरोहर को सुरक्षित रखना।

8) राष्ट्रीय पर्यावरण को सुरक्षित एवं उसमें सुधार करना।

9) जीवित प्राणियों के लिए करूणा का भाव रखना।

10) विज्ञान, मानवतावाद तथा जांच एवं सुधार की भावना के ज्ञान के विकसित करना।

11) सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा करना तथा हिंसा को पनपने न देना।

12) व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यकलापों के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ठता प्राप्त करने के प्रयास करना।

20.9.2 भारतः मौलिक अधिकार

1) विधि के समक्ष का अधिकार (अनुच्छेद 4)

2) अत्याचारों (शोषण) से मुक्ति को अधिकार (अनुच्छेद 15)

3) सार्वजनिक रोजगार प्राप्त करने में समान अवसरों का अधिकार (अनुच्छेद 16)

4) भाषण तथा विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19)

5) बिना सशस्त्र के शांतिपूर्वक एकत्रित होने का अधिकार (अनुच्छेद 19)

DIKSHANT IAS

6) एसोशिएशन या संघ (बनाने) निर्माण करने का अधिकार (अनुच्छेद 19)

Call us @7428092240

7) मुक्त आवागमन का अधिकार (अनुच्छेद 19)

8) देश में कहीं भी किसी भी स्थान पर स्थापित तथा रहने का अधिकार (अनुच्छेद 19)

9) किसी व्यवसाय, कार्य (काम धन्धा) व्यापार या वाणिज्य करने का अधिकार (अनुच्छेद 19)

10) अपराध स्वीकार किए बिना या प्रमाणित हुए बिना अपराधी को दंडित न करने का अधिकार (अनुच्छेद 20)

11) जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 21)

12) कारण बताए बिना या उसकी सूचना दिए बिना बंदी या गिरफ्तार न करने का अधिकार (अनुच्छेद 22)

13) गिरफ्तार करने या बंदी बनाने से पहले और बाद में सलाह मशविरा लेने, उसका प्रतिवाद करने एवं वकील करने का अधिकार (अनुच्छेद 22)

14) मानवता से संबंधित अवैध व्यापार तथा जबरन बेगार लेने के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23)

15) कारखानों, खानों-खदानों या खतरनाक कामों वे धंधों में बच्चों (14 वर्ष तक के बच्चे) को रोजगार देने के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 24)

16) अपने विवेक के प्रयोग का अधिकार तथा धर्म का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

17) अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक अधिकारों के संरक्षण का अधिकार (अनुच्छेद 29)

18) अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों के संरक्षण का अधिकार (अनुच्छेद 30)

19) यदि अधिकारों का उल्लंघन होता है तो उच्चतम न्यायालय में जाने का अधिकार या याचिका दायर करने का अधिकार (अनुच्छेद 31)

20.9.3 भारत: राज्य के नीति निदेशक तत्व

1) सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय (अनुच्छेद 38)
2) जीवन यापन के साधन (अनुच्छेद 39)
3) संसाधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण का उचित वितरण (अनुच्छेद 39)
4) समान काम के लिए समान भुगतान (अनुच्छेद 39)
5) श्रमिकों एवं बच्चों के स्वास्थ्य और शक्ति का संरक्षण (अनुच्छेद 39)
6) बच्चों और युवाओं का स्वास्थ्य, निशुल्क और प्रतिष्ठित विकास (अनुच्छेद 39)
7) समान न्याय एवं निशुल्क कानूनी सहायता (अनुच्छेद 39 क)
8) काम, शिक्षा तथा सार्वजनिक सहायता का अधिकार (अनुच्छेद 41)
9) काम की न्यायोचित एवं मानवीय स्थिति तथा प्रसूती सहायता (अनुच्छेद 42)
10) जीवन के लिए जीवनयापन भुगतान तथा उत्कृष्ठ जीवन स्तर (अनुच्छेद 43)
11) सुखद अवकाश, सामाजिक और सांस्कृतिक अवसरों का पूर्ण मनोरंजन (अनुच्छेद 43)
12) उद्यमों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी (अनुच्छेद 43 क)
13) बच्चों के लिए निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा (अनुच्छेद 45)
14) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति तथा अन्य पिछड़े वर्गो के लिए शैक्षिक आर्थिक हितों को उन्नत करना (अनुच्छेद 46)
15) पोषण, जीवन तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्तर को उन्नत करना (अनुच्छेद 47)
16) पर्यावरण, वनों तथा जंगली जानवरों के जीवन का संरक्षण (अनुच्छेद 48)
17) स्मारकों, एवं राष्ट्रीय महत्व के स्थानों तथा वस्तुओं का संरक्षण (अनुच्छेद 49)
18) कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग करना (अनुच्छेद 50)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.10 परिशिष्ट-II

यहां पर यह जानना आवश्यक है कि बहुत सारे मानव अधिकार साधन या उपाय हैं तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणाएं उपलब्ध हैं जिनको राज्य मानव अधिकारों के हितों के लिए पालन करते हैं और उनका उपयोग करते है। इनमें से कुछ प्रमुख अधिकार नीचे दिए गए हैं :

1) प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ जिनेवा सम्मेलन (यह सम्मेलन युद्ध का संचालन, कैदियों के साथ व्यवहार, और युद्ध के समय नागरिकों का संरक्षण व सुरक्षा से संबंधित थे)।
2) जातिसंहार के अपराधों को रोकने अपराधियों को दण्ड देने के संबंध में सम्मेलन का आयोजन।
3) महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर सम्मेलन।
4) जातिय शोषण के सभी स्वरूपों को समाप्त करने पर सम्मेलन (सी ई आर डी)
5) महिलाओं के विरूद्ध शोषण के सभी स्वरूपों को समाप्त करने के संबंध में सम्मेलन। (सी.ई.डी.ए. डब्ल्यू.)
6) यातना तथा अन्य क्रूर अमानवीय तथा अपमानपूर्ण व्यवहार या दण्ड दिए जाने के विरोध पर सम्मेलन।

7) बाल अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (सी ए टी)।

8) राज्यविहीन व्यक्तियों के स्तर व स्थिति से संबंधित सम्मेलन।

9) शरणार्थियों की स्थिति एवं स्तर से संबंधित सम्मेलन।

10) 1926 का दास्ता (गुलामी) के विरूद्ध सम्मेलन और इसके पूरक में 1956 का सम्मेलन।

इन उपायों के अतिरिक्त बहुतसारी संधिया, अनेक संकल्प तथा घोषणाएं की गई (संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा और आर्थिक एवं सामाजिक परिषद द्वारा आयोजित) जिनके माध्यम से संपूर्ण विश्व में मानव अधिकारों के अनुपालन के अंतर्राष्ट्रीय स्तर स्थापित करने में सहयोग प्रदान किया। इन घोषणाओं ने मानव अधिकारों के विशिष्ट क्षेत्रों को अपने में समेटा है। इनमें से प्रमुख अधिकतर निम्न प्रकार से है :

- बंदियों के साथ व्यवहार के लिए मानक नियम (1957)
- मानसिक रूप से मन्दबुद्धि व्यक्तियों के अधिकारों पर घोषणा (1971)
- धर्म या विश्वास व्यक्त करने पर आधारित अत्याचार एवं सभी प्रकार की असहिष्णुता को समाप्त करने के संबंध में घोषणा (1981)।
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर बुनियादी सिद्धांतों की घोषणा (1985)।
- जबरन लुप्त या गायब किये जाने वाले सभी व्यक्तियों के संरक्षण पर घोषणा (1992)
- राष्ट्रीय या जातीय, धार्मिक तथा भाषायी अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यक्तियों के संरक्षण पर घोषणा (1992)
- विकास के अधिकार पर घोषणा (1986)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी तरह के निर्देशों तथा संबंधित व्यक्तियों के मानव अधिकारों के संरक्षण करने के उद्देश्य को लक्ष्य मानकर अंतर्राष्ट्रीय संगठन (आई एल ओ) ने सभा संगठनों की स्वतंत्रता को संरक्षित करने के लिए भी कुछ घोषणाओं को स्वीकृत किया गया था। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

- ऐसोसिएशन की स्वतंत्रता तथा संगठनों के अधिकारों का संरक्षण (आई ओ एल सम्मेलन सं. 87)
- श्रम संबंधों (सार्वजनिक सेवा) पर सम्मेलन (आई एल ओ सम्मेलन संख्या 151)
- स्वतंत्र देशों में देशज लोगों एवं जनजातिय लोगों से संबंधित सम्मेलन (आई एल ओ सम्मेलन संख्या 169)।

20.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एमेन्स्टी इंटरनेशनल (लंदन), **ह्यूमैन राइटस इन इंडिया** (1993) ह्यूमैन राइटस और वूमैनस राइटस।

रिचर्ड रिऑक, **ह्यूमैन राइटस - दि न्यू कॉनसेन्सस** (लंदन)।

फरीद काजमी : **ह्यूमैन राइटस 1994 - माईथ एंड रीयल्टी,** न्यू दिल्ली, 1987।

ए बी कलौएह : **ह्युमैन राइटस इन इंटरनेशल लॉ,** नई दिल्ली, 1986।

के पी सक्सेना : **टीचिंग ह्यूमन राइटस : ए मैन्युअल फार अडल्ट एजुकेशन,** नई दिल्ली, 1996

आर जे विनसेंट : **ह्यूमैन राइटस एंड इंटरनेशनल रिलेशन्स** (कैम्ब्रीज) 1986।

मानव अधिकार साप्ताहिकी के अनेक अंक।

20.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 20 को देखिए।

2) क) गलत, ख) गलत

   ग) सही घ) सही

बोध प्रश्न 2

1) भाग 20 को देखिए। वियना कांग्रेस की अंतिम दो घटनाएं (जून) तथा एन एच आर सी (अक्तूबर) 1993।

2) ग) के अतिरिक्त सभी सही हैं।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 20 देखिए। (वियना घोषणा पांचवा पैरा के संदर्भ में)

2) स्व-निर्धारण का अधिकार।

बोध प्रश्न 4

1) भाग 20 देखिए।

2) 13 के अतिरिक्त सभी सही हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 21 जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के प्रतिमान और आयाम

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 पारिभाषिक शब्दावली
- 21.2.1 राष्ट्र
- 21.2.2 राष्ट्रवाद
- 21.2.3 जातीय समुदाय
- 21.2.4 जातीयता

21.3 जातीय राष्ट्रवाद का अर्थ
21.4 संघर्ष के मूल कारण
- 21.4.1 आर्थिक कारण
- 21.4.2 राजनीतिक विभेदीकरण
- 21.4.3 बलपूर्वक आत्मसात करना/आत्मसात्करण
- 21.4.4 ऐतिहासिक
- 21.4.5 जनसंख्या का दबाव
- 21.4.6 शरणार्थी आंदोलन
- 21.4.7 मानव की व्यापक चिरकालिक, सतत् उड़ान
- 21.4.8 राज्य का विध्वंस
- 21.4.9 जातीय समुदायों की चिरस्थाई दरार
- 21.4.10 जातीय अल्पसंख्यकों की मनोग्रन्थि
- 21.4.11 आत्मनिर्धारण के सिद्धांत

21.5 जातीय अल्पसंख्यकों के प्रतिरूप
21.6 जातीय राष्ट्रीय संघर्षों के आयाम
- 21.6.1 जातीय प्रभुत्व
- 21.6.2 जातीय विच्छेद
- 21.6.3 स्वायत्ता की मांग
- 21.6.4 शांतिपूर्ण जातीय आत्मनिर्धारण
- 21.6.5 जातीय विशुद्धिकरण

21.7 जातिय राष्ट्रीय संघर्ष के प्रभाव/निहितार्थ
21.8 सुझाव
21.9 सारांश
21.10 शब्दावली
21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
21.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.0 उद्देश्य

यह इकाई में जातीय राष्ट्रीय संघर्ष, उनके उदगमों के कारण, विभिन्न प्रतिमानों एवं उनके आयामों सहित हाल ही में जातीय संघर्ष से ग्रसित विभिन्न देशों जैसे बोसनिया, रवांडा, बुरूण्डी, चेचन्यां, श्रीलंका, क्यूबेक, पाकिस्तान इत्यादि के बारे में विशेष चर्चा की है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- राष्ट्र, राष्ट्रवाद, जातीय समुदायों और जातियता के अर्थों को स्पष्ट कर सकेंगे,
- जातीय राष्ट्रवाद तथा जातीय राष्ट्रीय संघर्षों को परिभाषित कर सकेंगे,
- जातीय राष्ट्रीय संघर्षों के उदगम के कारणों का वर्णन कर सकेंगे,
- जातीय राष्ट्रीय संघर्षों के विभिन्न आयामों पर विचार विमर्श कर सकेंगे, और
- जातीय संघर्षों के निहितार्थों का वर्णन कर सकेंगे तथा इसके निश्चित निवारक उपायों पर

21.1 प्रस्तावना

शीत युद्धोत्तर विश्व में जातीय राष्ट्रीय संघर्ष अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती के रूप में सामने आया। जातीय संघर्ष का उदगम हाल ही में हुआ। वास्तव में यह तथ्य नहीं है बल्कि यह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में निरन्तर बना रहने वाला एक घटक है। एक अनुमान के अनुसार, 1945 से ही जातीय हिंसा के कारण लगभग एक करोड़ लोगों की जीवनलीला समाप्त हो गई। (होरोविटज) सोवियत गुट और पश्चिमी गुट के नेता अमेरीका के बीच शीत युद्ध ने विभिन्न देशों के बीच क्षणभंगुर मुद्दों को निष्प्रभावी करके विश्व समाज में स्थायित्व प्रदान किया। सोवियत संघ के विघटन के बाद द्विध्रुवीय व्यवस्था खत्म हुई जिसने विखंडित जातीय बहुध्रुवीय अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का रूप धारण किया और इसने राष्ट्रों के बीच असुरक्षा को बढ़ा दिया है। निरंतर बढ़ती हुई जातीय हिंसा साम्प्रदायिक रूप धारण करती प्रतीत होती है जिससे पश्चिमी देशों के बीच केन्द्रीय सुरक्षा चिन्ता का विषय होती जा रही है। यह संभवतः इसलिए भी है कि आत्म निर्धारण की मांग के साथ उदय होती जातीय जागरूकता विश्व में एक खतरनाक अनुपात धारण कर सकती है जहां पर 85 राज्यों के 10 प्रतिशत से भी कम राज्य जातीय समरूपता लिए हुए हैं। एक अमरीकी सीनेटर डेनियल पेट्रीक मोनिहान ने चेतावनी दी कि "आगे आने वाले युग में संघर्ष की परिभाषा जातीय संघर्ष होगी, जो कि बर्बर होगी। अगले 50 वर्षों में विश्व में 50 नए देश देखने के लिए तैयार रहें। उनमें से अधिकांश रक्तपात में पैदा होंगे।" जातीय राष्ट्रीय संघर्ष, जैसा कि सामान्यतः समझा जाता है, उन राज्यों के मध्य चल रहे तनाव का उदगम है जो अपनी शक्ति को सुदृढ़ करना एवं बढ़ाना चाहते हैं और उन जातीय समुदायों के जो कि अपनी संयुक्त पहचान एवं हितों को सुरक्षित एवं विकसित करना चाहते हैं मध्य तनाव को अभिव्यक्ति है। सबसे तीन जातीय संघर्षों में राष्ट्रवादी नेता अपनी स्वायत्ता या स्वतंत्रता स्थापित करना चाहते हैं। जातीय संघर्ष तब भी उठ सकता है जबकि अधीनस्थ समुदाय अपने स्तर को सुधारने के लिए किसी राज्य की निर्धारित सीमाओं में रहकर संघर्ष करते हैं न कि अलग होने के लिए। उदाहरण के लिए, दक्षिण अफ्रीका में जहां काले समुदाय के लोग राज्य शक्ति पर अपना और अधिक नियंत्रण चाहते थे जबकि श्रीलंका के तमिल स्वयं को राज्य से अलग करना चाहते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.2 परिभाषिक शब्दावली

जातीय राष्ट्रीय संघर्ष की समीक्षा करने से पहले, हमें उन महत्वपूर्ण शब्दों की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए जिनका इस विषय में बार-बार प्रयोग हुआ है।

21.2.1 राष्ट्र

इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण शब्द है – "राष्ट्र" जिसके ऊपर जातीय राष्ट्रवाद की संपूर्ण संकल्पना टिकी हुई है। कोलम्बस तथा वोल्फ ने लिखा है कि राष्ट्र वह संकल्पना या ऐसा सिद्धांत है जो एक समान जातीयता को स्वीकार करते हुए सबकी समान संस्कृति में "एक व्यक्ति" जातीय और सांस्कृतिक पहचान को बनाये रखने में समर्थ होता है।" इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि जनता का वह वर्ग जो अपने आपको इतिहास, संस्कृति तथा एक समान्य वंश परम्परा के बंधनों की वजह से एक समुदाय विशेष में बंधा हुआ मानता है। उस राष्ट्र की एक जातीय समरूपता होती है।

राष्ट्रों की कुछ वस्तुपरक विशेषताएं होती है जिसमें एक भूभाग, एक भाषा एक धर्म या एक समान वंशज शामिल हैं तथा कुछ व्यक्तिपरक विशेषताएं होती है, जिसमें मुख्यतः अपनी राष्ट्रीयता के प्रति जनता की जागरूकता व उसका प्रेम, होता है। तथापि, एक राष्ट्र, राज्य के असदृश्य भौगोलिक सीमाओं के बाहर भी स्थित हो सकता है, यदि उसमें उपर्युक्त लिखित विशेषताएं समाहित हैं।

21.2.2 राष्ट्रवाद

साधारण शब्दों में कहा जाए तो राष्ट्रवाद, राष्ट्र की जनता के बीच व्याप्त एकता तथा देशभक्ति की भावना है। ऐसी भावना में प्रतिरक्षा और उन्नति की इच्छा की जाती है। अर्थात् सांस्कृतिक समरूपता, सुनिश्चित भूभाग में साहचर्य के साथ रहने, एक विशिष्ट अस्तित्व और एकसमान नियति में विश्वास रखने की विशेषताओं से युक्त कुछ व्यक्तियों की मनोदशा राष्ट्रवाद कहलाती है।

यहां यह बताना महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रवाद की धारणा और राष्ट्र राज्य का आदर्श अनिवार्यतः जातीयता पर आधारित नहीं है। बल्कि यह एक राज्य में भिन्न संस्कृति के होते हुए स्वैच्छिक रूप से जनता के एक साथ चलने पर बल देता है। अभी वर्तमान समय में, विशेषतः बीसवी शताब्दी में जातीयता प्रबल रूप में उभरी है। छोटे जातीय समुदायों में महत्वाकांक्षाओं ने राष्ट्रवाद की चेतना को बढ़ाया है जो जनता द्वारा जातीय राष्ट्रवाद के आधार पर स्वतंत्र राष्ट्र राज्य की मांग के रूप में संचारित हो सकती है।

21.2.3 जातीय समुदाय

एक राष्ट्र राज्य में एक या अधिक जातीय समुदाय एकत्रित हो सकते है। जातियां समुदाय वे समुदाय है जो कि मिलकर बने हैं या जिनकी समान अनुभव और सांस्कृतिक विशेषताओं पर आधारित एक विशिष्ट और सामूहिक पहचान होती है। वे किसी एक या सभी अग्रलिखित विशेषताओं, जैसे जीवनशैली, धार्मिक विश्वास, भाषा, शारीरिक बनावट निवास का क्षेत्र, परम्परागत व्यवसायों, विजित इतिहास और सांस्कृतिक भिन्नता वाले लोगों द्वारा दमन आदि के आधार पर वे या तो स्वयं को परिभाषित कर सकते हैं या दूसरों द्वारा परिभाषित किये जा सकते हैं।

21.2.4 जातीयता

जातीयता एक जातीय पहचान का बोध या एक जातीय समुदाय विशेष से जुड़े रहने की अनुभूति है। जोर्ज डी बोस ने इसे ऐसे परिभाषित किया है कि "संस्कृति के किसी पहलू का, दूसरे समुदायों से अपने आपको अलग रखने के क्रम में, जनता के एक समुदाय द्वारा व्यक्तिपरक संकेतात्मक या प्रतीकात्मक प्रयोग जातीयता है।" आगे पौल आर ब्रास के अनुसार, "व्यक्तिपरक आत्म चेतना के अतिरिक्त जातीयता या जातीय समुदाय में एक श्रेष्ठ समुदाय या एक समुदाय जो कम से कम दूसरे समुदाय के बराबर हो, के रूप में पहचान और प्रतिष्ठा का दावा शामिल होता है। वर्ग के लिए वर्ग चेतना जो है, वही जातीय श्रेणी के लिए जातीयता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक जातीय पहचान बनाने के लिए, समान वंशज, एक प्रासंगिक सामाजिक संस्कृति या भौतिक विशेषताएं और नियत दृष्टिकोण तथा व्यवहार के समान तरीकों इत्यादि कारकों का सयुक्त होना आवश्यक है। समान वंशज एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवयव है। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक प्रतीकों जैसे धर्म, भाषा, रीति रिवाज, सामाजिक विश्वास और प्रचलनों इत्यादि का होना भी जातीयता का लक्षण है। पहचान के आधार के अतिरिक्त ऐसी पहचान को पुष्ट करने के लिए जातीय समुदाय के सदस्यों को आवश्यक रूप से विचार, व्यवहार, तरीके, अनुभुतियों तथा तात्पर्य आदि में शामिल होन चाहिए। इससे भी बढ़कर उन्हें महसूस होना चाहिए कि वे समान नियति भी रखते हैं उदाहरणार्थ, श्रीलंका के तमिल, पूर्व युगोस्लाविया के मुसलमान इत्यादि।

21.3 जातीय राष्ट्रवाद का अर्थ

मूल शब्दों को समझने के बाद अब हम आसानी से जातीय राष्ट्रवाद के अर्थ व संकल्पना का विस्तार कर सकते हैं।

उप राष्ट्रवाद के सदृश्य, जातीय राष्ट्रवाद, जातीय समुदायों की जातीय पहचान पर आधारित है। यह राष्ट्रवाद का सीधा विभाजन है तथा यह उन सभी लोगों को इससे बाहर रखता है जो एक समान जातीय समुदाय से संबंधित नहीं है अर्थात् यह राष्ट्रवाद का विशिष्ट रूप है जो एक ही जातीय समुदाय को शामिल करता है, उदाहरणार्थ, संपूर्ण विश्व के मुसलमान एक राष्ट्र बनाते हैं, लेकिन ये भी आगे दो मुख्य जातीय समुदाय (शिया और सुन्नी) में विभाजित हैं और वे बहुत से छोटे छोटे समुदायों जो फिओरकास कहलाते हैं जैसे खान, सैयुयद, कुरैशी इत्यादि। विशेष जातीय समुदाय के आधार पर उठी कोई भी लहर जातीय राष्ट्रीय संघर्ष कहलायेगी। आठ साल तक चला इराक ईरान युद्ध जातीय राष्ट्रीय संघर्ष का एक उदाहरण है जिसका कारण शिया सुन्नी विवाद था।

संक्षेप में, जातीय राष्ट्रवाद, जातीय समुदायों का राष्ट्रवाद है जैसे कि मुस्लिम, कुर्द, लातवियन, तमिल इत्यादि। ये अपने राष्ट्र का विशिष्ट शब्दावलियों में वर्णन करते हैं जो कि मुख्यतः एकसमान वंशज, नस्ल, संस्कृति, इतिहास तथा भाषा पर आधारित है। यहां, समान वंशज शब्द बहुत महत्वपूर्ण

है, क्योंकि सिर्फ एक भाषा और संस्कृति को अपनाने की वजह से ही इस विशेष जातीय समुदाय में किसी को भी शामिल नहीं किया जा सकता है।

जातीय राष्ट्रवाद, राज्य, धार्मिक सम्प्रदाय और वर्ग की सीमाओं से भी आगे बढ़कर है। यह राष्ट्रीयता एवं सामुदायिकताओं को खंडों में विभाजित करने की मांग करता है और जातीय संकेतकों का प्रयोग करते हुए नए समुदायों और राष्ट्रीयताओं को बनाने की मांग करता है। जातीयता के प्रतीक और सांस्कृतिक पहलू अपने आप में महत्वपूर्ण है तथा सामुहिक हितों को विकसित करने के लिए प्रायः राजनीतिक रंग ले लेते हैं। ज्यादातर जातीय राष्ट्रीय संघर्ष, आर्थिक संसाधनों एवं उत्पादकों के बड़े स्तर पर बंटवारे तथा निर्णय निर्माण प्रक्रिया में बड़े स्तर पर भाग लेने के संबंध में होते हैं। जोसफ रोथचाइल्ड के अनुसार – "राजनीति युक्त जातीयता, अंतरा राज्य और अंतर राज्य संघर्ष का एक महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली अवयव बन गई है। आज यह राजनीतिक अधिकारिता को वेधता देने या उसकी वैधता को चुनौती देने पर द्वंद्वात्मक/तर्कपूर्ण रूप से प्रभाव डालती है।

आज नये जातीय तथ्य को समझने के लिए जो मुख्य उपागम है। जातीय पहचान तथा जातीयता के अतिप्राचीन उपागम ने वंश को एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया है। जिसमें प्राचीन वफादारियों को विवेकपूर्ण सिद्धांतों और संगठनों के ऊपर अधिक सरलता से क्रियान्वित पाया है। दूसरे उपागम को परिस्थितिवश व्यक्तिपरक या यांत्रिकता आदि कई रूपों से जाना जाता है। इसका मुख्य जोर समुदाय के उन सदस्यों के बोध पर है जो अपने को दूसरों से अलग मानते हैं। इसका आशय यह है कि इन समुदायों की वर्तमान स्थितियां उलझन तथा भविष्य के लिए इसकी संभावनाएं आदि दूसरों से अलग होती हैं। ये संघर्षरत्त उपागम विवादों के स्पष्टीकरण और समकालीन वास्तविकता को समझने के लिए सहायक होते हैं।

जातीय राष्ट्रवाद उस किसी भी राज्य के लिए एक चुनौती पैदा करता है जिसकी एक समान जातीयता या एकसमान पहचान और संस्कृति नहीं होती है। लगभग सभी बहुलसमाज जो कि अस्तित्व में हैं उनकी एकता एवं अखंडता के लिए जातीय राष्ट्रवाद एक बहुत बड़े संकट के रूप में चुनौती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.4 संघर्ष के मूल कारण

जातीय युद्धों के कारणों को स्पष्ट करने के कई बार प्रयास किए गए हैं। जातीय हिंसा प्रेरित करने के लिए जन आवेश या प्राचीन द्वेष की भूमिका को एक सिद्धांत प्रमुखता देता है जबकि एक दूसरा सिद्धांत सुझाव देता है कि अंतर सुरक्षा की दुविधा जातीय युद्ध के लिए आवश्यक है। यह दुविधा है जातीय समुदायों को डर, कि उनके हितों को खतरा है अतः उनकी दृढता से सुरक्षा आवश्यक है। तीसरा उपागम जातीय युद्ध का आरोप युद्धरत्त नेताओं द्वारा की गई चालबाजियों पर लगाता है। यद्यपि, विद्वानों की सहमति है कि जातीय युद्ध के लिए तीनों अवयव जनता में वैरभाव युद्धरत्त नेता और अंतरजातीय सुरक्षा की दुविधा अत्यावश्यक है।

वास्तव में ये कारक पारस्परिक रूप से सुदृढ करते हैं। युद्धकारी नेता जन विरोध को भड़काते हैं। विरोधी जन युद्धकारी नेताओं का समर्थन करते हैं तथा दोनों मिलकर दूसरे समुदायों को धमकी देकर सुरक्षा की दुविधा (उन्मुलन का भय) को पैदा करते हैं। इसका परिणाम अस्तित्व के लिए संघर्ष या विभिन्न जातीय समुदायों के बीच आधिपत्य हो सकता है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि किसी एक कारण को ही वास्तव में, हम जातीय राष्ट्रीय संघर्ष का श्रेय नहीं दे सकते हैं बल्कि कई ऐसे कारकों का संयोग होता है जो कि जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के उदय के लिए जिम्मेदार होता है। ये जातीयता से परिभाषित शिकायतों, जनसांख्यिकी, खतरे, जातीय आधिपत्य का इतिहास, समुदाय के विनाश का आपसी डर, दोषपूर्ण राजनीतिक अराजकता इत्यादि हो सकते हैं। होरोविटज कहते हैं कि कम से कम ये छः कारक, प्रत्येक गंभीर जातीय हिंसा के मामलों जैसे पूर्व युगोस्लाविया, श्रीलंका, रवांडा, क्रोशिया, अजरबाईजान इत्यादि में मौजूद हैं।

जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के कारणों को उन कारकों के रूप में समझा जा सकता है जो कुछ निश्चित जातीय समुदायों की पवित्र रूप से परिरक्षित और अनुरक्षित सांस्कृतिक पहचान को संकट में डालते

हैं। ऐसी धमकियां सामुदायिक पहचान को बल प्रदान करती हैं समुदाय के हितों को उन्नत करने के लिए उन्हें गति प्रदान करती हैं।

कुछ निश्चित कारण जो कि जातीय संघर्ष को बढ़ाने के लिए जिम्मेद्वार हैं वे निम्न प्रकार हैं।

21.4.1 आर्थिक कारण

शायद जातीय राष्ट्रीय संघर्ष का सबसे महत्वपूर्ण कारण आर्थिक स्थिति से संबंधित है। इसे दो मुख्य अवयवों के माध्यमों से दर्शाया जा सकता है। पहला—राज्य के क्षेत्रों का असमान विकास और दूसरा राज्य के स्वयं के द्वारा भी आर्थिक भेदभाव को बनाये रखना।

असमान विकास आगे चलकर दो प्रकार की स्थितियों को जन्म देता है। पहला यदि एक या दो जातीय समुदाय आर्थिक रूप से संपन्न हो जाते हैं तो दूसरे समुदायों जो कि अपेक्षाकृत पिछड़े माने जाते हैं तथा उन्हें सम्पन्न समुदाय भार मानता है। दूसरा, यदि एक विशेष जातीय समुदाय आर्थिक रूप से पिछड़ा रह जाता है तो वह दूसरे जातिय समुदायों पर अपनी आर्थिक विभिन्नता का आरोप लगाता है। इन दोनों मामलों में घृणित लोग जातीय संघर्ष को बढ़ा सकते हैं।

अगला, आर्थिक भेदभाव के मामले में, राज्य न केवल एक विशेष जातीय समुदाय को समान विकास के अवसर न देकर उन्हें विपन्न बनाता है बल्कि उन्हें आर्थिक संसाधनों क उपयोग के लिए भी मना करते हैं या उनकी मांगों को नकारते हैं, उदाहरण के लिए, ईराक सरकार की आर्थिक विकास की नीतियां कुर्दों के आर्थिक हितों को उनके प्रतिकूल प्रभावित करती है।

मोसुल तेज क्षेत्र जो कि मुख्यतः कुर्द क्षेत्रों में है लेकिन इराकी सरकार ने इस मांग को अस्वीकार कर दिया कि तेल राजस्व के कुछ भाग को कुर्द क्षेत्रों के विकास के लिए भी देना चाहिए। इससे भी ज्यादा 1980 में इराकी सरकार ने हजारों कुर्द गांवों को विक्षत करके और बलपूर्वक अपने लोगों को पुनर्स्थापित करके, ग्रामीण कुर्द अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचाई है। कुर्द विद्रोहियों व इराक ईरान युद्ध के दौरान कुर्दों द्वारा ईरान को समर्थन के लिए ये ही नीतियां जिम्मेदार हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.4.2 राजनीतिक भेदभाव

ज्यादातर राज्यों में जातीय रूप से बढ़ी हुई जनसंख्या होती है और विभेदकारी नीतियां प्रायः जातीय असंतोष तथा अंतर्राज्यीय संघर्ष को उत्पन्न करती है। जातीय शिकायतें जब पैदा होती हैं यदि जातीय समुदाय द्वारा उनके क्षेत्रों या समुदायों पर उनके आंतरिक मामलों में राजनीतिक नियंत्रण को राजनीतिक आगमन को अस्वीकार कर देते हैं तब यह स्थिति आसानी से पैदा हो जाती हैं। 1990 के एक अध्ययन के अनुसार लगभग 80 प्रतिशत उन राजनीतिक जातीय समुदायों को पहचाना गया जो ऐतिहासिक परिणामों या समकालीन अर्थव्यवस्था या राजनीतिक भेदभाव के साथ रह रहे हैं। एक अध्ययन में जाना गया है कि 233 में से 200 या 180 लोग अपने राजनीतिक हितों की सरकार या दूसरे समुदायों से सुरक्षित रखने व विकसित करने के लिए राजनीतिक रूप से संगठित हैं।

21.4.3 बलपूर्वक आत्मसात करना

राज्य की आत्मसत्करणीय नीतियां समुदायों की जातीय पहचान के लिए एक सीधी धमकी के रूप में क्रियान्वित की गई हो तो विद्वेष को विकसित करती है जो कि पहले या बाद में जातीय संघर्ष का रूप ले लेती हैं। आत्मसात्करण से अभिप्राय है जब अल्पसंख्यकों को अपनी पुरानी सामुदायिक पहचान को छोड़ने के लिए तैयार करते हैं अथवा उनको जबरन ऐसा करने के लिए मजबूर करते हैं। तथा प्रमुख समुदाय की भाषा, मूल्यों तथा व्यवहारों को अपनाते हैं। उदाहरण के लिए तुर्की में कुर्दों को जो कि तुर्की समाज में आत्मसात्करण के लिए बार बार प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार कुर्दों की पृथक पहचान को अस्वीकृत कर दिया गया। कुर्दों को सरकारी तौर पर पिछड़े तुर्क माना गया तथा उन्हें कुर्दिश भाषा में लिखने पढ़ने एवं प्रकाशन करने की मनाही की गयी।

21.4.4 ऐतिहासिक

पृथक पहचान एवं शिकायतों की अनुभूति साम्राज्य की अभिमति व औपनिवेशिक शासन का परिणाम होती है जो कि कई पीढ़ियो को दृढ़ करती है तथा समकालीन जातीय राष्ट्रीय आंदोलनों को यह शक्ति उपलब्ध करवाती है। उदाहरणार्थ, म्यमार (पूर्व नाम बर्मा) जो कि पूर्ण ब्रिटिश कोलोनी था

सन् 1940 के बाद में स्वतंत्रता के दौरान से ही जातीय संघर्ष से ग्रसित हो गया। यह संघर्ष द्वितीय विश्व युद्ध के समय शुरू हुआ जबकि बहुसंख्यक समुदाय से जुड़े हुए राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश कालोनी की सेना पर हमला किया था। क्योंकि ब्रिटिश कॉलोनी की सेना में अल्पसंख्यक समुदायों जैसे कैरन, चिन्स एवं काचिस आदि को भर्ती किया था। जिसके परिणामस्वरूप हजारों व्यक्ति संघर्ष में मारे गये और यहां तक कि अल्पसंख्यकों एवं म्यमार सरकार के बीच जो समस्या पैदा हुई थी वह अभी तक नहीं सुलझ पाई है।

21.4.5 जनसंख्या का दबाव

यह जातीय समुदाय की अवस्थिति, क्षेत्र और पर्यावरण होता है जो कि अंतर समुदाय के दृष्टिकोणों, प्रतियोगियों तथा संघर्ष को रूप देता है। यह समुदाय को व्यवस्थित करने के तरीकों, समुदायों की भूमि तथा नेताओं से संबंध क्रमशः जातीय समुदायों तथा उनके शारीरिक स्थायित्व के आधार पर दबाव बनाए रखता है जो इस तरह के संघर्षों से संबंधित हैं।

उदाहरणार्थ बोसनिया में, यूगोस्लाविया के विघटन से पूर्व, जनता की गणना एवं सर्वे के आधार पर भी, बोसनियन के रूप में पहचान की जाती थी। लेकिन बाद में बोसनिया को राज्य का दर्जा प्राप्त होने के बाद वहां पर जनसंख्या के व्यवस्थापन में परिवर्तन आया। जिससे अल्पसंख्यक जातीय समुदाय सीमाओं के पास रह गये जो कि जातीय रूप से एकांतिक हो गये अतः उन्हें अपनी जातीय पहचान की सुरक्षा का आभाष हुआ जिसने आगे चलकर बोसिनया में सर्बो व दूसरे जातीय समुदायों के बीच जातीय संघर्ष की आधारशिला तैयार की। जातीय आधारित क्षेत्रीयता का दावा करने वाले दूसरे उदाहरण फिलिस्तीन एवं कुर्द। जहां पर कुछ सालों में जननांकीय अवयवों के परिणामस्वरूप संघर्ष पैदा हुआ।

21.4.6 शरणार्थी आंदोलन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बड़े पैमाने पर शरणार्थी आंदोलन जननांकीय दबाव को तीव्र बना देते हैं जो कि क्षेत्रीय संकट में तबदील होने की क्षमता रखते हैं। शरणार्थी जनसंख्या घनत्व को बढ़ा देते हैं जिसके परिणामस्वरूप होते है पर्यावरण ह्रास, भूमि प्रतियोगिता बीमारी, खाद्यान्न की कमी, साफ पानी की कमी, संघर्ष और हिंसा को सीमाओं के आर पार उत्पन्न कर देता है। एक हाल ही का उदाहरण है मध्य अफ्रीका का ग्रेट लेक क्षेत्र जिसमें पांच देशों (जाईर, रवांडा, बुरून्डी, युगाण्डा और तंजानिया) में लगभग 20 लाख शरणार्थी जो कि 1994 के रवांडा नरसंहार में विस्थापित हो गये थे जिन्होंने इस क्षेत्र को प्रभावित किया है। ये लोग कैम्प में रह रहे हैं तथा इनके साधन है हथियार। हूतु के उग्रवादी न केवल रवांडा की तीन मुख्य जनजातियों को विस्थापित करने की क्षमता रखते हैं बल्कि कई श्रेणियों में आस पास के देशों को भी प्रभावित करते हैं।

नवजात जातीय संघर्ष का दूसरा उदाहरण है चकमा शरणार्थियों का भारत में शरण पाना। चकमा शरणार्थी जो कि मूलतः बंगलादेश के नागरिक हैं भारत में घुसपैठ करके बस गये हैं। इन्हें अपने देश में सैनिक शासन और मुस्लिम समुदाय की ज्यादतियों का सामना करना पड़ा। चकमा मुख्यतः बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं। ये शरणार्थी मुख्यतः सीमाओं के पास व मुख्य मेट्रो सीटी मुम्बई तथा दिल्ली में पाये जाते हैं। यही नहीं ये बलपूर्वक जमीन एव संसांधन भी हड़पते जा रहे हैं इससे स्थानीय लोगों की व्यवस्था में परिवर्तन आया है जिससे चकमा लोग घृणा के पात्र हो गये हैं। यह असंतुलन 1995 में मुंबई में हुए दंगों का मुख्य कारण था।

21.4.7 मानव की व्यापक चिरकालिक, सतत् उड़ान

यह कारण केवल उन शरणार्थियों की ओर ही संकेत नहीं करता है, जो मानव सूची की अंतर्कलह में सबसे आसानी से पहचाने जा सकते हैं वरन यह मानव के एक विस्तृत प्रकार के लोगों जैसे चतुर व्यवसायी, बुद्धि जीवी, कलाकार, तकनीकि विशेषज्ञ तथा जनसंख्या का वह भाग जो आर्थिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान देता है जैसे उद्यमी, व्यवसायी एवं व्यापारी आदि के निरगमन की ओर भी संकेत करता है। ये प्रवासी धीरे धीरे स्थानीय लोगों को अलग थलग कर देते हैं और यह उनमें हतोत्साहन का कारण बन जाता है। यही कारण जातीय संघर्ष की नीव डाल देती है।

21.4.8 राज्य का विध्वंस

यह एक दूसरा महत्वपूर्ण अवयव है जो कि जातीय राष्ट्रीय संघर्ष को बढ़ाने में विशेष योगदान देता है वह राज्य का विध्वंस या इसके समान राजनीतिक अराजकता माना गया है।

लोकप्रिय दृष्टिकोण के विपरीत जातीय संघर्ष का विचार जो कि राज्य विध्वंस का कारण है कुछ विद्वान भी यह विश्वास दूसरे तरीके से करते हैं कि जातीय संघर्ष का कारण राज्य का विध्वंस होता है। जातीय राष्ट्रवाद राज्य की विकृति है। इस प्रक्रिया की शुरूआत केन्द्र के बिखरने के साथ होती है। यह गुटबंदी का अनुसरण करता है जिससे सामाजिक वफादारी राज्य से अधिक परम्परागत समुदायों की तरफ बदलती है जो कि जनता के अधिक करीब होती है, और वह मानसिक संतोष एवं शारीरिक सुरक्षा को सामने लाती है। ज्यों ज्यों राज्य का विघटन होता है वैसे ही जातीय संघर्ष के फैलाव की संभावना बढ़ जाती है। संभवतः यहां पर कोई दूसरा सही उदाहरण नहीं बैठता जितना की सोवियत संघ के विघटन का। जैसे ही सोवियत साम्राज्य एवं साम्यवाद खत्म हुआ जातीय तनाव की शुरूआत हो गई। आर्थिक विघटन एवं पार्टी अनुशासन खत्म होने के बाद जातीय पहचान के आधार पर विच्छेद होने लगा था जैसे कि चेचन्या, अजरबाईजान, नागारनों काटाबाक इत्यादि में जातीय टकराव हुए ये सब राज्य विध्वंस के बहुत ही स्पष्ट उदाहरण हैं।

21.4.9 जातीय समुदायों में बढ़ती हुई दरार

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद नये राज्यों पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, रोमानिया, शासन का उदय हुआ जिसमें हब्सवर्ग, ऑटोमान तथा रोमानाव साम्राज्यों की आत्म निर्धारण के सिद्धांतों की विजय प्रकाश में आयी। लेकिन कोई भी इनमें राष्ट्र राज्य नहीं था जो कि वृहत् अल्पसंख्यकों को अंतविष्ट कर सके। अतः आगे के सभी दशकों में कई जातीय समुदायों के बीच दरार बनी रही। उदाहरण के लिए, पूर्व यूगोस्लाविया कम समरूपता के साथ एक विशिष्ट बहु जातीय देश था। दक्षिण में स्लाव एक समान जातीय संप्रदाय था। मुख्य विभाजक अवयव था धर्म जो कि साम्यवादी शासन के दौरान शामिल हुआ। वहां पर सरकारी मान्यता प्राप्त यूगोस्लाविया के छः राष्ट्र थे क्रोटस, मैकेडोनिया, मोन्टेनग्रीन, मुस्लिम, सर्वो तथा स्लोवस। इन राष्ट्रीयताओं के बावजूद वहां पर आठ जातीय अल्पसंख्य समुदाय थे लेकिन सबसे बड़े थे अलबानिया और हूंगोरियन जो कि दो स्वायत प्रदेशों क्रमशः सर्बिया क्रोशिया और बोजवोडिया में संकेन्द्रित थे। इनमें भी दस जातीय समुदाय युगोस्लाविया की राष्ट्रीयता के रूप में सरकारी मान्यता प्राप्त थे। शेष जातीय समुदायों का वर्गीकरण दूसरी राष्ट्रीयताएं तथा जातीय समुदाय के आधार पर किया जो हैं आस्ट्रियन, ग्रीक, ज्यूज, जर्मन, पोल्स, रसियन, उक्रेनियन, ब्लास तथा दूसरों में शामिल हैं वे हैं जिन्होंने अपने आपको यूगोस्लावज के रूप में वर्गीकृत किया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरा दृष्टांत, हम लेते हैं म्यंमार (बर्मा) का। जहां पाया गया कि यहां पर जातीय पहचान पूर्ण रूप से विकसित हैं तथा विभिन्न समुदायों के बीच दरार व्याप्त है। सन् 1981 में देश की 3.53 करोड़ जनसंख्या थी जिनमें से 2.83 करोड़ बर्मी, 31.4 लाख शान, 15.5 लाख अराकनीज, 24 लाख कारेन तथा कुछ छोटे जनजातीय समुदाय जैसे काचिन, चा ओ वा थे। शान, अराकनीज, कारेन, मोन, काचिन या और वा अपनी सुदृढ़ जातीय पहचान पर्याप्त स्वायतता रखते हैं और वे केन्द्रिय सरकार से जुड़े होते हैं। यद्यपि ये बीते युग में ये कमजोर थे व ज्यादातर ये राष्ट्रीय थे।

21.4.10 जातीय अल्पसंख्यकों की मनोग्रंथि

एक बहुजातीय राज्य में, जातीय अल्पसंख्यक भयपूर्ण मनोग्रंथि से पीड़ित होते हैं जबकि प्रमुख या सबसे बड़े जातीय समुदाय छोटे जातीय समुदायों पर अपने आपको शासक के रूप में स्वीकार करते हैं। यह संभव हो सकता है कि छोटे छोटे जातीय समुदायों की कुल जनसंख्या बड़े जातीय समुदाय से ज्यादा हो सकती है। लेकिन छोटे समुदाय अपने आपको अल्पसंख्यक ही मानते हैं तथा बड़े जातीय समुदायों के दबाव की शिकायते करते हैं।

इस प्रकार का दृष्टिकोण पूर्व यूगोस्लाविया में मिलता है जहां पर सर्ब कुल जनसंख्या का लगभग 36 प्रतिशत ही थे लेकिन सामान्यतः ये देश के शासक के रूप में जाने जाते थे और इस प्रकार दूसरे जातीय समुदायों का शोषण करते थे। क्रोस्ट तथा क्लोवेनीज प्रायः ऐसा महसूस करते थे कि केन्द्र राजनीतिक शक्ति सर्बो में निवास करती है जो कि ये राज्य की शक्ति का प्रयोग दूसरे जातीय समूहों की महत्वाकांक्षा को दबाने में कर सकते हैं।

इस प्रकार की मनोग्रंथी की वजह से जातीय अल्पसंख्यक दृढता से अपनी सांस्कृतिक पहचान की सुरक्षा करते थे इससे भी अधिक ये राष्ट्र राज्य के साथ मजबूत समुदाय विकसित करने में भी असफल रहे तथा ये प्रथम अवसरों को तोड़ने का इरादा रखते थे। ये राष्ट्र राज्य बड़े जातीय समुदायों के रूप में पहचान बनाये हुए थे।

21.4.11 आत्म निर्धारण के सिद्धांत

आत्म निर्धारण के सिद्धांत को प्रजातंत्र की स्थापना एवं औपनिवेशिक साम्राज्य को तोड़ने (जैसे ओटोमान, रूस इत्यादि) के लिए अत्यावश्यक रूप में स्वीकार किया गया है लेकिन अब राज्य के अस्तित्व की चुनौती के रूप में है।

आत्म निर्धारण का सिद्धांत जातीय समुदायों के लिए एक स्वतंत्र संप्रभु राष्ट्र राज्य का दर्जा प्राप्त करने के लिए अब बिना किसी रूकावट के प्रचार कर रहा है। दूसरे शब्दों में यह अवस्थित राष्ट्र राज्य के विखण्डन के लिए एक साधन है। आत्म निर्धारण के सिद्धांत के आधार पर अस्तित्व में आये नये स्वतंत्र राष्ट्र राज्यों के लिए आवश्यक नहीं होता कि वे लोकतांत्रिक देश ही हो। इसमें अल्पसंख्यक जातीय समुदायों के लिए समान अधिकारों का प्राप्त होना संभव नहीं है जिसके आधार पर किसी भी वक्त भविष्य में जातीय संघर्ष हो सकता है।

उदाहरण के लिए, जब बाल्टिक राज्यों, एसटोमिया और लाताविया ने रसियन को द्वितीय श्रेणी की नागरिकता प्रदान कर दी थी। युगोस्लाविया के मामलों में जिसमें कि नये स्वतंत्र राज्य लोकतांत्रिक नहीं है तथा हत्याओं की नीति जातीय विशुद्धीकरण का अनुसरण कर रहे हैं। यह कह सकते हैं कि शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद, आत्म निर्धारण का सिद्धांत जातीय और राष्ट्रीयता की समस्या को पैदा करने में सक्रिया है और नये स्वतंत्र राष्ट्रों को उतने ही अच्छे तरीके से जितना की पड़ौसियों को आने वाले कई सालों के लिए शिकार बना रहे हैं।

ये जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के कुछ महत्वपूर्ण कारण थे। कभी कभी शीतयुद्ध की समाप्ति टकराव के कारणों को बढ़ाने में सहयोग देता है तथा जबसे ही जातीय संघर्षों में मुख्य रूप से बढ़ोतरी हुई है लेकिन यह आरोप लगाना बिल्कुल गलत है कि शीतयुद्ध की समाप्ती जातीय राष्ट्रीय संघर्ष को बढ़ाने के लिए जिम्मेदार है। क्योंकि जातीय राष्ट्रीय संघर्ष न केवल शीतयुद्ध के दौरान ही अपितु इससे भी बहुत पहले व्याप्त था यहां केवल एक बात है जिसको दर्शाने की आवश्यकता है वह यह है कि बर्लिन की दीवार के गिरने से पहले साम्यवादी व्यवस्था और द्विध्रुवीय व्यवस्था जातीय समस्या को शासक साम्यवाद के आधिपत्य के बल पर कायम रखने में अग्रणी था तथा इसने सभी राष्ट्रीयताओं की पार्टी नेतृत्व में आत्मसात्करण के लिए जोर डाला था। पुलिस बल मतभेद को हल्का या विलुप्त कर देते हैं जबकि आर्थिक विकास जातीय घृणा के कारणों की जड़ को ही खत्म करने के लिए स्वीकृत किया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वास्तव में शीतयुद्ध के दौरान साम्यवादियों तथा पूंजीवादियों दोनों ने ही जातीयता की ताकत को कम माना तथा प्रत्येक ने इस कल्पना को बनाये रखा कि इनकी व्यवस्था जातीय सीमा को खत्म कर देगी। पूंजीपतियों ने अनुमान लगाया था कि आधुनिक आर्थिक विकास शिक्षा, शहरीकरण तथा मध्यम वर्ग के निमार्ण के द्वारा होगा जिससे जनता में नजदीकी बढ़ेगी और मेलमिलाप भी बढ़ेगा तथा यह सोचा गया कि इससे एक आधुनिक व्यक्ति स्वभावतः अपनी जातीय/जनजातीय पहचान को छोड़ देगा।

मार्क्सवादी दूसरी तरह से इसे काबू में करना चाहते हैं। उन्हें एक बहुत ही काल्पनिक आदर्श दिया है कि जातीय पहचान को देश भक्ति में परिवर्तित कर दिया जायेगा। वह आदर्श है राज्य विहीन समाज जिसमें पूर्ण रूप से आर्थिक समानता का निवास होगा। यह सोचा गया है कि यदि यहां वर्ग विभाजन नहीं होगा तो यहां सामुदायिक विरोध का सवाल ही पैदा नहीं होगा। लेकिन फिर भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। स्पष्ट है कि जातीय टकराव बढ़ता ही जा रहा है।

21.5 जातीय अल्पसंख्यकों के प्रतिरूप

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का महत्वपूर्ण आयाम यह है कि जातीयता एक विश्वव्यापी वास्तविकता है। वह, यह है कि जातीय पहचान विस्तृत रूप में प्रचलित है। सैड और साईमन ने 1976 में विश्व के 132 देशों के आंकडों का प्रस्तुत किया था। इन देशों के आंकड़ों को 132 में से वर्गीकृत किया जिसमें 12 राज्यों (9.1 प्रतिशत) में एक जातीय समुदाय के लोग रहते हैं। 25 राज्यों में (18.9 प्रतिशत) एक प्रमुख प्रभावकारी समुदाय रहता है जो कि आधी जनसंख्या को समेटे हुए हैं तथा 53 राज्यों में पांच या इससे अधिक जातीय समुदाय की जनता निवास करती है।

1971 में वाकर कोरनर के अनुसार पूर्व आधिपत्यकारी आधुनिक राज्य बहुजातीय राज्य है। उन्होंने उपर्युक्त आंकड़ों के बारे में कहा कि केवल 12 राज्यों का राष्ट्र राज्य के रूप में वर्णन किया जा सकता है तथा इन्हें जातीय संघर्ष से मुक्त कहा जा सकता है तथा 50 राज्य राष्ट्र से जुड़े हुए हैं या राष्ट्र होने की क्षमता रखते हैं (क्योंकि यह केवल एक ही प्रमुख जातीय समुदाय है)।

यह कहा जा सकता है कि एक राष्ट्र आत्म सचेतन तथा आत्म जागरूकता का मामला है और जातीयता में वस्तुनिष्ठ विश्वास शामिल होता है। इस प्रकार, राष्ट्र एक आत्म जागरूक जातीय समुदाय है। आगे कहा जा सकता है कि एक जातीय या जातीयता से प्रेरित असंतोष को एक समान तथ्य के रूप में विभिन्न देशों में पाया जाता है जो कि अपने विकास के स्तर अर्थव्यवस्था, आनुपातिक जातीय बनावट तथा राज्यव्यवस्था की भिन्नता पर आधारित होते हैं। कोरनर ने कहा है कि विश्व को तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है, प्रथम दुनिया (आसट्रिया, बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, इटली, नीदरलैण्ड, स्विटजरलैण्ड और ब्रिटेन) दूसरी दुनिया का हिस्सा (सोवियत संघ अर्थात् सी आई एस, चीन, चेकोस्लोवाकिया, लाओस, रोमानिया, वियतनाम, युगोस्लाविया इत्यादि) तथा तीसरी दुनिया का हिस्सा (म्यंमार, बुरूण्डीचाड, इथोपिया, गुयाना, इराक, केन्या, मलेशिया, पाकिस्तान, फिलिपीन्स, सुडान, तुर्की, युगाण्डा, श्रीलंका तथा भारत इत्यादि) के देशों को जातीय असंतोष का अनुभव है।

जातीय पहचान एवं मांगे भी जातीय संघर्ष की श्रेणी को बढ़ाती हैं जिसे कई तरीकों जैसे कि राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक रूप से दर्शाया जा सकता है। अभी पॉलिन ए वाकर तथा जॉन ए आंसिक ने अपने लेख राज्य का विध्वंस तथा जातीय हिंसा में विधेयात्मक नमूनों की तरफ में कई जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के सैद्धांतिक नमूनों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

पहले भाग में, जातीय संघर्ष के कारणों के मूल का विश्लेषण किया है जिसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि विखंडन के लिए पहले से ही तैयार हो रहे विषय को शामिल किया है। दूसरे भाग में तुरन्त घटती हुई घटनाओं की प्रवृत्ती को संबोधित किया जो कि विखंडन में वैमनस्य तक आगे रहती है जैसे कि सरकार की नीतियों में विभेदता, विध्वंस साम्राज्यों में तख्ता पलट या राजनीतिक हत्याएं इत्यादि। निवारक या रोकथाम की कार्यवाही सबसे ज्यादा प्रभावपूर्ण होगी यदि उन्हें इस स्थिति का पहले प्रयोग किया गया होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

समाज को दो महत्वपूर्ण दिशाओं में जाते देखा जा सकता है एवं तीसरी स्थिति है, परिवर्तन, जो कि हिंसक या अहिंसक हो सकती है। इस स्थिति में एक हिंसा का रास्ता अपनाता है। दो जातीय समुदायों या राज्यों के बीच संघर्ष को बड़े पैमाने पर बढ़ा सकता है। इस स्थिति में राज्य बदलाव के रास्ते पर होता है। यह प्रायः होता है कि इस दौर में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय सैनिक रूप से शक्ति निर्माण या शांति स्थापित करने के उद्देश्य से, शामिल होता है।

चौथी स्थिति में राज्य एक परिवर्तन के रूप में होता है यह अव्यवस्था या नयी राजनीतिक व्यवस्था की ओर चल चुका होता है यदि यहां पर हिंसात्मक परिवर्तन होता है तो शायद इसका परिणाम सैनिक विजय, जातीय आधिपत्य, सामांतवादी युद्ध या चलते हुए संकट (जैसे सोमालिया में) ही होगा। यदि यहां अहिंसात्मक रूप से परिवर्तन होता है तो इसका परिणाम चुनाव, शांतिपूर्ण बंटवारा संकट का समाधान, तथ नये राज्य की संरचना (जैसे दक्षिणी अफ्रीका में) इत्यादि होते हैं।

पांचवी स्थिति परिणाम को प्रस्तुत करती है। एक दौर में जो कि शांतवत सीमाओं को पहले छोर में दुर्व्यवस्था से तथा दूसरे में सविधानवाद से अन्त करता है को चित्रित किया है। प्रत्यक्षतः यहां पर कई प्रकार के मध्यवर्ती अधिकारिताएं या लोकतांत्रिक परिणाम होते हैं जैसे कि सैनिक शासन, एक पार्टी शासन/एक प्रतिनिधियात्मक संघीय व्यवस्था इत्यादि। लेकिन इससे प्रक्रिया का अंत नहीं होता है। एक देश सांतव्यक अधिक ऊंचा या नीचा हो सकता है। जब तक यह समानता पर नहीं पहुंचे। या यह पहली वाली स्थिति में भी लौट सकता है। यदि शांति क्षणभंगूर है तथा संस्थाए इसको बनाये रखने में कमजोर पड़ती हों। यह अंगोला के मामले में हुआ जैसे ही धर्मत्याग हुआ अर्थात् अहिंसा से हिंसा के रास्ते पर आना, इसके बाद 1992 में संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा कराये गये चुनाव को नकार दिया तथा युद्ध की शुरूआत कर दी गई।

21.6 जातीय राष्ट्रीय संघर्षों के आयाम

साधारणतया जातीय राष्ट्रीय संघर्षो के निम्नलिखित आयाम होते हैं जैसे कि जातीय प्रभुत्व, जातीय विच्छेद, स्वायत्ता की मांग, शांतिपूर्ण जातीय स्वनिर्धारण या सबसे अमानवीय जातीय शुद्धिकरण।

फिर भी यह जानना आवश्यक है कि इन्हें सही मायंने में उपखण्डों में नहीं बांटा जा सकता है वरन उपर के सभी आयामों का अन्योन्य संबंध है।

21.6.1 जातीय प्रभुत्व

शुरूआत जातीय प्रभुत्व से करते हैं जो जातीय राष्ट्रीय संघर्ष का समान आयाम है। यह किसी विशेष जातीय समूह के अंतर्निहित मांग एवं इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है जो किसी अन्य जातीय समूहों को प्राप्त कर उन पर अपना नियंत्रण प्रभुत्व बनाये रखना चाहता है। उदाहरण के तौर पर रवांडा और बुरूण्डी में दो जातीय समुदायों के प्रभुत्व के लिए संघर्ष ने गंभीर जातीय संघर्ष का रूप ले लिया है।

रवांडा की मुख्य समस्या की उत्पत्ति उसकी 80 लाख जनसंख्या से है। संपूर्ण जनसंख्या जनजातियों की है जो तीन जनजाति हूतु, तुतसी एवं तवा से बना होता है। 90 प्रतिशत लोग पिछड़ी हूतु जनजाति से हैं जबकि 9 प्रतिशत सम्पन्न तुतसी जनजाति के है। सिर्फ 1 प्रतिशत बोने है जिन्हें तवा भी कहा जाता है। यह कहा जाता है कि तुतसिस बाहरी थे जो रवांडा एवं बुरूण्डी में करीब चार शताब्दी पूर्व बस गये थे एवं नील क्षेत्र के प्रवासी थे। बेल्जियम शासन के तहत जनजाति मतभेद नियंत्रण में थे। लेकिन तुतसिस ने अर्थव्यवस्था पर अपनी पकड़ बना ली हूतुस, जो लगभग पूर्ण बहुमत में थे, उन्होंने तुतसिस के प्रभुत्व का विद्रोह किया।

यह रवांडा में जनजाति संघर्ष का मूल कारण है। इसी तरह, बुरूण्डी में हूतुस जो जनसंख्या के 84 प्रतिशत है तथा तुतसिस जो जनसंख्या के शेष 15 प्रतिशत के बीच कटु संघर्ष होते रहे हैं। सन 1994 के अप्रैल महीने में हूतु एवं तुतसी के बीच नरसंहार युद्ध हुआ था। इसका तात्कालिक कारण रवांडा के राष्ट्रपति जुभेनाल हाबुआरिमाना एवं बुरूण्डी के राष्ट्रपति साइप्रिएन नतारियामिरा, दोनों जो कि हूतु जनजाति से संबंधित थे, इनके विमान का किंगाली, रवांडा की राजधानी किंगाली है, में अप्रैल, सन 1994 में गोली से गिरा दिया गया था। इससे रवांडा जातीय संघर्ष में उलझ गया और बाद में बुरूण्डी भी इसमें फंस गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.6.2 जातीय विच्छेद

जब कोई विशेष जातीय समूह यह महसूस करता है कि उसके सामूहिक हितों को राज्य के सीमा के अंदर आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है तो वह राज्य से अलग/विच्छेद होने की मांग करता है। इस परिस्थिति में जो जातीय वर्ग अलग होने की इच्छा रखता है वह स्वनिर्धारण के सिद्धांत की मांग करता है।

जातीय विच्छेद के अनेक उदाहरण है — हाल की घटनाओं में सबसे प्रमुख सोवियत संघ एवं युगोस्लाविया का विघटन है। बहुत से दशकों के दमन के बाद सोवियत संघ की विभिन्न राष्ट्रीयताओं ने यह पाया कि वे एक समय शक्तिशाली रहे संघ के साथ अपने हितों का सामंजस्य स्थापित करने में असफल हो रहे हैं तब राजनीति केन्द्र के कमजोर होने के साथ ही वे अलग हो गये। जबकि, युगोस्लाविया के मसले में, आत्मनिर्धारण के सिद्धांत को अंतिम सिरे तक ले जाया गया। सनोवेनियन और क्रोशिया ने आवाज उठाई तथा युगोस्लाविया में सर्व आधिपत्य की अनुभूति होने पर इस सिद्धांत के आधार पर अलग होने के लिए हिंसा को अपनाया। क्राहिया में सर्बो ने तथा बोस्निया हरजेगोविना में सर्बो तथा क्रोएटस ने अपनी स्वतंत्र पहचान की मान्यता के लिए इसी प्रणाली का प्रयोग किया। यद्यपि सोवियत संघ का विघटन बिना किसी खून खराबे के हो गया लेकिन युगोस्लाविया खूनी जातीय संघर्ष को रोकने में असफल रहा तथा इसका अंत विघटन से ही हुआ।

दूसरा उदाहरण, रूस के एक छोटे गणराज्य चेचन्या में जातीय विच्छेद का है। तुर्की भाषा को बोलने वाले चेचन्य एक अलग जन जाति के हैं जो इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। इस संघर्ष के पीछे का कारण इनके धर्म का इनगुश तथा आवास, जो कि दैगेस्तान में सबसे बड़ा समुदाय है से जुड़े, होना है तथा रूस के दूसरे भागों में स्थापित दूसरे कई मुस्लिम जातीय गणराज्यों जैसे तातारस्तान व बाशकोरतास्तान से जुड़े हुए होना है तथा साथ ही पड़ौसी देशों जैसे तुर्की, ईरान एवं अजरबाइजान आदि से भी जुड़े होना है।

सतही तौर पर यह प्रकट होता है कि चेचन्या का मसला हाल ही में उत्पन्न हुआ है लेकिन ऐतिहासिक तौर पर यह देखने में आया है कि काफी क्षेत्र की मुस्लिम जन जातीयां कभी भी रूस

की राजनीति का आंतरिक भाग नहीं रही थी। 18वीं तथा 19वीं शताब्दियों में रूस के कजार पहाड़ी क्षेत्रों पर हमला कर चुके थे लेकिन प्रभावकारी रूप से इन क्षेत्रों को कब्जे से नहीं ले सके। 1917 के बाद चेचन्या विद्रोही हो गया था लेकिन रूस की क्रांति के समय थोड़ा धीमा पड़ गया था लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ये फिर युद्ध के रास्ते पर आ गये और इस तरह से स्टालिन के गुस्से का शिकार हुए तथा इस आरोप में कि उन्होंने नाजियों का साथ दिया था आधे से ज्यादा चेचन्या की जनसंख्या को मरवा दिया था। सन 1991 में चेचन्या ने भी दूसरे गणराज्यों के साथ सोवयित संघ से अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया था। लेकिन रूस ने चेचन्या को मान्यता देने से इन्कार कर दिया तथा चेचन्या के राष्ट्रपति जनरल देजाकार दुदायेव को अपदस्त करने के लिए सैनिक टुकडियां भेज दी थी। इससे यह नागरिक युद्ध से ग्रसित हो गया।

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह जिसे बताने की आवश्यकता नहीं है कि जातीय पहचान के आधार पर संबंध विच्छेद मुश्किल से ही किसी निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक हो सकते हैं। इसके अलावा यह असंतोष को जन्म भी देते हैं। इसे दर्शाने के लिए यहां कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। सबसे पहले पाकिस्तान के मसले को लेते हैं जो कि सन 1947 में भारत से द्विराष्ट्र सिद्धांत के आधार पर अलग हो गया था। द्विराष्ट्र सिद्धांत में हिंदू और मुस्लिम जनता को स्वतंत्रता से पूर्व भी दो भिन्न राष्ट्र माना था जो कि एक साथ नहीं रह सकते हैं यह सिद्धांत जिन्ना ने दिया था। पाकिस्तान का मुख्य उद्देश्य दक्षिण एशिया में एक मुस्लिम गृह राज्य का निर्माण करना था। आज पाकिस्तान में मुस्लिम जनसंख्या भारत की मुस्लिम जनसंख्या से कम है तथा 1971 में बंगाली मुस्लिम जनता का बड़ा भाग पाकिस्तान से अलग हो गया था।

समान रूप से जॉजिर्या बोस्निया तथा क्रोशिया का सैनिक संघर्ष है, जिसमें अलग होते समुदायों जो कि राष्ट्र के एकांतिक सिद्धांत का समर्थन करके समान क्षेत्र में रहने वाले दूसरे जातीय समुदायों से युद्ध में उलझ गये तथा जिस क्षेत्र का वे दावा करते हैं उस पर नियंत्रण करने में ही उनको कठिनाई होती है।

DIKSHANT IAS

21.6.3 स्वायत्ता की मांग

Call us @7428092240

कभी कभी जातीय समुदाय राज्य की सीमाओं के अंतर्गत रहते हुए भी अधिक स्वायत्ता की मांग करने लगते हैं। उदाहरण के लिए महाजिर कौमी मुवमेंट (एम क्यू एम), कराची तथा प्रभुत्वकारी उर्दूभाषी मुहाजिर क्षेत्रों को सिंध से पृथक करके एक पांचवे राज्य का निर्माण करना चाहते थे। जो एक स्वायत राज्य की मांग थी। मुहाजिर तथा उर्दू भाषी मुस्लिम प्रवासी जो कि 1947 के विभाजन के दौरान भारत से आये थे कि बीच जातीय संघर्ष है तथा इसके बाद भी स्थानीय सिंधी जनसंख्या एक अधिक सुदढ़ तथ्य है।

मुहाजिर जो कि आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से सिंधियों से अधिक सम्पन्न है तथा सरकारी सेवाओं एवं व्यापार में पांचवा व्यक्ति होता है। यद्यपि स्थानीय जातीय समुदायों में मध्यम वर्ग के उदय होने से विशेषाधिकारों की स्थिति जिससे कि मुहाजिर फायदा उठाते हैं। हालांकि 1971 से धीरे धीरे कम हो गये, मुहाजिर ही सरकारी सेवाओं के लिए एकमात्र विकल्प थे। 1971 के विभाजन के बाद से पाकिस्तान में प्रत्येक जातीय समुदाय अपनी पहचान के प्रति जागरूक हो गये लेकिन मुहाजिरों की अपनी कोई मौलिक पहचान नहीं है।

यहां सिंध की जातीय बनावट को जानना बहुत महत्वपूर्ण है। पिछले कई दशकों से, सिन्ध कई जातीय समुदायों का अड्डा बन चुका है जो कि क्षेत्र में प्रवासियों को रखता है इसका कारण सामाजिक एवं राजनीतिक है। सिंध की जनसंख्या 1.9 करोड़ है जिसमें सिंधी जनसंख्या के आधे भाग से भी कम है जबकि 60 लाख मुहाजिर और पंजाबी हैं। 40 लाख बलूच हैं तथा 15 लाख फख्तून निवास करते हैं। अत: यह आम बात है कि मुहाजिरों के हितों का दूसरे जातीय समुदायों के हितों से टकराव हो गया हैं। इसका परिणाम निकला, मुहाजिर–सिन्धी मारकाट, मुहाजिर–फख्तून मारकाट आदि। सन 1985 में मुहाजिरों ने अपना संगठन मुहाजिर कोमी मुवमेंट बनाया जो कि अपने क्षेत्र की स्वायत्ता की मांग कई तरीकों से करता है। सन 1994 में लगभग 1200 लोग कराची में हुए अंतरा मुस्लिम संघर्ष तथा जातीय संघर्ष मुहाजिरों एवं सिन्ध में शिया तथा सुन्नी में व मुहाजिरों में हुई मारकाट में मारे गये।

21.6.4 शांतिपूर्ण जातीय आत्मनिर्धारण

यह देखा गया कि कुछ जातीय राष्ट्रीय संघर्ष लोकतांत्रिक तरीके से लड़े गये। इस प्रकार के मसलों में राजनीतिक वाद विवाद होता है न कि सैनिक संघर्ष तथा जिसका आधार होता है जनमत

संग्रह। जनमत संग्रह में विभिन्न जातीय समुदाय निर्धारण करते हैं कि वे उसी क्षेत्र में रहना चाहते हैं या अलग होना चाहते हैं। उदाहरण के लिए क्यूबेक, कनाडा का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है तथा 82 प्रतिशत लोग फ्रेंचभाषी हैं अपनी भाषाई पहचान के आधार पर वे अंग्रेजी भाषी कनाडा से पृथक होना चाहते थे। लेकिन वहां की जनता ने हथियारों के बजाय प्रजातांत्रिक रास्ता अपनाया तथा 1995 के अक्टूबर माह में जनमत संग्रह करवाया। इस जनमत संग्रह में फ्रेंच भाषी राज्य क्यूबेक की जनता के बहुमत ने अलग न होकर साथ रहने का निर्णय लिया, अर्थात् एकता के समर्थन में 50.6 प्रतिशत मत व पृथ्कीकरण के पक्ष में 49.4 प्रतिशत मत पड़े। दूसरे शब्दों में 50 हजार मतों की वजह से यह गणराज्य अलग होने से बच गया। यद्यपि जनमत संग्रह संघर्ष का अंत नहीं हो सकता लेकिन अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के लिए एक आशा की किरण अवश्य बनी तथा क्षण भर का आराम मिला।

21.6.5 जातीय विशुद्धीकरण

जातीय राष्ट्रीय संघर्ष का सबसे भयानक आयाम है। यह विशुद्धिकरण की कार्यवाही एक जातीय समुदाय द्वारा दूसरे जातीय समुदाय के ऊपर की जाती है। इस प्रकार के जातीय संघर्ष में एक देशी जातीय समुदाय द्वारा विदेशियों को जो कि मौलिक रूप से उस राज्य के नहीं होते हैं, का जाति नरसंहार या निष्कासन का अभियान चलाया जाता है। उदाहरणार्थ बोस्निया हर्जेगोविना, जो कि सर्व अधिपतिवादी युगोस्लाविया से अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया, दिसम्बर 1991 का आखिर समय, इतिहास के पन्नों में मानव त्रासदी के रूप में लिखा जायेगा। जातीय सर्बो ने बोस्निया में न केवल दो तिहाई क्षेत्र पर कब्जा कर लिया बल्कि जातीय विशुद्धिकरण की शुरूआत भी कर दी जिसका परिणाम बड़े पैमाने पर बोस्निया के मुस्लिमों की हत्याएं हुई, गरीबी और बलपूर्वक निष्कासन इत्यादि बोस्निया के लोगों ने क्षेत्र को दूसरे जातीय समुदाय के विशुद्ध करने का प्रचार किया गया था, यह विभत्स त्रासदी, ऐतिहासिक दृष्टि से न ही नया है और न ही याद रखने वाला पहलू है। जनता का स्थानांतरण इत्यादि इतिहास में घटित होता रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नाजी प्रचार में रेंच क्षेत्रों से ज्यूज को हटाने के इरादे से जातीय विशुद्धिकरण चलाया था। जर्मन शब्द ज्यूडेरिन अर्थात् ज्यूज की सफाई का प्रयोग उन क्षेत्रों को निर्दिष्ट करना था जहां से ज्यूज को निर्वासित किया था। विशुद्धिकरण, निर्वासन, निष्कासन, जनसंख्या स्थानांतरण, मारकाट तथा जातीय नरसंहार का सामूहिक रूप है। लगभग 60 लाख यूरोपीय ज्यूज की हत्यायें 1935 से 1945 के बीच हुई। हिटलर ने भी अपने प्रयत्नों में रेंच को दृढ़ करने के लिए प्रतिवर्ती विशुद्धिकरण को अपनाया था। जातीय जर्मन वाल्क्सडेरेच पूर्वी यूरोप के विशुद्धिकरण से प्रभावित हुए थे जब उन्हें हिटलर ने वापिस बुलाया तथा हिटलर के कब्जे वाले क्षेत्र विशेषकर पोलैण्ड में पुनर्स्थापित किया।

1942 में 7 लाख जर्मनों को जर्मन क्षेत्रों से स्थानांतरित किया गया था। यद्यपि इतिहास ने सबसे बड़ा जातीय विशुद्धिकरण तब हुआ जबकि अमरीका, सोवियत रूस एवं ब्रिटेन के द्वारा 2 अगस्त 1945 में पोस्टडाम में लगभग एक करोड़ जर्मनों को पूर्वी यूरोप से स्थानांतरित किया था। बिल्कुल सही आंकड़े तो नहीं है लेकिन लगभग एक करोड़ 20 लाख जर्मनों को द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, रूमानिया तथा युगोस्लाविया से हटा दिया गया था। बाद में चेकोस्लोवाकिया ने स्टालिन की सहमति से 25 से 30 हजार हंगरी के लोगों को 1945 के अंत तक निकाल दिया था। 1946 में एक समझौता जनसंख्या परिवर्तन नाम से हंगरी व चेकोस्लोवाकिया के बीच हुआ जिसके तहत 31 हजार मांग्यार की जगह 33 हजार स्लोवाक का बदलाव हुआ था।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना किजिए।

1) जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के कम से कम पांच कारणों का वर्णन कीजिए।

i) ....

ii) ....

iii) ....

iv) ....

v) ....

2) जातीय अल्पसंख्यकों की मनोग्रंथि किस प्रकार से जातीय संघर्ष में बदल जाती है।

....

....

....

....

3) जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के पांच आयामों का वर्णन कीजिए।

i) ....

ii) ....

iii) ....

iv) ....

v) ....

4) आप निम्न शब्दों के बारे में क्या समझते हैं प्रत्येक का एक उदाहरण दीजिए।

क) **जातीय विच्छेद**

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ख) **जातीय विशुद्धीकरण**

....

....

ग) **जातीय आधिपत्य**

....

....

21.7 जातीय राष्ट्रीय संघर्ष का प्रभाव/निहितार्थ

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के खतरनाक दुष्प्रभाव होते हैं। राष्ट्रसंघ के पूर्व महासचिव ने अपनी शांति की कार्य सूची में कहा है "अगर सभी जातीय, धार्मिक या भाषायी समूह राष्ट्रवाद की मांग करते हैं तो विखण्डन की कोई सीमा नहीं रहेगी एवं शांति सुरक्षा एवं आर्थिक कल्याण को प्राप्त करना और भी मुश्किल हो जाएगा।" जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के आशय पर परिचर्चा निम्नलिखित हैं :

1) यह अंतर राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को काफी हद तक बाधा पहुंचाती है। जातीय समूह अक्सर बड़े पैमाने पर मृत्यु, क्षय, और विनाश के कारण बनते हैं।

2) जातीय राष्ट्रीय संघर्ष किसी भी बहुलवादी समाज को विघटित करने की क्षमता रखता है क्योंकि यह अन्य सभी जातीय समूहों को उनके जातीय एकात्मकता के प्रति जागरूक करता है और विशिष्ट अधिकारों को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है। इतना ही नहीं जब जातीय समूह एक बार संघटित एकात्मकता/तादात्मय लाने में सफल हो जाता है तो वह दूसरे जातीय समूहों का दमन करता है।

3) यह बड़े पैमाने पर शरणार्थी समस्या को जन्म देता है जो भयानक जातीय घृणा एवं दमन के शिकार होते हैं एवं अपेक्षाकृत सुरक्षित स्थानों की ओर भाग जाते हैं एक अनुमान के अनुसार सन 1993 के शुरूआत में दुनिया के कुल 42 लाख में 63 प्रतिशत ऐसे शरणार्थी थे जो राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्षों एवं दमनों से भाग रहे थे।

4) अगर जातीय संघर्ष पर अंकुश लगा भी लिया जाता है तो भी धब्बे शेष रह जाते हैं एवं जातीय समूह अपने को असुरक्षित महसूस करते हैं और शांति के समय में भी प्रबल स्थिति प्राप्त करने एवं उसे बनाये रखने का प्रयास करते हैं।

5) जातीय संकट से उत्पन्न सामूहिक प्रवसन एवं मानव पलायन समस्या का समाधान करने में मदद नहीं करता है अपितु, यह जातीय संकट के दायरे को बढ़ाता है। इसका कारण यह है कि शरणार्थियों की सामूहिक गतिविधि से क्षेत्र विशेष के भूमि एवं पर्यावरण पर जनसांख्यिकी दबाव बढ़ जाता है एवं पारिस्थितिकी एवं अर्थव्यवस्था को अस्त व्यस्त कर देता है। इससे नये क्षेत्र में भी अस्थिरता की स्थिति पैदा हो जाती है।

6) इसके अलावा हम इस तथ्य से बच नहीं सकते हैं कि अगर एक बार स्व-निर्धारण के विघटनकारी सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाता है तो यह टूटकर बनने वाले नये राष्ट्र समाज वैज्ञानिकी एकाश्मक होगा। वस्तुतः विद्वान एतिजोनी के अनुसार, "जातीयता पर आधारित टूटकर बनने वाला राष्ट्र साधारणतया ज्यादा जातीय एकरूपता एवं कम बहुलवादी होता है जिसका अर्थ यह होता है कि उनमें प्रजातंत्र के लिए अपेक्षाकृत गहरे समाज वैज्ञानिक आधार का अभाव होता है। बहुलवाद का अभाव और विखण्डन की प्रवृत्ति को सम्भाव्य बनाने की क्षमता रखता है।

7) लगभग सभी प्रमुख जातीय संघर्षों में बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप होता है। यह क्षेत्रीय शक्ति संतुलन को भंग कर देता है एवं उन सभी राष्ट्रों की सुरक्षा को जोखिम में डाल देता है जो संकट ग्रसित देश के आस पास होते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8) जातीय राष्ट्रीय संघर्षों ने राष्ट्र राज्य निकाय की पुनीतता के लिए गहरा संकट उत्पन्न कर दिया है।

9) यह न केवल विकास प्रक्रिया को रोक देता हो, अपितु यह राष्ट्र की शक्ति एवं संसाधन को विकास पथ से विचलित कर देता है एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से मिलने वाली सहायता का सारा हिस्सा इन बगावतों को नियंत्रित करने में लग जाता है।

10) कुछ जातीय राष्ट्रीय संघर्ष जिनका प्रयोजन जातीय पृथक्किकरण या जातीय शुद्धिकरण है, वह वास्तविकता में केवल मृगतृष्णा है। यह बात युगोस्लाविया के विखण्डन एवं बोसनिया के जातीय शुद्धिकरण की घटना से स्पष्ट होता है। हैनरी किसीजर ने बोसनिया को अंतर्राष्ट्रीय मान्यता दिये जाने की तीक्षण आलोचना है और उसे गैर जिम्मेदारीपूर्ण गलती बतलाया है। उनके अनुसार, यह समझाना बहुत ही महत्वपूर्ण है कि बोसनिया कभी भी एक राष्ट्र नही रहा है। बोसनिया नाम से कोई जातीय समूह नहीं है और न ही बोस्निया की विशिष्ट सांस्कृति एकात्मकता जहां क्रोसिया और सलोमेनिया की अपनी पहचान हो। बोसनिया युगोस्लाविया का सूक्ष्म ब्रहमांड था। यह एक रहस्य है कि कोई यह सोच सकता है कि क्रोत और सर्ब जो मिलजुल कर वृहत युगोस्लाविया में रहने के लिए तैयार नहीं थे, उन्हें बोसनिया–हार्जेगोबिना में बनवाकर उन मुसलमानों के साथ संयुक्त राष्ट्र बनाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है जिन्हें उन्होंने सदियों से घृणा किया हो।

21.8 सुझाव

जातीय राष्ट्रीय संघर्ष की तीव्रता का अध्ययन करने के बाद यह सुझाव देना गलत ही होगा कि इसे कम समय के अंतराल में नियंत्रित किया जा सकता है। फिर भी, इसे रोकने के लिए कुछ उपाय सुझाए जा सकते हैं। इसके लिए एकमात्र रास्ता बहुलवाद बहुराष्ट्रवाद एवं आपसी सदभाव के मूल्यों को शक्ति प्रदान करना है। प्रमुख राजनीतिक अभिजन के पास न केवल सांस्कृतिक अधिकार प्रदान करने के सिवाय और कोई चारा नहीं होता है जो कि सोवियत संघ में पर्याप्त रूप से विद्यमान या

वरन सही मायने में उत्तरदायी एवं प्रजातांत्रिक सरकार के मूल अधिकार को निभाने की जिम्मेदारी होती है। एक महत्वपूर्ण चीज स्वनिर्धारण के सिद्धांत को प्रतिस्थापन ज्यादा से ज्यादा उत्तरदायी प्रतिनिधित्व एवं प्रजातांत्रिक सिद्धांत से करने का है। एक बार इस तरह के राष्ट्र की स्थापना हो जाती है, तो कोई जातीय समूह या राष्ट्रीयता को पृथक होने का नैतिक अधिकार नहीं होगा। विभिन्न जातीय राजनीतिक समूह के जातीय संकटों को उभरने से बचने के लिए सहमति जन्य संस्कृति एवं राजनीतिक सदभाव को विकसित करने की जरूरत है।

फिर, जातीय राष्ट्रीय संघर्षो के मामले में बाहरी शक्तियों को जातीय राजनीति से अलग रहना चाहिये। साधारणतया, बाहरी शक्तियां एक जातीय समूह का समर्थन दूसरे के खिलाफ करती है जो समस्या को सुलझाने के बजाय उसे और भी जटिल बना देती है। बड़ी शक्तियों द्वारा विभिन्न जातीय समूहों का शोषण ही वास्तविक रूप से आजकल के संघर्षो की दुखद स्थिति के लिए जिम्मेदार है जैसी स्थिति अफगानीस्तान, पूर्व युगोस्लाविया, कुर्द में साक्षात विद्यमान है।

बाहरी शक्तियां, अगर मदद पहुंचाना चाहती है तो उन्हें केवल युद्ध विराम एवं शांति स्थापना पर बल देना चाहिए और उन्हें दलाल की भूमिका निभाने से दूर रहना चाहिए। अंततः बहुल जातीय राष्ट्रों की सरकारों को संतुलित आर्थिक विकास के लिए प्रयास करना चाहिए जिससे कि कुछ जातीय समूहों को दूसरे जातीय समूहों की कीमत पर उन्नति न कर सके।

बुतरस घाली के शांति का मसौदा से अगर समापन किया जाए तो यह आवश्यक होगा कि हम सभी स्तरों के सामाजिक अस्तित्व पर प्रजातांत्रिक सिद्धांतों का आदर करें जो राष्ट्र के समुदायों के अंदर और विभिन्न राष्ट्रों के समुदायों के बीच हो। हमारा सतत प्रयास सभी की अखण्डता को बनाये रखने का है। अन्यथा, अगर जातीय राष्ट्रीय संघर्षो की प्रवृत्ति को न रोका जाए तो दुनिया अस्थिरता के दशक में फंस जायेगी। यह परिस्थिति पिछले 50 सालों की परिस्थिति से भिन्न होगी।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) जातीय राष्ट्रीय संघर्ष के पांच निहितार्थों/प्रभावों की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

2) जातीय राष्ट्रीय संघर्षों को कम करने के लिए अपने कुछ सुझाव दीजिए।

....

....

....

....

21.9 सारांश

इस इकाई में हम लोगों ने राष्ट्र, राष्ट्रीयता, जातीय समूहों, जातीयता एवं जातीय राष्ट्रवाद की अवधारणा का अध्ययन किया है। हम ने जातीय राष्ट्रीय संघर्षों, उनके प्रतिरूपों एवं आयोगों के कारणों का भी अध्ययन किया हैं। अंततः ऐसे संघर्षो के आशय का प्रशिक्षण किया गया है और इसके बाद इनके उत्थान को नियंत्रित एवं प्रतिबंधित करने के लिए कुछ सुझाव दिये गये हैं।

राष्ट्रवाद की अवधारणा का विकृत स्वरूप विश्व के सामने उत्पन्न हो गया है। ऐसे संघर्षों की क्षमता विश्व के सभी राष्ट्रों को अस्थिर करने की होती है एवं अंतर्राष्ट्रीय निकाय को असुरक्षा एवं विघटनों

के युग में उलझाने की होती है। लेकिन अगर राष्ट्र के सरकारी तंत्र न्यायपूर्वक एवं सक्रिय रूप से आर्थिक संसाधन का विकास करती है तो सुरक्षा एवं भागीदारी की भावना का विकास होता है। इसके अतिरिक्त अगर लोग आपसी सदभाव का विकास और अंतर्राष्ट्रीय मानवतावाद में विश्वास करेंगे तो हम जाति, धर्म और भाषायी मतभेदों पर काबू पा सकते हैं।

अंततः अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को जातीय संघर्षों से दूरी रखते हुए प्रभावित क्षेत्रों में शांति प्रोत्साहित करना चाहिए। इस समस्या के खतरनाक आयाम धारण करने के पूर्व इसे नियंत्रित कर लेना होगा।

21.10 शब्दावली

स्वायत्ता : एक राजनीतिक व्यवस्था है जिसमें किसी जातीय समूह को कुछ क्षेत्रों, लोगों एवं संसाधन पर नियंत्रत होता है लेकिन एक सार्वभौमिक राष्ट्र की तरह स्वतंत्रता नहीं होती है।

आत्मसात्करण : स्वांगीकरण, एक अल्पसंख्यक जातियों को समायोजित करने की एक योजना है जिसके अंतर्गत व्यक्तिगत सदस्यों को अपनी पहचान को गौण करके प्रभावी समूह के भाषा, मूल्यों एवं जीवन शैली अपनाने के लिए प्रेरणा एवं अवसर दिये जाते हैं।

जातीय शुद्धीकरण : अल्पसंख्यक जातियों को योजनाबद्ध तरीके से किसी निश्चित क्षेत्र से आतंक, निष्कासन और हत्या द्वारा बहिष्करण करना है।

जातीय राष्ट्रवादी : बड़े क्षेत्र के रूप में संकेन्द्रित समूहों में रहने वाले लोग होते हैं जिनका राजनीतिक स्वतंत्रता या स्वायत्ता का इतिहास होता है तथा अपनी स्वायत्ता को पुनः स्थापित करना चाहते हैं। जो लोग पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं उन्हें पृथ्कतावादी कहा जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बहुल समाज : विभिन्न जातीय समूहों से बना होता है जिनकी अपनी विशिष्ट सामूहिक पहचान और भिन्न हित होते हैं जो संबंधों में क्रम या स्तरित नहीं होते हैं।

बहुलवाद : जातीय अल्पसंख्यकों को सुमन्य बनने की एक रणनीति जो कि उनके व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकारों को मान्यता दिला सके। जिससे कि ये प्रमुख वर्गों से अपनी भाषा, मुल्य तथा जीने के तरीके को सुरक्षित रख सके।

दरार : क्लीबियेज अवस्थित समाजों में ओहदा, शक्ति तथा पूंजी का असमान वितरण उनकी जातीयता के अनुसार होता है। इन सामाजिक अंतरों को कायम रखना एक स्तरित समाज में विभेदता कहलाती है।

21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

पॉल आर ब्रास, **एथेनिसिटी एण्ड नेशेनलिज्म, थ्योरी एण्ड कम्पैरिजन,** सेज पब्लिकेशन—नई दिल्ली, 1991

टेड रोबट कर्स एण्ड बारबरा हाफ, **एथेनिक कांफिल्क्ट इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स,** वेस्ट व्यू प्रेस, ऑक्सफोड, 1994

जॉर्ज डी वास एण्ड लोल रोमानची रॉस (एडिटिड) **सेथनिक इडेन्टिटी : कल्चरल कन्टीन्यूटीज एण्ड चेन्ज,** मेफिल्ड पब्लिकेशन को, कैलफोर्निया, 1975

21.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 21.5 देखिये।

2) उपभाग 21.5.10 देखिये।

3) भाग 21.7 देखिये।

4) क) उपभाग 21.7.1 देखिये।

   ख) उपभाग 21.7.5 देखिये।

   ग) उपभाग 21.7.6 देखिये।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 21.8 देखिये।

2) भाग 21.9 देखिये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 22 अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की प्रकृति
22.2.1 अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की प्रकृति
22.2.2 अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के रूप
22.2.3 भूमण्डलीय आतंकवाद के प्रारूप
21.3 शहरी आतंकवाद
22.3.1 शहरी आतंकवादी निकाय
22.3.2 शहरी आतंकवादियों की तकनीकें
22.3.3 शहरी आतंकवाद को रोकने के उपाय
22.4 ग्रामीण आतंकवाद
22.4.1 ग्रामीण आतंकवाद का विकास
22.4.2 एशिया तथा अफ्रीका में ग्रामीण आतंकवादी समस्याएं
22.4.3 लैटिन अमरीका में ग्रामीण आतंकवादी गतिविधियां
22.5 आतंकवाद—विश्वस्तरीय संघर्ष
22.5.1 एक दूसरे की हत्या करने की प्रक्रिया की रोकथाम
22.5.2 आतंकवादी गतिविधियों को रोकने के कानून
22.6 सारांश
22.7 शब्दावली
22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.0 उद्देश्य

इस इकाई में भूमंडलीय आतंकवाद की प्रकृति और प्रारूप, शहरी तथा ग्रामीण स्तर पर किये गये उपाय, तथा उन प्रयत्नों जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवादी गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए हो सकते हैं के बारे में बताया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- आतंकवाद को परिभाषित कर सकेंगे तथा इसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समझ सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की व्याख्या कर सकेंगे,
- भूमंडलीय आतंकवाद के प्रतिमान को समझ सकेंगे,
- उन दो प्रमुख स्तरों—शहरी और ग्रामीण जहां अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद व्याप्त है को जान सकेंगे,
- आतंकवादी गतिविधियों की रोकथाम के महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

आतंकवाद शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के "टैरेर" और "डीटेर" शब्दों से हुई है जिसका अर्थ है वह कार्य जो क्रमशः कंपाता और डराता है, अर्थात् अपने प्रकट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, एक राज्य या सरकार की कानूनी अधिकारिता को तरीके बद्ध हिंसा का प्रयोग करके दुर्बल करते हैं जो कि इनकी आतंकित गतिविधियों में नीहित होता है जब सरकार या राज्य जनता की शिकायतों को हल करने में असफल हो जाती है तथा अपने प्रभाव से जनता के अधिकारों को अनुचित तरीके से अतिक्रमण करती है तो यह अवश्यंभावी हो जाता है कि आतंकवादी भय पैदा करके संबंधित

अधिकारियों के संदर्भ राजनीतिक प्रस्ताव रखते हैं तथा इसके लिए राजनीति व सरकार को प्रभावित करने के लिए प्रतिकूल तरीके अपनाते हैं। लेकिन इन आतंकवादी गतिविधियों को कुछ समय जनता के द्वारा मौन रूप से अनुमोदित कर दिया जाता है जिससे आतंकवादी राजनीतिक मशीनरी की असफलता को दर्शाने में सफल हो जाते हैं। इस हेतू कभी कभी जनता द्वारा इन आतंकवादियों की मांग को मौन रूप से स्वीकार कर लिया जाता है। जब इस प्रकार की सरकार बहुत बड़े स्तर पर शक्ति का दुरूपयोग करती है तब उसे आतंकवादियों के हमले से निपटना होता है जो कि इसे कमजोर बना देता है। यद्यपि आतंकवादी समुदाय से विमुख जो जाते हैं। आतंकवादी गतिविधियों से संबंधित देश की अर्थव्यवस्था को सीधे नुक्सान पहुंचता है तथा बेरोजगारी भी बढ़ती है।

आतंकवाद की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। जैसे कि बिना किसी वास्तविक संघर्ष के चलना इसके लड़ने का सबसे घटिया तरीका है तथा हमेशा विश्व के प्रत्येक भाग में आतंकवादी गतिविधियां जारी रही हैं जो कि इतिहास के प्रत्येक पन्ने या चरण में एक धब्बा छोड़ती आयी है। लेकिन यह धारणा 1790 तथा इसके बाद ही लोकप्रिय हो पाई जबकि क्रांतिकारी फ्रांस ने अपना रास्ता बनाने के लिए वहां कुलीनतंत्र व उसके सहवर्तीयों को निशाना बनाया, अर्थात् फ्रांस ने आतंकवाद को अपनाया।

22.2 अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की प्रकृति

22.2.1 अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की प्रकृति

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जैसा कि विदित है, आतंकवाद एक विश्वव्यापी तथ्य है तथा इससे संबंधित कार्य में कोई राष्ट्र शामिल होकर उनके द्वारा इस प्रक्रिया को और अधिक जटिल बना लिया है और इन स्थितियों ने आतंकवादी संगठनों व गुटों का अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद में आपसी सम्पर्क अत्यावश्यक बना दिया है जिससे आतंकवादियों के द्वारा किसी भी समय हिंसा का प्रयोग, इनके लक्ष्यों व उद्देश्यों को अस्पष्ट कर देता है। हालांकि ये संगठन आपस में यंत्रों व हथियारों का आदान प्रदान करते हैं। एक दूसरे के द्वारा की गई कार्यवाहियों में संयुक्त रूप से भाग लेते हैं। एक दूसरे के प्रशिक्षण क्षेत्रों को लाभ उठाने के लिए उपयोगी बनाते हैं तथा प्रशासनिक व तर्कसंगत बिंदुओं पर एक दूसरे का समर्थन करते हैं। वास्तव में आतंकवादी संसार को एक ऐसा मंच मानते हैं जहां इनकी समस्याएं, इरादे तथा इनकी कल्पनाएं जनता के सामने आती हैं। आतंकवादियों के लिए राष्ट्रीय सीमाओं का कोई महत्व नहीं है। आतंकवादी किसी एक देश के होते हैं लेकिन इन लोगों को प्रशिक्षित किसी दूसरे देश में किया जाता है तथा इनके लिए धन की व्यवस्था की जाती है और अंततः ये अपनी आतंकवादी गतिविधियां किसी अन्य देश में चलाते हैं। तकनीकि उन्नति से आज आतंकवाद के क्षेत्र में कई प्रकार के उन्नत हथियार व विस्फोटक आ गये हैं। लेकिन सबसे ज्यादा चिंताजनक स्थिति अपराधियों का व्यक्तिगत स्तर पर व अपराधिक गुटों के रूप में उदय होने से हो गई है जिसने आतंकवाद के रूप को ही बदल डाला है। यानि कि एक राजनीतिक उद्देश्य प्ररित से एक अपराध उद्देश्य प्रेरति गुट का उदय हो गया है जो कि अपेक्षाकृत अधिक खतरनाक है।

22.2.2 अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के रूप

आतंकवाद के कई रूप हैं जो कई स्तरों पर क्रियान्वित होते हैं, जैसे :

क) **पृथकीय और अप्रथकीय आतंकवाद :** यह अंतर आतंकवादियों द्वारा की जाने वाली गतिविधियों पर आधारित है। पृथकीय को हम आसानी से समझ सकते हैं जैसे कि पृथकीय आतंकवादी अपने सुनिश्चित दुश्मन पर हमला करता है। उसके सभी शिकार या तो योद्धा होते हैं या संभावित युद्धकारी होते हैं। ऐसा आतंकवाद स्वाभाविक रूप से न्यायसंगत होता है। दूसरे अर्थात् अपृथकीय आतंकवाद को समझना हमेशा मुश्किल होता है। यह आम जनता पर बिना किसी अंतर के अर्थात् निर्दोष लोगों पर भी हमला करता है। क्योंकि हमले वाले स्थान पर हर प्रकार के लोग होते हैं। इस प्रकार के हमले के बारे में कहना मुश्किल होता है कि इसके पीछे भी कोई न्यायसंगतता है।

ख) **दक्षिणपंथी आतंकवाद और वामपंथी आतंकवाद :** दक्षिणपंथी अपने आपको सरकार समर्थक आतंकवादी गतिविधियों में शामिल करते हैं अर्थात ये प्रकृति से प्रतिक्रियावादी हैं। लेकिन

वामपंथ का उदय समाज के प्रबुद्ध वर्ग से हुआ है जो कि आर्थिक व्यवस्था को सही दिशा अर्थात् आर्थिक रूप से समान वर्ग को स्थापित करने में अपना गहरा विश्वास रखते हैं उनमें से कुछ एक विशेष समस्याओं के बारे में संबोधित करते हैं तथा अपने कारण को जाहिर करने में आतंक से संबधित तरीका अपनाते हैं और इस प्रकार जनता की सहानुभूति प्राप्त करते हैं।

ग) **राष्ट्रवादी और पृथ्कतावादी :** इस प्रकार के आतंकवादी राष्ट्रत्व के भाव से ओतप्रोत होते हैं और अपने देश या भू-भाग को उसी रूप में स्थापित करना चाहते हैं जो इतिहास के पन्नों में इनके उत्तराधिकारियों की मातृभूमि की स्वतंत्र पहचान थी। उनकी इच्छा है कि वे अपनी मौलिकता से संबंध रखे अर्थात् ये अपनी मौलिक संस्कृति को बनाये रखने के पक्षधर हैं।

22.2.3 भूमण्डलीय आतंकवाद का प्रारूप

आतंकवाद का प्रचलन संपूर्ण इतिहास में रहा है जो कि भूमंडल के सभी क्षेत्रों को अपने में निगले हुए है। शासन के विरूद्ध गुटबंदी के द्वारा आतंकवादी तकनीकों का प्रयोग एक बहुत पुराना तथ्य है। जैसा कि हम जानते हैं कि रोमन शासकों के द्वारा इस तरह की तकनीकों और साधनों का प्रयोग शासन के विरूद्ध उठती चुनौतियों को निरूत्साहित करने के लिए किया जाता था। यद्यपि सबसे पहला विख्यात दृष्टांत जिसमें आतंकवाद को मुख्य साधन के रूप में अपनाया था वह 11वीं तथा 12वीं शताब्दी का मध्य पूर्व का एसासिन सेक्ट आंदोलन था जिसने सम्पूर्ण मुस्लिम दुनिया में अपने अभिकर्ता अर्थात् गुप्तचर भेज कर हत्याओं की कतार लगवा दी थी। वैसे संकेत के लिए पर्याप्त है कि विश्व की वर्तमान धारा में भी 1960 के दशक के दौरान से आतंकवाद फिर इसी क्षेत्र में तीव्र गति से बढ़ा।

फ्रांस की क्रांति के दौरान आतंक को खुले रूप से समर्थित व प्रायोजित किया गया, जिसमें जनता की क्रांतिकारी भावना व भक्ति प्रकट हुई। धीरे धीरे रूस में अराजकतावाद के समर्थकों व अमेरिका तथा इनके साधन क्रांतिकारी राजनीतिक व सामाजिक व परिवर्तन लाये। लेकिन इन देशों में अराजकतावादियों द्वारा बंदूकों व बमों से प्रमुख अधिकारियों की हत्या कर देने से 1865 से 1905 तक भूमंडलीय आतंकवाद को प्रतिबंधित कर दिया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20वीं शताब्दी में आतकंवाद के प्रयोग व इसकी तकनीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन आये हैं और इस तकनीकि उन्नति ने आतंकवादियों को गतिशीलता तथा प्राणघातकता दी है। राजनीतिक आंदोलन के सभी रूप राजनीतिक इंद्रधनुष में इन सभी तरीकों का प्रयोग करने लगे। वास्तविक रूप में नाजी जर्मनी का निरंकुश शासक एडोल्फ हिटलर तथा सोवियत संघ में स्टालिन में अपनी राज्य नीतियों में आतंकवादी गतिविधियों को अपनाया था। हालांकि इन्होंने इस सत्य को जनता के सामने स्वीकार नहीं किया। इन राज्यों में शासकों ने अपनी नीतियों व विचारधारा मनवाने के लिए जनता में भय पैदा किया तथा इसके लिए बिना किसी कानूनी निर्वधन के यातना व प्राणदण्ड जैसी तकनीकों को अपनाया था। माओ ने स्टालिन से भी बड़े स्तर पर आतंक के शासन की स्थापना की। ईरान को भी रेजशाह और खेमैन के शासन के समय आतंक व मुठभेड से आतंक का अनुभव है जिसमें प्राणदण्ड एवं जन संहार एक बड़े पैमाने पर किया जाता था। इसी प्रकार से स्पेन को भी कई प्रकार की आतंकवादी हिंसात्मक गतिविधियों; वामपंथी राज्य संचालन तथा इसी प्रकार के अनुभव हैं।

आतंकवाद उन प्रयत्नों की पहचान है जिसमें व्यक्तियों या गुटों के द्वारा विद्यमान राजनीतिक संस्थान को विखंडित या उखाड़ दिया जाता है। विश्व स्तर पर आतंकवाद का प्रयोग औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध संघर्ष में एक गुट के द्वारा या परस्पर गुटों के द्वारा एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए किया जाता है (जैसे कि अल्जीरिया और फ्रांस में) इसे विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के द्वारा भी प्रयोग किया जाता है (जैसे उत्तरी आयरलैण्ड में कैथोलिक और प्रोटेस्टंट सम्प्रदाय द्वारा), उस संकट में भी जिसमें दो राष्ट्रीय वर्ग अपनी गृहभूमि पर अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे हैं (जैसे फिलिस्तिनी एवं इजराइल) तथा उनके विवाद में भी जो क्रांतिकारी ताकतों व विद्यमान सरकार के बीच है, इत्यादि में आतंकवाद का प्रयोग किया जाता है।

संचार मीडिया के साधनों की उन्नति होने से आज आतंकवादी कार्यों का जनता पर प्रभावों को व्यापक रूप से प्रसारित किया जाता है जो कि कोई भी घटना सीधे विश्वव्यापी रूप से लाखों विचारकर्ताओं के सामने आती है जिनसे आम जनता भी अनभिज्ञ नहीं रहती है। लेकिन आधुनिक युग में आतंकवादियों की शियास्तों या राजनीतिक हितों की वास्तविकता से भी अनभिज्ञ नहीं रहती है। आधुनिक युग में आतंकवादी अपने अवास्तविक उद्देश्यों को बताते हैं जो यथार्थ में अपने को

राजनीति की मुख्य धारा से अलग कर लेते हैं और इस प्रकार ये विमान अपहरण, बमबारी तथा अपहरण जैसे हिंसात्मक साधनों का सहारा लेते हैं। 20वीं शताब्दी के सबसे कुख्यात आतंकवादी गुटों में पश्चिमी जर्मनी का बाडेर मैनहोफ गेंग, इटली का रेड ब्रिगेड, फ्रांस का डॉइरेक्ट एक्शन, अल फरात तथा कुछ दूसरे फिलिस्तिनी संगठन हैं। आज विश्व आतंकवाद की सबसे महत्वपूर्ण व अत्यावश्यक विशेषता है इनका अंतर्राष्ट्रीय सहयोग।

आतंकवाद को भूमंडलीय स्तर पर स्थापित करने के लिए ये अपना विश्वव्यापी संपर्क रखते हैं जिसका आधार होता है इनका एक धर्म होना, एक नस्ल होना या एक राजनीतिक विचारधारा का होना। कभी कभी आतंकवादी संगठनों को प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता तथा हथियार किसी दूसरे देश की एजेंसियों से प्राप्त होता है तथा ये आतंकवादी गतिविधियां किसी अन्य देश में करते हैं जिससे आतंकवादी घटनाएं भयप्रद रूप में होने लगी हैं। कुछ देश विशेषकर महाशक्तियां आज अपनी विदेशनीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आतंक तथा हिंसा जैसे रास्तों का प्रयोग कर रही हैं। इस प्रकार आतंकवाद को बढ़ाने का क्षेत्र इन महाशक्तियों को है जो कि अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं का भी सम्मान नहीं करती है तथा इन्होंने आतंकवाद को कभी नहीं थमने वाला तथ्य बना दिया है।

सरकार के व्यवहार की वजह से आतंकवाद ने विभिन्न देशों में विभिन्न रूप धारण कर लिया है तथा जिससे संबंधित सरकारों के भी उनके लिए परिवर्तित रूप रहे हैं। संघीय गणराज्य जर्मनी में अपराधों का विस्तृत रूप से विश्लेषण एवं वर्गीकरण किया। वहाँ पर आतंकवाद की प्रकृति या रूप को उजागर किया तथा, इस देश में आतंकवाद के विरूद्ध पुलिस कार्यवाही बहुत ही संगठित रूप से होती है जिससे प्रत्येक आतंकवादी सूचना स्वतः ही कृत्रिम रेडियो नेटवर्क से जुडी होती है। फ्रांस में तो आतंकवाद ने युद्ध का रूप ले लिया है तथा सरकार आतंकवादी अपराधों के अध्ययन व इनके पंजीकरण में कंप्यूटर रिकार्ड का प्रयोग कर रही है। ब्रिटेन में मुख्य आतंकवादी गतिविधियां प्रतिबंधित आतंकवादी संगठन आइरिस रिपब्लिक आर्मी (आई आर ए) के द्वारा की जाती है। निकाय का आतंकवादी होने का कारण ब्रिटेन में बहुल प्रोटेस्टेंट के द्वारा आईरिश रोमन कैथोलिक के विरूद्ध किया गया अन्याय है जिसने इनके विद्वेष को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। इसने 1919 में अस्तित्व में आने के बाद से हत्यायें तथा इसी प्रकार की कार्यवाहियां कभी छोटे पैमाने पर तथा कभी बड़े पैमाने पर जारी रखी हैं। लेकिन इसका श्रेय ब्रिटेन की लोकतांत्रिक सरकार को ही जाता है जिसने आतंकवादियों को अवैध रूप से मार डालना तथा यातनाएं देने के बजाय इस समस्या के समाधान के लिए असाधारण सख्त व्यवस्थापन, एवं समर्थित न्यायपालिका तथा जनता का सहारा लिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आज आतंकवादी विखंडन की प्रक्रिया को बढ़ाने में हथियार हो गये हैं यह उन कुछ दुष्ट लोगों का आभारी है जिन्होंने आतंकवादी गतिविधियों के लिए कुछ आधार निर्धारित किये हों तथा प्रयोग के लिए खूनी तथा हिंसक अभियान चलाए। इनमें सबसे ज्यादा ध्यान दिया जाता है कारलोस जो वेनेजुएला का था तथा जैकाल नाम से भी जाना जाता है। जिसने सामान्यतय आतंकवाद के मुख्य नेता के रूप में पहचान बनायी। उसने आतंकवादियों के उद्देश्यों को संहिताबद्ध किया तथा उसे प्राप्त करने के साधनों को बताया व इन्हें प्राप्त करने की चतुरता का भी वर्णन किया। वह अपनी मृत्यु तक सरकार के लिए समस्त भूमंण्डल में एक चुनौती बना रहा।

इन सालों में राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित आतंकवाद व अपराध प्रेरति आतंकवाद में स्पष्ट रूप से अंतर किया जा सकता है। राजनीतिक उद्देश्य प्रेरित आंतकवाद के गुट को बनाये रखने के लिए ये जनता से धन ऐंठते हैं। इन संगठनों को विदेशी समर्थन व आंतरिक जनता की सहानुभूति दोनों ही प्राप्त होती है। लेकिन अपराध प्रेरित आतंकवाद अपराध आर्थिक फायदे के लिए करते हैं और इनका नेतृत्व एक अपराधिक गेंग के द्वारा किया जाता है जो कि अपहरण व फिरौती को महत्व देते हैं। राजनीतिक उद्देश्य प्रेरित आंतकवाद को लोकप्रिय समर्थन की वजह से रोका नहीं जा सकता लेकिन अपराध प्रेरित आतंकवाद को प्रभावकारी व पर्याप्त नीतियों व खुफिया कार्यो के द्वारा रोका जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना किजिए।

1) अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद क्या है।

....

....

....

....

2) क्या आप आतंकवाद के विभिन्न रूपों को बता सकते हैं।

....

....

....

....

22.3 शहरी आतंकवाद

शहरी आतंकवाद में जैसा कि नाम से आभास होता है आतंकवादी गतिविधियां शहरी क्षेत्र में होती हैं। इसके विद्यमान रूप का एक नया तथ्य है—लोकतांत्रिक समाज को विखंडित करना है जो कि सर्वाधिकांरवादी शासन को प्रोत्साहित करता है।

22.3.1 शहरी आतंकवादी निकाय

अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद विस्तृत रूप से शहरी प्रकृति का है। इसकी शुरूआत 1940 में फिलिस्तीन के इरगन जूई लेयूमी (आई जेड एस) द्वारा हुई। लेयूमी ने शहरी क्षेत्र में आतंकवाद के संचालन में काफी प्रचार किया। सन 1969 में ब्राजील ने भी यही रास्ता अपनाया। यह शहरी आतंकवाद ब्राजील, ऊरूगवे, ग्वाटेमाला तथा फिलिस्तीन आदि देशों में साथ साथ शुरू हुआ। अराफात के फिलिस्तिनी लिब्रेशन ऑरगनाईजेशन (पी एल ओ का सबसे संघटक भाग) अलफतेह है जिसका आतंक सम्पूर्ण मध्य पूर्व में फैला हुआ है। शेष सभी अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादी कार्यवाहियां पी एल ओ के छोटे छोटे संगठनों द्वारा की जाती है जिनका अपना एक स्थाई घर नहीं है। अतः उनके लिए आतंकवादी पद्धति का त्याग एक बहुत दूर का निर्धारित लक्ष्य होगा। लेबनान भी लम्बे समय से मुस्लिम कट्टरता का निशाना बन चुका है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सरकारी अभिकर्ताओं पर व्यक्तिगत अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादी आक्रमण नहीं करते, क्योंकि ऐसा करना इनके लिए महंगा शाबित होता है। लेकिन इरान, ईराक व लीबिया इस नियम के अपवाद हैं। ये आतंकवादियों को सुविधाएं उपलब्ध कराते तथा फतवा भी जारी करते हैं जैसे कि ब्रिटिश भारतीय लेखक सलमान रूश्दी के लिए ईश निन्दा के आरोप पर फतवा जारी किया था। यद्यपि, ईराक के शासक सद्दाम हुसैन ने 1988 में हजारों इराकी कुर्दो को खत्म करने के लिए आतंकवाद का प्रयोग किया। अल्जीरिया तथा मिश्र ने भी मुस्लिम कट्टरपंथियों द्वारा किये गये आतंकवादी प्रचार का सहारा लिया। आई आर ए ने बड़े पैमाने पर जनता से धन लूटा तथा संपूर्ण सैनिक ढांचे के रूप में मुख्यता सुस्पष्ट उत्तरी आयरलैंड के क्षेत्र में कार्यवाही की। कटटर आई आर ए सदस्य आज भी सक्रिय हैं तथा हत्याएं करने की प्रक्रिया को जारी रखे हुए हैं।

एक अदृश्य लेकिन बहुत ही भयानक आंतक वर्तमान में जातीय विभेद (ऐथेनिक क्लिजिंग) है जो कि सभ्यताओं की शुरूआत से ही अपक रूप में मौजूद हैं और यह उन बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक के बीच संघर्ष है जिसमें बहुसंख्यक जातीय समुदाय अल्पसंख्यक समुदाय के क्षेत्र विशेष पर अपना आधिपत्य जमाते हैं और यह व्यवहार में आज जारी है। इसकी शुरूआत मुख्यता हिटलर व स्टालिन से मानी जाती है व 1991 में यूगोस्लोविया के विघटन के बाद क्राशिया और बोसनिया हरजेग्रोबिन में यह बड़े पैमाने पर उत्पन्न हुआ। पूर्व सोवियत संघ के कई राज्यों में वह कुछ हद तक जर्मनी में नये नाजियों द्वारा तुर्की मेहमान मजदूरों के साथ जातीय संघर्ष पाया जाता है। अभी भी यहां कई ऐसी जगह हैं जहां इस प्रक्रिया का जोखिम चला आ रहा है जैसे कि मैकाडोनीय तथा स्लोवाकिया में। इस आतंक की वजह से आज बड़े पैमाने पर मानव दु:ख व्याप्त है जो 20वीं शताब्दी में आतंकवाद का सबसे खराब रूप माना जा सकता है। इस भयानक प्रक्रिया के

लिए वो व्यक्ति जिम्मेदार हैं जो एक दूसरे की हत्या करने या खत्म करने को प्राथमिकता देते हैं न कि साथ साथ जीवन जीने को। अतः आज जातीय या नस्लीय विभेद आतंकवाद का भयानक रूप धारण करता जा रहा है।

22.3.2 शहरी आतंकवादियों की तकनीकें

प्रबंधन के दौरान शहरी आतंकवादियों के द्वारा कई प्रकार की तकनीकें अपनाई जाती हैं जो कि इस प्रकार से हैं :

1) खाड़कू अर्थात् आतंकवादी—पर्यावरण तथा प्राणी के अधिकारों की रक्षा करना, गुट में होती मानव दुर्घटना को बचाना तथा उनके द्वारा बम के प्रयोग को परिरूद्ध करना व दूसरे हिंसक साधनों जो कि सम्पत्ति को नष्ट करते हैं को रोकना इत्यादि कार्य करते हैं जिससे जनता से मिलती सहानुभूति को बनाए रखा जा सके।

2) शहरी आतंकवादियों के द्वारा बम विस्फोट करना दूसरी तकनीक है। यह बहुत ही लोकप्रिय तकनीक है क्योंकि इसमें बम लगाने वाले व्यक्ति को बहुत ही कम जोखिम उठाना पड़ता है। यह वास्तव में सबसे ज्यादा भयानक व खूनी तकनीक है जिसमें हमेशा जन दुर्घटनाएं होती हैं। इस प्रकार के मामले में जनता को सबसे ज्यादा विरक्ति होती है। यांत्रिक कृत्रिमता बढ़ रही है व इस विकासवादी प्रक्रिया ने बम डालने वाले के लिए इसे बहुत ही छोटा बना दिया है जो बहुत कामयाब साधन है। यह अब इतनी ऊंचाई पर पहुंच चुका है कि हथियारों के प्रयोग पर रोक अब सिर्फ सामाजिक या मनोवैज्ञानिक हो सकती हैं, तकनीकी नहीं। इस प्रकार आतंकवाद के विरूद्ध जनता की जागरूकता की जरूरत है।

3) कुछ समय शहरी आतंकवादी मुठभेड़ आधारित अभेदकारी दुर्घटना करने के बजाय व्यक्ति विशेष को निशाना बनाकर गोली मारने जैसे साधनों के प्रयोग का प्रयत्न करते हैं। कुछ ऐसे विकास भी हुए हैं जिसने इस तकनीक को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है जैसे कि परिष्कृत निशाना, (जो आतंकवादी को अपनी बंदूक को छिपाने में सफल बनाती है। जिससे वह अपने लक्ष्य को बहुत ही कम दूरी से साध सके), नियंत्रित आवाज के यंत्र का प्रयोग लम्बी दूरी हेतु सुविधाएं और हाल ही में जमीन से जमीन पर तथा जमीन से आकाश में वार करने वाली कीमती और कृत्रिम मिसाईल का प्रयोग।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4) छीना झपटी या धोखाधड़ी करना आतंकवाद के दूसरे कई रूप हैं। छीना छपटी की तकनीक का प्रयोग कंपनियों या अधिक ताकतों से उन्हें डराकर बड़े स्तर पर धन ऐंठने के लिए किया जाता है जैसे कि क्रांतिकारी या व्यावसायिक निकायों से बड़े स्तर पर फिरौती वसूलती है। इस धन से आतंकवाद आगे बढ़ता है। दूसरी तकनीकि अर्थात् धोखाधड़ी भी जनता को आतंकित करती है जो कि सीधी साधी जनता से ताकत या धोखाधड़ी के आधार पर पैसे वसूलती है।

5) किसी व्यक्ति विशेष का अपहरण करना भी शहरी क्षेत्र में काफी प्रचलित आतंकवादी तरीका है। यह सबसे ज्यादा उत्पीड़क तकनीक है जो बहुत प्राचीन है तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर है। इस विधि का प्रयोग आतंकवादियों के द्वारा अपने राजनीतिक उद्देश्य को प्राप्त करने व रियायते लेने, जैसे कि अपने साथी बन्दी आतंकवादियों को छुड़ाना, सरकार की नीतियों को बदलवाना व यहां तक की सरकार को बदलना शामिल है इत्यादि के लिए किया जाता है।

6) आतंक को बढ़ाने के लिए मेजबान को बन्दी बनाना आतंकवादियों का एक और रास्ता है। यह अपहरण से भिन्न तकनीक है इसमें मेजबान सभी के परिचित स्थान पर बंदी होता है। घर में मेजबान को बन्दी करने का तात्पर्य होता है कि उनके सगे संबंधी अर्थात् परिवारवालों व साथियों पर दबाव डालना तथा राजनीतिक मेजबान को बंदी का तात्पर्य आम जनता में अपने उद्देश्यों को उजागर करना होता है। कुछ समय मेजबान बंदियों को सुरक्षित रखा जाता है तथा उनके अनुसार स्थान चुना जाता है तथा फिरोती की रकम प्राप्त होने के बाद उन्हें जीवित ही सुरक्षित छोड़ दिया जाता है।

7) आतंक को बढ़ाने के लिए विमान अपहरण, रेलगाड़ी या जहाज अपहरण जैसे साधनों को भी प्रयोग किया जाता है। इसमें बंदी वाहन गतिशील रहता है तथा सामान्यतया यह मालूम होता है कि इस वक्त वह वाहन या बंदी कहां है। शहरी क्षेत्र में इस प्रकार के कदम उठाने की

स्थिति की उपलब्धता होती है क्योंकि विमान, रेलगाड़ी या जहाज आदि शहरी जीवन के आधार है। ज्यादातर विमान अपहरण का प्राथमिक उद्‌देश्य राजनीतिक कारणों से अपने उद्‌देश्यों का प्रचार करना है।

22.3.3 शहरी आतंकवाद को रोकने के उपाय

शहरी आतंकवाद से लड़ने के लिए कई पद्धतियों को प्रयोग किया जाता है जिनमें से कुछ इस प्रकार से हैं :

1) वह व्यक्ति जिसे धमकियां मिली हैं या डराया गया है उसे सुरक्षित स्थान उपलब्ध कराया जाये ताकि उसकी रक्षा के लिए कुछ किया जा सके। घुसपैठिया धोखा देने के लिए हर एक तरीका अपनाएगा अतः सुरक्षा गार्डों को प्रवेश द्वार पर स्टाफ के सदस्यों के मिलने वाले व उनके वाहन की पूरी तरह जांच करनी चाहिए। सुरक्षा गार्डों के प्रशिक्षण व सतर्कता में आवश्यक सुधार किया जाये। यदि आवश्यक हो तो ऑफिस की इमारत में गोली रोक दस्ता अर्थात् बुलेट प्रूफिंग, लगाया जाये।

2) विस्फोटक जांच तकनीक में अत्यावश्यक सुधार किया जाये। विद्युत गोलीबारी साधन के लिए जांच तकनीक को व्यावहारिक बनाया जाना चाहिए। मानव खोजकर्ता की सामान्य इंद्रियों (जैसे देखना, सूंघने, सुनने या छूने) को विकसित किया जाये। बहुत सारी जांच चौकियां स्थापित की जाये तथा इसके लिए आवश्यक अनुसंधान हों।

3) यदि हथियारबंद आतंकवादियों के हमले की संभावना है तो आतंकवादियों के संभावित शिकारी की प्रशिक्षित सुरक्षा रक्षकों के द्वारा सुरक्षा करने के जरूरत होगी। प्रशिक्षित अंगरक्षकों के द्वारा शिकार व्यक्ति को इस प्रकार की सलाह देकर खतरे में पड़ने से बचाया जा सकता है। निजी हथियारों का आगमन आतंकवादियों के लिए काफी सहायक रहा है अतः इस समस्या से निपटने के लिए सुरक्षा ताकतों को तुरन्त कार्यवाही करने व ठीक जगह गोली चलाने के लिए व्यक्तिगत रूप से प्रशिक्षित करना होगा। आतंकवादी गोलाबारी इत्यादि में सैनिकों और सशस्त्र पुलिस के व्यक्ति से कम अनुभवी होते हैं जिससे अचानक किये जाने वाले खतरे को कुछ मात्रा तक कम किया जा सकता है तथा कुछ समय तक वे पराजित किये जा सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4) जब आतंकवादियों का शिकार व्यक्ति कहीं यात्रा कर रहा है तो यह जोखिम भरा होता है विशेष कर कार से यात्रा। यात्रा सुरक्षा का मामला काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। एक अपहरण या हत्या के लिए एक बहुत संगठित योजना की जरूरत होती है इसलिए अपहरणकर्ता को शिकारी व्यक्ति की यात्रा का विस्तृत ज्ञान होना चाहिए। इस प्रकार संभावित शिकारी व्यक्ति के आवागमन पर सख्त सावधानी रखनी चाहिए तथा यात्रा की योजनाओं के कई रूप होने चाहिए। ताकि अपहरणकर्ता मजबूरन अपना दूसरा शिकारी तलाश करने लगे। तथा हवाई या समुद्री यात्राओं में भी इसी प्रकार के निर्देशों का प्रयोग करे। शिकारी हवाई यात्री को जितना संभव हो सके विशेषतया टिकट की जांच या भोजनव्यवस्था के समय अप्रकट रहना चाहिए।

5) सामान्य पुलिस के काम के दौरान भी विस्फोट तथा आतंकवाद विरोधी दस्तों के विशेषज्ञों को तैनात किया जाये या इन दस्तों को एक ऐसा रूप दिया जाये जिससे ये जनता से मिलने वाली सहानुभूति को अपने कार्यों से रोक सके। आतंकवाद विरोधी दस्तों को आपराधिक व राजनीतिक आतंकवादियों अर्थात् दोनों को ही बेदखल करने के योग्य होना चाहिए। एक आपराधिक मामले को रोकथाम के तरीके से ज्यादा व शक्ति के कम से कम प्रयोग से हल करना चाहिए। बचाव कार्यवाही में चतुराईपूर्ण निर्णय व समय की बहुत कीमत होती है। उचितता अर्थात् परिशुद्धि भी बहुत महत्वपूर्ण है।

6) आतंकवादियों के हमले से जनता की सुरक्षा करना एक अच्छे खुफिया विभाग या दस्ते पर निर्भर करता है। अतः प्रत्येक देशों के खुफिया संगठनों के बीच एक सकारात्मक सहयोग होना चाहिए। खुफिया सेवा में गोपनीयता या सतर्कता से पालन करना चाहिए। खुफिया और निजी निगरानी को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। मानव खुफिया को पूरक रखा जाये और इसे उसकी जगह प्रतिस्थापित नहीं किया जाना चाहिए। पुलिस तहकीकात में मदद के लिए सुरक्षा कवच अवश्य हो तथा टेलीफोन टेप करने और इन्हें दूसरे यंत्र से गुप्त रूप से सुनने की सुविधा दी जाये व विद्युत मॉनीटर भी उपलब्ध कराये जाये।

7) आतंकवाद के निवारण के लिए छद्म व्यक्तिता को रोकना चाहिए तथा दूसरे देश से आने वाले सैलानियों की पहचान व जांच परिशुद्धता से होनी चाहिए जिससे की धोखेबाजी न हो सके। अंगुली के निशान (फिंगर प्रिंटस) की जांच प्रभावकारी रूप से आतंकवाद, अफीम की तस्करी तथा दूसरे अंतर्राष्ट्रीय अवरोध को रोकने के साधन के रूप में होनी चाहिए, जिससे कि स्वस्थ व्यवस्था में गिरावट न आ सके।

8) एक दृढ़ धारणा की प्रवृत्ति आतंकवाद या अपराध को डराती ही नहीं है अपितु इसे रोकती भी है लेकिन इसका सबसे अत्यावश्यक भाग है गवाह तथा प्रमाण एकत्रित करना। सफलतापूर्वक प्रश्नावली के लिए दोषी द्वारा दिये गये उत्तरों या कथनों व वास्तविक तथ्यों से प्रमाणों का मिलान करना चाहिए। यद्यपि जूरी के द्वारा की गई सुनवाई न्याय व स्वतंत्रता के लिए सबसे उत्तम साधन हो सकती है।

21.4 ग्रामीण आतंकवाद

ग्रामीण आतंकवादी आंदोलनों को ग्रामीण गुरिल्ला आंदोलन भी कहा जाता है। क्योंकि इनकी आतंकवादी कार्यवाहियां वनों या जंगलों से ही होती हैं तथा मुख्यरूप से इनकी पृष्ठभूमि ग्रामीण होती है। इन्हें जनसमर्थन ग्रामीण क्षेत्रों से ही मिलता है तथा ये उन लोगों को आतंकित करते हैं जो इन्हें समर्थन व सहयोग नहीं देते हैं। ये कस्बों को कंगाल या कमजोर करने के लिए अपने संगठन बनाते हैं तथा जब उचित समय आता है तब बगावत कर देते हैं।

22.4.1 ग्रामीण आतंकवाद का विकास

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ग्रामीण आतंकवाद कोई एक नया तथ्य नहीं है। आतंकवादी हमलों के लिए ग्रामीण जनता बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि ग्रामीण जनता की सुरक्षा बहुत ज्यादा मुश्किल व खर्चीली है। ग्रामीण अधिकारी व पुलिस अधिकारी आतंकवादियों की धमकी से डरे होते हैं अतः वे आतंकवादियों के सामने आंखबंद करने वाली नीति का अनुसरण करते हैं। आतंकवाद का मुख्य लक्ष्य दौलतमंद क्षेत्र (में उदाहरण के लिए पेरू, कोलम्बिया इत्यादि का अफीम उत्पादक क्षेत्र), काम करती ग्रामीण जनता, सड़क या किसी पृथक क्षेत्रों, ग्रामीण क्षेत्रों की जलापूर्ति (वे इसके लिए दोषपूर्ण है) तथा संरचनात्मक ढांचा होते हैं जो तोड़फोड़ दिये जाते हैं। ग्रामीण आतंकवादियों द्वारा विशेषकर हाथ से चलने वाली मिसाइलें तथा मशीनगन का प्रयोग किया जाता है। संपर्क टूटी सेना या पुलिस बल, बड़े महत्वपूर्ण सैनिक हथियारों के गोदाम, तेल प्रतिशोध कारखाने, सैनिक अड्डे, तथा संरक्षित ग्राम, इत्यादि को ग्रामीण आतंकवादी अपना शिकार बनाते हैं। सही समय पर सहायता न पहुंचने की वजह से सैनिक हथियारों के गोदामों के सुरक्षा रक्षक आसानी से ग्रामीण आतंकवादियों के शिकार बन जाते हैं। इन सब दुर्घटनाओं से बचने के लिए ग्रामीण सुरक्षा व्यक्तियों को निगरानी यंत्र तथा सचेतक प्रणाली से सुसज्जित करना चाहिए।

1940 के बाद से ग्रामीण आतंकवादियों के द्वारा रोड माईनिंग अर्थात् सड़क में बारूद बिछाने की तकनीक का अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है। जिससे वाहन के पहिये के दबाव में आने से विस्फोट होता है जो ग्रामीण सड़क पहले से ही खुर्दरी व टूटी फूटी होती है जिसमें इस प्रकार के विस्फोट करने में आसानी होती है। कुछ दूसरे प्रकार के हथियारों में रोड बम तथा परिष्कृत विस्फोटक आते हैं। इस प्रकार के विस्फोट व हथियार ग्रामीण आतंकवादियों के पास होने के बावजूद भी उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों पर आधिपत्य जमाने में कठिनाई होती हैं क्योंकि इसके लिए ग्रामीण लोगों से संपर्क अत्यावश्यक है लेकिन यह भी बहुत कठिन हो जाता है चूंकि ग्रामीण क्षेत्र में अजनबी को बहुत ही आसानी से पहचाना जा सकता है, जिसकी सहायता से खुफिया एजेंसियों के द्वारा इन्हें दबोच लिया जाता है।

सामान्य परिस्थितियों में आर्मी तथा पुलिस बल अच्छे हथियार होने की वजह से ग्रामीण गुरिल्ला दल पर भारी पड़ते हैं लेकिन यह प्रतिकुल जब होता है जब ग्रामीण आतंकवादी घात लगाकर या अचानक हमला करते हैं। आतंकवादियों के संभावित हमले को जानने के लिए अच्छे खुफिया दस्ते की आवश्यकता होती है। जिसका मानव ही सबसे अच्छा साधन है। ग्रामीण सुरक्षा दलों को ग्रामीण लोगों में उनकी सुरक्षा के लिए उनका हौसला बढ़ाना चाहिए तथा उन्हें आतंकवादियों को पराजित कर देने का विश्वास दिलाना चाहिए ताकि ग्रामीण लोग सुरक्षा दलों को सूचना देने में सहायक

सिद्ध हो सकें। यदि ग्रामीण जनता को यह विश्वास दिलाया जाये कि स्थाई सरकार होने से उनके जीवन स्तर में सुधार होगा तो ये ग्रामीण उन लोगों से कम प्रभावित होंगे, जो राजनीतिक गतिविधियों में अपराध व हिंसा का प्रयोग करते हैं। अतः इससे ग्रामीण जनता शांति व सम्पन्नता की और बढ़ेगी।

22.4.2 एशिया व अफ्रीका में ग्रामीण आतंकवादी गतिविधियां

ग्रामीण आतंकवादियों ने एशिया व अफ्रीका में नियंत्रित क्षेत्र में लोकप्रिय समर्थन पाने के लिए माओ की क्रांति व संवर्ग (कैडर) बढ़ाने की रणनीति को अपनाया। इसके बावजूद जो इनको सहयोग नहीं करते उनको आतंकित किया गया। ज्यादातर, ग्रामीण आतंकवादी उन बड़े आपराधिक गेंग से नजदीकी संपर्क रखते हैं जो अफीम तस्करी की वजह से धनाढय हैं। ग्रामीण आतंकवादियों से एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू यह जुड़ा है कि ये लोग आंतरिक संकट या कार्यवाही की वजह से पड़ौसी देश में शरण लेते हैं तथा वहां प्रशिक्षित होते हैं और वापिस आकर आतंकवादी के रूप में कार्य करते है। 1971 में बंग्लादेश युद्ध के दौरान भारतीयों ने सहायता के लिए गुरिल्ला बल को प्रशिक्षित किया था। उदाहरण के लिए एशिया और अफ्रीका, जहां पर ग्रामीण आतंकवाद बड़े स्तर पर व्याप्त है।

1970 के दशक के बाद कम्बोडिया में सरकार के दुष्ट शासन के आतंक को सबसे ऊपर बताया गया। 1975 में चीन के साम्यवादी दल ने बलपूर्वक अपना शासन स्थापित किया, लेकिन अभी आतंक के शासन में कुछ ढील दी है। लाखों लोगों को मार दिया गया तथा संपूर्ण शहरी सभ्यता को खत्म कर दिया गया। सन 1978 में वियतनाम ने कंबोडिया पर चढाई की तथा जनता को बलपूर्वक नियंत्रित किया। सन 1991 तक कम्बोडिया सिविल वार से झूझता रहा। इसी प्रकार 1970 से फिलिपिन्स में दो मुख्य गुरिल्ला संगठन कार्यरत्त रहे। ये दल हैं माओइस्ट "न्यू पीपुल्स आर्मी" (एन पी ए) और मुस्लिम सेसेनिस्ट ग्रुप (एम एन एल एफ) जो देश के दक्षिणी द्वीपों में एक स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्र के लिए संघर्षरत्त है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एम एन एल एफ के हजारों गुरिल्ला शस्त्र है जिसे ईरान, लिबिया का समर्थन तथा कभी कभी पूर्वी मलेशिया के पड़ौसी मुस्लिम क्षेत्रों की सहानुभूति प्राप्त हो जाती है। लेकिन जिन क्षेत्रों में ये अपनी कार्यवाहियां करते हैं उसमें ईसाई बहुमत का कड़ा मुकाबला करने की वजह से इनकी शक्ति कमजोर पड़ गई है। एन पी ए स्थानीय अधिकारियों, पुलिस अधिकारियों और सैनिकों की हत्या करके आतंक फैलाती है। ये बड़े व्यापारियों से धन ऐंठ कर अपनी वित्तीय आवश्यकता को पूरा करते हैं। इनका दल ग्रामीण क्षेत्र में रहता है जो कि संगठित है तथा अपने आंतक से ग्रामीण क्षेत्र में अनुशासन कायम रखते हैं। वक्त के चलते हुए एन पी ए टूट चुकी है लेकिन इसके कई सदस्य शस्त्र आपराधिक गेंग के रूप में कार्यरत्त हैं।

1983 से श्रीलंका भी आतंकवादी गतिविधियों से ग्रसित है। श्रीलंका के उत्तरी क्षेत्र में तमिल टाइगर्स (एल टी टी ई) के द्वारा खून खराबा या मारकाट की जाती रही है तथा दक्षिणी क्षेत्र में उग्र सिहंली राष्ट्रवाद आंदोलन पीपुल्स लिब्रेशन फ्रंट के द्वारा जातीय संघर्ष शुरू किया गया। सन् 1989 में सरकारी ताकतों ने जे वी पी नेताओं को बेरहम अपराध के आरोप में बंदी बना लिया या मार डाला। यद्यपि मुक्ति चीतों की शक्ति में काफी कमी आई है क्योंकि सरकारी ताकतों से मुठभेड़ के दौरान इनके साथ काफी दुर्घटनाएं हुई हैं। हालांकि इनके कट्टर सदस्य जंग जारी रखे हुए है। इसी से श्रीलंका में आतंकवाद जारी है। भारत में आतंकवाद को सामुदायिक हिंसा के संदर्भ में देखा जाता है जैसे हिंदू और मुस्लिम के बीच, गौरखाओं द्वारा पृथकतावादी हिंसा, नागा तथा दूसरे के बीच। सिख हिंसाए तथा आतंकवाद मुख्यतः शहरी क्षेत्रों में ही केन्द्रित हैं लेकिन इनके द्वारा हिंदुओं की मारकाट गांवों व बस्ती तक फैली हुई है।

आतंकवाद भारत के उत्तरप्रदेश राज्य में दिसम्बर 1992 में दो पागल संप्रदायों के बीच हिंसात्मक विस्फोट के रूप में फैला। मुम्बई में हिन्दुओं ने मुसलमानों की दुकाने लूटी तथा जातीय विस्फोट की एक भयानक प्रक्रिया ने लगभग सौ लोगों की जाने ले ली। अफगानिस्तान, मध्य एशिया तथा कुर्दीस्तान भी अनिस्ट ग्रामीण आतंकवाद के अनुभव से गुजर रहे हैं। इन क्षेत्रों में आतंकवाद चट्टानी पहाड़ियों के क्षेत्रों में जनजातीय ढांचे पर आधारित है। चीन जातीय लोग अपने आपको आतंकवादी गतिविधियों में शामिल रखते हैं क्योंकि ये लोग सरकार की नियमित सेनाओं से अपने आपको स्वतंत्र रखना चाहते हैं। ये उन रास्तों पर अपना नियंत्रण रखने के लिए युद्ध करते हैं जहां से सरकार की नियमित विचरण करती है। यद्यपि इस क्षेत्र में और गंभीर चुनौती जब मिलती है जब

बड़ी पड़ौसी शक्तियां इस क्षेत्र में अपना प्रभाव बनाने के लिए आतंकवादियों को समर्थन देती हैं। इन क्षेत्रों में जातीय विशुद्धिकरण की प्रवृति भी जारी है।

सूडान, सोमालिया तथा दक्षिणी अफ्रीका को भी आतंकवादी आंदोलनों का अनुभव है। सूडान का एक आतंकवादी संगठन पीपुल्स लिब्रेशन आर्मी (पी एल ए 7 सूडान के आधे भाग विशेषकर देश के दक्षिणी भाग पर अपना आधिपत्य बनाये हुए है। हालांकि यह 1983 में अस्तित्व में आया था लेकिन इसका दो भागों में विभाजन हो गया। जिसमें एक सूडान के दक्षिणी भाग को स्वतंत्र करना चाहता है तथा दूसरा सूडान में संघीय सरकार की मांग करता है। इन आतंकवादी गतिविधियां को सेना व पुलिस के द्वारा दबा दिया जाता है। 1991 से सोमालिया भी इस दुर्व्यवस्था का शिकार है। बीस वर्ष पुराने निरंकुश साम्यवादी शासन का जरनल मोहम्मद आदीद ने "यूनाइटिड सोमानी कांग्रेस" (यू एस सी) के साथ संगठित होकर तख्ता पलट दिया। जल्दी ही इस संगठन का अदीद व अली मेहंदी के नेतृत्व में विभाजन हो गया। जिसमें यू एस सी ने अली मेंहदी को सोमालिया का राष्ट्रपति नियुक्त कर दिया। थे दोनों ग्रुप अपनी निजी सेनाएं रखते हैं। इन गैगों में युवा लोग होते हैं, जिनके पास बटनचालित मशीनगन तथा रॉकेट लांचर शामिल हैं जो कि ख़ाने पीने की वस्तुएं लूटते हैं। अमरीका व संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा समस्या के समाधान के लिए हस्तक्षेप करने के बावजूद भी लड़ाई जारी रखी तथा शांति स्थापकों के प्रति तिरस्कार प्रकट किया। अंगोला व मोजाम्बिक 1975 में पुर्तगाल से आजाद हो गये। लेकिन यहां की बनी नई सरकारों को भी आतंकवादी आंदोलन का सामना करना पड़ा। यूनिटा और रेनामों (UNITA OF RENAMO) ने पर्याप्त मात्रा में क्षेत्रों को कब्जे में रखा तथा ग्रामीण व जनजातीय लोगों को आतंकित किया। ए एन सी के द्वारा स्थिति को सुधारने के प्रयत्नों के बावजूद भी दक्षिणी अफ्रीका में हिंसा और आतंकवाद को जारी रखा तथा वहां के राजनीतिक विकास की प्रक्रिया को क्षतिग्रस्त किया।

22.4.3 लैटिन अमरीका में ग्रामीण आतंकवादी गतिविधियां

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कोलम्बिया व पेरू जैसे लैटिन अमरीकी देशों में चल रही हिंसा व आतंकवाद के पीछे "नशीले पदार्थों का उत्पादक संघ है" जो आतंकवादी गतिविधियों हेतु वित्त उपलब्ध कराता है। सेनदिरो लुमिनोसो का ग्रामीण गुरिल्ला संगठन तथा उसकी तकनीकें पेरू की छोटी बस्तियों में कार्यान्वित होती हैं तथा इनका आधार कोको उत्पाद ग्रामीण क्षेत्र है। यह एक हिंसात्मक निकाय है तथा यह जनता को सरेआम मार देना या उनके अंगभग कर देने जैसी निर्दयी गतिविधियों से लोगों को आतंकित करती है। कोलम्बिया लैटिन अमरीका में एक ऐसा देश है जिसकी एक स्थायी राजनीतिक लोकतांत्रिक व्यवस्था है। लेकिन यह निरंतर हिंसा से पीड़ित रहा है क्योंकि इसे अतंर्राष्ट्रीय नशीले पदार्थों की तस्करी करने वालों से वित्तीय सहायता प्राप्त होती है। कोलम्बिया के दो मुख्य आतंकवादी संगठन आमर्ड रिवालुसनरी फोर्सस ऑफ कोलम्बिया व नेशनल लिब्रेशन आर्मी हैं।

आर्मड रिवोलयूशनरी फोर्सेस ऑफ कोलम्बिया एक राष्ट्र व्यापी ग्रामीण संगठन है जिसका एक खुला राजनीतिक मोर्चा है। नेशनल लिब्रेशन आर्मी उत्तरी पूर्वी कोलम्बिया के तेल उत्पादक प्रदेशों में अपनी गतिविधियां चलाती है। इसका मुख्य उद्देश्य विदेशी तेल उत्पाद कंपनियों को भगाना है। यद्यपि आज भी नशीले पदार्थों के धन्धे से प्राप्त धन इस देश में व्याप्त है और यहां हिंसा थमने के कोई आसार नजर नहीं आते हैं। एल साल्वदार आतंकवाद कि बहुत सारी दुर्घटनाओं से पीड़ित हुआ। जिसने धन ऐंठने के लिए अपहरण जैसी पद्धति को अपनाया तथा समय समय पर आतंकवादी निकायों ने यहां की सरकारों को भी गिराने के प्रयत्न किये हैं। कई सालों से चली आ रही हिंसा ने देश की आर्थिक स्थिति को कमजोर किया जिसमें एल सल्वदार की जनता के लिए कोई राहत का काम नहीं किया। क्योंकि पूर्व आतंकवादी तथा आतंकवादी निकायों के सदस्य किसी भी विवाद को सुलझाने के लिए हमेशा बंदूक का प्रयोग करते हैं। यहां यह ध्यान दिया जाता है कि कोलम्बिया और पेरू में आतंकवादियों को आर्थिक सहयोग देने के पीछे अमरीका व यूरोप के देशों को नशीली दवाओं आदि के निर्यातक लोगों को रोकना चाहिए जो कि इसे खरीदते हैं तथा कोको का उत्पादन करने वाले किसानों को निरूत्साहित करना चाहिए। जिससे कि आतंकवादियों के हथियारों से बचाव हो सके।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना किजिए।

1) कुछ शहरी आतंकवादी निकायों का नाम बताइये तथा उनसे संबंधित तकनीकों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2) ग्रामीण आतंकवाद क्या है।

....

....

....

....

3) लैटिन अमरीका के कुछ उन देशों के नाम बताइये जहां अभी भी आतंकवादी सक्रिय हैं।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.5 आतंकवाद—विश्वस्तरीय संघर्ष

आतंकवाद लोकतांत्रिक समाज के संचालन में विघ्न डालता है तथा स्पष्टीकरण में यह बताता है कि जो सरकारें प्रचलन में हैं वह जनता की सुरक्षा के आधारभूत साधन मुहैय्या नहीं कराती है। आतंकवाद का विरोध एक आम मानव इच्छा है लेकिन कुछ मौको में यह असफल हो जाता है। सरकार को अपनी जनता व उसकी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए कई प्रकार के कदम उठाने चाहिए। इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण यह होगा कि आतंकवादी गतिविधियों, बमबारी, अपहरण व विमान अपहरण इत्यादि को रोकने के लिए एक सुदृढ़ पुलिस बल का निर्माण करना चाहिए। आतंकवादी सामान्यतया कार्यवाहियों में पृथक पृथक तरीकों का प्रयोग करते हैं जैसे कि खुफिया दस्तों द्वारा न पकड़े जाने के लिए अपने को गुप्त रखते हैं। इनकी इस पद्धति को असफल करने के लिए खुफिया पद्धति सूचना एकत्रीकरण, घुसपैठ, निगरानी इत्यादि में सुधार करना जरूरी है। जनता को संयुक्त योजना में सूचना व शिक्षा देकर उनसे आतंकवाद से लड़ने के लिए जन सहयोग लेना चाहिए। जनता की सुरक्षा के प्रति अत्यधिक सचेत रहने के लिए शिक्षित करना चाहिए।

बंदी को मुक्त कराना एक जोखिमपूर्ण कार्य है इसलिए पुलिस का मुख्य लक्ष्य बन्दी को बिना किसी क्षति छुड़ाना तथा अपराधी को पकड़ना होना चाहिए। यदि अपराधी की पकड़ बहुत महत्वपूर्ण है तो हमला करके पकड़ना चाहिए। और बंदी को छुड़ाना बहुत जरूरी है लेकिन मांग पूरी नहीं की जा सकती हो तो पुलिस को आतंकवादी को मार डालना चाहिए। इस प्रकार अपराधी को पकड़ना एक बहुत ही पेचिदा प्रक्रिया है। भिन्न घटना के लिए भिन्न पद्धति का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि प्रत्येक घटना अपने आप में अनोखी होती है।

22.5.1 एक दूसरे की हत्या करने की प्रक्रिया की रोकथाम

प्रत्येक बदलती हुई पीढ़ी के साथ आतंकवाद का नया रूप आता रहा। अतः प्रत्येक चुनौती से निपटने के लिए शांति निर्माण प्रक्रिया में और ज्यादा सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए जिससे कि जनता को आतंकवाद से सुरक्षित रखा जा सके। प्रौद्योगिकी विकास विशेषकर विस्फोटकों की तहकीकात, बढ़ती नियंत्रित निगरानी व खुफिया को आतंकवादियों की जनता के [illegible] की प्रवृत्ति, तथा लोगों के जान लेने की नितांत प्रवृत्ति को रोकने के

लिए एक साधन के रूप में लागू करना चाहिए। इस स्थिति में विश्व के लिए सैनिक ताकतों का त्याग असंभव है क्योंकि ऐसे लोग हमेशा ही होंगे जो प्रदेशों या साधनों पर अनुचित कब्जा करने की महत्वाकांक्षा रखते हैं। वर्तमान स्थिति में सैनिक बलों का रूप ऐसा होना चाहिए जो शांति बनाये रखने तथा शांति निर्माण की भूमिका को धारण कर सके। हालांकि शांति निर्माण की भूमिका में ज्यादा दुर्घटनाएं होती हैं। जहां कहीं भी संभव हो प्रत्येक देश को अपने बलों को क्षेत्रीय आधार पर अपने पड़ौसी देश के लिए उपलब्ध कराना चाहिए। यह उसके लिए भी फायदेमंद होगा जिससे बल उपलब्ध कराया जाये क्योंकि विवाद का बढ़ जाना उसके लिए भी खतरनाक हो सकता है। इस प्रकार के विवाद यदि क्षेत्रीय स्तर पर नहीं सुलझ पाये तो विश्व समाज का इसे रोकने का दायित्व होगा तथा मानवतावादी सहायता उपलब्ध करानी चाहिए। इस हेतु संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्यों में एकता जरूरी है। जैसे कि 1990 के खाड़ी संकट के दौरान देखने को मिला था विश्व के किसी भी भाग में आतंकवाद से निपटने के लिए इन महाशक्तियों को अपनी पूरी क्षमता एक साथ लगानी पड़ी व सैनिक बल उपलब्ध कराना पड़ा। बड़ी दुर्घटनाओं को रोकने के लिए सरकारों को संयुक्त राष्ट्र शांति स्थापक दल हेतु धन देना चाहिए। जिससे इसे रोका जा सके। शांति स्थापना की गतिविधी आज आम धारणा कार्य हो गई है। इस हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ में देशों को पर्याप्त मात्रा में धन का योगदान देना चाहिए जिससे की संकट के समय सक्रिय व सकारात्मक कदम उठाये जा सके। स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे मंच से सभी देशों को आतंकवाद के विरूद्ध पूरी क्षमता से लड़ना चाहिए जो कि विश्व समाज के हित में होगा।

22.5.2 आतंकवादी गतिविधियों को रोकने के कानून

इन सालों में बढ़ती आतंकवादी हिंसा ने संपूर्ण विश्व समुदाय का ध्यान आकृषित किया है। संयुक्त राज्य अमरीका ने आतंक से निपटने के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयत्नों को विकसित करने में अहम भूमिका अदा की। संपूर्ण विश्व के देशों ने कूटनीतिक और दूतावास की सुरक्षा के लिए कठोर कदम उठाये हैं, जिससे विदेशी दूतावास को कब्जे में करने की घटनाओं में कमी आई है। इसी तरह 1910 से विश्व ने हवाई सुरक्षा साधनों को विकसित करने को गंभीरता से लिया और यह तब संभव हुआ जबकि एरियल नेवीगेशन को नियमित करने के संबंध में एक सम्मेलन हुआ था। अपहरणकर्ता पर अभियोग चलाने में सबसे कठिन बाधा दूसरे देशों द्वारा अपराधी को शरण दे देने की प्रवृत्ति है जिससे कि अबाध रूप से हवाई जहाज को कब्जे में करने को रोकने के अंतर्राष्ट्रीय प्रयत्न विफल हो रहे हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राजनीतिक अपराध शब्द अभी भी अस्पष्ट होने की वजह से राजनीतिक शर्णार्थियों या राजनीतिक दलों को शरण देने का राष्ट्र हमेशा औचित सिद्ध करते हैं। फरारी अपराधियों को राजनीतिक अपराध के बहाने शरण देकर अंतर्राष्ट्रीय वायुमार्गो के लिए गंभीर खतरा पैदा करते हैं क्योंकि हवाई जहाज का अवैध रूप से कब्जा करना अनेक गंभीर अपराधों से संबंधित है।

ऐसी घटनाओं की गंभीरता को देखते हुए यूरोपिय देशों ने आतंकवाद को रोकने के लिए अनेक कदम उठाये। यद्यपि इन देशों का प्राथमिक उद्देश्य नागरिक उड्डयन में अवैध हस्तक्षेप को रोकना था लेकिन इसके अंतर्गत बम हथगोला, रॉकेट इत्यादि के प्रयोग को रोकना भी आता है। 17 जुलाई 1978 में विमान अपहरण पर एक अनौपचारिक अंतर्राष्ट्रीय संधि हुई जिसमें न केवल अपहरणकर्ता को प्रतयावर्तित या अभियोग चलाने का निर्णय लिया बल्कि उन देशों का बहिष्कार करने का निर्णय भी हुआ जो इस कार्य में सहयोग नहीं देते हैं। देशों की पुलिस व खुफिया एजेंसियों के बीच आपसी सहयोग को बढ़ाने के लिए इनकी नियमित बैठकें हो रही हैं। लेकिन वास्तव में इन संधियों का कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं हुआ क्योंकि ज्यादातर सरकारें अपने राष्ट्रीय हितों से निर्देशित होती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ भी इस हेतु ज्यादा कुछ नही कर पा रहा है। क्योंकि अरब अफ्रीका व लैटिन अमरीका के देशों में आतंकवाद को खुले आम प्रायोजित व समर्थन किया जाता रहा है। दरअसल ये देश आतंकवाद को अपने राजनीतिक तथा आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक वैध व उचित साधन मानते हैं।

आतंकवाद का एक उद्देश्य यह भी है कि वे गवाहों तथा जूरी को धमका कर वैध प्रणाली को असफल करना हैं। सरकार पर उत्पीड़न और दमन करने का आरोप लगाने के लिए ये एक विश्वस्त आधार का निर्माण करते है। संदेशवाहक के द्वारा प्रमाण तथा खबर देने के लिए उसे आर्थिक रूप से प्रोत्साहित करते हैं तथा जरूरत के समय संरक्षण भी देते हैं। अतः सरकार को यदि इच्छित हो तथा संभव हो तो संदेशवाहक को आर्थिक सहयोग करना चाहिए जिससे वे नई जगह अपना जीवन बिता सके। संदेशवाहक को दिये जाने वाला धन आतंकवादियों से क्षति वस्तु

की कीमत से ज्यादा है तो इसे नजरंदाज किया जा सकता है। इसके अलावा दूसरे भयभीत करने के तरीकों को भी बहुत सतर्कता से लेना चाहिए।

इसके अलावा विस्फोटकों, सेनाओं तथा गोलाबारूद्ध के आवागमन व स्थिति के कार्यान्वयन की कड़ी निगरानी के लिए कानूनी प्रक्रिया को मजबूत करना चाहिए। सभ्य राष्ट्रों को एक ऐसा समझौता करना चाहिए जिससे विस्फोटक सामग्री को रंगीन प्रणाली कोड में रखा जा सके। जिससे अपने स्रोतों की खोज की जा सके तथा अपनी प्रगति को रिकार्ड कर सके। कानून जो न केवल अपराधियों के संदेशवाहक तथा समर्थकों को तलाश कर सकेंगे बल्कि उन घरों की भी खोज कर सकेंगे जो इन्हें शरण देते हैं। ये कदम आतंकवाद को रोकने में सहायक होंगे। प्रश्नकाल के दौरान उन लोगों को कुछ समय भी राहत नहीं देनी चाहिए जिससे कि आतंकवाद इन्हें अपने अनुसार फसाने में सफल हो सके। आतंकवाद से लड़ने के लिए जो नियम बनाये जाते हैं उसके दायरे में वकीलों को भी लेना चाहिए जिससे कि ये लोग अधिकारों का दुरूपयोग व कानूनी प्रक्रिया में बाधा पहुंचा कर आतंकवादियों के कार्यों को समर्थन न दे सकें।

आतंकवादी व आपराधिक हिंसाओं को चलाने या प्रायोजित करने में नशीली दवाओं के व्यापार से आने वाले लाभ का सबसे बड़ा हाथ है। नशीली दवाओं की तस्करी न केवल अवैध धन को बढ़ाता है बल्कि नकली नोटों की छपाई आदि को भी बढ़ाने में सहयोग देता है। इस प्रकार नशीली दवाओं की तस्करी को ही नहीं रोकना अंपितु अनुचित तरीके से अर्जित धन को भी रोकना होगा। इसे सार्थक बनाने के लिए बैंक को खातेदारी के खातों की पुलिस व न्यायिक अधिकारियों के लिए उपलब्ध करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। इस हेतु पश्चिमी देशों की सरकारों को इस प्रकार का विधान बनाना चाहिए जिससे विदेशी बैंको जो अपना ब्यौरा नहीं रखते उनसे सौदेबाजी को रोका जा सके। कुछ आवश्यक क्षेत्रों में आतंकवाद को रोकने के लिए तकनीकि अनुसंधान को विकसित करना चाहिए। ये क्षेत्र हैं विस्फोटकों की खोज, प्रतिरूप धारण प्रक्रिया तथा खुफिया यंत्रों के सहयोग इत्यादि। हथियारों की प्रकृति में कुछ सालों से कोई ज्यादा बदलाव नहीं आया है। हाथ से संचालित मिसाइल जो कि आतंकवादियों को हाल ही में उपलब्ध हुई वह 1984 में विकसित हुआ था। लेकिन एक सकारात्मक लक्षण यह आया कि विकास की वजह से विशेषकर विस्फोटक खोज तकनीक में, सुरक्षा तकनीक में भी काफी उत्तमता आई है। हालांकि आतंकवादी दल हमेशा ही हर प्रकार के हथियार व विस्फोटकों की खोज में लगे रहते हैं। लेकिन वास्तविक रूप से जो खतरनाक स्थिति आई है वह है आतंकवाद के क्षेत्र में आपराधिक तत्वों के आ जाने से राजनीतिक उद्देश्य प्रेरित आतंकवादी अपराध उद्देश्य प्रेरित आतंकवादियों के रूप में बदल गए हैं। लेकिन यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि ऐसे कुछ ही गिने चुने लोग हैं जो लोकतांत्रिक सरकार पर अपनी मांग को मनवाने के लिए दबाव, आतंकवादी तकनीक से डालते हैं। विचारों की भिन्नता को यदि वे प्रकृति में रचनात्मक है तो प्रोत्साहित करना चाहिए लेकिन विसम्मति चाहे कितनी भी ज्यादा हो उसकी औचित्यता को हत्या, बमबारी या जख्मी करने से नहीं माप सकते हैं। अपराध नागरिक समाज की स्वतंत्रता को कम करता है। युग के चलते हुए तथा संपूर्ण इतिहास में नागरिक बहुमत ने दूसरों पर हमला करने या हानि पहुंचाने की स्वेच्छा पर विधि के शासन का हमेशा समर्थन किया है। हर समाज चाहे उसका राजनीतिक रूप कैसा भी हो उसे आतंकवाद से अपने को बचाने का हक होना चाहिए। प्रत्येक लोकतांत्रिक समाज को अपना विधि का शासन बनाये रखना चाहिए तथा नागरिक समाज की स्वतंत्रता को कायम रखने और लोगों को आतंकवाद से बचाने के साधनों के बीच एक संतुलन बनाये रखना चाहिए। अल्पसंख्यक आतंकवादियों की अपहरण व हत्या की प्रक्रिया को बहुमत को शांति से जीने व नागरिक समाज की स्वेच्छा को कुलचना नहीं चाहिए चाहे कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो। आतंकवाद की रोकथाम की प्रक्रिया अंतिम रूप से सरकार की नीतियों की प्रकृति पर आधारित है तथा यह कानून लागू करने वाली ऐसी एजेंसी है जिसे गैर राजनीतिक संदर्भ में काम करना पड़ता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिएं गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना किजिए।

1) आतंकवाद को रोकने का कोई एक तरीका सुझाएं।

....

....

....

....

2) नागरिकों को आतंकवादियों के विरूद्ध संदेश या प्रमाण देने के लिए कैसे प्रोत्साहित किया जाये।

....

....

....

....

22.6 सारांश

हमने इस इकाई में आतंकवाद एक हिंसात्मक रणनीति, जो जनता के द्वारा बिना किसी कारण को समझे सरकार या राज्य के विरूद्ध अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयोग की जाती है का वर्णन किया है। जब विभिन्न आतंकवादी दलों के बीच अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क स्थापित हो जाता है तब अंतर्राष्ट्रीय अस्तित्व में आता है। आतंकवाद को राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इन रूपों में दर्शाया जा सकता है। (क) पृथकीय और अपृथकीय आतंकवाद (ख) दक्षिणपंथी और वामपंथी आतंकवाद, (ग) राष्ट्रवादी और पृथकतावादी आतंकवाद। इनको हल करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विविध तरीकों को गिना जाता है। समकालीन भूमंडलीय आतंकवाद मध्यपूर्व में उदय हुआ तथा धीरे धीरे इसकी शाखाएं अमरीका व पश्चिमी यूरोप के देशों में फैलती जा रही हैं। तकनीकि रूप से उन्नत हथियारों के प्रयोग ने आतंकवाद को गतिशील व प्राणघातक बना दिया है। आतंकवाद भिन्न देशों में भिन्न रूप में व्याप्त है तथा सरकार के भी इसे समाप्त करने के भिन्न भिन्न तरीके होते हैं। इस हेतु, अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का ग्रामीण व शहरी दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है। इन क्षेत्रों में आतंकवाद के भिन्न रूप होने की वजह से इन्हें रोकने के तरीके भी सामान्यतया भिन्न होते हैं। अंत में हमने यह बताया कि भूमंडलीय पैमाने पर बढ़ रहे आतंकवाद को कैसे रोका जा सकता है। प्रत्येक नई पीढ़ी के साथ उभरते हुए आतंकवाद के रूप के लिए कुछ कदम उठाने चाहिए जैसे जन दुर्घटनाओं को रोकना, नागरिकों व राज्य अधिकारियों के बीच सकारात्मक संपर्क स्थापित करना इत्यादि। शांति निर्माण में संयुक्त राष्ट्र संघ एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। विश्व के सभी देशों को साथ मिलकर इस संगठन के लिए धन की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे यह संकट के समय सकारात्मक कदम उठा सके। इसके अलावा, विश्व के अग्रिम देश विशेषकर अमरीका को आतंकवाद को रोकने के लिए प्रभावकारी कानून व नियम बनाने चाहिए। क्योंकि अंतिम रूप से ये ही देश प्रभावकारी होंगे। कानूनी प्रक्रिया को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सुदृढ़ करना चाहिए तथा नियंत्रण के साधनों को सख्ती से लागू करना चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.7 शब्दावली

भयभीत करना : अधीनता स्वीकार कराने के लिए किसी से लड़ना। आतंकवादी भयभीत करने की तकनीक का प्रयोग सरकार या नागरिकों को धमकाने के लिए करते हैं तथा उन्हें अपनी अवैध मांगों के सामने समर्पण के लिए तैयार करते हैं।

निगरानी : इसका अर्थ है गहराई से देखना। इसे निरीक्षण के विकल्प के रूप में प्रयोग किया जाता है।

गुरिल्ला : यह अनियमित सशस्त्रबल का एक सदस्य है जो कि अपने आपको स्थापित शक्ति अर्थात् सरकार से संघर्षरत्त रखता है।

प्राणघातक — घातक या खतरनाक। यह सामान्यतया हथियार से संबंधित है जिसका प्रयोग विध्वसंक काम में होता है जैसे कि आण्विक हथियार।

22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कलुटरबक, रिचार्ड, "**टेरैरिज्म इन एन अनसटेबलवर्ल्ड** (रॉटलेज, लंदन एण्ड न्यूयार्क, 1994)

घोष, एस के, "**टेरैरिज्म : वर्ल्ड अण्डरसीज,** (आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1995)

क्वारलेस, सी एल, "**टेरैरिज्म–अवाइडेन्स एण्ड संर्वाईवल** (लूटर वर्ल्ड –हेनिभान, यू एस ए, 1991)

राय, एन पी, **टेरैरिज्म –वाइलेन्स एण्ड ह्युमैन डिस्ट्रेक्शन–क्योजिज, इफेक्ट्स एण्ड कंट्रोल मिर्जेर्सेज** (अनमोल पब्लिशर्स, नई दिल्ली 1992)

वार्डलेक, जी "**पॉलिटिकल टेरैरिज्म** (कैम्बिज यूनिवर्स्टी प्रेस, 1982)

22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अंतर्राष्ट्रीय आंतकवाद में आतंकवादी संगठनों व ग्रुपों के बीच अंतर्राष्ट्रीय संपर्क होता है। ये संगठन एक दूसरे के समर्थन व धन को बढ़ाने में सहायता करते हैं तथा एक दूसरे के देशों में फायदे के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं उनके लिए अंतर्राष्ट्रीय सीमाएं कोई मायना नहीं रखती तथा ये अपनी मांग को विश्वस्तर पर प्रचारित करने का इरादा रखते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) आतंकवाद के भिन्न भिन्न रूप निम्न प्रकार से है।

   क) पृथकीय और अपृथकीय आतंकवाद

   ख) दक्षिणपंथी आतंकवाद और वामपंथी आतंकवाद

   ग) राष्ट्रवादी और पृथकतावादी आंदोलन।

बोध प्रश्न 2

1) कुछ शहरी आतंकवादी निकाय हैं– फिलिस्तीन का ईरगन जवाई लेयामी, ईरान का कट्टरतावादी संगठन, सद्दाम हुसैन तथा उसके समर्थक इत्यादी। शीरी आतंकवादी निकायों द्वारा अपनाई जाने वाली कुछ तकनीकें अग्रलिखित हैं—बम का प्रयोग, सम्पत्ति का विध्वंस करने के हिंसक साधन, किसी व्यक्ति को लक्ष्य बनाकर गोली मारकर हत्या अपहरण इत्यादि।

2) ग्रामीण आतंकवादी उसे कहते हैं जो अपनी आतंकवादी गतिविधियों को जंगलों व वनों में चलाते हैं तथा जो मुख्यतया ग्रामीण पृष्ठभूमि से होते हैं।

3) लैटिन अमरीका के वे देश जहां अभी भी आतंकवादी सक्रिय है वे हैं – कोलम्बिया, पेरू, एल साल्वाडोर इत्यादि।

बोध प्रश्न 3

1) आतंकवाद को रोकने के महत्वपूर्ण साधनों में एक खुफिया एजेंसी। अतः खुफिया तकनीक में सुधार करके आतंकवाद को रोका जा सकता है।

2) नागरिकों की सुरक्षा को बढ़ाकर व उन्हें पर्याप्त मात्रा में पुरस्कार देकर, इन्हें आतंकवाद के विरूद्ध में प्रमाण व संदेश देने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

इकाई 23 संचार प्रौद्योगिक में क्रांति

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 संचार के माध्यम
23.3 नई संचार प्रौद्योगिकी
23.4 संचार प्रौद्योगिकी से संबंधित मुद्दे
  23.4.1 संचार और राष्ट्रीय संप्रभुसत्ता
  23.4.2 संचार में असमानताएं
  23.4.3 नई अंतर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था
23.5 वर्तमान सूचना और संचार व्यवस्था
  23.5.1 अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर संचार प्रौद्योगिक का प्रभाव
23.6 सारांश
23.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
23.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम विद्यमान संचार और सूचना क्रांति के उदगम से जुड़े कुछ प्रमुख मुद्दों की समीक्षा करेंगे। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

DIKSHANT IAS

- प्रमुख संचार प्रौद्योगिकियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- संचार क्रांति से संबंधित मुद्दों पर चर्चा कर सकेंगे,
- संचार के संबंध में उठे कुछ प्रमुख मुद्दों पर विकासशील देशों की स्थिति को स्पष्ट कर सकेंगे, और
- विद्यमान संचार और सूचना प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताओं की पहचान कर सकेंगे।

Call us @7428092240

23.1 प्रस्तावना

प्रौद्योगिकी के इस युग में एक नाटकीय परिवर्तन यह हुआ है कि मानों विश्व एक ही स्थान पर सिमट कर आ गया हो अर्थात् विश्व में दूरियां हो गई हैं। इसके बहुत सारे कारण अथवा प्रभाव सूचना और संचार के क्षेत्र में हुए विकास में खोजे जा सकते हैं। संचार प्रौद्योगिकी की तीव्र गति और क्षमता ने आज हमारी अथाह अपेक्षाओं को भी पार कर दिया है।

इस डिजिटल (digital) युग अर्थात् यंत्रों के (स्विचों के) युग में आवाज, मूल पाठ, आंकड़े और वीडियो सेवाओं के बीच अब प्रौद्योगिकी में अंतर नहीं रहा है तथा उपग्रह के आने के बाद अब सेवाओं की लागत का संबंध दूरी या विश्व के किसी भूभाग से नहीं रह गया। इस नई प्रौद्योगिकी, जो वास्तव में सूक्ष्म तंतुओं से बनी प्रकाशीय यंत्र है, ने सेवाओं की परम्परागत तकनीकों के प्रावधानों को बेकार सिद्ध कर दिया है। यदि हम इस नेटवर्क को भूमंडलीकरण की दृष्टि से देखें तो इस नई प्रौद्योगिकी का आरंभ 1980 के दशक के आरंभ में हुआ इसलिए अब अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क के बीच कोई दूरी नहीं रह गयी। इन प्रौद्योगिकीयों के कारण विश्व पर गहरा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभाव पड़ा है तथा जिसमें से अधिकतम का प्रभाव अभी तक हमारे सामने नहीं आया है।

यद्यपि संचार में बहुत से सुधार हो रहे हैं किंतु यह आश्चर्य का विषय है कि उत्तर के विकसित देशों और दक्षिण के विकासशील देशों के बीच असमानताएं बढ़ती जा रही हैं। विकासशील देशों के

प्रयत्नों के बावजूद समाचारों एवं सूचना के प्रसारण में जो असंतुलन है उसे नष्ट करना चाहते हुए भी असंतुलन दिन ब दिन बढ़ता जा रहा है तथा सूचना प्रसारण के प्रवाह में असंतुलन व विकृति पैदा हो रही है।

सबसे पहले संचार प्रौद्योगिकियों की परीक्षा करेंगे तथा इसके बाद संचार प्रौद्योगिकियों से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों की पहचान करेंगे जैसे कि राष्ट्र की संप्रभुता का प्रश्न, सूचनाओं के प्रचारक–प्रसारण में असंतुलनता तथा अर्जित किये गये समाचारों में आई विकृति इत्यादि। फिर भी यह बात सर्वमान्य है कि इन प्रौद्योगिकियों के प्रभाव से संबंधित, पूर्व घोषणा करना तो बहुत ही कठिन है किंतु हम संचार के क्षेत्र में जो व्यापक प्रवृत्तियां चल रही है उनकी जाँच परख करेंगे। जो हमारे लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगी।

23.2 संचार के माध्यम

संचार के माध्यम विश्व के लोगों को एक दूसरे से जोड़ते हैं तथा ये व्यक्तियों के आपसी संबंधों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण साधन बने। विस्तृत रूप से जाना जाए तो संचार के माध्यमों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, प्रौद्योगिकी और गैर प्रौद्योगिकी। गैर प्रौद्योगिकी माध्यमों में भाषा, पर्यटन, आव्रजन तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठन आते हैं। इस अध्याय में हम कुछ प्रमुख प्रौद्योगिकीयों से संबंधित माध्यमों जैसे कि मुद्रित सामग्री, डाक सेवाएं, रेडियो तथा दूरदर्शन प्रसारणों, दूर संचार एवं कंप्यूटर संचारों का सर्वेक्षण करेंगे।

मुद्रित सामग्री

मुद्रित सामग्री संचार का ऐसा सशक्त माध्यम है जो चिरस्थायी होता है। साथ ही राष्ट्रों की सीमांए पार करके संपूर्ण विश्व में आसानी से पहुँच जाता है। वैसे प्रेस की खोज 16वीं शताब्दी में हुई थी। इसमें पुस्तकें समाचार पत्र, सर्वाधिक पत्र पत्रिकाएं आदि शामिल होती हैं जो विश्व के विभिन्न पाठकों तक अपने विचार पहुँचाती हैं। अभी हाल के दिनों में नई प्रौद्योगिकियों के आने से अब इस माध्यम को तुरन्त ही विश्वभर में बहुत ही सरलता से भेजा जा सकता है। लम्बे समय से, मुद्रित सामग्री एक देश से दूसरे देश में भेजने के लिए परिवहन माध्यम पर ही निर्भर करती थी किन्तु आज यह स्थिति समाप्त हो गई है। अपेक्षाकृत अब मुद्रित सामग्री वजन पर बहुत ही कम आधारित रह गई है। यह युग उपग्रह का युग है इसके माध्यम से किसी भी पुस्तक, समाचार पत्र, सर्वाधिक पत्र पत्रिकाओं को विश्व के सुदूर देशों में बैठे प्रकाशकों के पास और मुद्रित संयत्रों में प्रकाशित करने के लिए संपूर्ण सामग्री उपग्रह से तुरन्त वितरित हो रही है। इसके साथ ही एक ओर इलेक्ट्रॉनिक क्रांति के आने से परम्परागत प्रकाशक भी अब नए इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशन के तरीकों को अपने प्रकाशित ग्रन्थों के लिए अपनाने लगे हैं। इसके परिणामस्वरूप एक बार प्रकाशित पृष्ठों को कंप्यूटर या दूरदर्शन सेटों, टेलीफोन लाइनों, टी वी कैबलों, वीडियो डिस्क के माध्यम से विश्व के किसी भी भाग में बिना किसी बाधा के आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

डाक संचार

डाक संचार एक महत्वपूर्ण संचार का माध्यम है और इसका आरंभ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। और आज डाक संचार भूमण्डलीय संचार का लगभग सर्वव्यापक माध्यम बन गया है। परिवहन की तीव्र प्रगति और संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव इस माध्यम पर भी पड़ रहा है। अनेक देशों में आज निजी और सार्वजनिक कंपनियां एक्सप्रेस सर्विसेज में प्रतियोगिताएं कर रही हैं। जिससे विश्व के किसी भी देश में केवल दो दिन में उपभोक्ता सामान या पैकेज को निर्दिष्ट स्थान में भेजने में समर्थ है। इलेक्ट्रॉनिक मेल के माध्यम से एक डाकघर से दूसरे डाकघर में किसी भी सामग्री को पुनः प्रसारित करके तथा उसे उसके मूल रूप में परिवर्तित करके उसे प्रत्यक्ष रूप से गन्तव्य स्थान पर भेज दिया जाता है। व्यक्तिगत मेल के मामले में फैक्स मशीन डाक सेवा का स्थान ले रही है।

रेडियो प्रसारण

इस 20वीं शताब्दी के आरंभ से ही रेडियो एक महत्वपूर्ण साधन बन गया था जिसमें अंतर्राष्ट्रीय रेडियो ब्रोडकास्टिंग ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह बात विशेष ध्यान में रखनी चाहिए कि संचार के आधुनिकतम साधन उपलब्ध होने के बावजूद आज भी, विश्व के सैकड़ों देशों में

रेडियो समाचार प्रसारण, विचारों और मनोरंजन के लिए सशक्त साधन बना हुआ है। बी बी सी और वॉयस ऑफ अमरीका जैसे प्रसिद्ध रेडियो स्टेशनों से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों के सुनने वाले लोगों की विश्व में आज असीम संख्या मौजूद है।

उपग्रह दूर संचार

उपग्रह दूरसंचार का प्रारंभ 1960 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में हुआ। पहली वास्तविक संचार उपग्रह सेवा सिनेकाम III से मानी जाती है जिसके माध्यम से 1964 में हुए टोक्यो ओलम्पिक खेलों का आंखों देखा हाल पूरे विश्व में प्रसारित किया गया था। अगले वर्ष इन्टेल सेट ने विश्व का पहला व्यापारिक संचार उपग्रह, "अरली बर्ड" को भूमण्डल कक्ष में स्थापित किया। आज भूमण्डलीय इन्टेलसैट व्यवस्था विश्व के लगभग 80 प्रतिशत लम्बी दूरी के अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार यातायात को अपने में समेटे हुए है अर्थात् 80 प्रतिशत उपग्रह सेवाएं हमें यह माध्यम उपलब्ध कराता है।

कंप्यूटर संचार

डिजिटल क्रांति के पीछे प्रेरक बल जो है वह वास्तव में कंप्यूटर का 1980 के दशक म आना हुआ है। प्रौद्योगिकी के इस युग में कंप्यूटर से कंप्यूटर तक व्यापक संचार का साधन बन गया है। आज कंप्यूटर से संचार व्यवस्था विश्वस्तरीय हो गई है। कंप्यूटर के प्रयोग में नाटकीय रूप से वृद्धि हुई है जिसमें इसकी धारण क्षमता, गति तथा विश्वस्तता शामिल हैं तथा साथ ही इसके मूल्यों में भी भारी गिरावट आई है। अब लोग अपने व्यक्तिगत कंप्यूटर खरीदने लगे हैं और अंतर्राष्ट्रीय कंप्यूटर नेटवर्क में शामिल हो रहे हैं।

23.3 नई संचार प्रौद्योगिकी

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विश्वयुद्ध की घटनाओं के पश्चात संचार पर सीधा प्रभाव डालने वाली दो महत्वपूर्ण तकनीकों का विकास हुआ। इन तकनीकों में पहला संचार उपग्रह और दूसरा डिजिटल क्रांति है। यद्यपि संचार उपग्रह का प्रयोग तो 1960 के दशक में ही आरंभ हो गया था किंतु इसका पूरा लाभ 1980 के दशक में ही आरंभ हुआ। अब उपग्रह और डिजिटल संचार का सम्मिलित रूप से प्रयोग होने लगा है तथा जिससे आंकड़े, आवाज तथा चित्रों को राष्ट्रों की सीमाओं से पार भेजा जाने लगा है जिसके परिणामस्वरूप मौजूदा माध्यम की पहुँच को बढ़ावा मिला।

उपग्रह प्रौद्योगिकी

उपग्रह प्रौद्योगिकी आधारित संचार, 1957 के अंतरिक्ष युग के उदय होने के साथ साथ साकार हुआ है। यद्यपि पूर्व सोवियत संघ ने सबसे पहले अंतरिक्ष में पहला उपग्रह स्थापित किया था किंतु अमरीका ने सबसे पहले इसे प्रौद्योगिकी का प्रयोग संचार व अंतर्राष्ट्रीय गतिविधियों की जानकारी के लिए किया। एक संचार उपग्रह को पृथ्वी से अंतरिक्ष में लगभग 36,000 कि.मी. की दूरी पर स्थापित किया जाता है। इस ऊँचाईं पर उपग्रह स्थापित करने से पृथ्वी की सतह का तीसरा हिस्सा देखा जा सकता है अथवा उपग्रह के कार्यक्षेत्र में शामिल किया जा सकता है। एक उपग्रह को स्टेशनों के उन किसी भी नम्बर से जोड़ा जा सकता है जो इसके ऐंटेना किरजों से जुड़ा होता है जिसे फुट प्रिन्ट के नाम से जाना जाता है। इसकी किरणों के सभी बिंदुओं या लक्ष्यों की दूरी उपग्रह से समान दूरी पर होनी चाहिए। इसलिए हम कह सकते हैं कि उपग्रह दूरी के मामले में असंवेदनशील है। सन 1960 के दशक के मध्य से अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार उपग्रह संगठन (इनटेलैसर) एक उपग्रह मण्डल अंतर महाद्वीपीय दूरसंचार पर एक छत्र शासन करने लगा। इसके प्रतिपक्ष पूर्व समाजवादी देशों ने सन 1971 में अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष संगठन (इंटरसपूतनिक) की स्थापना की।. इसके अतिरिक्त अन्य उपग्रह संगठनों की भी स्थापना की गई ताकि विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। उदाहरण के लिए समुद्र की खोज के लिए इंटरनेशनल मेरीटाइम सेटेलाइट आर्गेनाइजेशन की स्थापना 1979 में की गई ताकि भूमि की खोज यानि भूमि संचार के लिए उपयोग किया जा सके। इसके साथ ही क्षेत्रीय स्तर पर अरबसैट तथा एशिया वीजन की स्थापना की गई। इसके अलावा अनेक देशों ने अपने अपने उपग्रह स्थापित किए ताकि उनकी अपनी घरेलू दूर संचार की आवश्यकताएं पूरी की जा सके। 1980 के दशक में अमरीका ने अंतरिक्ष को सार्वजनिक प्रतियोगिता हेतु खोल दिया। परिणामस्वरूप निजी उपग्रह व्यवस्थाएं अस्तित्व में आई

जिसने उपग्रह सेवाओं में इनटेलसैट के एकाधिकार को तोड़ दिया। इस तरह से अंतरिक्ष में उपग्रह स्थापित करने की आज विश्व में होड़ लगी हुई है।

डिजिटल क्रांति

इलेक्ट्रॉनिक एवं डिजिटल उन्नत साधनों की खोज ने संचार क्रांति को तीव्र गति प्रदान की है। मूल रूप से सूचना भेजने या प्रसारित करने के लिए दो तरह के दूर संचार के माध्यमों में से किसी एक को अपना कर कार्य संपादित किया जा सकता है। ये प्रकार है एनालाग या डिजिटल। ऐनालाग ट्रांसमीसन का प्रयोग इलेक्ट्रिकल संकेत देकर स्वर चित्र या आंकड़ों को भेजा जाता है। इस तरह से जब हम सूचना भेजते हैं तो हमें एक खास तरह का कार्य करना पड़ता है जैसे कि यदि स्वर ऊँचा है या तेज है ऐसी स्थिति में हम इलेक्ट्रॉनिक संकेत को तेज कर देंगे और यदि स्वर धीमा है तो संकेत को भी कम कर देंगे। वास्तव में विश्व के सभी दूर संचार के माध्यम एनालाग साधनों के माध्यम से ही आरंभ हुए थे। परन्तु आज तीव्र गति से उन सभी एनालाग साधनों का स्थान डिजिटल प्रौद्योगिकी ले रही है। डिजिटल संचार प्रणाली में सूचना को पृथ्क दोहरे डिजिटों (जीरो और वनस जिन्हें बिट्स यानि छोटे अंश कहते हैं) में बदला जाता है। इन अंशों को उनके वास्तविक रूप में सुरक्षित रखा जाता है और उनके असली रूप में बदला जा सकता है। फोन से डिजिटल कंप्यूटर आंकड़े भेजने के लिए एक मॉडम की जरूरत होती है जो एनालाग सूचना को डिजिटल में बदलती है। मॉडम टेलीफोन व्यवथा में वार्तालाप को डिजिटल के रूप में बदल दिया जाता है और उस वार्तालाप को तार या प्रकाशीय तंतुओं द्वारा प्रसारित किया जाता है।

डिजिटल प्रणाली की तरफ विश्वव्यापी प्रवाह ने एकीकृत सेवा डिजिटल नेटवर्क की स्थापना हेतु प्रेरित किया जो कि अंततः पहले के अलग संचार नेटवर्क को नवीन क्षमता वाली प्रणाली में सम्मिलित करेगा। जिसमें टेलीफोन, टेलीग्राफ, टेलीटेक्स, फैक्स, आंकड़े तथा वीडियों को शामिल कर दिया जायेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन नवीन संचार प्रौद्योगिकी, प्रमुख रूप से उपग्रह और डिजिटल नेटवर्क ने संचार के क्षेत्र में क्रांति पैदा कर दी है। संचार क्रांति ने अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बहुत सारे मुद्दे एवं गति पैदा कर दी है। दूरी और भूमि की सीमाओं को इस उपग्रह के युग ने अर्थहीन बना दिया है। अब वे दिन दूर नहीं हैं जब संचार का संजाल पूरे विश्व में बिछ जाएगा और राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सीमांकन के कार्यों का कोई मूल्य नहीं रहेगा। इसके साथ ही इस व्यवस्था का प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पड़ेगा। इन अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को ध्यान में रखते हुए हम अगले अध्यायों में दो महत्वपूर्ण मुद्दों यानि की राष्ट्री संप्रभुसत्ता और सूचना प्रवाह की समीक्षा करेंगे। ये दोनों मुंद्दे भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से संबंधित हैं। इन दोनों मुद्दों पर उत्तर के विकसित राष्ट्र और दक्षिण के नये उदित विकासशील राष्ट्रों के दृष्टिकोणों में भिन्नता है और इसका प्रमुख कारण दोनों के हितों का अलग होना है।

23.4 संचार प्रौद्योगिकी से संबंधित मुद्दे

23.4.1 संचार और राष्ट्रीय संप्रभुसत्ता

नई संचार प्रौद्योगिकी ने संप्रभुत्ता की अवधारणा के लिए बहुत सारी समस्याएं खड़ी कर दी हैं। संप्रभुत्ता का पारम्परिक अर्थ यह होता है कि कोई देश अपनी सीमाओं को दुश्मन की फौजों से सुरक्षित रखें, अपने देश में मौजूदा सम्पत्ति और तमाम संसाधनों को सुरक्षित रख सके तथा इसके साथ ही वह देश किसी दूसरे देश के हस्तक्षेप के बिना राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को अबाध रूप से स्थापित करने में समर्थ हो। इसी संप्रभुता की अवधारणा के आधार पर सूचना संप्रभुता का सिद्धांत स्थापित होता है। इसलिए वे राष्ट्र संप्रभुता के संपूर्ण अधिकार का प्रयोग करते हैं और संचार और सूचना को अपने क्षेत्र में क्षेत्रीय अखंडता के लिए महत्वपूर्ण साधन के रूप में लेते हैं और उस पर नियंत्रण रखते हैं। तथापि संदेश या समाचार निर्माण, उसका प्रचार प्रसार तथा उसकी प्राप्ति से संबंधित संचार और सूचना प्रौद्योगिकी राष्ट्रीय सीमाओं की बाधाओं की चिन्ता नहीं करती है। वे तो निर्बाध रूप से सीमाओं को तोड़ कर एक देश से दूसरे देश में पहुँच जाती है। यही प्रक्रिया नई संचार प्रौद्योगिकी से जुड़े मुद्दों को बढ़ावा देती है जो राष्ट्रीय संप्रभुत्ता सूचनाओं के प्रसार पर नियंत्रण रखती है। राष्ट्रीय संचार सुविधाओं के

विकास आदि में अपनी दखल देते हैं वह संप्रभुत्ता के लिए भयानक सिद्ध हो सकती है। आइए अब हम उपग्रह प्रौद्योगिकी के कारण पैदा हुए मुद्दों पर चर्चा करें।

हम यहाँ पर संप्रभुत्ता के संबंध में दो उदाहरणों को ध्यान में रख कर अपने तर्कों द्वारा समीक्षा करेंगे जो हमारे लिए बहुत लाभकारी सिद्ध होगी। ये उदाहरण हैं: सीधा प्रसारण उपग्रह और दूरवर्ती नियंत्रण संवेदी उपग्रह। 1960 के दशक के आरंभ में ही सीधे प्रसारण उपग्रह का आविष्कार हुआ था तब ही से राष्ट्रीय संप्रभुत्ता का मुददा उठता रहा है। अंतरिक्ष में लगा हुआ एक उपग्रह पृथ्वी की सतह का तीसरा हिस्सा आसानी से अपने कार्य क्षेत्र में समेट लेता है। इसे दूसरे शब्दों में इस तरह से कह सकते हैं कि चाहे इच्छा हो या न हो उपग्रह के सिगनल दूसरे राष्ट्रों के क्षेत्रों में अपनी विकिरणों को अवश्य ही फैला देता है और उनके क्षेत्रों में वहाँ की प्रत्येक होने वाली गतिविधियों के चित्र स्वर, आंकड़े यहां तक कि पद्चिन्हनों को लेने में भी सक्षम होता है। वास्तव में इसके पदचिन्हों (सिगनल द्वारा भौगोलिक क्षेत्रों को शामिल करने का साधन) को कभी भी निश्चित क्षेत्र में स्थापित नहीं किया जा सकता है। उपग्रह का क्षेत्र हमेशा ही सीमाओं की परिधि से बाहर होता है।

कुछ इस तरह का तर्क दिया जा सकता है कि अनावश्यक सिगनलों से बचने के लिए किसी भी देश को इसका विरोध करना चाहिए। इसके साथ ही ऐसा भी है कि उपग्रह के माध्यम से सीधे दूरदर्शन प्रसारण जब एक देश से दूसरे देश में किया जाता है तो इसकी सहमति उस देश से ही ली जाती है जो प्रसारण कर रहा है साथ ही जो प्रसारण प्राप्त कर रहा है उसकी सहमति भी आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं करते हैं तो किसी भी देश की संप्रभुसत्ता का उल्लंघन होता है साथ ही उस देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय संस्कृति को हानि होती है। दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि उपग्रह के सीधे प्रसारण को रोकने के लिए कानून बनाने का अर्थ है सूचना की स्वतंत्रता को नष्ट करना व उसे डराना धमकाना है। इस विचार के मानने वालों में अमरीका सबसे आगे है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपग्रह प्रौद्योगिकी ने भी बाहय आकाश के अधिक प्रवेश के संबंध में अनेक विवाद पैदा किए हैं। जबकि वायुमंडल कानून इस बात की इजाजत देता है कि कोई भी राष्ट्र अपने वायुमंडल में संप्रभुसत्ता रखता है जबकि आकाशीय विधि के सिद्धांत किसी भी देश को बाहय आकाश के प्रयोग की छूट देता है जिसमें चन्द्रमा तथा अन्य खगोलीय पिंडों के प्रयोग करने की अनुमति शामिल है। यह प्रयोग बिना किसी संप्रभुसत्ता का दावा किए और राष्ट्रीय विनियोग के बिना समानता के अधिकार पर खुला प्रयोग किया जा सकता है। बाहय आकाश कानून और वायुमंडल कानून दोनों ही व्यासीय आधार पर सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप से एक दूसरे का अंतर्विरोध लिए है। इसके अलावा अभी तक इस मुद्दे का संतोषजनक समाधान नहीं निकल पाया है कि कहाँ पर एक देश का वायुमंडल समाप्त होता है और कहाँ से बाहय आकाश आरंभ होता है। वायुमंडल और बाहय आकाश से संबंधित मुद्दों को बहुत ही स्पष्ट रूप में वैन कारमैन लाइन में उजागर किया है। इसमें कहा है कि राष्ट्र अपने परम्परागत बिंदु तक संप्रभुसत्ता का दावा कर सकते हैं जो उनके देश की सीमाओं में वायुमंडल और भूमंडल आता है इस लाइन के पश्चात एक राष्ट्र की वायुमंडल पर संप्रभुसत्ता वहाँ पर लागू नहीं होती है जहाँ पर उसकी सीमा नहीं है अर्थात वहाँ पर यह समाप्त हो जाती है।

यह परिभाषा भी विवादरहित नहीं है, ज्यामिति के हिसाब से संचार उपग्रहों को आदर्श रूप में भूमध्य रेखा के ऊपर 36,000 कि.मी. की दूरी पर स्थापित किया जाता है। इसलिए जो देश भूमध्य रेखा के आस पास होते हैं उन्हें उपग्रहों के सिगनलों को प्राप्त करने में बहुत ही आसानी होती है क्योंकि वे देश मौसम की पतली परत से इसका बहुत ही आसानी से लाभ उठा सकते हैं इसका मुख्य कारण यह है कि सिगनल बिन्दु उन देशों के नजदीक पड़ते हैं। परन्तु यह भी एक वास्तविकता है जिओ--स्टेशनरी आरबिट (GSO) की संख्या सीमित है और उपग्रहों को अंतरिक्ष में एक दूसरे के नजदीक संख्या में स्थापित नहीं कर सकते हैं दूसरी ओर उन बहुत सारे देशों और निगमों की संख्या में अत्याधिक वृद्धि हो रही है जो उपग्रह स्थापित करने के बेहद इच्छुक है। सन 1976 में बोगोटा घोषणा के बाद नौदेशों ने भूमध्य रेखा को अपना कर उसमें उपग्रह स्थापित किए थे उन देशों का दावा है कि जिओ स्टेशनरी आरबिट भूमध्य रेखा पर उन देशों का स्थित होने के कारण उनका प्राकृतिक संसाधन है इसलिए इस क्षेत्र में उनकी संप्रभुसत्ता का अधिकार बनता है। इन नौ देशों का कहना है कि जी एस ओ में कोई भी देश किसी तरह की कोई वस्तु अथवा उपग्रह उनकी अनुमति के बिना स्थापित नहीं कर सकते हैं। साथ ही उन देशों को यह भी भय है कि जी एस ओ की संख्या सीमित है और उन्हें यह उस समय उपलब्ध नहीं होते हैं जब उनको

इसके प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। इस स्थिति को और अधिक विवाद में डालने वाले दो बड़े देश हैं अमरीका और पूर्व सोवियत संघ जो दोनों ही विश्व में सबसे अधिक भाड़े पर उपग्रहों को उपलब्ध कराते हैं और जिनका इस क्षेत्र में एकछत्र शासन है।

आज वास्तव में जी एस ओ पर संप्रभुसत्ता के अधिकार के सवाल पर चार प्रमुख स्थितियां बनी हुई हैं। पहली स्थिति का प्रणेता है संयुक्त राज्य अमरीका। इनका कहना है कि जी एस ओ के प्रयोग के लिए समय निर्धारित करने के लिए "पहले आओ, पहले पाओ" का सिद्धांत सुझाते हैं। दूसरे सिद्धसंत के निर्माता है पूर्व सोवियत संघ। सोवियत संघ का मानना है कि उनके "वेन कारमैन सिद्धांत" में वायुमंडल और बाह्य आकाश की सीमाओं को साफ साफ अंकित किया हुआ है जो समुद्र की तल से एक खास ऊंचाई पर उपग्रहों को स्थापित करने और उससे संबंधित देश की संप्रभुसत्ता को निर्धारित किया हुआ है। इस तरह से वायुमंडल के नीचे आने वाली सीमाएं संप्रभु की संपत्ति मानी जायेंगी और इसके बाद की सीमाएं बाह्य आकाशीय क्षेत्र माना जाएगा जिसमें प्रवेश करना सबके लिए खुला होगा।

इस संबंध में तीसरे दृष्टिकोण को मानने वाले विकासशील देश हैं। विकासशील देशों की मांग है कि अंतरिक्ष स्थिति और फ्रिक्विन्सिज दोनों को सार्वभौमिक रूप से प्राथमिकता के आधार पर आबंटित किया जाना चाहिए। ये देश इस सिद्धांत के पक्ष में है कि एक अंतर्राष्ट्रीय समाज मान्य संस्था के तहत संगठन स्थापित किया जाए तथा उसके अंतर्गत सबको जी एस ओ का प्रयोग करने का समान अधिकार मिलना चाहिए। चौथा और अंतिम दृष्टिकोण उन देशों का है जो भूमध्य रेखा पर स्थिति है। ये देश विकासशील देशों के इस सिद्धांत का समर्थन तो करते हैं कि जी एस ओ के प्रयोग के लिए पूर्व आवंटित किया जाए किंतु साथ ही उनका दावा है कि उन देशों की भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उनकी संप्रभुसता को मध्य नजर रखते हुए उन्हें इसके प्रयोग के लिए प्राथमिकता का अधिकार दिया जाए।

संप्रभुसता के सवाल को भूमि प्रेक्षण उपग्रह अथवा दूर से नियंत्रित संवेदी उपग्रहों के वर्ग के प्रयोग के लिए भी उठाया गया था। यह उपग्रह खोज करने, माप, उपाय तथा द्रव्यों या पदार्थों का पता लगाने व उनके विश्लेषण का कार्य करते हैं। यह उपग्रह अंतरिक्ष से सीधे पृथ्वी के ऊपर और उसके अंतस्थल में एक भेदिए की तरह कार्य करते हैं। इसमें तनिक भी शंका नहीं है कि इन उपग्रहों के माध्यम से एकत्रित किए गए आंकड़े से जागरूक देश अर्ध जागरूक देशों पर राजनीतिक और आर्थिक शक्तियां स्थापित करते हैं। इन उपग्रहों से तेल के भंडारों, फसल अच्छी है या खराब और खनिजों के भंडारों का पता लगाया जाता है जो किसी भी सरकार तथा निगमों के लिए अपनी घरेलू योजना बनाने और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बेहतर तरीके से सौदेबाजी के लिए अत्याधिक सहायक और लाभदायक सिद्ध होते हैं। इसके साथ ही अंतर्राष्ट्रीय कानून राष्ट्रीय सरकारों को अपने प्राकृतिक संसाधनों पर संप्रभुसत्ता को स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है। परन्तु यहाँ पर यह मुद्दा साफ तौर पर हमारे सामने उठता है कि क्या वास्तव में इन राष्ट्रों का इन संसाधनों की सूचना पर पूर्णरूप से संप्रभुत्ता प्राप्त है। यह एक अध्ययन का विषय है कि अमरीका का लैंडसेट फ्रांस का स्पॉट भारत को आइर्स उपग्रह अथवा अन्य दूसरे व्यापारिक दूर सनिसंत्रिक संवेदी उपग्रह जो एशिया या अफ्रिमा के कुछ क्षेत्रों में उपलब्ध महत्वपूर्ण खनिज पदार्थों और तेल के भण्डारों का गुप्त रूप से पता लगाते हैं, यह उपग्रह जो सूचना एकत्रित करते हैं वे किसके लिए करते हैं और इनका उपयोग किस के विरूद्ध कौन करता है। आश्चर्य का विषय तो तब बनता है जब किसी देश के मौजूदा प्राकृतिक संसाधनों का और उन सूचनाओं का जो उसे पता ही नहीं होती है कि उसके पास साधनों का कितना भंडार उपलब्ध है जबकि जिस देश के या निजी निगम के यह खोजी उपग्रह कार्य करते हैं तथा जिन्हें इन संसाधनों का प्रयोग करना है वे उस देश से कहीं अधिक जानते हैं जिसके पास वास्तव में ये भण्डार मौजूद हैं। इसलिए कुछ विकासशील देश जिनमें ब्राजील सबसे आगे है वह देर नियंत्रित संवेदन तकनीकी अथवा अन्य उन्नत संवेदन तकनीकों के प्रयोग के नितांत विरूद्ध हैं तथा उसका कहना है कि इन तकनीकों का तब तक प्रयोग न किया जाए जब तक संबंधित राष्ट्र अपनी सहमति प्रकट न कर दें। इन उपग्रहों की प्रणाली से प्राप्त किए गए विस्तृत आर्थिक आंकड़े कम्पनियों को उपलब्ध कराए जाते हैं जिन्होंने उन राष्ट्रों का दोहन करना है और मजे की बात यह है कि जिनसे संबंधित यह आंकड़े होते हैं उन स्थानीय राष्ट्रों के प्राधिकारियों के पास उपलब्ध ही नहीं होते हैं। इन देशों का यह भय बन गया है कि दूर नियंत्रित संवेदी उपग्रहों द्वारा प्राप्त किए गए आंकड़े और असीमित उपलब्ध उपग्रहों की संख्या कम करने के लिए कोई नीति कारगर सिद्ध नहीं हो रही है। इसके साथ ही यह भय भी समा गया है कि अधिकतर राष्ट्रों के पास ऐसे सक्षम और दक्ष कार्मिक भी मौजूद नहीं है जो दूरनियंत्रित संवेदित उपग्रहों से प्राप्त आंकड़ों का दोहन कर सके, उनकी व्याख्या कर सके चाहे

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उन्हें आंकड़े ही क्यों न उपलब्ध करा दिए जाए। वास्तव में यह तथ्य भी एक भयंकर स्थिति को दर्शाते हैं।

इस विवाद का अंतिम समाधन सन 1986 में सामने आया जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने बाह्य आकाशीय क्षेत्र से संबंधित पृथ्वी के दूर नियंत्रित संवेदी उपग्रह से संबंधित नियमों का निर्माण किया। यह नियम दूर नियंत्रित संवेदन उपग्रहों के मार्गदर्शक एवं आचरण के संबंध में पहला कदम था जिसे अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से मान्यता प्राप्त हुई। इस समझौते के बाद संवेदी राष्ट्रों ले अपनी इस मांग को त्याग दिया कि आंकड़े प्रसारित करने से पूर्व सहमति लेना आवश्यक है। परन्तु यह सिद्धांत इस बात की गारन्टी देता है कि कोई भी जागरूक राष्ट्र इन सभी आंकड़ों को प्राप्त कर सकता है। दरअसल हाल के कुछ वर्षों से दूर नियंत्रित संवेदन उपग्रहों से जुड़े वाद विवाद को पुनः जीवित कर दिया है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय समाचार एजेंसियों और व्यापारिक नेटवर्कों द्वारा इन सुविधाओं का इस्तेमाल और उनके प्रयोग का मुद्दा उठ खड़ा हुआ है। जब से अंतरिक्ष युग का आरंभ हुआ है तब से दो अंतरिक्ष महाशक्तियां संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ संवेदी तकनीकों पर आधारित उपग्रहों का भरपूर उपयोग करते आ रहे हैं। इसके साथ ही वे इन साधनों के माध्यम से एक दूसरे के विरूद्ध सैनिक हथियारों की होड़, उनको स्थापित करना तथा एक दूसरे की गुप्त गतिविधियों एवं कार्यकलापों की निगरानी करना शामिल है। वे इन उपग्रहों के माध्यम से यह भी पता रखते हैं कि सैन्य शस्त्र नियंत्रत समझौते का कितना पालन हो रहा है। 1980 के दशक के आरंभ में उच्चतम वर्गीकृत उपग्रहों द्वारा एकाधिकार प्राप्त सरकार नाभिकीय और मिसाइल जैसे भयंकर हथियारों की होड़ की गतिविधियों की निगरानी में जुटी थी उसी समय जब अंतर्राष्ट्रीय समाचार एजेंसियों तथा व्यापारिक नेटवर्क द्वारा दूर नियंत्रित संवेदी उपग्रहों से प्राप्त आंकड़ों तथा व्यापारिक नेटवर्क द्वारा दूर नियंत्रित संवेदी उपग्रहों से प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग करने लगे और इस से संबंधित सरकारों का एकाधिकार समाप्त हो गया। इसलिए 1980 के दशक के आरंभ में ही यू एस के एक दूरदर्शन के दर्शक ने लैडसैट पर केरनाबाई 1 का चित्र देखा यह नाभिकीय बम का चित्र था जो भयंकर दुर्घटना ग्रस्त होने वाला था। याद रहे इसकी सूचना सोवियत संघ से पहले प्राप्त हुई थी जिससे एक भयंकर दुर्घटना होने से बची। इसके साथ ही एक और उदाहरण को देखिए। ए बी सी नामक समाचार एजेंसी द्वारा लैडसैट पर चित्र देखे जा रहे थे। अचानक देखा कि ईरान अपने यहाँ चीन में बनी " सिल्कवर्म" नामक मिसाइल स्थापित कर रहा है। इस रहस्य का पर्दापाश उपर्युक्त ए बी सी एजेंसी ही ने किया था। इस तरह से हम देखते हैं कि ये सब अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक प्रक्रिया भविष्य की परम्पराओं को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण साधन तो है ही साथ में अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए भी आबद्ध है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना किजिए।

1) संचार के कुछ गैर तकनीकी साधन हैं :

क) .... ख) ....ग) ....

2) बोगोटा घोषणा के अनुसार

....

....

....

....

3) जीओ स्टेशनरी आर्बिट पर संप्रभुता के संबंध में विभिन्न राज्यों की क्या स्थिति है ?

....

....

....

23.4.2 संचार में असमानताएं

आज विश्व में एक व्यापक संचार क्रांति आने के बावजूद इसका लाभ सब लोगों को समान रूप से नहीं मिल रहा है। वास्तव में जिस तेजी से संचार प्रौद्योगिकी का विस्तार हुआ है उससे अधिक तीव्र गति से असमानताएं बढ़ी हैं। इस संचार के माध्यम से एक और ढेर सारी सूचनाओं का संचय हुआ है वहीं पर दूसरी और इन सूचनाओं का बेहद अभाव है। ये असमानताएं देशों के मध्य ही नहीं अपितु लिंग, अर्थात् स्त्री–पुरूष के बीच भी है। ये असमानताएं ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के बीच भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं यह दुनिया के गरीब राष्ट्रों व सम्पन्न राष्ट्रों के बीच भी है। वजह, राष्ट्रों के मध्य आर्थिक असमानताएं परिणामस्वरूप दोनों के बीच खाई बढ़ी जिससे दोनों दुनिया में कोई भी संचार से प्राप्त सूचनाओं का अंतर कर सकता है। धनी देशों के पास व्यापक एवं उत्कृष्ट सूचना होती है तथा निर्धन देशों के पास अपेक्षाकृत काफी कम सूचनाएं होती हैं जो देश धनी हैं साधन सम्पन्न है वे तुरन्त ठीक ठीक सूचनाएं समय पर प्राप्त कर लेते हैं जो अभावग्रस्त एवम् निर्धन देश है उन्हें सूचनाएं देर से और बासी होकर मिलती हैं जिनका उस समय तक कोई महत्व नहीं रह जाता है। दरअसल तथ्य यह है कि श्रेष्ठ सूचनाओं का जो भंडार है वह तो केवल धनी राष्ट्रों के पास मौजूद है और उनका वास्तविक भोग वहाँ के धनी और श्रेष्ठ जन अथवा उच्च वर्ग कर रहा है जो उन राष्ट्रों के नागरिक हैं। अतः सूचनाओं एवं संचार की सभी सुविधाएं धनी राष्ट्रों और वहाँ के उच्च वर्गो के समूहों के आस पास ही घूम रही हैं। वे ही इसका जम कर इस्तेमाल कर रहे हैं। अन्य निर्धन देश इनकी मेहरबानी पर जिन्दा हैं।

एक शताब्दी से भी अधिक समय से उत्तरी एटलांटिक समाचार एजेंसियों ने पूरे विश्व को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाकर राष्ट्रों को धनी निर्धन देशों में विभाजित किया हुआ है। इन एजेंसियों ने विश्व के मार्गों, समुद्री मार्गों, समुद्रपार केबलस, टेलीग्राम, तथा रेडियो के माध्यम से भी सूचना दी जाती है वे सब सूचनाएं औपनिवेशिक मार्गों के माध्यम से जाती है अर्थात् ये सूचनाएं इन चार एजेंसियों के रहमोकरम पर निर्भर है तथा इनकी बेहद आलोचनाएं भी होती रहती हैं कि यह लोग सूचनाओं को अपने ढ़ग से तोड़ मरोड़ कर विश्व के लोगों के समक्ष रखते हैं जिनमें तथ्य कम और स्वार्थ अधिक शामिल होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ये चार अंतर्राष्ट्रीय सूचना एजेंसियों – एसोसिएट प्रेस (ए पी) युनाइटिड प्रेस इंटरनेशनल (यू पी आई), एजेंस फ्रांस प्रेस (ए एफ पी) तथा राइटर है जो अधिकांश समाचार–सूचनाओं को विश्व के कोने-कोने में प्रसारित करती है। जैसा कि हम आज भी देखते हैं कि उपग्रहों, दूरदर्शन, प्रकाशकीय सूत्रों एवं कंप्यूटर संचार की अधिकतम सूचनाएं लगातार इन्हीं उत्तरी एटलांटिक एजेंसियों के पास मौजूद होती हैं और इन्हीं के माध्यम से पूरी दुनिया में प्रसारित होती है। सिनेमा एवं दूरदर्शन के कार्यक्रम बड़े निर्यातक देशों से शेष दूनिया में एक ही दिशा में प्रवाहित होते हैं।

संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) का 1945 के आरंभ से ही मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि शिक्षा और अनुसंधान के माध्यम से सभी राष्ट्रों में आपसी समझ पैदा करके शांति स्थापित की जाए और अपने राष्ट्र सदस्यों को संचार के ढ़ांचागत मूल आधारिक साधनों को उपलब्ध करा कर उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाए।

सन 1952 के आरंभ में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने इस संदर्भ में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये थे :

"यह बहुत आवश्यक हो गया है कि विकासशील देशों में रहने वाले लोगों के लोकमत के समुचित विकास के लिए स्वतंत्र घरेलू सूचना उद्यमों को लगाने के लिए सुविधाएं और सहायता दी जाए ताकि वे भी अपनी राष्ट्रीय संस्कृति और अंतर्राष्ट्रीय समझ में अपना सहयोग दे सकें और सूचना प्रसारित करके कार्य में उनकी भागीदारी हो इस संबंध में अब ठोस और प्रत्यक्ष कार्यक्रमों तथा कार्य योजना बनाने का समय आ गया है।"

इस संदर्भ में यूनेस्को ने 1960 के दशक में मौजूदा संचार प्रौद्योगिकियों का विश्वव्यापी सर्वेक्षण किया था। जिसमें उसने अपने निष्कर्ष में कहा था कि विकसित और विकासशील देशों की संचार प्रौद्योगिकियों में जमीन आसमान का अंतर है। इस अंतर को समाप्त करने के लिए यह बहुत आवश्यक हो गया है कि विकाशील देशों को दी जाने वाली सूचनाएं और संचार के साधन एक तरफा न हों। उन्हें तोड़ मरोड़कर दी जाने वाली सूचनाएं बन्द हों और उसके स्थान पर स्वतंत्र रूप से वास्तविक और तथ्यपरक सूचनाएं दी जाएं ताकि विकास का वास्तविक ढांचा बनाया जा सके और उनका सहयोग भी लिया जा सके।

1970 के दशक में नए उदित राष्ट्र एक मंच पर एकत्रित हुए और उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था की पुनः संरचना की बलपूर्वक मांग उठाई। इसके साथ ही गुट निरपेक्ष आंदोलन के देशों ने एशिया, अफ्रिका और लेटिन अमरीका में मुक्ति आंदोलन चलाए जिसमें इन्हें काफी सफलता मिली है। यह संगठन दुनिया के दो तिहाई हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है। जिसने जोर देकर मांग की है कि विश्व में एक नई अंतर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था की स्थापना हो जो विश्व के मानव के लिए हितकारी हो तथा उसे जो भी संचार और सूचनाएं प्राप्त हों वे निष्पक्ष और स्वतंत्र हों ताकि वे भी विश्व शांति और परस्पर समझ बढ़ाने में अपना सहयोग दे सकें और संचार संबंधी असमानताएं भी समाप्त हो जाएं।

23.4.3 नई अंतर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था

नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर छिड़ी बहस के संदर्भ में नई सूचना व्यवस्था की मांग उठी है। यह याद रहे गुट निरपेक्ष आंदोलन ने नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था (एन आई ई ओ) की अवधारणा को विकसित किया है क्योंकि निर्गुट आंदोलन की विशेष भूमिका रही है। इस आंदोलन का मानना है उत्तर और दक्षिण के बीच एक रवाई है जिसका मूल कारण इन देशों का आर्थिक ढांचा है। अतः इस आर्थिक ढांचे को समान करना होगा। यह विकसित देशों के सकारात्मक सहयोग व विकासशील देशों की संगठित मांग करने से ही संभव होगा। बिना सहयोग के इन देशों में समानता का आ पाना अधिक काल्पनिक लगता है।

इसी माध्यम से लोगों के न केवल पूंजीगत और प्रौद्योगिकी की ओर विकास मूलक कार्य होंगे अपितु समानता और स्वतंत्रता के मूल्यों में भी वृद्धि होगी। इसलिए नीओ (एन आई इ ओ) की मांग है कि उत्तरी और दक्षिणी औद्योगिक राष्ट्रों के साथ अच्छे व्यापारिक संबंध स्थापित करके उद्योगों को बढ़ाया जाए जिसमें यह शर्त शामिल हो कि पुंजी, श्रम प्रौद्योगिकी जैसे उत्पादन सम्पतियों पर स्थानीय लोगों का अधिक नियंत्रण हो। निर्गुट आंदोलन ने यह भी अपनी मांग रखी है कि औद्योगीकृत राष्ट्रों द्वारा विकासशील देशों में अधिक से अधिक निवेश करें और विश्व की अर्थव्यवस्था से जुड़ी संस्थाओं में विकासशील देशों की अत्याधिक भागीदारी को निश्चित किया जाए। इस मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र संघ ने विशेष चर्चा का विषय बनाया था तथा काफी बहस के बाद निष्कर्ष के रूप में सन् 1974 में एक नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की घोषणा की थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्थ की चर्चा में यह स्पष्ट किया गया था कि नई सूचना व्यवस्था की मांग बाद की है, पहले उन मूल्यों को शामिल करना है जिन पर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है और वे हैं आर्थिक सम्पन्नता से संबंधित मुद्दे। इसलिए गुट निरपेक्ष राष्ट्रों ने कहा कि बिना अर्थव्यवस्था ठीक किए अन्य सब कार्य व्यर्थ है। जहाँ तक संचार व्यवस्था का प्रश्न है यह बाद का मुद्दा है पहले आर्थिक क्रियाकलाप महत्वपूर्ण है क्योंकि अर्थव्यवस्था वह इंजन है जिससे संचार को आगे ले जाना है।

1973 में गुट निरपेक्ष आंदोलन की अल्जीरिया में एक बैठक हुई जिसमें इस संगठन ने मांग की थी कि मौजूदा संचार माध्यमों को पुर्नगठित किया जाए क्योंकि यह पुराने हैं और ये औपनिवेशिक व्यवस्था के पक्षधर हैं। इसके बाद में नई सूचना व्यवस्था पर अनेक बार बहुत जोरशौर से चर्चा हुई जो नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के साथ चलती रही। 1976 में नई दिल्ली में सूचना के विऔपनिवेशीकरण पर घोषणा की गई जिसमें सूचना के संतुलित प्रसारण के सारगर्भित निष्कर्ष पर केस रखा गया जो निम्न प्रकार है :

- वर्तमान में जो भौगोलिक सूचना प्रसार होता है वह अत्याधिक अपर्याप्त और असंतुलित है। संचार सूचना के साधन थोड़े से देशों के संकेन्द्रित हो गए है। अधिकतर देश सूचनाओं को तोड़ मरोड़ कर प्रसारित करते हैं। जिससे सूचना पाने वाला देश अल्प या अधूरी सूचना प्राप्त कर पाता है।

- निर्भरता और आधिपत्य के युग की औपनिवेशिक स्थिति अब तक बनी हुई है। कुछ थोड़े से लोगों के हाथों में निर्णय लेने की शक्ति है जो यह निर्णय करते है कि शेष दुनिया को क्या जानना चाहिए और कितना जानना चाहिए।

- शेष कार्य सूचनाओं को प्रसारित करने का है वह भी वर्तमान में कुछ एजेंसियों के हाथों में है और वे भी विकसित देशों में है। विश्व के बाकी लोग एक दूसरे को इन संचार माध्यमों से देखते रहते हैं और वह भी इन्हीं सूचना एजेंसियों के माध्यम से।

- जिस तरह से राजनीतिक और आर्थिक निर्भरता औपनिवेशिक युग की मजबूरी है उसी तरह से सूचना के क्षेत्र में भी बनी हुई है जिसके कारण राजनीतिक और आर्थिक विकास की उपलब्धियां कम हुई हैं या यूं कहें कि इनके चलते विकास ठप्प हो गया है।

- इस स्थिति में कुछेक लोगों के हाथों में सूचना के साधन है जिन पर उनका आधिपत्य और एकाधिकार है। सूचना देने की स्वतंत्रता उन लोगों के पास है जो सूचना को प्रचारित करते हैं। वास्तव में ये ही लोग शेष विश्व के सूचना प्राप्त करने के अधिकारों का हनन करते हैं।

इसलिए सूचनाएं उद्देश्यपरक और तथ्यपरक रूप में दी जानी चाहिए। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि गुट निरपेक्ष आंदोलन ने मात्र आलोचना करके ही नहीं छोड़ दिया था उसने विश्व की सूचना प्रचार प्रसार में असंतुलन को समाप्त करने के उद्देश्य से कुछ प्रत्यक्ष कार्य आरंभ किए हैं। 1975 में नॉन अलाइनड न्यूज एजेंसी पूल की स्थापना करके सूचना उपलब्ध कराना आरंभ कर दिया जो सामान्यतः पश्चिमी न्यूज सर्विसिज में नहीं थी। 1977 में गुट निरपेक्ष आंदोलन ने गुट निरपेक्ष देशों के प्रसारण संगठन की स्थापना कर दी जो सदस्य देशों में समाचार उपलब्ध कराता है और बाहर समाचार प्रसारित करता है।

कोलम्बों सम्मेलन की बैठक में गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने स्पष्ट रूप से पहली बार कहा कि "सूचना और जन संचार के क्षेत्र में नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था उसी तरह से विस्तृत और महत्वपूर्ण है जिस तरह से नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था है।" गुट निरपेक्ष आंदोलन के विस्तृत प्रयासों के परिणाम स्वरूप जिसमें सूचनाओं के औपनिवेशीकरण को समाप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। इस संदर्भ में सन 1978 में यूनेस्को ने संचार समस्याओं के अध्ययन के लिए अंतर्राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की। यह आयोग, मैकब्रिडे कमीशन के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अध्यक्ष सीन मैक ब्रिडे नियुक्त किए गए थे। आयोग ने 1980 की महासभा में "अनेक स्वर एक विश्व" Many voice, one world नामक शीर्षक से अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। मैक ब्रिडे आयोग ने अपनी रिपोर्ट में एक नई विश्व सूचना और संचार व्यवस्था (NWICO) की स्थापना के लिए सशक्त सिफारिश की और संचार के लोकतांत्रिकरण पर विशेष बल दिया। इस रिपोर्ट में कहा कि संचार में व्यापारवाद को कम किया जाए तथा मीडिया की भूमिका पर जोर देते हुए कहा कि वे शोषित लोगों की स्वतंत्रता के लिए काम करें और उन्हें सत्य एवं निष्पक्ष सूचना उपलब्ध करायें। आयोग ने यूनेस्को की भूमिका के कार्यान्वयन के लिए विशेष रूचि लेते हुए ठोस कदम उठाए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तथापि अंतर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था स्थापित करने की आयोग की सिफारिशों का पश्चिमी देशों की सरकारों द्वारा कड़ा विरोध व्यक्त किया। इन देशों की प्रेस तथा प्रकाशकों ने समूहों में संगठित होकर नई सूचना व्यवस्था का इस आधार पर विरोध भी किया कि इस प्रकार सूचना व्यवस्था पर सरकारों का नियंत्रण हो जायेगा जिससे जो स्वतंत्रता बनी हुई है वह नष्ट हो जायेगी। इन लोगों ने विशेष कर इस अनुच्छेद का जम कर विरोध किया जिसमें यह कहा गया है कि "राज्य अपने अधिकार क्षेत्र में सभी जनमाध्यमों के अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में होने वाली गतिविधियों अथवा कार्यकलापों के लिए पूर्ण रूप से जिम्मेदार होंगे।" संयुक्त राज्य अमरीका इस बात पर अप्रसन्न था कि यूनेस्को ने अपने कार्यक्रमों को विकासशील राष्ट्रों के राष्ट्रीय संचार के विकास में जो एक निजी क्षेत्र है प्रभाव डालने और उसके कार्यक्रमों में भागीदारी तक सीमित कर दिया है। और अंत में संयुक्त राज्य अमरीका ने सन 1984 में यूनेस्को से अपना समर्थन यह कह कर वापस ले लिया था कि वे कार्यक्रम सूचना और स्वतंत्र बाजार व्यवस्था के लिए खतरनाक साबित होंगे। उन्होंने यह भी दावा किया कि भविष्य में यूनेस्को के संचालन में रूस का हस्तक्षेप हो जाएगा और प्रेस की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जायेगी। इसके ठीक एक वर्ष के बाद ब्रिटेन ने भी यूनेस्को से अपना नाम वापस ले लिया।

संयुक्त राज्य अमरीका के द्वारा सूचना और संचार के मुद्दे से अपना समर्थन वापस लेने के परिणामस्वरूप यूनेस्को ने अपना ध्यान हटा लिया। इसके बावजूद भी सूचना संबंधी अनेक विस्तृत वाद विवाद हुआ तथा उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका के इस कार्य को अवैध घोषित कर दिया। यानि की व्यापक रूप से अमान्य करार दिया। 1985 के महासम्मेलन ने इस मुद्दे को स्वीकार करने की मुद्रा में घोषणा की कि नई विश्व सूचना और संचार व्यवस्था की स्थापना को "विकार: और सतत् प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए।" आगे आने वाले वर्षों में नई सूचना व्यवस्था के सभी महत्वपूर्ण मुद्दों को जैसे कि सार्वभौमिक समाचार प्रसार, सूचना का अधिकार अथवा राष्ट्रीय संचार नीतियों को बहुत ही सहजता से पीछे धकेल दिया गया।

23.5 वर्तमान सूचना और संचार व्यवस्था

आज नई सूचना व्यवस्था ने अपना रूप निर्धारित कर लिया है किंतु यह गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के विचारों पर आधारित नहीं है। वास्तव में यह दक्षिण के विकसित देशों की एक व्यवस्था है जो हमारे सामने मौजूद है। यह व्यवस्था पूर्व इलेक्ट्रॉनिक युग की है जिसे बाद में विकसित देशों ने उत्तर उद्योग या सूचना युग की व्यवस्था है। यह वास्तव में उत्पादन गतिविधियों के स्थान पर आर्थिक गति को उन्नत करने के लिए एक नवीनीकरण करने का प्रयास है। अर्थ व्यवस्था पर उद्योग कर्ताओं का अधिकार है तथा अपने उत्पादनों को विकासशील देशों की ओर मोड़ने के लिए किया है जहाँ पर श्रम सस्ता है। उत्तर और दक्षिण के देशों में अब और अधिक अंतर हो गया है। इस तथ्य को निम्नलिखित वर्णन स्पष्ट करते हैं :

- विश्वभर में प्रतिदिन 8500 से अधिक समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं जिनकी 5750 लाख से ज्यादा प्रजियां वितरित होती हैं। इस समूचे समाचारपत्रों के उत्पादन में 70 प्रतिशत हिस्सा विकसित देशों का है जो एक रिकार्ड उत्पादन माना जा सकता है। यद्यपि विकासशील देशों की कुल जनसंख्या विश्वजनसंख्या का तीन चौथाई है तथा विश्व के दैनिक समाचार पत्रों के 1/2 भाग इन के यहाँ से प्रकाशित होता है। वे केवल विश्व के समाचार पत्रों के 30 प्रतिशत उत्पादन को ही संभाल पाते हैं। इनमें 60 ऐसे देश भी मौजूद हैं जिनके पास सामान्य रूचि का एक भी समाचार पत्र नहीं है या फिर यह भी कह सकते हैं कि कई देशों में सिर्फ एक समाचार पत्र ही प्रकाशित होता है। यह भयंकर स्थिति विकासशील देशों की हमारे समक्ष मौजूद है।

- विश्वभर में पुस्तक उत्पादन या प्रकाशन का कार्य एक नाटकीय ढ़ग से बढ़ा है। परन्तु छः लाख से भी अधिक पुस्तकों के प्रकाशन और नियति का काम विकसित देशों के ही हाथों से होता है जबकि विकासशील देश लगभग दो लाख पुस्तकें ही प्रकाशित कर पाते हैं। इसके साथ ही वैज्ञानिक तकनीकी तथा शैक्षिक विषयों से संबंधित पुस्तकों की मांग में बेहद वृद्धि हुई है जबकि विकासशील देशों के पास मुद्रण कागज की कमी होने के कारण वे अपने यहाँ की मांग भी पूरी नहीं कर पाते हैं। इसलिए ये देश पश्चिम के विकसित देशों से उपर्युक्त विषयों की पुस्तकों का आयात करते हैं। तथापि विकासशील देशों द्वारा पुस्तकों के रूप में निर्यात बहुत ही कम है जो विकसित देशों को भेजा जाता है। अनिवार्य रूप से यह पुस्तक प्रसार दो समूहों के मध्य एक तरफा ही कहा जायेगा। इसीलिए ही तो कुछ बहुराष्ट्रीय निगमों का ध्यान विकासशील देशों में पुस्तक उत्पादन के संबंध में केन्द्रित है। जहाँ तक पुस्तक निर्यात का मुद्दा है विश्वभर में सबसे अधिक पुस्तक निर्यात संयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन तथा जर्मनी द्वारा की जाती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- सिनेमा से संबंधित जब फिल्मों का मुद्दा उठता है तो विकासशील देश फिल्मों का उत्पादन विकसित देशों से थोड़ा अधिक करते हैं। फिल्म निर्माण के मामले में भारत विश्वभर में सबसे आगे हैं। यहाँ सबसे अधिक फिल्म उत्पादन होता है। परन्तु एक और तथ्य हमारे सामने है कि संयुक्त राज्य अमरीका फिल्मों का कोई बड़ा उत्पादक तो नहीं है किंतु फिर वह फिल्मों का कोई बड़ा निर्यातक अवश्यक है। याद रहे कि विश्वभर में फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन तथा जर्मनी विश्व की 80 से 90 प्रतिशत निर्यातित फिल्मों का कारोबार करते हैं।

- रेडियो और दूरदर्शन के सुनने एवं देखने वालों के वितरण में भी बहुत असमानताएं हैं। इनके ग्राहकों की सबसे अधिक संख्या भी विकसित देशों में ही देखने को मिलती है। एक आकंड़ा सर्वेक्षण के अनुसार 1000 की संख्या पर 1006 तथा 485 थी जबकि 1988 में विकासशील देशों में इनकी संख्या 173 एवं 44 ही बनती हैं। इन आंकड़ों में उस संख्या को दर्शाया नहीं गया है जो विकसित देशों में मुल रूप से बने रेडियो कार्यक्रमों के सैकड़ों ट्रांसमीटरों के संकेतकों को पकड़ते हैं। या फिर संयुक्त राज्य अमरीका या इससे कुछ काम यूरोप एवं जापान में बने कार्यक्रमों को आयात कर इन पर निर्भर रहते हैं।

- आज ज्यामित समकालीन कक्ष में लगभग 200 संचार उपग्रह काम कर रहे हैं। इन उपग्रहों में 90 प्रतिशत से अधिक संचार उपग्रह विकसित देशों ने स्थापित किए हुए हैं। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इनमें संयुक्त राज्य अमरीका और राष्ट्रकुल के स्वतंत्र राज्यों सहित अपने घरेलू और विश्वव्यापी सैनिक संचार उपग्रहों को बहुत बड़ी संख्या में आकाशीय कक्ष में

स्थापित किए हुए हैं। जबकि दुनिया की कुल 15 प्रतिशत जनसंख्या ही 50 प्रतिशत से अधिक उपग्रहों का उपभोग कर पाती है।

- 1980 के दशक के अंत तक, विकसित देशों के पास टेलीफोन की 3500 लाख लाइनें काम कर रही थी जबकि इसकी तुलना में विकासशील देशों के पास केवल 600 लाख टेलीफोन की लाइने मौजूद थी। इस असंतुलन के अनेकों उदाहरण कई क्षेत्रों में दिखाई देते हैं। दस ऐसे विकसित देश हैं जहाँ पर विश्व की कुल जनसंख्या का 20 प्रतिशत ही निवास करता है किन्तु उनके पास तीन चौथाई टेलीफोन की लाइने काम करती हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के पास टेलीफोन लाइनों की संख्या पूरे एशिया के बराबर हैं। इसके साथ ही सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों के पास टेलीफोन की प्रौद्योगिकी बहुत ही पुरानी है जिससे उसमें खर्चा भी अधिक होता है और सेवा भी घटिया किस्म की प्राप्त होती है।

- विश्व के 90 प्रतिशत कंप्यूटर केवल 15 विकसित देशों के पास है, ये देश आर्थिक रूप से बहुत सम्पन्न हैं। जहाँ तक अंतर्राष्ट्रीय कंप्यूटर संचार व्यवस्था का प्रश्न है केवल दुनिया के एक सौ से कुछ ही अधिक विकसित देशों के पास है। इस व्यवस्था को लागू करने के लिए इसकी तीन पूर्व शर्ते हैं, जो इस प्रकार हैं : बिजली की आपूर्ति विश्वसनीय एवं सार्वभौमिक हो। आपूर्ति के समय किसी तरह की बाधा नहीं आनी चाहिए। टेलीफोन लाइन बिना शोर शराबे के हो और किसी तरह की रूकावट न हो। और इन यंत्रों के रखरखाव की संपूर्ण देखभाल श्रेष्ठ तरीके की हो तथा उनकी समय समय पर अच्छे तकनीशियनों द्वारा सर्विस हो।

हम देखते हैं कि ये सब सुविधाएं विश्व के अधिकतर देशों के पास आज भी उपलब्ध नहीं हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दक्षिण के राष्ट्रों ने 1980 के दशक में संचार व्यवस्था में बहुत सारे सुधार किए हैं इसके बावजूद भी उत्तर और दक्षिण के बीच के राष्ट्रों में असमानताएं बढ़ती जा रही हैं। हालांकि सुनने और सूचना प्रसार के क्षेत्र में विकासशील देशों ने काफी प्रगति की है फिर भी आज दोनों क्षेत्रों में विकसित और विकासशील देशों में पहले से अधिक असंतुलन दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त दक्षिण को शामिल करने अथवा उसकी तुलना में कुछ पराराष्ट्रीय जन माध्यम में सुधारों के साथ प्रगति हुई है किंतु इन देशों की छवि उनकी दृष्टि में अभी भी विकृत बनी हुई है।

संचार और सूचना के क्षेत्र में वर्तमान प्रौद्योगिकीय विकास के पीछे मुख्य रूप से बाजार अथवा व्यापारिक ताकतों के हाथों में है वे ही लोग अपने लाभ के लिए इसे संचालित करते हैं तथा इच्छानुसार जहाँ लाभ अधिक मिले उस क्षेत्र में अपना विकास करते हैं। संचार साधन इन थोड़े से लोगों की कठपुतली बना हुआ है। इसके चलते हुए 1970 के दशक में अमरीका में इन व्यापारिक हितों ने सांस्थानिक और सरकारी नियंत्रण को कमजोर कर दिया था जिसमें व्यापारियों की बहुत बड़ी भूमिका रही थी।

हमारे सामने उदाहरण है कि 1980 के दशक में यूरोपिय राष्ट्रों ने सूचना उत्पादन और उसे प्रसारण में निजी क्षेत्रों की भागीदारी की अनुमति देकर अपनी संचार और सूचना व्यवस्था के स्तर को गिरा लिया था व निजी क्षेत्र के कारण इनकी सेवाएं अनियमित हो गई थी। क्योंकि यह बात अब सभी जानते हैं कि इन बाजार की शक्तिसों के पास अपनी राजनीतिक ताकते होती हैं तथा बहुत से देशों में ये वहाँ की सरकारी नीतियों की पूरक होती हैं तथा उनके अनुपालन में अपना प्रभाव बनाए रखती हैं। इसलिए इलेक्ट्रॉनिक सूचना उद्योग राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति को बनाने और बिंगाड़ने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं कि नई सूचना व्यवस्था की मांग करने पर किस तरह से इन बाजार की ताकतों ने अपनी भूमिका निभाकर उस मांग को निरस्त कर दिया था। यह बाजार और आर्थिक ताकते अपना हस्तक्षेप हमेशा कायम रखती हैं। इस तरह से विश्वव्यापी संचार और सूचना नेटवर्क के उदगम से दक्षिण के राष्ट्रों पर अपना दबाव बनाया हुआ है तथा वहाँ की आर्थिक स्थिति और सूचना क्षेत्र को नष्ट करने में भरसक प्रयास जारी हैं।

आंशिक रूप से विश्व के लोगों के पास संचार की सुविधा पहुँचने तथा संचार के विकास के परिणामस्वरूप और कुछ हद तक बाजार की शक्तियों के दबाव के कारण एक ओर गलत दृष्टिकोण पनप रहा है कि संचार माध्यम को पर-राष्ट्रीयकरण कर दिया जाना चाहिए। क्योंकि कुछ थोड़े से लोग अपनी चौकड़ी बना कर सूचना और संचार के प्रचार प्रसार पर काबिज होने का

प्रयास कर रहे हैं। यदि इन लोगों की इच्छा पूरी होने दी जाए और इस शताब्दी के अंत तक यही प्रवृत्ति चलती रही तो यह संभावना सचाई में बदल जाएगी कि दर्जन से भी कम ऐसे निगम दानव बैठे हैं जो विश्व के महत्वपूर्ण समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों, प्रसारण स्टेशनों, चलचित्रों तथा वीडियो केसेटों पर अपना पंजा जमा लेंगे तथा अपना नियंत्रण कायम कर लेंगे। ये निगमें अपने जातीय प्रभावों को अन्य दृष्टिकोणों, विचारों, संस्कृतियों तथा वाणिज्य जबरन हावी होंगे उन्हें प्रभावित करके प्रदूषित करेंगे। यह भयंकर जोखिम सूचना के इन अधिकार का हनन कर देगा जो निष्पक्ष सूचना की मांग करते हैं तथा उन नागरिकों के अधिकारों को भी नष्ट कर देगा जो अन्य स्रोतों या साधनों को अपनाना चाहते हैं साथ ही सूचना और संचार के माध्यमों को भी सीमित कर देगा जो आज के युग के लिए भयंकर साबित होगा।

23.5.1 अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव

संचार क्रांति का प्रभाव विषय आज के युग में महत्वपूर्ण बन गया है। यह वास्तव में संचार उपग्रहों, डिजिटल तथा कंप्यूटर व्यवस्था के प्रसार के कारण हाल के दिनों में यह समझा जा रहा है कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर इसका गहरा दबाव बना है। जबकि नई संचार प्रौद्योगिकी के एकदम ठीक प्रभाव की घोषणा करना तो जटिल कार्य है किंतु एक बात तो बिल्कुल निश्चित है कि समान आधार तीव्रता से परिवर्तित हो रहे है। आजकल सभी समाज सूक्ष्मदर्शी बन गए हैं। इस तरह से प्रमुख प्रौद्योगिकियों के कारण राष्ट्रीय सरकारें राष्ट्रीय संचार व्यवस्था पर अपना नियंत्रण खोती जा रही है। उपग्रहों ने परम्परागत भौगोलिक सीमाओं को तथा दूरी के मानकों को व्यर्थ कर दिया है। केबल ने स्थानीय वितरण व्यवस्था को बहुगुणात्मक बना दिया है और दूरी से आने वाले सिगनलों को आत्मसात करके उन्हें प्रस्तुत कर रहा है और वहीं पर कंप्यूटर प्रक्रिया तथा सूचना प्रसारण का कार्य एक दूसरे के लिए सहायक सिद्ध हो रहे हैं। इस तरह से राष्ट्र संदेश उत्पादन, प्रसारण प्रसार और प्राप्त करने पर अपना नियंत्रण खो चुके हैं। साथ ही संचार प्रौद्योगिकियों और उसकी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पराराष्ट्रीय चरित्र का निर्माण हो रहा है तथा राष्ट्र नए खतरों का सामना कर रहे हैं जैसे कि बाधाओं और तकनीकि असफलताओं का उदाहरण दिया जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक नवीन भूमंडलीय समुदाय का उदय हुआ है जो गैर राज्य कार्यकर्ता हैं जैसे कि परा राष्ट्रीय निगम और गैर सरकारी संगठन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन कार्यकर्ताओं और निगमों को उत्कृष्ठ बनाने में संचार क्रांति ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह अपने पूर्व की संरचना से अलग हो गए है। गैर सरकारी संगठनों के अधिकार क्षेत्र में असीमित वृद्धि हुई है। अब इसके अंतर्गत चाहे पर्यावरण, निरस्त्रीकरण, मानव अधिकार, उपभोक्ता अधिकार आदि कोई भी क्षेत्र क्यों न हो उसकी वहाँ पहुँच बन गई है। यहाँ तक कि अब इस के कार्यकर्ताओ को संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य विश्व मंचों ने भी मान्यता प्रदान कर दी है। जिसके कारण इनकी क्षमता और अपने कार्यों और दृष्टिकोण को प्रसारित करने की शक्ति में वृद्धि हुई है। कुछ ऐसे साक्ष्य उपलब्ध है जिनसे यह सिद्ध होता है कि अनुभवहीन भूमंडलीय नागरिक समुदाय पैदा हो गए हैं जो हमारे समाज में सामुहिक हिस्सा भी हैं किंतु उनके पास न तो बाजार का अनुभव है और न ही वे सरकारी तंत्र के बारे में जानते हैं किंतु ऐसे समुदाय संगठनों की मानों बाढ़ ही आ गई है। यह सब आप बहुत ही अच्छी तरह से एन जी ओ आंदोलन के विश्वव्यापी प्रभाव और उसकी बढ़ती हुई महत्ता में देख सकते हैं।

संचार प्रौद्योगिकी विश्व जनमत तैयार करने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग देता है तथा दूसरा उदाहरण है भूमंडलीय नागरिक समाज के निर्माण में अपना योगदान करता है। वैसे यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि विश्व मत दो प्रकार का होता है जैसे कि अल्प विकास, भूखमरी, सामाजिक असामान्यताएं तथा ऊर्जा संकट तथा दूसरी समस्या भूमंडलीय क्षेत्र से संबंधित होती है। जैसे कि विकास, पर्यावरण निरस्त्रीकरण तथा मानव अधिकार आदि। राजनीतिक नेतागण अब केवल परम्परागत घरेलू तथा विदेशी जनमत पर ही ध्यान नहीं देते हैं बल्कि विश्व द्वारा दिए गए जनमत को भी बड़ी व्यग्रता से सुनते हैं और उस पर अमल करने का प्रयास करते हैं। इलेक्ट्रॉनिक युग से पहले राजनीतिक नेता यह विश्वास करते थे कि वे अपने देश और विदेशी जनमत पर काबू पा सकते हैं। उस पर नियंत्रण रख सकते हैं। इसके साथ ही समाचार माध्यम भी सम्पादकीय रूप में या फिर मत संबंधी सामग्री विदेश से बहुत कम ही देते थे। परन्तु आज संचार प्रौद्योगिकी में तीव्रता से वृद्धि और विकास होने के कारण संवेदित नमूना तकनीकों से अब संभव हो गया है कि सरकारें समाचार माध्यम से संक्षिप्त सार के रूप में ले सकते हैं कि विदेशी लोग उनके संबंध में क्या सोचते हैं और उनका क्या मत है। आजकल तो सरकारें भी प्रायः अपने कार्यों को विभिन्न साधनों से अपने देश के लोगों और विदेश के लोगों के लिए प्रदर्शित करते रहते हैं।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना किजिए।

1) सूचना प्रसार–प्रचार में गुट निरपेक्ष देशों की क्या स्थिति है ?

....

....

....

....

2) मैकब्रिडे आयोग की प्रमुख सिफारिशें क्या थी ?

....

....

....

....

3) यूनिसको से संयुक्त राज्य अमरीका ने तुरन्त कौन सा समर्थन वापस लिया था ?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.6 सारांश

हमने इस इकाई में अनेक प्रौद्योगिकियों के आर्विभाव, एवं संचार और सूचना क्षेत्रों में हुए नाटकीय विकास के संबंध में अध्ययन किया। हमने यह भी देखा कि यहाँ संचार और दूर नियंत्रित संवेदी उपग्रह तथा डिजिटल व्यवस्था की स्थापना हो चुकी है। यह दुर्भाग्य ही समझा जाएगा कि संचार प्रौद्योगिकी से मानव जाति को समान रूप से लाभ नहीं मिला। बल्कि इसके चलते जिनके पास सूचनाएं हैं और जिनके पास सूचनाओं की कमी या सूचनाएं नहीं हैं उनके बीच व्यापक और लगातार असमानताएं बढ़ती जा रही हैं। यह अंतर एक देश से दूसरे देश में व्यापक रूप से फैला हुआ है यहाँ तक कि लिंगभेद भी बराबर बना हुआ है। वे इस अंतर को नगरों और ग्रामीण क्षेत्रों में भी बनाए हुए हैं। यह असंतुलन अमीर देशों और निर्धन देशों के बीच बना हुआ है। वास्तव में तथ्य यह है कि वास्तविक सूचनाओं का भंडार केवल विशिष्ट राष्ट्रों के लिए और जो उन राष्ट्रों में रहने वाले समृद्ध और विशिष्ट वर्गों के लिए ही उपलब्ध हैं।

1970 के दशक के मध्य से विकासशील राष्ट्र एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संचार व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं जो अधिक संतुलित, गैर औपनिवेशिक एवं लोकतांत्रिक समाचार एवं सूचनाएं उपलब्ध कराने में समर्थ हो। किंतु इन राष्ट्रों के व्यापारिक हित एवं बाजार की ताकतें, साथ ही उन राष्ट्रों का जो भूमंडलीय अर्थव्यवस्था पर अपना वर्चस्व एवं नियंत्रण बनाए रखना चाहते हैं उनके कड़े विरोध का सामना करना पड़ रहा है।

अब तो इन प्रौद्योगिकियों के अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव को भी समझा जा रहा है। इसके साथ ही हमने यह भी जान लिया है कि इन संचार प्रौद्योगिकियों ने जिसके समक्ष भौगोलिक दूरियां व्यर्थ हैं राष्ट्रीय संप्रभुता को भी खतरा पैदा कर दिया है। इस तरह से विश्वव्यापी संचार क्रांति के परिणामस्वरूप भूमंडलीय नागरिक समाजों की स्थापना भी हो चुकी है। यह सब संचार प्रौद्योगिकी क्रांति का ही करिश्मा कहा जायेगा।

23.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गोविन्द नारायण श्रीवास्तव (1989), नाम (एन ए एम) एंड दि न्यू इंटरनेशनल इनफोरमेशन एंड कम्यूनिकेशन आर्डर, इंडियन इंस्टीटयूट ऑफ नान अलाइन्ड स्टडीज, नई दिल्ली।

हॉवर्ड एच फ्रेडरिक (1993), ग्लोबल कम्यूनिकेशन एंड इंटरनेशनल रिलेशन्स, वाइसवर्थ पब्लिशिंग कंपनी, कैलीफोरनिया।

साईमन सेरफेटी (संपा) (1990), दि मीडिया एंड फॉरेन् पालिसी, सेंट मारटीन प्रेस, न्यूयार्क।

हमीद मौलाना (1986), ग्लोबल इनफोरमेशन एंड वर्ल्ड कम्यूनिकेशन : न्यू फंटीयर्स इन इंटरनेशनल रिलेशन्स, लोंगमैन्स, लन्दन।

23.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) संचार के कुछ गैर प्रौद्योगिकी माध्यम हैं, भाषा, पर्यटन, अंतर्राष्ट्रीय संगठन।

2) भूमध्य रेखा पर रहने वाले 9 देशों ने सन 1976 में एक सामूहिक घोषणा की थी और कहा था कि ज्यामिति स्थित कक्ष भूमध्यीय राज्यों का प्राकृतिक संसाधन है तथा वह उनकी सम्प्रमुता का विषय है। इन देशों ने अपना कड़ा विरोध प्रकट करते हुए कहा कोई भी उपग्रह उनके जी एस ओ में बिना अनुमति के स्थापित न किया जाए।

3) उपभाग 23.4.1 को देखें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 23.4.2 को देखें।

2) मैकब्रिडे आयोग ने जोर देकर सिफारिश की थी कि नई विश्व सूचना और संचार व्यवस्था (एन डब्ल्यू आई सी ओ) की स्थापना की जाये .... उसमें से कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार हैं। 1) विकासशील देश अपनी संचार व्यवस्था के आवश्यक तंत्रों/साधनों को स्थापित करने के लिए उपाय करे। 2) नए प्रसार के लिए नेटवर्क की स्थापना करे। 3) बाहरी निर्भरता से छूटकारा पाने के लिए प्रसारण सामग्री का राष्ट्रीय उत्पाद करने के लिए इन देशों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाए। 4) सभी विकास परियोजनाओं में विशेषकर संचार घटकों के लिए समुचित वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाये। 5) इलेक्ट्रोमेग्नेटिक स्पेक्टर्म तथा जी एस ओ कक्ष मानव की सामुहिक सम्पत्ति माना जाए और इन देशों को अधिक से अधिक इनका हिस्सा मिलना चाहिए। 6) माध्यम को मालिकाना हक बनाने वालों के विरूद्ध विशेष ध्यान दिया जाए ताकि वे इन संसाधनों पर किसी तरह के प्रतिबंध या अवरूद्ध करने के प्रयास को रोका जा सके। 7) संचार में केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया पर प्रतिबंध लगाने के लिए प्रभावकारी कानूनी उपाय किए जायें यानि की इन संबंधों में अंतर्राष्ट्रीय अधिनियम पारित किए जायें। 8) प्रत्येक समाज की सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित या संरक्षण देने के लिए उचित स्थिति और वातावरण तैयार करने के लिए ठोस कदम उठाए जायें।

3) उपभाग 23.4.2 देखें।

अंतर्राष्ट्रीरय प्रसार के चेनल और प्रकार। प्रौद्योगिकीय और मानव के नवीन मूलक साधनों को सम्पूरकता, अंतसंबंधित तथा स्वीकारात्मक सिद्धांतों के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।